श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी

कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)
श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ खण्ड)
भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद : पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत जीवन
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
कृष्णभक्ति की अनुपम भेंट
राजविद्या
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
पुनरागमन : पुनर्जन्म का विज्ञान
गीतार गान (बंगला)
भगवद्-दर्शन (मासिक पत्रिका) : संस्थापक

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,
'हरे कृष्ण धाम', जुहू, बम्बई-४०० ०४९

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

मध्य लीला
(प्रथम खण्ड: अध्याय १-९)

मूल बंगला पाठ,
अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

के द्वारा
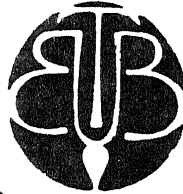
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

लॉस एंजिलिस • लंदन • स्वीडन • सिडनी • बम्बई

इस ग्रंथ की विषयवस्तु के जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं:

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
'हरे कृष्ण धाम',
जुहू, बम्बई-४०० ०४९

अनुवादक
(अंग्रेजी-हिन्दी)
डॉ. शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी अनुवाद संपादक
श्रीनिवास आचार्य दास
डॉ. संकटाप्रसाद उपाध्याय

पहला अंग्रेजी संस्करण, १९७४
पहला हिन्दी संस्करण, जनवरी, १९९४, २,००० प्रतियाँ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के लिए श्रील गोपालकृष्ण गोस्वामी द्वारा 'हरे कृष्ण धाम', जुहू, बम्बई-४०० ०४९ से प्रकाशित

Printed by, R.N. Kothari
Sanman & Co.,113, Shivshakti Ind. Estate,
Marol Naka, Andheri (E), Bombay - 400 059.

विषय सूची

प्रस्तावना

"हरे कृष्ण" विश्व भर के शहरों, कस्बों तथा गाँवों की जीभ पर बस गया है जिससे लगभग ५०० वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई भविष्यवाणी पूरी हुई है। लॉसऐंजिलिस से लन्दन तक, बम्बई से ब्यूनास आयर्स तक, पिट्सबर्ग तथा मेलबोर्न से पेरिस तथा मास्को तक सभी आयु, रंग, जाति तथा मतों के लोग "कृष्णभावनामृत" नामक गत्यात्मक योग प्रणाली के आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन लगभग ५०० वर्ष पूर्व पूरे जोर-शोर से शुरू हुआ जब कृष्ण (ईश्वर) के अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारत उपमहाद्वीप को हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन से आप्लावित कर दिया। सच्चे प्रेम के रहस्य को प्रकट करने के लिए पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण अपने ही भक्त के वेश में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में इस धरा पर आए। उन्होंने नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास नामक अपने प्रमुख पार्षदोंसहित यह शिक्षा दी कि किस तरह हरे कृष्ण कीर्तन करके तथा भाव में नृत्य करके भगवत्प्रेम उत्पन्न किया जाता है।

श्रीचैतन्य-चरितामृत की रचना महान सन्त कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु के तिरोधान के तुरन्त पश्चात् की जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की आनन्दमयी लीलाओं का वर्णन हुआ है और उनके प्रखर आध्यात्मिक दर्शन की गम्भीरतापूर्वक जाँच पड़ताल की गई है।

इसका अनुवाद तथा श्लोकों के तात्पर्य स्वामी प्रभुपाद द्वारा दिए गए हैं जिन्होंने *भगवद्गीता यथारूप*, *भक्तिरसामृतसिन्धु*, *भगवान् कृष्ण* तथा *योग* विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

अध्याय १

श्री चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाएँ

इस अध्याय में श्री चैतन्य महाप्रभु की उन समस्त लीलाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिन्हें उन्होंने मध्यकाल में तथा अपने कार्यकलापों के अन्तिम छह वर्षों में सम्पन्न किया। इन सबों का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। इस अध्याय में श्रील चैतन्य महाप्रभु के उस भावावेश का भी वर्णन है जो उन्हें *यः कुमार हरः* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक को सुनाने पर हुआ था। इस भावावेश की व्याख्या श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित श्लोक *प्रियः सोऽयं कृष्णः* में हुई है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक की रचना के लिए श्रील रूप गोस्वामी को विशेष आशीर्वाद दिया। इसके अतिरिक्त श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील जीव गोस्वामी द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों का वर्णन मिलता है। इसी के साथ रागकेलि नामक ग्राम में श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी के साथ उनकी भेंट का वर्णन हुआ है।

यस्य प्रसादादज्ञोऽपि सद्यः सर्वज्ञतां व्रजेत्।
स श्रीचैतन्यदेवो मे भगवान् संप्रसीदतु॥१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आशीर्वाद मात्र से अज्ञानी व्यक्ति भी तुरन्त सारा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अतएव मैं महाप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा करें।

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ सहोदितौ।
गौड़ादये पुष्पवन्तौ चित्रौ शन्दौ तमोनुदौ॥२॥

अनुवाद

मैं श्रीकृष्ण चैतन्य और नित्यानन्द प्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ

जो सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं। वे गौड़ देश के क्षितिज पर अज्ञान के अन्धकार को भगाने और सबों को आशीर्वाद देने के लिए एकसाथ उदित हुए हैं।

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ ।।३।।

अनुवाद

सबों पर कृपालु राधा तथा मदनमोहन की जय हो! यद्यपि मैं लंगड़ा और मूर्ख हूँ फिर भी वे मेरे मार्गदर्शक हैं और उनके चरणकमल मेरे सर्वस्व हैं।

दीव्यद्वृन्दावन्यकल्पद्रुमाधः
श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ ।
श्रीमद्राधाश्रीलगोविन्ददेवौ
प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ।।४।।

अनुवाद

वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों के मन्दिर के भीतर श्री श्री राधागोविन्द एक देदीप्यमान सिंहासन पर बैठे हुए हैं और उनके अत्यन्त विश्वासपात्र संगी (पार्षद) उनकी सेवा में लगे हुए हैं।

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः ।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तुनः ।।५।।

अनुवाद

अपनी वंशी के गीत से समस्त गोपियों को आकृष्ट करने वाले एवं वंशीवट में यमुना नदी के तट पर अत्यन्त रसीले रासनृत्य में मग्न गोपीनाथजी हम सबों पर दयालु हों।

जय जय गौरचन्द्र जय कृपासिन्धु।
जय जय शचीसुत जय दीनबन्धु ।।६।।

अनुवाद

दया के सिन्धु श्री गौरहरि की जय हो! हे शचीदेवी के पुत्र! आपकी

जय हो क्योंकि आप समस्त पतितात्माओं के एकमात्र मित्र हैं।

जय जय नित्यानन्द जयाद्वैतचन्द्र।
जय श्रीवासादि जय गौरभक्तवृन्द॥७॥

अनुवाद

नित्यानन्द तथा अद्वैत प्रभु की जय हो! श्रीवास ठाकुर प्रभृति श्री चैतन्य के भक्तों की जय हो!

पूर्वे कहिलूँ आदिलीलार सूत्रगण।
य़ाहा विस्तारियाछेन दास-वृन्दावन॥८॥

अनुवाद

इसके पूर्व मैं आदिलीला (प्रारम्भिक लीलाएँ) का सार कह चुका हूँ जिसका पूरा वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर पहले ही कर चुके हैं।

अतएव तार आमि सूत्रमात्र कैलूँ।
य़े किछु विशेष, सूत्रमध्येइ कहिलूँ॥९॥

अनुवाद

इसीलिए मैंने उन घटनाओं को संक्षेप में दिया है और जो कुछ विशेष था उसे भी उसी के साथ दिया जा चुका है।

एबे कहि शेषलीलार मुख्य सूत्रगण।
प्रभुर अशेष लीला ना य़ाय वर्णन॥१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की अनन्त लीलाओं का वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है किन्तु अब मैं मुख्य घटनाएँ बताना चाहता हूँ और अन्त में घटित होने वाली लीलाओं का सार प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

तार मध्ये य़ेइ भाग दास-वृन्दावन।
'चैतन्यमङ्गले' विस्तारि' करिला वर्णन॥११॥
सेइ भागेर इहाँ सूत्रमात्र लिखिब।
ताहाँ य़े विशेष किछु, इहाँ विस्तारिब॥१२॥

अनुवाद

श्री वृन्दावन दास ने अपनी पुस्तक *चैतन्य मंगल* में जिस अंश का विस्तार से वर्णन किया है उसे मैं संक्षेप में कहूँगा। किन्तु जो घटनाएँ विशिष्ट हैं उन्हें मैं बाद में विस्तार दूँगा।

चैतन्यलीलार व्यास—दास वृन्दावन।
ताँर आज्ञाय करोँ ताँर उच्छिष्ट चर्वण॥१३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं के प्रामाणिक संकलनकर्ता तो वास्तव में श्रील दास वृन्दावन हैं जो व्यासदेव के अवतार हैं। उनकी आज्ञा से ही मैं उनके द्वारा छोड़े गये जूठन को खाने का प्रयास कर रहा हूँ।

भक्ति करि' शिरे धरि ताँहार चरण।
शेषलीलार सूत्रगण करिये वर्णन॥१४॥

अनुवाद

अब मैं अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनके चरणकमलों को अपने मस्तक में धारण करके भगवान् की अन्तिम लीलाओं (शेषलीला) का संक्षिप्त वर्णन करूँगा।

चब्बिस वत्सर प्रभुर गृहे अवस्थान।
तहाँ ये करिला लीला—'आदिलीला' नाम॥१५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चौबीस वर्षों तक घर पर रहे और इस काल में उन्होंने जो भी लीलाएँ कीं वे आदिलीला के नाम से जानी जाती हैं।

चब्बिस वत्सर शेषे येइ माघमास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला संन्यास॥१६॥

अनुवाद

चौबीस वर्ष पूरे होने पर माघ मास के शुक्लपक्ष में भगवान् ने संन्यास ग्रहण किया।

संन्यास करिया चब्बिस वत्सर अवस्थान।
ताँहा ग्रेड़ लीला, तार 'शेषलीला' नाम॥१७॥

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु अगले चौबीस वर्षों तक इस धराधाम में रहे। इस काल में उन्होंने जो भी लीलाएँ कीं वे *शेषलीला* कहलाती हैं अर्थात् ऐसी लीलाएँ जो अन्त में घटित हुईं।

शेषलीलार 'मध्य' 'अन्त्य',—दुइ नाम हय।
लीलाभेदे वैष्णव सब नाम-भेद कय॥१८॥

अनुवाद

अन्तिम चौबीस वर्षों में सम्पन्न होने वाली शेष लीलाएँ मध्य तथा अन्त्य—इन दो नामों से जानी जाती हैं। इन्हीं विभागों के अनुसार सारे भक्त महाप्रभु की लीलाओं का उल्लेख करते हैं।

तार मध्ये छय वत्सर—गमनागमन।
नीलाचल-गौड़-सेतुबन्ध-वृन्दावन ॥१९॥

अनुवाद

अन्तिम चौबीस वर्षों में से छह वर्षों तक श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से लेकर बंगाल और कुमारी अन्तरीप से लेकर वृन्दावन तक सारे भारतवर्ष में भ्रमण करते रहे।

ताहाँ ग्रेड़ लीला, तार 'मध्यलीला' नाम।
तार पाछे लीला—'अन्त्यलीला' अभिधान॥२०॥

अनुवाद

इन स्थानों में महाप्रभु ने जितनी लीलाएँ कीं वे *मध्यलीला* कहलाती हैं और उसके बाद की जितनी लीलाएँ हैं वे *अन्त्यलीला* कहलाती हैं।

'आदिलीला', 'मध्यलीला', 'अन्त्यलीला' आर।
एबे 'मध्यलीला' किछु करिये विस्तार॥२१॥

अनुवाद

इसीलिए महाप्रभु की लीलाओं को तीन कालों में विभाजित किया जाता है—आदिलीला, मध्यलीला तथा अन्त्यलीला। अब मैं मध्यलीला का विस्तार से वर्णन करूँगा।

अष्टादशवर्ष केवल नीलाचले स्थिति।
आपनि आचरि' जीवे शिखाइला भक्ति॥२२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अट्ठारह वर्षों तक लगातार जगन्नाथ पुरी में रहे और उन्होंने अपने आचरण से सारे जीवों को भक्तियोग का उपदेश दिया।

तार मध्ये छय वत्सर भक्तगण-सङ्गे।
प्रेमभक्ति प्रवर्ताइला नृत्य-गीत-रङ्गे॥२३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी में इन अठारह वर्षों में से छह वर्ष अपने अनेक भक्तों के साथ बिताये। उन्होंने कीर्तन तथा नृत्य द्वारा भगवद्भक्ति का प्रवर्तन किया।

नित्यानन्द-गोसाञिरे पाठाइल गौड़देशे।
तेँहो गौड़देश भासाइल प्रेमरसे॥२४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को जगन्नाथ पुरी से बंगाल भेजा जो गौड़देश के नाम से प्रसिद्ध था। श्री नित्यानन्द प्रभु ने अपनी दिव्य प्रेमाभक्ति से इस देश को आप्लावित कर दिया।

सहजेइ नित्यानन्द—कृष्णप्रेमोद्दाम।
प्रभु आज्ञाय कैल याहाँ ताहाँ प्रेमदान॥२५॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द स्वभाव से भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति करने के लिए अत्यधिक सन्नद्ध रहते थे। अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु का आदेश हुआ तो उन्होंने इस प्रेमाभक्ति को सर्वत्र वितरित कर दिया।

ताँहार चरणे मोर कोटि नमस्कार।
चैतन्येर भक्ति ग्रेंहो लओयाइल संसार॥२६॥

अनुवाद

मैं उन श्री नित्यानन्द के चरणों पर असंख्य बार नमस्कार करता हूँ जो इतने दयालु हैं कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति को सारे विश्व में फैला दिया है।

चैतन्य-गोसाञि ग्राँरे बले 'बड़ भाइ'।
तेँहो कहे, मोर प्रभु—चैतन्य गोसाञि॥२७॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु श्री नित्यानन्द प्रभु को अपना बड़ा भाई कह कर पुकारते थे जबकि नित्यानन्द प्रभु उन्हें अपना स्वामी (गोसाईं) कहा करते थे।

ग्रद्यपि आपनि हये प्रभु बलराम।
तथापि चैतन्येर करे दास-अभिमान॥२८॥

अनुवाद

यद्यपि नित्यानन्द प्रभु स्वयं बलराम थे तथापि वे अपने को सदैव श्री चैतन्य महाप्रभु का नित्य दास मानते थे।

'चैतन्य' सेव, 'चैतन्य' गाउ, लओ 'चैतन्य'-नाम।
'चैतन्य' ग्रे भक्ति करे, सेइ मोर प्राण॥२९॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु हर एक से श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा करने, उनकी महिमा का गायन करने तथा उनका नाम लेने का आग्रह करते थे। वे उस व्यक्ति को अपने प्राणों के तुल्य समझते थे जो श्री चैतन्य महाप्रभु की भक्ति करता था।

एइ मत लोक चैतन्य-भक्ति लाओयाइल।
दीनहीन, निन्दक, सबारे निस्तारिल॥३०॥

अनुवाद

इस प्रकार श्रील नित्यानन्द प्रभु ने बिना भेदभाव के हर एक को श्री

चैतन्य-सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। ऐसा करने से पतितात्माओं तथा निन्दकों का भी उद्धार हो गया।

तबे प्रभु व्रजे पाठाइल रूप-सनातन।
प्रभु-आज्ञाय दुइ भाइल आइला वृन्दावन॥३१॥

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी नामक दोनों भाइयों को व्रज भेजा। उनके आदेश से वे श्री वृन्दावन धाम गये।

भक्ति प्रचारिया सर्वतीर्थ प्रकाशिल।
मदनगोपाल-गोविन्देर सेवा प्रचारिल॥३२॥

अनुवाद

वृन्दावन जाकर इन दोनों भाइयों ने भक्ति का प्रचार किया और अनेक तीर्थस्थानों की खोज की। उन्होंने विशेष रूप से मदनमोहन तथा गोविन्दजी की सेवा का शुभारम्भ किया।

नाना शास्त्र आनि' कैला भक्तिग्रन्थ सार।
मूढ अधम जनेर तेंहो करिला निस्तार॥३३॥

अनुवाद

रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी दोनों भाई वृन्दावन में अनेक शास्त्र ले आये और भक्ति-विषयक अनेक शास्त्रों का संग्रह करके इनका सार तैयार किया। इस प्रकार उन्होंने सारे धूर्तों तथा पतितों का उद्धार किया।

तात्पर्य

श्रील श्रीनिवास आचार्य का एक गीत है—

नानाशास्त्रविचारणैकनिपुणौ सद्धर्मसंस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्णपदारविन्दभजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ॥

श्रील रूप और श्रील सनातन गोस्वामी के निर्देशन में षड् गोस्वामियों ने

विभिन्न वैदिक ग्रंथों का अध्ययन किया और साररूप में भगवान् की भक्ति ग्रहण की। इसका अर्थ यह होता है कि गोस्वामियों ने वैदिक ग्रंथों की सहायता से भक्ति विषयक अनेक शास्त्रों की रचना की। भक्ति कोई आवेग नहीं है। भक्ति वैदिक ज्ञान का सार है जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (१५.१५) हुई है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*। सारे वेदों का लक्ष्य कृष्ण को जानना है और भक्ति के माध्यम से कृष्ण को किस प्रकार समझा जाय इसकी व्याख्या श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामियों ने समस्त वैदिक साहित्य के साक्ष्य के आधार पर की। उन्होंने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जिससे कि गोस्वामियों के र्मागदर्शन में धूर्त या निपट मूर्ख भी तर सकता है।

प्रभु आज्ञार कैल सब शास्त्रेर विचार।
व्रजेर निगूढ़ भक्ति करिल प्रचार॥३४॥

अनुवाद

ये गोस्वामी समस्त गुह्य वैदिक साहित्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर भक्ति विषयक सारा प्रचार-कार्य करते रहे। यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश की पूर्ति के निमित्त था। इस तरह कोई भी वृन्दावन की परम गुह्य भक्ति को समझ सकता है।

तात्पर्य

इससे सिद्ध होता है कि प्रामाणिक भक्ति वैदिक साहित्य के प्रमाणों पर आधारित होती है। यह *प्राकृतसहजिया* लोगों द्वारा प्रदर्शित आवेग (भाव) पर आधारित नहीं होती। प्राकृतहजिया वैदिक साहित्य का अध्ययन नहीं करते। ये लम्पट, स्त्रियों की खोज में रहने वाले तथा गांजा पीने वाले होते हैं। कभी-कभी ये नाटक करके, आँखों में आँसू भर कर भगवान् के लिए विलाप करते हैं। हाँ, इन आँसुओं से सारे शास्त्रों के प्रमाण धुल जाते हैं। ये प्राकृतसहजिए इतना भी लिहाज नहीं बरतते कि इससे श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों का उल्लंघन हो रहा है, जिन्होंने विशेष रूप से कहा था कि वृन्दावन तथा वृन्दावन-लीलाओं को समझने के लिए मनुष्य को शास्त्रों (वैदिक साहित्य) का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* का कथन है—*भक्त्या श्रुत-गृहीत्या*—अर्थात् वैदिक ज्ञान से भक्ति अर्जित की जा सकती है। *तच्छ्रद्दधानाः मुनयः*। जो भक्त वास्तव में भक्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं वे वैदिक साहित्य के श्रवण द्वारा उसे प्राप्त करते हैं (*भक्त्या श्रुत गृहीत्या*)।

ऐसा नहीं है कि भावावेश से कुछ उत्पन्न करके, *सहजिया* बन लिया जाय और मनगढंत भक्ति का प्रचार किया जाय। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ऐसे सहजियों को नितान्त नास्तिक मायावादियों से अच्छा मानते थे। मायावादियों को परमेश्वर का तनिक भी ज्ञान नहीं होता। इसलिए सहजियों की स्थिति मायावादी संन्यासियों से श्रेष्ठ है। यद्यपि इन सहजियों को अधिक वैदिक ज्ञान नहीं होता फिर भी वे भगवान् कृष्ण को परमेश्वर रूप में स्वीकार करते हैं। दुर्भाग्यवश वे अन्यों को यथार्थ भक्ति से दिग्भ्रमित करते हैं।

हरिभक्तिविलास, आर भागवतामृत।
दशम-टिप्पणी, आर दशम-चरित॥३५॥

अनुवाद

श्री सनातन गोस्वामी द्वारा रचित पुस्तकें इस प्रकार हैं—हरिभक्ति-विलास, भागवतामृत, दशम-टिप्पणी तथा दशम-चरित।

तात्पर्य

भक्तिरत्नाकर नामक पुस्तक की प्रथम लहर में कहा गया कि सनातन गोस्वामी ने स्वाध्याय द्वारा *श्रीमद्भागवत* को हृदयंगम किया और इसकी व्याख्या अपनी टीका *वैष्णव-तोषणी* में की है। श्री सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से जितना भी ज्ञान प्राप्त किया था उसे अपनी दक्ष सेवा द्वारा उन्होंने सारे विश्व में प्रसारित कर दिया। सनातन गोस्वामी ने अपनी इस *वैष्णव-तोषणी* टीका को श्रील जीव गोस्वामी को सौंप दिया कि वे इसका सम्पादन कर दें, फलतः उन्होंने *लघुतोषणी* नाम से उसे सम्पादित कर दिया। सनातन गोस्वामी ने १४७६ शक में लेखन-कार्य समाप्त किया और श्रील जीव गोस्वामी ने *लघुतोषणी* को शकाब्द १५०४ में पूरा किया।

श्री सनातन गोस्वामी द्वारा रचित *हरिभक्ति-विलास* की सामग्री श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा संकलित की गई और यह *वैष्णव-स्मृति* के नाम से विख्यात है। इसमें बीस अध्याय हैं जिन्हें विलास कहा गया है। प्रथम विलास में गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन है और मन्त्रों की व्याख्या की गई है। द्वितीय विलास में दीक्षा का और तृतीय विलास में वैष्णव आचरण का वर्णन हुआ है, जिसमें स्वच्छता, भगवान् का निरन्तर स्मरण तथा गुरु द्वारा दिये गये मन्त्र के जाप पर विशेष जोर दिया गया है। चतुर्थ विलास में संस्कार, तिलक, मुद्रा, माला तथा गुरु-पूजा का उल्लेख है। पंचम विलास

में ध्यान के लिए स्थान का चुनाव, प्राणायाम-विधि, तथा शालग्राम-विग्रह के ध्यान और पूजन का वर्णन हुआ है। छठे विलास में भगवान् के दिव्य रूप का आवाहन करने और उन्हें स्नान कराने की विधि दी गई है। सप्तम विलास में भगवान् विष्णु की पूजा के लिए फूल एकत्र करने के विषय में हिदायतें हैं। अष्टम विलास में अर्चा-विग्रह का वर्णन तथा अगुरु, दीप, भोग, नृत्य, गायन, ढोल बजाने, अर्चा-विग्रह को माल्यार्पण, स्तुति और नमस्कार करने तथा अपराधों को दूर करने का वर्णन हुआ है। नवें विलास में तुलसी-दल चुनने, वैष्णव अनुष्ठानों के अनुसार पितरों का तर्पण करने और भोजन अर्पित करने का वर्णन है। दसवें विलास में भगवद्भक्तों (वैष्णवों या सन्त पुरुषों) का वर्णन है। ग्यारहवें विलास में अर्चा-पूजन एवं भगवन्नाम की महिमा का विस्तृत वर्णन है। इसमें अर्चा-विग्रह के नाम का कीर्तन किस तरह किया जाय और नाम-कीर्तन में जो अपराध होते हैं उनके नाम तथा उनसे बचने के उपायों का वर्णन हुआ है। भक्ति तथा शरणागति की महिमा का भी वर्णन हुआ है। बारहवें विलास में एकादशी का वर्णन है। तेरहवें विलास में व्रतों तथा महाद्वादशी उत्सव मनाने का वर्णन मिलता है। चौदहवें विलास में प्रत्येक मास के कार्य दिये हुए हैं। पन्द्रहवें विलास में निर्जला एकादशी व्रत रखने की विधि वर्णित है। साथ ही शरीर में विष्णु-चिह्न अंकित करने, वर्षा ऋतु में चातुर्मास्य व्रत रखने तथा जन्माष्टमी, पार्श्वैकादशी, श्रवणाद्वादशी, रामनवमी तथा विजयादशमी विषयक विवेचनाएँ हैं। सोलहवें विलास में कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) या दामोदर मास या ऊर्ज मास में, जब अर्चा-कक्ष में या मन्दिर के ऊपर दीपक जलाये जाते हैं तब जो कार्य करने चाहिए, उनका वर्णन हुआ है। गोवर्धन-पूजा तथा रथयात्रा के भी विवरण मिलते हैं। सत्रहवें विलास में अर्चा-विग्रह पूजन की तैयारी, महामंत्र कीर्तन तथा जप-विधि का उल्लेख है। अठारहवें विलास में अर्चा-विग्रह की प्रतिष्ठा तथा स्थापना के पूर्व अर्चा को स्नान कराने के अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। बीसवें विलास में मन्दिरों के निर्माण का वर्णन है, जिसमें महान् भक्तों द्वारा बनवाये गये मन्दिरों का उल्लेख है। *हरिभक्ति-विलास* ग्रंथ का विस्तृत वर्णन श्री कविराज गोस्वामी द्वारा *मध्यलीला* में (२४.३२९-३४५) हुआ है। इन श्लोकों में दिये गये विवरण गोपाल भट्ट द्वारा संकलित अंशों के विवरणों पर आधारित हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार गोपाल भट्ट ने भक्ति के जो विधि-विधान संकलित किये हैं, वे हमारे वैष्णव

सिद्धान्तों के अनुसार नहीं हैं। वास्तव में गोपाल भट्ट ने वैष्णव-विधानों के विस्तृत वर्णनों को हरिभक्ति-विलास से ग्रहण करके उन्हें संक्षिप्त किया था। किन्तु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का मत है कि हरिभक्ति-विलास का अनुसरण करने का अर्थ है वैष्णव-अनुष्ठानों को पूरी तरह से पालना। उनका दावा है कि गोपाल भट्ट गोस्वामी ने मूल *हरिभक्ति-विलास* से जो अंश संकलित किये थे उन पर *स्मार्त समाज* का प्रभाव पड़ा है। ब्राह्मण जाति इस समाज का अनुसरण करती है। अतएव गोपाल भट्ट गोस्वामी की पुस्तक से वैष्णव निर्देशों को ढूँढ पाना कठिन है। इसलिए अच्छा यही होगा कि हरिभक्ति विलास पर स्वयं सनातन गोस्वामी द्वारा की गई *दिग्दर्शिनी टीका* को ही पढ़ा जाय। कुछ लोगों का कहना है कि इसी टीका का संकलन गोपीनाथ पूजा अधिकारी द्वारा हुआ। ये श्री राधारमणजी की सेवा में लगे रहते थे और गोपाल भट्ट गोस्वामी के शिष्यों में से थे।

बृहद्-भागवतामृत दो भागों में मिलता है और इसमें भक्ति सम्पन्न करने का वर्णन हुआ है। प्रथम भाग में भक्ति का विश्लेषण हुआ है जिसमें पृथ्वी समेत विभिन्न लोकों, स्वर्गलोकों, ब्रह्मलोक तथा वैकुण्ठ-लोक का भी वर्णन मिलता है। भक्तों का भी वर्णन हुआ है जिसमें घनिष्ठ, अति घनिष्ठ तथा पूर्ण भक्तों की कोटियाँ दी हुई हैं। द्वितीय भाग में *गोलोक-माहात्म्य-निरूपण* के साथ साथ भौतिक जगत से वैराग्य लेने की विधि का वर्णन मिलता है। इसमें असली ज्ञान, भक्ति, आध्यात्मिक जगत, ईश-प्रेम, जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति तथा जगत के आनन्द का भी वर्णन हुआ है। इस तरह प्रत्येक भाग में सात अध्याय हैं और कुल मिलाकर चौदह अध्याय हैं।

दशम टिप्पणी श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की टीका है। इसका दूसरा नाम *बृहद् वैष्णव-तोषणी-टीका* भी है। *भक्तिरत्नाकार* में बतलाया गया है कि *दशम टिप्पणी* १४७६ शकाब्द में पूरी हुई थी।

एइ सब ग्रन्थ कैल गोसाञि सनातन।
रूप गोसाञि कैल य़त, के करु गणन॥३६॥

अनुवाद

मैंने सनातन गोस्वामी द्वारा रचित चार पुस्तकों के नाम पहले ही दे दिये हैं। इसी तरह श्रील रूप गोस्वामी ने भी अनेक पुस्तकों की रचना की है जिनकी गिनती नहीं की जा सकती।

प्रधान प्रधान किछु करिये गणन।
लक्ष ग्रन्थे कैल व्रजविलास वर्णन॥३७॥

अनुवाद

अतएव मैं श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित मुख्य-मुख्य पुस्तकों के ही नाम गिनाऊँगा। उन्होंने लाखों श्लोकों में वृन्दावन-लीलाओं का वर्णन किया है।

रसामृत सिन्धु, आर विदग्धमाधव।
उज्ज्वलनीलमणि, आर ललितमाधव॥३८॥

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी द्वारा रचित पुस्तकों में भक्तिरसामृत-सिन्धु, विदग्ध माधव, उज्ज्वल-नीलमणि तथा ललित-माधव सम्मिलित हैं।

दानकेलि कौमुदी, आर बहु स्तवावली।
अष्टादश लीलाच्छन्द, आर पद्यावली॥३९॥
गोविन्द-विरुदावली, ताहार लक्षण।
मथुरा-माहात्म्य, आर नाटक-वर्णन॥४०॥

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने दानकेलि-कौमुदी, स्तवावली, लीलाच्छन्द, पद्यावली, गोविन्द-विरुदावली, मथुरा-महात्म्य तथा नाटक-वर्णन नामक पुस्तकों की भी रचना की।

लघुभागवतामृतादि के करु गणन।
सर्वत्र करिल व्रजविलास वर्णन॥४१॥

अनुवाद

भला श्रील रूप गोस्वामी द्वारा रचित शेष पुस्तकों (जिनमें लघु भागवतामृत मुख्य है) की गिनती कौन कर सकता है? उन्होंने उन सबों में वृन्दावन-लीलाओं का वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इन पुस्तकों का विवरण दिया है। *भक्तिरसामृत-सिन्धु*

कृष्ण-भक्ति उत्पन्न करने और उस दिव्य विधि का पालन करने से सम्बन्धित ग्रंथ है। इसकी रचना १४६३ शकाब्द में पूर्ण हुई। इस ग्रंथ में चार खण्ड हैं—पूर्व विभाग, दक्षिण विभाग, पश्चिम विभाग तथा उत्तर विभाग। पूर्व विभाग में भक्ति के स्थायी विकास का वर्णन है। इसमें भक्ति के सामान्य नियम, भक्ति सम्पन्न करने, भक्ति में आह्लाद तथा भगवद्प्रेम की प्राप्ति का वर्णन हुआ है। इस प्रकार इस भक्ति के अमृत-सिन्धु में इस विभाग में चार लहरें हैं।

दक्षिण विभाग में भक्ति-रस का सामान्य वर्णन हुआ है। इसमें विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी तथा स्थायी भाव—इन सबों का भक्ति के उच्च स्तर पर वर्णन मिलता है। इस तरह इस विभाग में ५ लहरें हैं। पश्चिम विभाग में भक्ति से प्राप्त होने वाले मुख्य दिव्य रसों का वर्णन *मुख्य भक्ति-रस निरूपण* शीर्षक से मिलता है। इस विभाग में शान्त भक्तिरस, दास्य भक्तिरस, सख्य भक्तिरस, वात्सल्य भक्तिरस तथा कृष्ण और उनके भक्तों के मध्य माधुर्य रस का वर्णन मिलता है। इस विभाग में भी ५ लहरें हैं।

उत्तर विभाग में भक्ति के गौण रसों—हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स—का वर्णन हुआ है। रसों में विभिन्न प्रकार की मैत्री तथा वैर का मिश्रण भी है। इस विभाग में कुल ९ लहरें हैं। इस तरह यह भक्तिरसामृत सिन्धु की संक्षिप्त रूपरेखा है।

विदग्ध माधव वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित एक नाटक है। श्रील रूप गोस्वामी ने इसकी समाप्ति १४५४ शकाब्द में की। इस नाटक का प्रथम खण्ड *वेणुनाद-विलास*, दूसरा खण्ड *मन्मथ-लेख*, तीसरा खण्ड *राधा-सङ्ग*, चौथा खण्ड *वेणु हरण*, पाँचवा खण्ड *राधा-प्रसादन*, छठा खंड *शरद्विहार* और सातवाँ खण्ड *गौरीविहार* कहलाता है।

उज्ज्वल नीलमणि नामक पुस्तक में प्रेमालाप का दिव्य विवरण मिलता है, जिसमें रूपक, सादृश्य तथा उच्च भक्ति-भाव सम्मिलित हैं। *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में जिस मधुर भक्तिरस का संक्षिप्त वर्णन मिलता है, वही *उज्ज्वल नीलमणि* में विस्तार रूप में मिलता है। इस पुस्तक में प्रेमियों, उनके सहायकों तथा कृष्ण के प्रियजनों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन हुआ है। इसमें श्रीमती राधारानी तथा अन्य नायिकाओं का वर्णन मिलता है। दूतियाँ, सखियाँ तथा कृष्ण के अत्यन्त प्रियों का भी वर्णन हुआ है। इस पुस्तक में इसका भी वर्णन

मिलता है कि कृष्ण-प्रेम को कैसे जागृत किया जाता (उद्दीपन) है। इसमें भाव-दशा, भक्ति-दशा, स्थायी भाव, व्यभिचारी भाव, तरह तरह के वस्त्र, वियोग-दशा, पूर्वराग, मान, प्रेमालाप की किस्में, प्रियतम से विछोह, प्रियतम से मिलन, प्रेमी-प्रेमिका के मध्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष संभोग का वर्णन मिलता है। इन सबों का विस्तार से वर्णन हुआ है।

इसी प्रकार *ललित माधव* में कृष्ण की द्वारका-लीलाओं का वर्णन मिलता है। इन लीलाओं को नाटक का रूप दिया गया है और इस ग्रंथ की रचना १४५९ शकाब्द में हुई। इसके प्रथम अंक में संध्याकालीन केलिकलापों का वर्णन है, द्वितीय अंक में शंखचूड़ का वध, तृतीय में उन्मत्त राधारानी का वर्णन, चतुर्थ में राधारानी का कृष्ण के यहाँ जाने, पाँचवे में चन्द्रावली की प्राप्ति, छठें में ललिता की प्राप्ति, सातवें में नववृन्दावन में भेंट, आठवें में नववृन्दावन में रंगेरेलियाँ, नवें में चित्र-दर्शन तथा दसवें अंक में पूर्ण मनःतुष्टि का वर्णन है। इस तरह यह नाटक दस अंकों में विभाजित है।

लघु भागवतामृत दो भागों में विभक्त है। पहला—कृष्णामृत तथा दूसरा—भक्तिरसामृत। प्रथम भाग में वैदिक प्रमाण की महत्ता पर बल दिया गया है। इसके बाद श्रीकृष्ण रूप में आदि भगवान् का वर्णन तथा उनकी लीलाएँ एवं स्वांश और विभिन्नांश में उनके विस्तार का वर्णन है। अवतारों को विभिन्न विलासों के अनुसार *आवेश* तथा *तद्एकात्म* कहा जाता है। प्रथम अवतार को तीन पुरुषावतारों में—महाविष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु में विभाजित किया जाता है। तत्पश्चात् प्रकृति के गुणों के अनुसार तीन अवतार (गुणावतार) होते हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर (शिव)। भगवान् की सेवा में जितनी साज-सामग्री काम आती है, वह दिव्य होती है, इस भौतिक जगत के तीनों गुणों से अतीत। इसमें पच्चीस *लीलावतारों* के नाम दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं—चतुःसन (कुमारगण), नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, ऋषि, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, पृश्नगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, दाशरथि, कृष्णद्वैपायन, बलराम, वासुदेव, बुद्ध तथा कल्कि। मनु के भी चौदह अवतार होते हैं—यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित, वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर तथा बृहद्भानु। चारों युगों के भी चार चार अवतार हैं और उनके रंगों—श्वेत, लाल, श्याम तथा काला (कभी कभी पीला—जैसे चैतन्य महाप्रभु का) का भी वर्णन हुआ है। विभिन्न प्रकार

के कल्पों एवं इनके अवतारों का भी वर्णन हुआ है। विभिन्न अवतारों की विभिन्न परिस्थितियों को आवेश, प्राभव, वैभव तथा पर कहा गया है। विशिष्ट लीलाओं के अनुसार नामों को शक्ति प्रदान की जाती है। शक्तिमान तथा शक्ति का अन्तर और परमेश्वर के अचिन्त्य कार्यकलापों का भी वर्णन हुआ है।

श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं और उनसे बड़ा कोई नहीं है। वे सारे अवतारों के उत्स हैं। *लघु भागवतामृत* में भगवान् के अंशावतारों, निर्विशेष ब्रह्मज्योति (जो श्रीकृष्ण का शारीरिक तेज है), दो हाथ वाले सामान्य मनुष्य के रूप में श्रीकृष्ण की लीलाओं की अद्वितीयता आदि के वर्णन मिलते हैं। भगवान् के द्विभुज रूप की बराबरी नहीं की जा सकती। वैकुण्ठ जगत में शरीर के स्वामी (देही) तथा देह में कोई अन्तर नहीं होता। भौतिक जगत में देही को आत्मा कहते हैं और शरीर भौतिक स्वरूप कहलाता है। किन्तु वैकुण्ठ-लोक में ऐसा अन्तर नहीं होता। श्रीकृष्ण अजन्मा हैं और अवतार के रूप में उनका आविर्भाव अनादि है। कृष्ण की लीलाएँ दो तरह की हैं—प्रकट तथा अप्रकट। उदाहरणार्थ, जब कृष्ण भौतिक जगत में जन्म लेते हैं तो उनकी लीलाएँ प्रकट कहलाती हैं, किन्तु जब वे अन्तर्धान हो जाते हैं तो यह नहीं समझना चाहिए कि उनका अन्त हो गया, क्योंकि अप्रकट रूप में उनकी लीलाएँ चलती रहती हैं। भगवान् की प्रकट लीलाओं में भक्तों तथा कृष्ण के द्वारा तरह-तरह के रसों का आस्वादन किया जाता है। मथुरा, वृन्दावन तथा द्वारका में उनकी लीलाएँ शाश्वत हैं और ब्रह्माण्ड के किसी न किसी कोने में निरन्तर चलती रहती हैं।

ताँर भ्रातुष्पुत्र नाम—श्रीजीवगोसाञि।
य़त भक्ति-ग्रंथ कैल, तार अन्त नाइ॥४२॥

अनुवाद

श्री रूप गोस्वामी के भतीजे श्रील जीव गोस्वामी ने भक्ति सम्बन्धी इतनी पुस्तकें लिखी हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती।

श्रीभागवतसन्दर्भ-नाम ग्रन्थ-विस्तार।
भक्तिसिद्धान्तेर ताते देखाइयाछेन पार॥४३॥

अनुवाद

श्रील जीव गोस्वामी ने श्री भागवत-सन्दर्भ में भक्ति के चरम सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

तात्पर्य

भागवत-सन्दर्भ का दूसरा नाम *षट् सन्दर्भ* भी है। इसके प्रथम खंड को *तत्त्व-सन्दर्भ* कहते हैं जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि *श्रीमद्भागवत* सर्वाधिक प्रामाणिक साक्ष्य है, जो परम सत्य को इंगित करता है। इसका द्वितीय सन्दर्भ *भागवत-सन्दर्भ* कहलाता है और जो निर्विशेष ब्रह्म तथा अन्तर्यामी ब्रह्म के भेद को बतलाता है। इसमें आध्यात्मिक जगत तथा सतोगुण की प्रधानता का वर्णन है अर्थात् इसमें *शुद्ध सत्त्व* का प्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमोगुणों द्वारा कलुषित हो सकता है, किन्तु शुद्ध सत्त्व पद पर स्थित होने पर इस प्रकार से कलुषित होने की सम्भावना नहीं रहती। यह शुद्ध सत्त्व का आध्यात्मिक स्तर है। इसमें भगवान् तथा जीव की शक्ति का भी वर्णन हुआ है और भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों एवं उनकी विविधता का भी वर्णन हुआ है। ये शक्तियाँ अन्तरंगा, बहिरंगा, साकार, तटस्था आदि कोटियों में बँटी हुई होती हैं। इसमें अर्चा-विग्रह पूजा की नित्यता, अर्चा-विग्रह की सर्वशक्तिमत्ता, भगवान् की सर्वव्यापकता, सर्वाश्रयता, उनकी सूक्ष्म तथा स्थूल शक्तियाँ, उनका साकार स्वरूप, उनके रूप, गुण तथा लीलाओं की अभिव्यक्ति, उनकी दिव्य स्थिति तथा उनका पूर्ण रूप—इन सबकी व्याख्याएँ भी हैं। यह भी बतलाया गया है कि ब्रह्म विषयक प्रत्येक वस्तु में समान शक्ति होती है और वैकुण्ठ-लोक, वैकुण्ठ-लोक के पार्षद तथा वैकुण्ठ-लोक में भगवान् की तीनों शक्तियाँ—ये सभी दिव्य हैं। इसके अतिरिक्त निर्विशेष ब्रह्म तथा भगवान् में अन्तर, भगवान् की पूर्णता, समस्त वैदिक ज्ञान का लक्ष्य, भगवान् की निजी शक्तियाँ तथा वैदिक ज्ञान के आदि प्रणेता के रूप में भगवान् के विषय मे भी विचार-विमर्श हुआ है।

तीसरा सन्दर्भ *परमात्म-सन्दर्भ* कहलाता है। इसमें परमात्मा का वर्णन हुआ है तथा इसकी विवेचना मिलती है कि परमात्मा किस प्रकार करोड़ों जीवों में विद्यमान रहता है। गुणावतारों में अन्तर, जीव, माया तथा जगत विषयक शास्त्रार्थ, रूपान्तर सिद्धान्त, माया, इस जगत तथा परमात्मा की अभिन्नता

तथा इस जगत के विषय में सचाई की व्याख्याएँ हैं। इस सन्दर्भ में श्रीधर स्वामी के मत दिये गये हैं। यहाँ बतलाया गया है कि यद्यपि भगवान् भौतिक गुणों से रहित हैं, किन्तु वे सारे भौतिक कार्यकलापों का निरीक्षण करते हैं। इसकी भी व्याख्या है कि किस प्रकार लीलावतार भक्तों की इच्छाओं का पालन करते हैं और किस तरह भगवान् में छह ऐश्वर्य पाये जाते हैं।

चौथा सन्दर्भ *कृष्ण-सन्दर्भ* है। इसमें कृष्ण को भगवान् सिद्ध किया गया है। इसमें कृष्ण की लीलाओं एवं गुणों, पुरुषावतारों पर उनकी अध्यक्षता आदि की व्याख्या की गई है। श्रीधर स्वामी के मतों की भी पुष्टि की गई है। समस्त शास्त्रों में कृष्ण की श्रेष्ठता पर बल दिया गया है। बलदेव, संकर्षण तथा कृष्ण के अन्य अंश महासंकर्षण से उद्‌भूत हैं। सारे अवतार तथा अंश एकसाथ द्विभुज कृष्ण के शरीर में विद्यमान रहते हैं। गोलोक, वृन्दावन तथा इनकी पहचान, यादवगण तथा ग्वाले (दोनों कृष्ण के नित्य संगी हैं), व्यक्त तथा अव्यक्त लीलाओं में समन्वय तथा समता, गोकुल में श्रीकृष्ण का प्राकट्य, अन्तरंगा शक्ति के विस्तार रूप द्वारका की रानियाँ, तथा सर्वोपरि गोपियों के भी विवरण मिलते हैं। गोपियों के नाम की सूची भी दी गई है और इनमें सर्वोच्च पद पर स्थित श्रीमती राधारानी की व्याख्या भी हुई है।

पाँचवा सन्दर्भ *भक्ति-सन्दर्भ* कहलाता है जिसमें भक्ति के प्रत्यक्ष सम्पन्न करने एवं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उनके समन्वयन की विधि का वर्णन हुआ है। इसमें सारे शास्त्र-ज्ञान, वर्णाश्रम धर्म की स्थापना, सकाम कर्म से भक्ति की श्रेष्ठता आदि की व्याख्या दी गई है। भक्ति के बिना ब्राह्मण को भी निन्दनीय बतलाया गया है। कर्म-योग, योगायोग तथा ज्ञान-योग के विषय में व्याख्याएँ हैं और इन्हें कठिन श्रम बतलाया गया है। इसमें देवोपासना को निरुत्साहित किया गया है और वैष्णव की पूजा को श्रेष्ठ माना गया है। अभक्तों को कोई सम्मान नहीं दिया गया। जीवन्मुक्त, भक्तरूप शिव तथा भक्त एवं भक्ति की नित्यता के विषय में भी व्याख्याएँ हैं। यह भी कहा गया है कि भक्ति के माध्यम से सारी सफलता प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि भक्ति गुणातीत है। इसकी भी व्याख्या हुई है कि किस प्रकार भक्ति के माध्यम से आत्मा प्रकट होती है। आत्मा के आनन्द के साथ ही इसका भी वर्णन है कि भक्ति चाहे अधूरी ही क्यों न रहे, भगवान् के चरणकमलों को प्रदान करने वाली है। निष्काम भक्ति की प्रशंसा की

गई है और यह बतलाया गया है कि किस प्रकार प्रत्येक भक्त अन्य भक्तों की संगति से निष्काम भक्ति के पद को प्राप्त कर सकता है। महाभागवत तथा सामान्य भक्त में अन्तर, दार्शनिक चिन्तन के लक्षण, आत्म-पूजा के लक्षण या अहंग्रहोपासना भक्ति के लक्षण, काल्पनिक सिद्धि के लक्षण, विधि-विधानों को मान्यता, गुरु-सेवा, महाभागवत की सेवा, वैष्णवों की सेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा पाद-सेवन, सेवा-अपराध, अपराध के फल, प्रार्थना, भगवान् के नित्य दास के रूप में लगे रहना, भगवान् से मैत्री स्थापित करना और उनके सुख के लिए सर्वस्व अर्पित करना आदि की व्याख्याएँ हैं। रागानुगा भक्ति, कृष्ण-भक्त होने का विशेष प्रयोजन तथा अन्य सिद्धि-क्रमों का तुलनात्मक अध्ययन भी दिया गया है।

छठा सन्दर्भ *प्रीति-सन्दर्भ* है जिसमें भगवत्प्रेम का वर्णन है। यह बतलाता गया है कि भगवत्प्रेम के माध्यम से मनुष्य पूर्ण मुक्त हो जाता है और जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करता है। इसमें सगुणवादी तथा निर्विशेषवादी मुक्त अवस्थाओं में अन्तर बतलाया गया है और भव-बन्धन से मुक्ति एवं जीवन्मुक्ति की व्याख्या की गई है। सभी प्रकार की मुक्तियों में से भगवान् की प्रेमाभक्ति से जन्य मुक्ति को सर्वोच्च बतलाया गया है और भगवान् के साक्षात्कार को जीवन की सर्वोच्च सिद्धि माना गया है। क्रमिक विधि से मिलने वाली मुक्ति एवं तुरन्त मुक्ति में अन्तर बतलाया गया है। जीवनकाल में ब्रह्म-साक्षात्कार तथा भगवान् से भेंट दोनों ही को मुक्ति कहा गया है किन्तु भगवान् से आन्तरिक तथा बाह्य रूप से भेंट को सर्वोत्कृष्ट बतलाया गया है और यह ब्रह्मतेज के दिव्य साक्षात्कार से बढ़ कर है। सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य मुक्तियों की तुलना की गई है। सामीप्य सालोक्य से श्रेष्ठ है। भक्ति को अधिक सुविधाजनक मुक्ति माना गया है और इसे प्राप्त करने की विधि की व्याख्या की गई है। ईश-प्रेम के पद के ही समान भक्ति-पद प्राप्त करना, दिव्य प्रेम के तटस्थ लक्षण, तथा इसे जागृत करने की विधि, तथाकथित प्रेम एवं ईश-प्रेम में अन्तर, गोपियों के साथ प्रेमालाप के समय आस्वाद्य विभिन्न रस जो संसारी प्रेमालाप से भिन्न है और शुद्ध कृष्ण-प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है। ज्ञानमिश्रित भक्ति, गोपियों के प्रेम की सर्वोत्कृष्टता, वैभव-भक्ति तथा प्रेमाभक्ति में अन्तर, गोकुल के वासियों का उच्च स्थान, कृष्ण के मित्रों का उच्च पद, कृष्ण के साथ गोप तथा गोपियों का वात्सल्य-प्रेम तथा गोपियों एवं श्रीमती राधारानी के प्रेम की सर्वोत्कृष्टता

के विषय में भी व्याख्याएँ हुई हैं। इसकी भी व्याख्या की गई है कि जब कोई अनुकरण करता है तो आध्यात्मिक भाव किस प्रकार उपस्थित रहते हैं और ऐसे रस संसारी प्रेम के सामान्य रसों से किस प्रकार भिन्न होते हैं। विभिन्न भावों, भावोद्दीपन, दिव्य गुण, धीरोदात्त आदि भेद, माधुर्य प्रेम का परम आकर्षण, अनुभाव, सञ्चारी स्थायी भाव, पाँच प्रत्यक्ष तथा सात अप्रत्यक्ष प्रेमाभक्ति के रसों के भी वर्णन दिये गये हैं। रसाभास, शान्त, दास्य, शरणागति, वात्सल्य-प्रेम, दाम्पत्य-प्रेम, दिव्य भोग तथा विरह का आनन्द, पूर्वराग तथा श्रीमती राधारानी की महिमा के विषय में वर्णन मिलते हैं।

गोपालचम्पू-नामे ग्रन्थमहाशूर।
नित्यलीला स्थापन य़ाहे व्रजरस-पूर॥४४॥

अनुवाद

गोपाल-चम्पू अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भगवान् की नित्य लीलाओं की स्थापना की गई है और वृन्दावन में भोगे जाने वाले दिव्य रसों का भरपूर वर्णन हुआ है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने अपने ग्रंथ *अनुभाष्य* में गोपाल-चम्पू के विषय में निम्नलिखित सूचना दी है। गोपाल-चम्पू दो भागों में विभक्त है। पहला भाग पूर्वी लहरी कहलाता है और दूसरा भाग उत्तरी लहरी। पहले भाग में ३३ और दूसरे भाग में ३७ पूरण या परिच्छेद हैं। पहले भाग की रचना १५१० शकाब्द में हुई। इसमें निम्नलिखित विषयों की विवेचना की गई है—१) वृन्दावन तथा गोलोक २) पूतना-वध, माता यशोदा के निर्देशानुसार गोपियों का घर लौटना, कृष्ण तथा बलराम का स्नान करना, स्निग्ध कण्ठ तथा मदु कण्ठ ३) यशोदा मैया का स्वप्न ४) जन्माष्टमी उत्सव ५) नारद महाराज की वसुदेव से भेंट तथा पूतना-वध ६) प्रातःकाल बिस्तर से उठने की लीला, शकट असुर का उद्धार तथा नामकरण संस्कार ७) तृणावर्त असुर का वध, कृष्ण द्वारा मिट्टी खाना, कृष्ण की शैतानी तथा चोर के रूप में कृष्ण ८) दधिमन्थन, कृष्ण द्वारा माता यशोदा का स्तनपान, दही की मटकी तोड़ना, रस्सी से कृष्ण का बाँधा जाना, दो भाइयों (यमलार्जुन) का उद्धार और माता यशोदा का विलाप ९) वृन्दावन आगमन १०) वत्सासुर,

बकासुर तथा व्योमासुर का वध ११) अघासुर-वध तथा ब्रह्मा का मोह १२) जंगल में गौवों का चारण १३) गायों की रखवाली तथा कालिय नाग को दण्ड १४) गर्दभासुर का वध तथा कृष्ण की प्रशंसा १५) गोपियों का पूर्वानुराग १६) प्रलम्बासुर का वध तथा दावाग्नि पान १७) गोपियों का कृष्ण के पास गमन १८) गोवर्धन पर्वत उठाना १९) कृष्ण का दुग्ध-स्नान २०) वरुण के पाश से नन्द महाराज की वापसी और गोपियों द्वारा गोलोक वृन्दावन का दर्शन २१) कात्यायनी व्रत का अनुष्ठान तथा दुर्गादेवी की उपासना २२) यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की पत्नियों से भोजन माँगना २३) गोपियों की भेंट २४) गोपियों के साथ आनन्द-भोग, राधा तथा कृष्ण का घटनास्थल से गायब होना और गोपियों द्वारा उनकी खोज २५) कृष्ण का फिर से प्रकट होना २६) गोपियों का संकल्प २७) यमुना-जल में क्रीड़ाएँ २८) सर्प के चंगुल से नन्द का उद्धार २९) एकान्त स्थलों में विविध लीलाएँ ३०) शंखासुर तथा होरी का वध ३१) अरिष्टासुर का वध ३२) केशी असुर का वध ३३) नारद मुनि का प्रकट होना और जिस वर्ष पुस्तक समाप्त हुई उसका वर्णन।

द्वितीय भाग *उत्तर चम्पू* कहलाता है और उसमें निम्नलिखित विषयों की विवेचना की गई है—१) व्रजभूमि के प्रति अनुराग २) अक्रूर के क्रूर कर्म ३) कृष्ण का मथुरा-गमन ४) मथुरा नगरी का वर्णन ५) कंस का वध ६) कृष्ण तथा बलराम से नन्द महाराज का विछोह ७) कृष्ण तथा बलराम के बिना नन्द महाराज का वृन्दावन में प्रवेश ८) कृष्ण तथा बलराम द्वारा विद्याध्ययन ९) कृष्ण तथा बलराम के गुरु-पुत्र की वापसी १०) उद्धव की वृन्दावन यात्रा ११) भ्रमर दूत से बातचीत १२) वृन्दावन से उद्धव की वापसी १३) जरासन्ध का बाँधा जाना १४) यवन जरासन्ध का वध १५) बलराम का ब्याह १६) रुक्मिणी-विवाह १७) सात ब्याह १८) नरकासुर का वध करके स्वर्ग से पारिजात पुष्प लाना और १६००० रानियों के साथ विवाह १९) वाणासुर पर विजय २०) बलराम की व्रज वापसी २१) पौण्ड्रक-वध २२) द्विविध-वध तथा हस्तिनापुर की चिन्ता २३) कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान २४) कुरुक्षेत्र में वृन्दावनवासियों से भेंट २५) उद्धव से परामर्श २६) राजा का उद्धार २७) राजसूय यज्ञ की सम्पन्नता २८) शाल्व का वध २९) वृन्दावन लौटने पर विचार ३०) कृष्ण का फिर से वृन्दावन जाना ३१) श्रीमती राधारानी तथा अन्यों के रोके जाने का समाधान ३२) सबकुछ पूर्ण ३३) राधा तथा

माधव का निवास स्थान ३४) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण को सजाना ३५) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण का विवाह ३६) श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण का मिलन ३७) गोलोक प्रवेश।

एइ मत नाना ग्रन्थ करिञा प्रकाश।
गोष्ठी सहिते कैला वृन्दावने वास॥४५॥

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी तथा उनके भतीजे श्रील जीव गोस्वामी, या यों कहें कि उनका सारा परिवार वृन्दावन में रहता रहा और उन्होंने भक्ति पर महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कीं।

प्रथम वत्सरे अद्वैतादि भक्तगण।
प्रभुरे देखिते कैल, नीलाद्रि गमन॥४६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण कर लेने के एक वर्ष बाद, श्री अद्वैत प्रभु तथा अन्य सारे भक्त उन्हें देखने के लिए जगन्नाथ पुरी गये।

रथयात्रा देखि' ताहाँ रहिला चारिमास।
प्रभुसङ्गे नृत्यगीत परम उल्लास॥४७॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा में सम्मिलित होने के बाद सारे भक्त चार मास तक वहीं रहे आये और चैतन्य महाप्रभु के साथ कीर्तन (कीर्तन तथा नृत्य) का परम आनन्द लूटते रहे।

विदाय समय प्रभु कहिले सबारे।
प्रत्यब आसिबे सबे गुण्डिचा देखिबारे॥४८॥

अनुवाद

विदा के समय महाप्रभु ने सभी भक्तों से निवेदन किया, "कृपा करके प्रतिवर्ष भगवान् जगन्नाथ की गुण्डिचा मन्दिर तक की यात्रा (जो रथयात्रा महोत्सव के नाम से विख्यात है) देखने के लिए अवश्य आते रहें।"

तात्पर्य

सुन्दराचल में गुण्डिचा नामक मन्दिर है। भगवान् जगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा को तीन रथों में पुरी स्थित मन्दिर से लेकर सुन्दराचल स्थित गुण्डिचा मन्दिर तक खींच कर ले जाया जाता है। उड़ीसा में इस रथयात्रा उत्सव को जगन्नाथ की गुण्डिचा यात्रा के नाम से जाना जाता है। जहाँ अन्य लोग इसे रथयात्रा उत्सव कह कर पुकारते वहीं उड़ीसावासी इसे गुण्डिचा यात्रा कहते हैं।

प्रभु-अज्ञाय़ा भक्तगण प्रत्यब्द आसिय़ा।
गुण्डिचा देखिया या'न प्रभुर मिलिय़ा॥४९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश का पालन करते हुए सारे भक्त प्रतिवर्ष उन्हें देखने आते थे। वे जगन्नाथ पुरी में गुण्डिचा-उत्सव देखते और चार मास बाद अपने घर लौट जाया करते थे।

विंशति वत्सर ऐछे कैला गतागति।
अन्यो'न्ये दुँहार दुँहा विना नाहि स्थिति॥५०॥

अनुवाद

बीस वर्षों तक इस प्रकार भेंट होती रही और स्थिति इतनी गहन हो गई कि महाप्रभु तथा भक्तगण एक-दूसरे से मिले बिना चैन से नहीं रह सकते थे।

शेष आर य़ेइ रहे द्वादश वत्सर।
कृष्णेर विरहलीला प्रभुर अन्तर॥५१॥

अनुवाद

महाप्रभु ने अन्तिम बारह वर्ष अपने हृदय के भीतर कृष्ण की विरह-लीला का आस्वादन करने में बिताये।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण के विरह में गोपियों की दशा का भोग किया। जब कृष्ण गोपियों को छोड़ कर मथुरा चले गये तो गोपियाँ शेष जीवन उनकी गहन-विरह अनुभूति में रोती रहीं। श्री चैतन्य महाप्रभु इस विरहानुभूति का वास्तविक प्रदर्शन करते रहे और इसे समर्थन देते रहे।

निरन्तर रात्रि-दिन विरह उन्मादे।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय परम विषादे॥५२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस विरह-भाव में रात-दिन उन्मत्त रहते प्रतीत होते थे। कभी वे हँसते और कभी चिल्लाते तो कभी नाचते और कभी परम शोक में कीर्तन करते थे।

ये काले करेन जगन्नाथ दरशन।
मने भावे, कुरुक्षेत्रे पाञाछि मिलन॥५३॥

अनुवाद

उन दिनों श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर जाया करते थे। तब उनके मनोभाव उन गोपियों जैसे बनने लगे जिन्होंने दीर्घ विछोह के बाद कुरुक्षेत्र में कृष्ण के दर्शन किये थे। कृष्ण अपने भाई तथा बहन के साथ कुरुक्षेत्र आये हुए थे।

तात्पर्य

जब कृष्ण कुरुक्षेत्र में यज्ञ सम्पन्न कर रहे थे तो उन्होंने वृन्दावन के समस्त निवासियों को भेंट करने के लिए बुलाया था। श्रीकृष्ण चैतन्य का हृदय कृष्ण के विछोह से पूरित रहता था, किन्तु ज्योंही उन्हें जगन्नाथ मन्दिर जाने का अवसर प्राप्त होता तो वे उन गोपियों के विचार में निमग्न हो जाते जो कुरुक्षेत्र में कृष्ण का दर्शन करने आई थीं।

रथयात्राय आगे यबे करेन नर्तन।
ताहाँ एइ पद मात्र करये गायन॥५४॥

अनुवाद

जब रथयात्रा के समय चैतन्य महाप्रभु रथ के आगे नाचा करते थे तो वे निम्नलिखित दो पंक्तियाँ गाते थे।

सेइत पराण-नाथ पाइनु।
याहा लागि' मदनदहने झुरि गेनु॥५५॥

अनुवाद

"मैं अपने उन प्राणों के स्वामी को पा गया हूँ जिनके लिए मैं कामाग्नि

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति
श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य

श्री चैतन्य महाप्रभु श्लोक पढ़ कर भावविभोर थे तभी श्रील रूप गोस्वामी आए और दण्डवत् भूमि पर गिर पड़े।

जब नृसिंह देव ब्रह्मचारी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाएँगे तो वे अतीव प्रसन्न हुए और मन ही मन वहाँ के मार्ग को सजाने लगे।

जब फेंके गए तण्डुल के दो-तीन खण्ड अद्वैत आचार्य के शरीर से छू गए तो वे उसी तरह उन खण्डों को चिपकाये नाचने लगे।

माधवेन्द्रपुरी ने दिन भर उपवास रखा। दिन के अन्त में एक गोप बालक दूध लेकर उनके पास आया।

गोपीनाथ अर्चाविग्रह ने स्वप्न में पुजारी को बतलाया कि मेरे पीछे खीर का बर्तन है, उसे ले जाकर बाजार में बैठे उस माधवेन्द्रपुरी संन्यासी को दे दो। जब वह पुजारी आया तो देखा कि सचमुच खीर का बर्तन वहाँ रखा है।
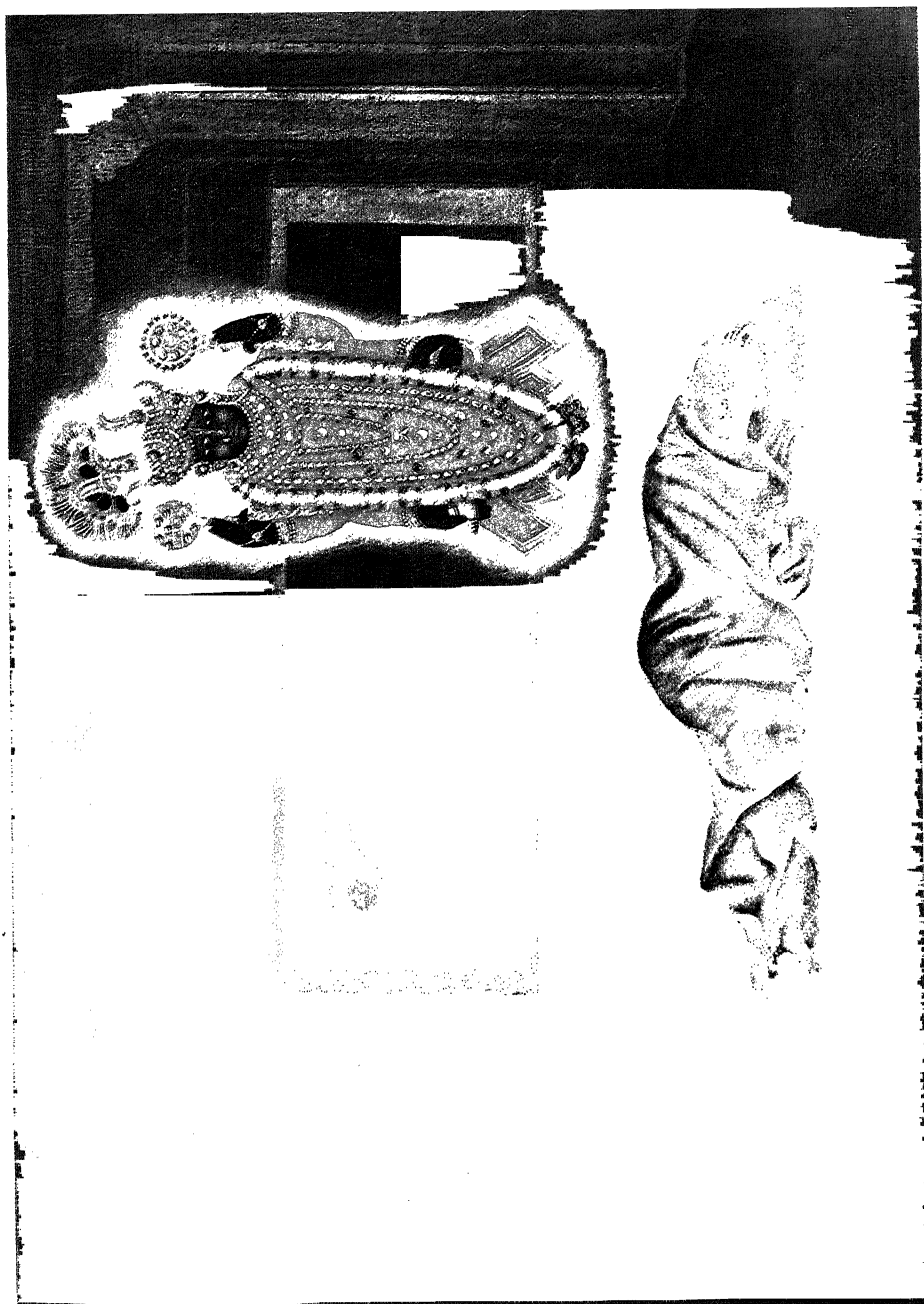
माधवेन्द्रपुरी मन्दिर में ही सोये थे तभी उन्होंने स्वप्न देखा कि गोपाल उनके समक्ष आकर कह रहे हैं, "हे माधवेन्द्रपुरी! तुम चन्दन तथा कपूर मिला कर मेरे शरीर में मलो तो मेरे शरीर की तपन घटेगी। तुम मेरे आदेश का पालन करने में सकुचाना मत।"

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को श्रीमाधवेन्द्रपुरी रचित श्लोक सुनाया तो वे मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़े। तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उन्हें गोद में ले लिया। महाप्रभु चिल्लाते हुए पुनः उठ पड़े।

जब गाँव के लोगों ने सुना कि गोपाल चल कर वहाँ आये हैं तो वे आश्चर्यचकित रह गये। तब वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया और गोपाल के समक्ष दण्ड की तरह भूमि पर गिर पड़ा।

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कपोतेश्वर नामक शिवमन्दिर में गये तो नित्यानन्द प्रभु ने उनकी छडी को तोड़कर तीन खण्ड कर डाले और उन्हें भार्गी नदी में फेंक दिया। बाद में यह नदी दण्ड भाँगा नदी कहलाने लगी।

दक्षिण भारत की यात्रा पर रवाना होते समय श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने संगियों तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ जगन्नाथ की वेदी की परिक्रमा की।

श्री चैतन्य महाप्रभुने कोढ़ी ब्राह्मण वासुदेव का आलिगंन किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का गाढालिंगन किया। प्रभु तथा सेवक दोनों ने भावविभोर होकर अपनी चेतना खो दी।

श्रीराधा तथा कृष्ण की लीलाएँ स्वत: तेजवान हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु में श्रीकृष्ण तथा श्रीमती राधा दोनों के रूप संयुक्त हो गये।

अग्निदेव ने, असली सीता को ले जाकर दुर्गा देवी पार्वती के पास रखा और मायावी सीता रावण को दे दी। रावण वध के बाद मायावी सीता भगवान् रामचन्द्र के समक्ष लाई गईं तो अग्निदेव ने इस सीता को ओझल कराकर असली सीता लाकर दी।
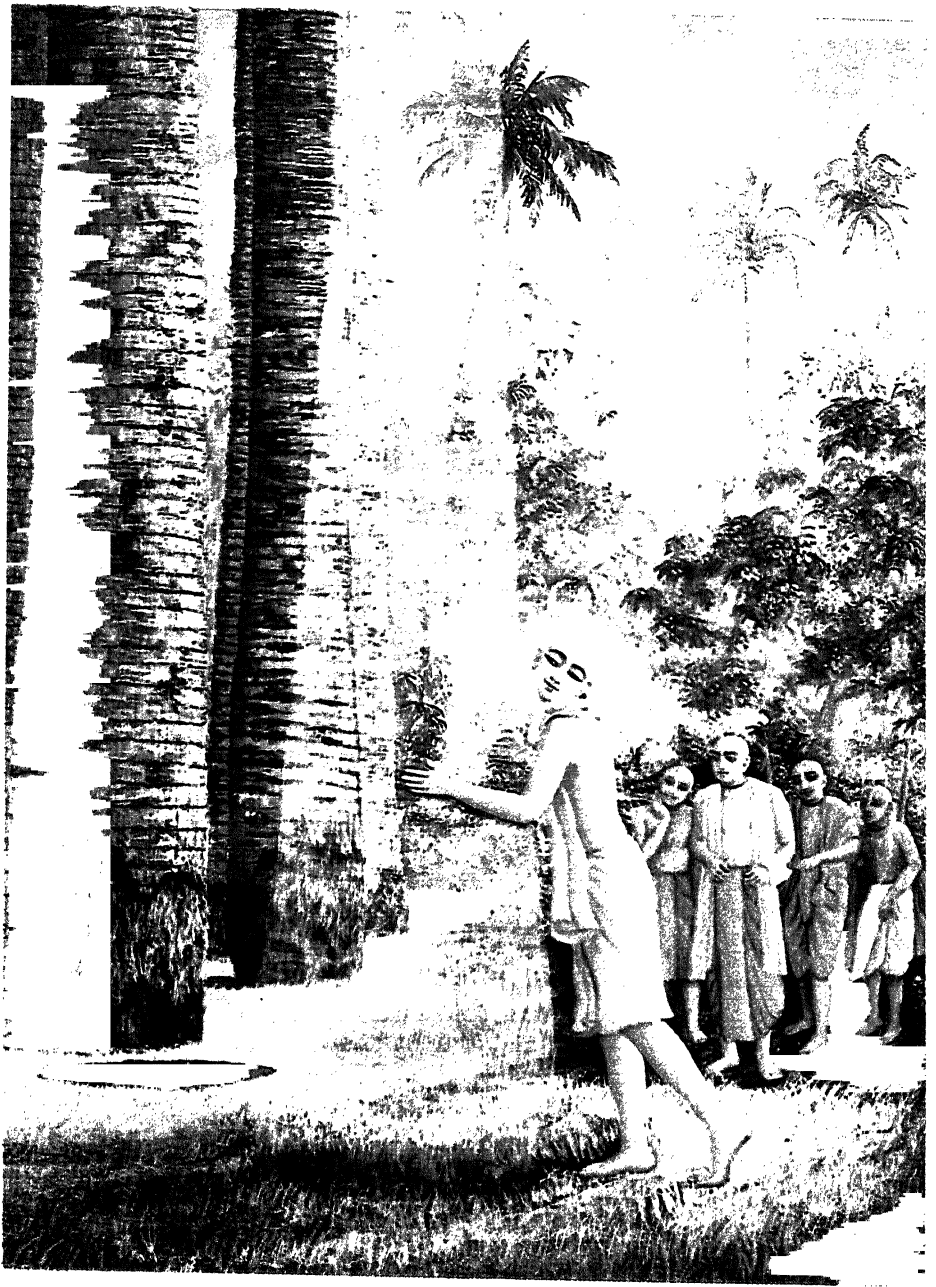
सप्तताल वन के भीतर श्री चैतन्य महाप्रभु गए तो उन्होंने इन वृक्षों का आलिंगन किया तो वे वैकुण्ठ लोक चले गए।

में जल रहा था।''

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१०.२९.१५) कहा गया है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतौ यान्ति तन्मयाताम् हिते।।

काम का अर्थ है विषय-वासना, *भय* का अर्थ है डर तथा *क्रोध* का अर्थ है गुस्सा। यदि कोई किसी तरह से कृष्ण के निकट पहुँच जाता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है। गोपियाँ कृष्ण के पास काम के वशीभूत होकर पहुँची थीं। कृष्ण सुन्दर बालक थे और वे उनसे मिल कर उनके साथ आनन्द लूटना चाहती थीं। किन्तु यह काम-वासना भौतिक जगत के काम से भिन्न है। यह लगती तो संसारी काम-वासना जैसी है,किन्तु वास्तव में कृष्ण के प्रति आकर्षण का यह सर्वोच्च रूप है। चैतन्य महाप्रभु संन्यासी थे, उन्होंने अपना घर-बार एवं सर्वस्व त्याग दिया था। उन्हें कोई भी संसारी विषय-वासना नहीं सता सकती थी। अतएव जब वे *मदनदहने* (काम की अग्नि में) शब्द का प्रयोग करते हैं तो उनका तात्पर्य होता है उन कृष्ण का वह शुद्ध प्रेम जिनके वियोग की अग्नि में वे जलते रहे थे। जब भी वे जगन्नाथजी से भेंट करते, चाहे मन्दिर में या रथयात्रा में, वे यही सोचा करते, ''मुझे अपने प्राणनाथ मिल गये हैं।''

एइ धुया-गाने नाचेन द्वितीय प्रहर।
कृष्ण लञा व्रजे याइ—एभाव अन्तर।।५६।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस गीत (सेइत पराणनाथ) को दिन के दूसरे पहर में विशेष रूप से गाते और सोचा करते ''क्या ही अच्छा होता यदि मैं कृष्ण को लेकर वृन्दावन वापस चला जाता।'' यह भाव सदैव उनके हृदय में उठता रहता था।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी के भाव में सदैव लीन रहने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु को उसी तरह का कृष्ण-वियोग अनुभव होता जैसा कि श्रीमती राधारानी

को वृन्दावन छोड़ कर मथुरा चले जाने पर हुआ था। वियोग में यह भाव ईश-प्रेम प्राप्त करने में अत्यन्त सहायक होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हर एक को सिखलाया है कि मनुष्य को भगवान् का दर्शन पाने के लिए उतावला ही नहीं होना चाहिए, प्रत्युत उनसे विछोह का अनुभव करना चाहिए। उनका साक्षात्कार करने की अपेक्षा उनसे विछोह की अनुभूति करना श्रेयस्कर है। जब वृन्दावन की गोपियाँ तथा गोकुल के निवासी सूर्य-ग्रहण के अवसर पर कृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिले तो वे कृष्ण को अपने साथ वृन्दावन वापस ले जाना चाह रहे थे। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को भी उस समय वही अनुभूति होती थी जब वे जगन्नाथ को मन्दिर में या रथयात्रा में देखा करते थे। गोपियों को द्वारका का ऐश्वर्य अच्छा नहीं लगा। वे कृष्ण को वृन्दावन ग्राम वापस ले जाकर कुंजों में उनके साथ भोग करना चाहती थीं। यही इच्छा श्री चैतन्य महाप्रभु में भी उठती थी, अतएव जब भगवान् जगन्नाथ गुण्डिचा की यात्रा करते तो वे रथ के समक्ष भावविभोर होकर नाचा करते थे।

एइ भावे नृत्यमध्ये पड़े एक श्लोक।
सेइ श्लोकेर अर्थ केह नाहि बूझे लोक॥५७॥

अनुवाद

उस भावदशा में श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ के समक्ष नाचते समय एक श्लोक गाया करते थे जिसका अर्थ कोई नहीं समझ पाता था।

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसितरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥५८॥

अनुवाद

"जिस व्यक्ति ने मेरी युवावस्था में मेरा हृदय हर लिया था, वही पुनः मेरा स्वामी है। यह चैत्र-मास की वही चाँदनी रात है। वही मालती फूलों की सुगन्ध है और वही मधुर वायु कदम्ब वन से आ रही है। अपने घनिष्ठ सम्बन्ध में मैं भी वही प्रेमिका हूँ, लेकिन मेरा मन सुखी नहीं है। मैं रेवा नदी के तट पर वेतसी वृक्ष के नीचे उसी स्थान

पर फिर से चली जाना चाहती हूँ। यही मेरी इच्छा है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी विरचित *पद्यावली* में (३८२) आया है।

एइ श्लोकेर अर्थ जाने एकले स्वरूप।
दैवे से वत्सर ताहाँ गियाछेन रूप॥५९॥

अनुवाद

यह श्लोक एक सामान्य बालक तथा बालिका की लालसा के रूप में आया है, किन्तु इसका वास्तविक गम्भीर अर्थ एकमात्र स्वरूप दामोदर को ज्ञात था। संयोगवश रूप गोस्वामी भी एक वर्ष वहाँ उपस्थित थे।

प्रभुमुखे श्लोक सुनि' श्रीरूपगोसाञि।
सेइ श्लोकेर अर्थ-श्लोक करिला तथाइ॥६०॥

अनुवाद

यद्यपि इस श्लोक का अर्थ केवल स्वरूप दामोदर को ज्ञात था, किन्तु रूप गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से इसे सुन कर तुरन्त एक अन्य श्लोक की रचना कर डाली, जिसमें मूल श्लोक का अर्थ दिया गया था।

श्लोक करि' एक तालपत्रेते लिखिया।
आपन वासार चाले राखिल गुञ्जिया॥६१॥

अनुवाद

इस श्लोक की रचना करके रूप गोस्वामी ने इसे एक ताड़ के पत्ते पर लिखा और जिस झोपड़ी में वे रह रहे थे उसकी छत में खोंस दिया।

श्लोक राखि' गेला समुद्रस्नान करिते।
हेन-काले आइला प्रभु ताँहारे मिलिते॥६२॥

अनुवाद

इस श्लोक की रचना करके इसे अपने घर की छत में खोंसने के

बाद श्रील रूप गोस्वामी समुद्र में स्नान करने चले गये। इसी बीच श्री चैतन्य महाप्रभु उनसे मिलने उनकी कुटिया में आये।

हरिदास ठाकुर आर रूप-सनातन।
जगन्नाथ मन्दिरे ना य़ा'न तिन जन॥६३॥

अनुवाद

खलबली से बचने के लिए श्री हरिदास ठाकुर, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी—ये तीनों जगन्नाथ मन्दिर के भीतर नहीं जाते थे।

तात्पर्य

आज भी जगन्नाथ मन्दिर में यह प्रथा है कि जो लोग हिन्दू धर्म के अनुयायी नहीं होते, उन्हें मन्दिर में घुसने नहीं दिया जाता। श्रील हरिदास ठाकुर, श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी इन तीनों का पहले से मुसलमानों से सम्बन्ध था। हरिदास ठाकुर तो मुसलमान परिवार में ही जन्मे थे और श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामी हिन्दू समाज में अपना सामाजिक स्थान त्यागने पर ही मुसलमानी सरकार में मन्त्री नियुक्त हुए थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपने नाम भी बदल कर साकर मल्लिक तथा दबिर खास रख लिया था। इस तरह वे ब्राह्मण-समाज से बहिष्कृत हो चुके थे। फलस्वरूप वे विनयवश जगन्नाथ के मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे, यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् नित्य ही उनसे भेंट करने आते थे। इसी प्रकार कभी-कभी कृष्णभावनामृत समाज के सदस्यों को भी भारत के कुछ मन्दिरों में प्रविष्ट होने नहीं दिया जाता। हमें इसके लिए खिन्न नहीं होना चाहिए, क्योंकि हम हरे-कृष्ण-मन्त्र का जप करते रहते हैं। जो भक्त कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हैं, उनके साथ स्वयं कृष्ण रहते हैं। अतएव किसी मन्दिर में यदि प्रवेश न मिले तो इसके लिए दुखी नहीं होना चाहिए। ऐसे अन्धविश्वासी निषेधों के श्री चैतन्य महाप्रभु समर्थक नहीं थे। जिन्हें जगन्नाथ-मन्दिर में प्रवेश करने के लिए अयोग्य माना जाता था, उनके पास श्री चैतन्य महाप्रभु नित्य ही जाते थे, जिससे सूचित होता है कि उन्हें ऐसे निषेध मान्य नहीं थे। फिर भी ये महापुरुष मन्दिर में किसी प्रकार की खलबली से बचने के लिए जगन्नाथ-मन्दिर में प्रवेश नहीं करते थे।

महाप्रभु जगन्नाथेर उपम-भोग देखिया।
निज गृहे य़ा'न एइ तिनेरे मिलिया॥६४॥

अनुवाद

श्रील चैतन्य महाप्रभु नित्यप्रति जगन्नाथ मन्दिर में उपलभोग उत्सव देखने जाया करते थे और उसके बाद वे अपने घर लौटते समय इन तीनों महापुरुषों से भेंट करते जाते थे।

तात्पर्य

उपलभोग एक विशेष प्रकार का भोग है जो गरुड़-स्तम्भ के पीछे एक पत्थर के ऊपर चढ़ाया जाता है। यह पत्थर *उपल* कहलाता है। सारा भोग जगन्नाथ की वेदी के नीचे मन्दिर-कक्ष के भीतर चढ़ाया जाता है। किन्तु यह भोग जनता के सामने पत्थर पर चढ़ाया जाता है, इसीलिए यह उपलभोग कहलाता है।

एइ तिन मध्ये य़बे थाके य़েइ जन।
ताँरे आसि' आपने मिले,—प्रभुर नियम॥६५॥

अनुवाद

यदि इन तीनों में से कोई उपस्थित नहीं होता था तो वे शेष जनों से ही मिलते थे। यही उनका नियम था।

दैवे आसि' प्रभु य़बे ऊर्ध्वेते चाहिला।
चाले गोँजा तालपत्रे सेइ श्लोक पाइला॥६६॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु श्रील रूप गोस्वामी के आवास में गये तो संयोगवश उन्होंने छत में ताड़ का पत्र देख लिया और उनके द्वारा रचित उस श्लोक को पढ़ा।

श्लोक पडि' आछे प्रभु आविष्ट हइय़ा।
रूपगोसाञि आसि' पड़े दण्डवत् हञा॥६७॥

अनुवाद

इस श्लोक को पढ़ कर श्री चैतन्य महाप्रभु को भावावेश हो आया। जब वे इस दशा में थे तो श्रील रूप गोस्वामी आ गये और वे तुरन्त

ही उनके पैरों पर दण्डवत् गिर पड़े।

तात्पर्य

दण्ड शब्द का अर्थ है डंडा। डंडा सीधा गिरता है उसी प्रकार जब किसी गुरुजन को कोई साष्टांग प्रणाम करता है तो वह *दण्डवत्* करता है। कभी-कभी हम दण्डवत् शब्द का प्रयोग करते हैं किन्तु भूमि पर गिरते नहीं।

उठि महाप्रभु ताँरे चापड़ मारिया।
कहिते लागिला किछु कोलेते करिया॥६८॥

अनुवाद

जब श्रील रूप गोस्वामी डण्डे के समान गिर पड़े तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें उठाया और उनके एक चपत जमाई। फिर उन्हें अपनी गोद में लेकर उनसे इस प्रकार कहा—

मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने।
मोर मनेर कथा तुमि जानिले केमने?६९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे श्लोक का तात्पर्य कोई नहीं जानता। तुम मेरे मन के भाव को कैसे जान गये?"

एत बलि' ताँरे बहु प्रसाद करिञा।
स्वरूप-गोसाञिरे श्लोक देखाइल लञा॥७०॥

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को अनेक आशीर्वाद दिये और बाद में उस श्लोक को लेकर स्वरूप गोसाईं को दिखलाया।

स्वरूपे पूछेन प्रभु हइया विस्मित।
मोर मनेर कथा रूप जानिल केमते॥७१॥

अनुवाद

स्वरूप गोसाईं को अत्यन्त आश्चर्य के साथ वह श्लोक दिखाते हुए चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा कि रूप गोस्वामी किस तरह उनके मन

के भाव को समझ सके।

तात्पर्य

हमें भी इसी प्रकार का आशीर्वाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से तब प्राप्त करने का सुअवसर मिला जब हमने उनकी वर्षगाँठ पर एक लेख भेंट किया था। वे इस लेख से इतने प्रसन्न थे कि अपने कुछ विश्वस्त भक्तों को बुलाकर उन्हें यह लेख दिखलाया करते थे। आखिर हमने श्रील प्रभुपाद के मनोभावों को किस तरह समझा होगा?

स्वरूप कहे,—य़ाते जानिल तोमार मन।
ताते जानि,—हय तोमार कृपार भाजन॥७२॥

अनुवाद

श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "यदि रूप गोस्वामी आपके मन तथा भावों को जान सकता है तो अवश्य ही उसे आपका विशेष आशीर्वाद प्राप्त हुआ होगा।"

प्रभु कहे,—तारे आमि सन्तुष्ट हञा।
आलिङ्गन कैलू सर्वशक्ति सञ्चारिया॥७३॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं रूप गोस्वामी से इतना प्रसन्न हो गया कि मैंने उसका आलिंगन कर लिया और उसे भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए सारी आवश्यक शक्तियाँ प्रदान कर दीं।

योग्य पात्र हय़ गूढ़रस-विवेचने।
तुमिओ कहिओ तारे गूढ़रसाख्याने॥७४॥

अनुवाद

"मैं श्रील रूप गोस्वामी को भक्ति के गुह्य रस को समझने के सर्वथा योग्य समझता हूँ और संस्तुति करता हूँ कि तुम उसे भक्ति के विषय में और आगे बतलाओ।"

एसब कहिब आगे विस्तार करिञा।
संक्षेपे उद्देश कैल प्रस्ताव पाइञा॥७५॥

अनुवाद

मैं इन सब घटनाओं के बारे में बाद में विस्तार से बतलाऊँगा। यहाँ पर मैंने केवल संक्षिप्त निर्देश किया है।

प्रियः कोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यान्तः-खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥७६॥

अनुवाद

[श्रीमती राधारानी द्वारा कहा गया श्लोक] "हे सखी! अब मैं इस कुरुक्षेत्र में अपने अत्यन्त पुराने और प्रिय मित्र से मिल चुकी हूँ। मैं वही राधारानी हूँ और अब हम मिल रहे हैं। यह अत्यन्त सुखद है, किन्तु अब भी वहाँ के जंगल के वृक्षों के नीचे यमुना-तट पर जाने के लिए मेरा मन करता है। मैं वृन्दावन के जंगल के भीतर पंचम स्वर में बजने वाली उनकी मधुर मुरली की ध्वनि सुनने की इच्छुक हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *पद्यावली* (३३) में भी आया है।

एइ श्लोकेर संक्षेपार्थ शुन, भक्तगण।
जगन्नाथ देखि' यैछे प्रभुर भावन॥७७॥

अनुवाद

अब हे भक्तो! इस श्लोक की संक्षिप्त व्याख्या सुनो। श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ के विग्रह का दर्शन कर लेने के बाद इस प्रकार सोच रहे थे।

श्रीराधिका कुरुक्षेत्रे कृष्णेर दरशन।
यद्यपि पायेन, तबु भावेन ऐछन॥७८॥

अनुवाद

उनके विचारों में वे श्रीमती राधारानी थीं जो कृष्ण से कुरुक्षेत्र में मिल चुकी थीं। यद्यपि वे कृष्ण से वहाँ मिल चुकी थीं किन्तु फिर भी

वे उनके विषय में इस प्रकार सोच रही थीं।

राजवेश, हाती, घोड़ा, मनुष्य गहन।
काहाँ गोप-वेश, काहाँ निर्जन वृन्दावन॥७९॥

अनुवाद

वे कृष्ण को वृन्दावन के शान्त वातावरण में गोपवेश धारण किये हुए सोच रही थीं। किन्तु कुरुक्षेत्र में तो वे राजसी वेश में थे और उनके साथ हाथी, घोड़े तथा लोगों का समूह था। इस प्रकार वहाँ का वातावरण उनके मिलन के अनुकूल न था।

सेइ भाव, सेइ कृष्ण, सेइ वृन्दावन।
ग़बे पाइ, तबे हय वाञ्छित पूरण॥८०॥

अनुवाद

इस प्रकार कृष्ण से मिल कर और वृन्दावन के वातावरण के विषय में सोच कर राधारानी ने मन ही मन चाहा कि वे उन्हें पुनः वृन्दावन ले जाकर उस शान्त वातावरण में अपनी इच्छा पूरी करें।

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरनावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्यूदियात् सदा नः॥८१॥

अनुवाद

गोपियाँ इस प्रकार बोलीं: "हे कमल-पुष्प जैसी नाभि वाले स्वामी! आपके चरणकमल इस संसाररूपी गहरे कुँए में गिरे हुओं के लिए एकमात्र आश्रय हैं। आपके चरणों की पूजा एवं ध्यान बड़े बड़े योगियों और विद्वान दार्शनिकों द्वारा किया जाता है। हमारी मनोकामना है कि ये ही चरणकमल हमारे हृदयों के भीतर उदित हों, यद्यपि हम सामान्य गृहस्थिनियाँ हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (१०.८२.४९) लिया गया है।

तोमार चरण मोर व्रजपुरघरे।
उदय करये य़दि, तबे वाञ्छा पूरे।।८२।।

अनुवाद

गोपियों ने सोचा, "हे प्रभु! यदि आपके चरणकमल हमारे वृन्दावन स्थित घरों में पड़ें तो हमारी मनोकामनाएँ पूरी हो जायँ।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपनी कृति *अनुभाष्य* में टीका की है, "गोपियाँ निष्काम भाव से भगवान् की सेवा में लगी हुई हैं। वे न तो कृष्ण के ऐश्वर्य पर मोहित हैं, न ही यह जान कर कि वे भगवान् हैं।" गोपियाँ स्वभाववश कृष्ण से प्रेम करने के लिए उन्मुख हैं, क्योंकि वे वृन्दावन-गाँव के परम आकर्षक युवक थे। ग्रामीण बालिकाएँ होने के कारण गोपियाँ कुरुक्षेत्र से अत्यधिक आकृष्ट नहीं हुईं, जहाँ कृष्ण हाथी-घोड़े तथा राजसी ठाठ से युक्त थे। उन्होंने कृष्ण को इस वातावरण में तनिक भी अच्छा नहीं समझा। कृष्ण गोपियों के रूप-ऐश्वर्य या उनके शारीरिक सौन्दर्य से नहीं, अपितु उनकी शुद्ध भक्ति से आकृष्ट थे। इसी तरह गोपियाँ कृष्ण के राजसी वेश से नहीं, अपितु गोप-कुमार कृष्ण के प्रति आकृष्ट थीं। भगवान् कृष्ण अचिन्त्य रूप से शक्तिमान हैं। उन्हें समझने के लिए बड़े-बड़े योगी तथा सन्त-महात्मा सारे भौतिक कार्यों को त्याग कर उनका ध्यान धरते हैं। इसी तरह भौतिक भोग में लिप्त रहने वाले, भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि चाहने वाले, परिवार का भरण-पोषण करने वाले या इस संसार से मुक्ति चाहने वाले भगवान् की शरण में जाते हैं। किन्तु गोपियों में ऐसे कार्य तथा मन्तव्य अज्ञात हैं, वे इस प्रकार के शुभ कार्य करने में तनिक भी दक्ष नहीं हैं। पहले से आध्यात्मिक रूप से प्रबुद्ध होने के कारण वे दूर स्थित वृन्दावन में भगवान् की सेवा करने में अपनी इन्द्रियों को लगाती हैं। ये गोपियाँ न तो ज्ञान में, न कला, संगीत या अन्य सांसारिक विषयों में कोई रुचि रखती हैं। ये भौतिक भोग तथा वैराग्य के सारे ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इनकी एकमात्र अभिलाषा है कि कृष्ण वापस आकर इनके साथ दिव्य लीलाएँ करें। इनकी इतनी ही इच्छा है कि कृष्ण वृन्दावन में आकर रुकें, जिससे ये उनकी प्रसन्नता के लिए उनकी सेवा कर सकें। इसमें निजी इन्द्रियतृप्ति का नामोनिशान नहीं है।

भागवतेर श्लोक-गूढ़ार्थ विशद करिञा।
रूप-गोसाञि श्लोक कैल लोक बुझाइञा॥८३॥

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने सामान्य जनों के समझने के लिए श्रीमद्भागवत के श्लोक के गुह्य अर्थ को बतलाया है।

या ते लीलारसपरिमलोद्गारिवन्यापरीता
धन्या क्षौणी विलसति वृता माधुरी माधुरीभिः।
तत्रास्माभिश्चटुलपशुपीभावमुग्धान्तराभिः
संवीतस्त्वं कलय वदनोल्लासि-वेणुर्विहारम्॥८४॥

अनुवाद

गोपियाँ कहती रहीं, "हे कृष्ण! आपके लीला-रसों की सुगन्धि मथुरा जनपद की माधुरी से घिरे हुए वृन्दावन की धन्य भूमि के जंगलों में व्याप्त है। आप इस अद्भुत धरा के अनुकूल वातावरण में अपने होठों पर थिरकने वाली बाँसुरी से तथा हम गोपियों से, जिनके हृदय अकथनीय आह्लादपूर्व भावों से सदैव मोहित रहते हैं, घिर कर आप अपनी लीलाओं का आनन्द लूट सकते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी रचित *ललित माधव* (१०.३८) का है।

एइमत महाप्रभु देखि' जगन्नाथे।
सुभद्रा सहित देखे, वंशी नाहि हाते॥८५॥

अनुवाद

इस तरह जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ का दर्शन किया तो देखा कि वे अपनी बहन सुभद्रा के साथ थे किन्तु उनके हाथ में वंशी नहीं थी।

त्रिभङ्ग-सुन्दर व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन।
काँहा पाव, एइ वाञ्छा बाड़े अनुक्षण॥८६॥

अनुवाद

गोपियों के भाव में लीन श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ को वृन्दावन में खड़े हुए एवं त्रिभंगी शरीर के कारण अत्यन्त सुन्दर लगने वाले नन्द के पुत्र आदि कृष्ण-रूप में देखना चाह रहे थे। इस रूप में दर्शन पाने की उनकी इच्छा निरन्तर बढ़ती जा रही थी।

राधिका-उन्माद ग्रैछे उद्धव-दर्शन।
उद्घूर्णा-प्रलाप तैछे प्रभुर रात्रि-दिने ॥८७॥

अनुवाद

जिस प्रकार राधिकारानी ने उद्धव की उपस्थिति में एक भौंरे से प्रलाप किया था, उसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में रात-दिन उन्मत्त की तरह बहकी-बहकी बातें करते थे।

तात्पर्य

यह *उन्माद* सामान्य पागलपन नहीं है। जब महाप्रभु विक्षिप्त जैसी बहकी-बहकी बातें करते थे तो वे दिव्य प्रेम की भावदशा में रहते थे। सर्वोच्च भावदशा में मोहने वाले की उपस्थिति में मोहित किये जाने की अनुभूति होती है। जब मोहने वाला तथा मोहित होने वाला विलग हो जाते हैं तो उसे *मोहन* कहते हैं। जब कोई वियोग के कारण इस प्रकार मोहित हो जाता है तो वह हतप्रभ हो जाता है और उसके शरीर में दिव्य भाव के सारे लक्षण प्रकट हो आते हैं। इस अवस्था में काल्पनिक वार्तालाप चलता है और उन्मत्त व्यक्ति की-सी अनुभूति होने लगती है। श्रीमती राधारानी की उन्माद दशा का वर्णन करते हुए उद्धव ने कृष्ण से कहा, "हे कृष्ण! आपके वियोग की उत्कटता के कारण श्रीमती राधारानी कभी जंगल के कुंज में शयन करती हैं, कभी श्याम बादलों को कोसती हैं और कभी जंगल के गहन अंधकार में इधर-उधर विचरण करती हैं। वे तो पगली बन गई हैं।"

द्वादश वत्सर शेष ऐछे गोयांइल।
एइ मत शेषलीला त्रिविधाने कैल ॥८८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम बारह वर्ष इसी दिव्य उन्माद में बीते। इस तरह उन्होंने अपनी लीलाएँ तीन प्रकार से सम्पन्न कीं।

संन्यास करि' चब्बिस वत्सर कैला ये ये कर्म।
अनन्त, अपार—तार के जानिबे मर्म॥८९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सन्यास ग्रहण करने के बाद चौबीस वर्षों तक जो-जो लीलाएँ कीं, वे असंख्य तथा अपार हैं। ऐसी लीलाओं का तात्पर्य भला कौन समझ सकता है?

उद्देश करिते करि दिग्-दरशन।
मुख्य मुख्य लीलार करि सूत्र गणन॥९०॥

अनुवाद

उन लीलाओं का संकेत करने के उद्देश्य से मैं यहाँ पर संक्षेप रूप में मुख्य-मुख्य लीलाओं का सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

प्रथम सूत्र प्रभुर संन्यासकरण।
सन्यास करि' चलिला प्रभु श्रीवृन्दावन॥९१॥

अनुवाद

पहला सारांश यह है: संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के लिए चल पड़े।

तात्पर्य

ये कथन श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के सच्चे वर्णन हैं। उनके द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने की तुलना मायावादियों द्वारा संन्यास ग्रहण करने से कदापि नहीं की जा सकती। संन्यास ग्रहण करने के बाद चैतन्य महाप्रभु का मुख्य उद्देश्य वृन्दावन पहुँचना था। वे उन मायावादी सन्यासियों से सर्वथा पृथक हैं जो ब्रह्म में लीन होने के लिए उत्सुक रहते हैं। वैष्णव के लिए संन्यास ग्रहण करने का अर्थ है सारे भौतिक कार्यकलापों से छुटकारा पाकर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में पूरी तरह लग जाना। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा (*भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२५५) की गई है—अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः / निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते*। वैष्णव के लिए संन्यास-आश्रम का अर्थ है भौतिक वस्तुओं से पूर्णतया विरक्ति और भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में नित्य आसक्ति। किन्तु मायावादी संन्यासी यह

नहीं जानते कि अपनी हर वस्तु को भगवान् की सेवा में किस प्रकार लगाया जाय। चूँकि उन्हें भक्ति की शिक्षा नहीं मिली रहती, इसलिए वे भौतिक वस्तुओं को अस्पृश्य मानते हैं। *ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या*। मायावादी सोचते हैं कि यह संसार मिथ्या है, लेकिन वैष्णव संन्यासी ऐसा नहीं सोचते। वे तो कहते हैं, "संसार क्यों मिथ्या है? यह वास्तविकता है और भगवान् की सेवा के निमित्त है।" वैष्णव संन्यासी के लिए वैराग्य का अर्थ है अपने इन्द्रिय-भोग के लिए कोई वस्तु स्वीकार न करना। भक्ति का अर्थ है प्रत्येक वस्तु को भगवान् की तुष्टि में लगाना।

प्रेमेते विह्वल बाह्य नाहिक स्मरण।
राढ़देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥९२॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर जा रहे थे तो वे कृष्ण-प्रेम से विह्वल हो गये और उन्हें बाहरी जगत की सारी सुधि-बुधि जाती रही। इस तरह वे तीन दिनों तक उस राढ़देश में घूमते रहे जो ऐसा प्रदेश है जिसमें गंगा नदी नहीं बहती।

नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु भुलाइया।
गङ्गातीरे लञा आइला 'यमुना' बलिया॥९३॥

अनुवाद

पहले तो नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु को गंगा के किनारे-किनारे ले जाते समय यह कह कर भरमा दिया कि यही यमुना नदी है।

शान्तिपुरे आचार्येर गृहे आगमन।
प्रथम भिक्षा कैल ताहाँ, रात्रे सङ्कीर्तन॥९४॥

अनुवाद

तीन दिनों बाद श्री चैतन्य महाप्रभु शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के घर आये और वहाँ भिक्षा ग्रहण की। यह उनके द्वारा प्रथम भिक्षा-ग्रहण था। उस रात उन्होंने वहाँ सामूहिक कीर्तन किया।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु उस दिव्य भावावेश में तीन दिनों

तक भोजन करना ही भूल गये थे। तत्पश्चात् नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें यह कह कर बहका दिया कि यह गंगा नहीं यमुना नदी है। चूँकि महाप्रभु को वृन्दावन जाने का उल्लास था अतएव वे यमुना देख कर परम प्रसन्न हो रहे थे, यद्यपि यह गंगा नदी थी। इस तरह तीन दिन बाद महाप्रभु को शान्तिपुर में अद्वैत प्रभु के घर लाया गया जहाँ उन्होंने भोजन ग्रहण किया। जब तक महाप्रभु वहाँ रहे वे अपनी माता शचीदेवी का दर्शन करते रहे और समस्त भक्तों के साथ मिल कर सामूहिक कीर्तन करते थे।

माता भक्तगणेर ताहाँ करिल मिलन।
सर्व समाधान करि' कैल नीलाद्रिगमन॥९५॥

अनुवाद

अद्वैत प्रभु के घर में वे अपनी माता से तथा मायापुर के सारे भक्तों से मिलते थे। वहाँ पर उन्होंने सब ठीकठाक कर लिया था। तत्पश्चात् वे जगन्नाथ पुरी चले गये।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु जानते थे कि उनके द्वारा संन्यास ग्रहण किया जाना उनकी माता पर वज्रपात था। अतएव उन्होंने मायापुर से अपनी माता तथा भक्तों को बुलवाया। और श्री अद्वैत आचार्य द्वारा की गई व्यवस्था से वे संन्यास ग्रहण करने के बाद अन्तिम बार उन सबसे मिले। जब उनकी माता ने उन्हें घुटा-सिर देखा तो वे अत्यधिक दुखी हुईं। सारे भक्तों ने शचीमाता को सान्त्वना दिलाई और श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता से कहा कि "आप मेरे खाने के लिए भोजन पकायें" क्योंकि तीन दिन से भोजन ग्रहण न करने से वे अत्यधिक भूखे थे। उनकी माता तुरन्त राजी हो गईं और सब कुछ भूल कर श्री चैतन्य के लिए तब तक भोजन बनाती रहीं जब तक वे श्री अद्वैत प्रभु के घर रहीं। कुछ दिनों के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता से जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति ले ली। संन्यास-ग्रहण करने के बाद अपनी माता के कहने पर उन्होंने जगन्नाथ पुरी को अपना हेडक्वार्टर (मुख्य स्थान) बना लिया। इस तरह सब कुछ सुलझ गया और श्री चैतन्य अपनी माता की अनुमति से जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये।

पथे नाना लीलारस, देव-दरशन।
माधवपुरीर कथा, गोपालस्थापन॥९६॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी के मार्ग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अन्य अनेक लील कीं। उन्होंने विविध मन्दिरों को देखा और माधवेन्द्रपुरी-कथा ए गोपाल-स्थापना की कहानी सुनी।

तात्पर्य

ये माधवपुरी माधवेन्द्रपुरी हैं। अन्य माधवपुरी मध्वाचार्य हैं जो गदाधर पण्डि की परम्परा में एक भक्त के गुरु थे और उन्होंने *श्री मंगल-भाष्य* नाम एक ग्रंथ की रचना की थी। मध्वाचार्य इस श्लोक में उल्लिखित माधवेन् पुरी से सर्वथा भिन्न थे।

क्षीर-चूरि कथा, साक्षि-गोपाल-विवरण।
नित्यानन्द कैल प्रभुर दण्ड-भञ्जन॥९७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से क्षीर-चुरी गोपीनाथ एवं गोपाल साक्षी की कहानियाँ सुनीं। इसके बाद नित्यानन्द से श्री चैतन्य महाप्र का संन्यास-दण्ड टूटा।

तात्पर्य

यह क्षीर-चुरी उत्तर-पूर्व रेलवे लाइन पर, जो पहले बंगाल-मायापुर रेल लाइन कहलाती थी, स्थित बालेश्वर स्टेशन से लगभग ५ मील दूरी पर है। यह स्टेशन सुप्रसिद्ध कर्गपुर जंकशन से कुछ ही मील दूरी पर स्थित है। कभी इस मन्दिर का भार मेदिनीपुर किले की सीमा पर स्थित गोपीवल्लभपुर के श्यामसुन्दर अधिकारी के ऊपर था। श्यामसुन्दर अधिकारी श्यामानन्द गोस्वामी के मुख्य शिष्य रसिकानन्द मुरारी के वंशज थे।

जगन्नाथ पुरी स्टेशन से कुछ ही मील पहले साक्षीगोपाल नामक एक छोटा-सा स्टेशन है। इसी स्टेशन के पास है सत्यवादी नामक गाँव जहाँ साक्षीगोपाल का मन्दिर है।

पथे नाना लीलारस, देव-दरशन।
माधवपुरीर कथा, गोपालस्थापन॥९६॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी के मार्ग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने अन्य अनेक लीलाएँ कीं। उन्होंने विविध मन्दिरों को देखा और माधवेन्द्रपुरी-कथा एवं गोपाल-स्थापना की कहानी सुनी।

तात्पर्य

ये माधवपुरी माधवेन्द्रपुरी हैं। अन्य माधवपुरी मध्वाचार्य हैं जो गदाधर पण्डित की परम्परा में एक भक्त के गुरु थे और उन्होंने *श्री मंगल-भाष्य* नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। मध्वाचार्य इस श्लोक में उल्लिखित माधवेन्द्र पुरी से सर्वथा भिन्न थे।

क्षीर-चूरि कथा, साक्षि-गोपाल-विवरण।
नित्यानन्द कैल प्रभुर दण्डःभञ्जन॥९७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से क्षीर-चुरी गोपीनाथ एवं गोपाल साक्षी की कहानियाँ सुनीं। इसके बाद नित्यानन्द से श्री चैतन्य महाप्रभु का संन्यास-दण्ड टूटा।

तात्पर्य

यह क्षीर-चुरी उत्तर-पूर्व रेलवे लाइन पर, जो पहले बंगाल-मायापुर रेल लाइन कहलाती थी, स्थित बालेश्वर स्टेशन से लगभग ५ मील दूरी पर है। यह स्टेशन सुप्रसिद्ध कर्गपुर जंकशन से कुछ ही मील दूरी पर स्थित है। कभी इस मन्दिर का भार मेदिनीपुर किले की सीमा पर स्थित गोपीवल्लभपुर के श्यामसुन्दर अधिकारी के ऊपर था। श्यामसुन्दर अधिकारी श्यामानन्द गोस्वामी के मुख्य शिष्य रसिकानन्द मुरारी के वंशज थे।

जगन्नाथ पुरी स्टेशन से कुछ ही मील पहले साक्षीगोपाल नामक एक छोटा-सा स्टेशन है। इसी स्टेशन के पास है सत्यवादी नामक गाँव जहाँ साक्षीगोपाल का मन्दिर है।

क्रुद्ध हञा एका गेला जगन्नाथ देखिते।
देखिया मूर्छित हञा पड़िला भूमिते॥९८॥

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु ने उनका डंडा तोड़ डाला तो चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक क्रुद्ध हुए और वे उनका साथ छोड़ कर अकेले ही जगन्नाथ-मन्दिर की यात्रा के लिए चल पड़े। जगन्नाथ-मन्दिर के भीतर प्रविष्ट होकर जब उन्होंने भगवान् जगन्नाथ का दर्शन किया तो वे तुरन्त अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन।
तृतीय प्रहरे प्रभुर हइल चेतन॥९९॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत होकर गिर पड़े तो सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये। महाप्रभु दोपहर के बाद तक अचेत रहे। तब अन्त में उन्हें चेतना आई।

नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर, मुकुन्द।
पाछे आसि' मिलि' सबे पाइल आनन्द॥१००॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु नित्यानन्द का साथ छोड़ कर अकेले मन्दिर में गये थे, किन्तु बाद में नित्यानन्द, जगदानन्द, दामोदर तथा मुकुन्द उन्हें देखने आये और उन्हें देख कर वे सभी परम प्रसन्न हुए।

तबे सार्वभौम प्रभु प्रसाद करिल।
आपन-ईश्वरमूर्ति ताँरे देखाइल॥१०१॥

अनुवाद

इस घटना के बाद चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को अपना आदि भगवान् रूप दिखलाकर उन पर कृपा की।

तबे त' करिला प्रभु दक्षिण गमन।
कूर्मक्षेत्रे कैल वासुदेव विमोचन॥१०२॥

अनुवाद

सार्वभौम पर कृपादृष्टि करने के बाद महाप्रभु दक्षिण भारत के लिए चल पड़े। जब वे कूर्मक्षेत्र आये तो वहाँ उन्होंने वासुदेव नामक व्यक्ति का उद्धार किया।

जियड़-नृसिंहे कैल नृसिंह स्तवन।
पथे-पथे ग्रामे-ग्रामे नामप्रवर्तन॥१०३॥

अनुवाद

कूर्मक्षेत्र की यात्रा करने के बाद महाप्रभु दक्षिण भारत में जियड़नृसिंह के मन्दिर गये और वहाँ भगवान् नृसिंह की स्तुति की। रास्ते में उन्होंने प्रत्येक गाँव में हरे कृष्ण कीर्तन का शुभारम्भ किया।

गोदावरीतीर-वने वृन्दावन-भ्रम।
रामानन्द राय सह ताहाञि मिलन॥१०४॥

अनुवाद

एक बार महाप्रभु ने गोदावरी नदी के तट पर स्थित एक वन को वृन्दावन समझ लिया। वहाँ उनकी भेंट रामानन्द राय से हुई।

त्रिमल्ल-त्रिपदी-स्थान कैल दरशन।
सर्वत्र करिल कृष्णनाम प्रचारण॥१०५॥

अनुवाद

उन्होंने त्रिमल्ल अर्थात् तिरुपति नामक स्थान देखा और वहाँ पर भगवन्नाम-कीर्तन का विस्तार से प्रचार किया।

तात्पर्य

यह पवित्र स्थान दक्षिण भारत में तञ्जोर जिले में स्थित है। त्रिपदी का मन्दिर व्यंकटाचल की घाटी में स्थित है और उसमें भगवान् रामचन्द्र का श्रीविग्रह है। व्यंकटाचल पर्वत की चोटी पर बालाजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है।

तबे त' पाषण्डिगणे करिल दलन।
अहोवल-नृसिंहादि कैल दरशन॥१०६॥

अनुवाद

त्रिमल्ल या त्रिपदी मन्दिर जाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को कुछ नास्तिकों का दमन करना पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने अहोवल-नृसिंह मन्दिर का दर्शन किया।

तात्पर्य

यह अहोवल मन्दिर दक्षिणात्य में कर्णुल जिले के अन्तर्गत सार्बेल तहसील में स्थित है। पूरे जिले में इस प्रसिद्ध मन्दिर की लोगों द्वारा प्रशंसा की जाती है। इसके अतिरिक्त नौ मन्दिर और हैं। ये सब मिलाकर नव नृसिंह मन्दिर कहलाते हैं। इनकी स्थापत्य-कला अत्यन्त अद्भुत है और इन मन्दिरों में कलात्मक उत्कीर्णन पाये जाते हैं। किन्तु स्थानीय गजट से पता चलता है कि यह काम अधूरा है।

श्रीरङ्ग क्षेत्र आइला कावेरीर तीर।
श्रीरङ्ग देखिया प्रेमे हइला अस्थिर॥१०७॥

अनुवाद

जब महाप्रभु कावेरी के तट पर स्थित श्रीरङ्गा क्षेत्र में आये तो उन्होंने श्री रंगनाथ का मन्दिर देखा और वहाँ पर वे भगवत्प्रेम में विह्वल हो गये।

त्रिमल्ल भट्टेर घरे कैल प्रभु वास।
ताहाञि रहिला प्रभु वर्षा चारि मास॥१०८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वर्षा ऋतु के चार महीने त्रिमल्ल भट्ट के घर में रहे।

श्रीवैष्णव त्रिमल भट्ट—परम पण्डित।
गोसाञिर पाण्डित्य-प्रेमे हइला विस्मित॥१०९॥

अनुवाद

श्री त्रिमल्ल भट्ट श्री वैष्णव समुदाय का सदस्य होने के साथ ही प्रकाण्ड विद्वान थे; अतएव जब उन्होंने परम पंडित एवं महान् भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा तो वे अत्यन्त चकित हुए।

चातुर्मास्य ताँहा प्रभु श्रीवैष्णवेर सने।
गोञाइल नृत्य-गीत-कृष्णसंकीर्तने॥११०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री वैष्णव के साथ नाचने, गाने तथा प्रभु का नाम-कीर्तन करने में चातुर्मास बिता दिया।

चातुर्मास्य-अन्ते पुनः दक्षिण गमन।
परमानन्दपुरी सह ताहाँञि मिलन॥१११॥

अनुवाद

चातुर्मास अन्त होने पर श्री चैतन्य महाप्रभु सारे दक्षिण भारत में घूमते रहे। तभी उनकी भेंट परमानन्द पुरी से हुई।

तबे भट्टथारि हैते कृष्णदासेर उद्धार।
रामजपी विप्रमुखे कृष्णनाम प्रचार॥११२॥

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने नौकर कृष्णदास का उद्धार भट्टथारि के चंगुल से किया। तत्पश्चात् उन्होंने प्रचार किया कि भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन उन ब्राह्मणों को भी करना चाहिए जो भगवान् राम के नाम का कीर्तन करने के अभ्यस्त हैं।

तात्पर्य

मालाबार जिले के ब्राह्मणों के एक सम्प्रदाय को *नम्बुद्रि-ब्राह्मण* कहा जाता है जिनके पुरोहित भट्टथारि होते हैं। इन भट्टथारियों को अनेक तान्त्रिक विद्याएँ आती हैं—यथा मनुष्य को मारना, उसे वश में करना, उसे विनष्ट करना आदि। वे लोग इन विद्याओं में अत्यन्त पटु होते हैं। ऐसे ही एक भट्टथारि ने श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी नौकर कृष्णदास को मोहित कर लिया जब वह महाप्रभु के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णदास को किसी तरह से भट्टथारि के चंगुल से छुड़ाया। श्री चैतन्य महाप्रभु पतितपावन के नाम से सुविख्यात हैं और उन्होंने अपने नौकर कृष्णदास का उद्धार करके इसे चरितार्थ किया। बंगाल में भट्टथारि शब्द को बिगाड़ कर कभी कभी भट्टमारि कहा जाता है।

श्रीरङ्गपुरी सह ताहाञि मिलन।
रामदास विप्रेर कैल दुःखविमोचन॥११३॥

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु श्री रंगपुरी से मिले और रामदास नामक एक ब्राह्मण के सारे दुखों को दूर किया।

तत्त्ववादी सह कैल तत्त्वविचार।
आपनाके हीनबुद्धि हैल ताँ-सबार॥११४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तत्त्ववादी सम्प्रदाय से विचार-विमर्श किया और उन तत्त्ववादियों ने अपने आपको निम्न वैष्णव स्वीकार किया।

तात्पर्य

तत्त्ववादी सम्प्रदाय मध्वाचार्य वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, किन्तु तो भी इसका आचरण उससे भिन्न है। उत्तर राडी नामक एक मठ का मठाधीश रघुवर्यतीर्थ मध्वाचार्य है।

अनन्त, पुरुषोत्तम, श्रीजनार्दन।
पद्मनाभ, वासुदेव कैल दरशन॥११५॥

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनन्तदेव, पुरुषोत्तम, श्री जनार्दन, पद्मनाभ तथा वासुदेव के विष्णु-मन्दिरों का दर्शन किया।

तात्पर्य

अनन्त पद्मनाभ विष्णु का मन्दिर त्रिवेन्द्रम जिले में स्थित है। उस भूभाग में यह मन्दिर अत्यधिक प्रसिद्ध है। एक अन्य विष्णु मन्दिर, जिसका नाम श्री जनार्दन है, त्रिवेन्द्रम जिले के उत्तर लगभग २६ मील दूरी पर वर्काला नामक रेलवे स्टेशन के पास है।

तबे प्रभु कैल सप्ततात विमोचन।
सेतुबन्धे स्नान, रामेश्वर दरशन॥११६॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने विख्यात सप्ताल वृक्ष का उद्धार किया, सेतुबन्ध रामेश्वर में स्नान किया और शिवजी अर्थात् रामेश्वर के मन्दिर का दर्शन किया।

तात्पर्य

कहा जाता है कि सप्ताल वृक्ष अत्यन्त प्राचीन भारी-भरकम ताड़ का वृक्ष है। एक बार बलि तथा उसके भाई सुग्रीव के बीच लड़ाई हुई तो भगवान् रामचन्द्र ने सुग्रीव का पक्ष लेकर इसी विख्यात वृक्ष के पीछे से बलि का वध किया था। जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत की यात्रा पर थे तो उन्होंने इस वृक्ष का आलिंगन किया। इससे इस वृक्ष का उद्धार हो गया और यह सीधे वैकुण्ठ चला गया।

तहाञि करिल कूर्मपुराण श्रवण।
मायासीता निलेक रावण, ताहाते लिखन॥११७॥

अनुवाद

रामेश्वर में श्री चैतन्य महाप्रभु को कूर्मपुराण पढ़ने का अवसर मिला जिससे उन्हें यह पता चला कि रावण ने जिस सीता का अपहरण किया था वह असली सीता न थीं, अपितु उनकी छाया-मात्र थीं।

तात्पर्य

कूर्म पुराण का कथन है कि इस छाया-सीता के सतीत्व की अग्नि-परीक्षा की गई। यह माया-सीता थी, अतएव जब इसने अग्नि में प्रवेश किया तो असली सीता बाहर निकल आईं।

शुनिया प्रभुर आनन्दित हैल मन।
रामदास विप्रेर कथा हइल स्मरण॥११८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु माया-सीता के विषय में पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें रामदास विप्र से अपनी भेंट का स्मरण हो आया जो अत्यन्त दुखी था कि रावण ने सीता माता का अपहरण कर लिया था।

सेइ पुरातन पत्र आग्रह करि' निल।
रामदासे देखाइया दुःख खण्डाइल॥११९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म पुराण की उस अत्यन्त प्राचीन पुस्तक से यह पन्ना फाड़ लिया और बाद में इसे रामदास विप्र को दिखलाया जिसे देख कर उसका दुख जाता रहा।

ब्रह्मसंहिता, कर्णामृत, दुइ पूँथि पाञा।
दुइ पुस्तक लञा आइला उत्तम जानिञा॥१२०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को दो पुस्तकें और भी मिलीं—ये हैं ब्रह्मसंहिता तथा कृष्णकर्णामृत। इन पुस्तकों को श्रेष्ठ मानते हुए वे उन्हें अपने भक्तों को भेंट करने के लिए लेते आये।

तात्पर्य

प्राचीनकाल में छापेखाने नहीं होते थे, अतएव महत्वपूर्ण शास्त्रों की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार की जाती थीं, जिन्हें बड़े-बड़े मन्दिरों में रखा जाता था। श्री चैतन्य महाप्रभु को *ब्रह्म-संहिता* तथा *कृष्णकर्णामृत* की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं। वे इन्हें महत्वपूर्ण समझ कर अपने साथ लेते आये जिससे उन्हें वे अपने भक्तों को भेंट कर सकें। निस्सन्देह उन्होंने मठाधीश की अनुमति ले ली थी। अब *ब्रह्म-संहिता* तथा *कृष्णकर्णामृत* दोनों ही की मुद्रित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनके साथ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर द्वारा लिखी टीकाएँ भी हैं।

पुनरपि नीलाचले गमन करिल।
भक्तगणे मेलिया स्नानयात्रा देखिल॥१२१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इन पुस्तकों समेत जगन्नाथ पुरी लौट आये। उस समय जगन्नाथजी का स्नान-उत्सव मनाया जा रहा था जिसे उन्होंने देखा।

अनवसरे जगन्नाथेर ना पाञा दरशन।
विरहे आलालनाथ करिला गमन॥१२२॥

अनुवाद

उस समय जगन्नाथजी मन्दिर में नहीं थे अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु उनका दर्शन नहीं कर सके। फलतः उन्हें विरह की अनुभूति हुई। इसलिए जगन्नाथ पुरी छोड़ कर आलालनाथ नामक स्थान गये।

तात्पर्य

आलालनाथ ब्रह्मगिरि के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह स्थान भी समुद्र-तट पर है और जगन्नाथ पुरी से लगभग १४ मील दूर पर है। वहाँ पर जगन्नाथ मन्दिर है। इस समय वहाँ एक थाना और डाकघर है, क्योंकि अनेक लोग इस मन्दिर को देखने आते हैं।

जब श्री जगन्नाथजी के दर्शन मन्दिर में नहीं होते तो इसे *अनवसर* कहते हैं। स्नान-उत्सव (स्नान-यात्रा) के बाद जगन्नाथजी बीमार माने जाते हैं। अतएव उन्हें अन्तःपुर में ले जाया जाता है, जहाँ उन्हें कोई नहीं देख सकता। वास्तव में इसी बीच जगन्नाथ के श्रीविग्रह के शरीर में नवीनता लाई जाती है। इसे *नवयौवन* कहते हैं। रथयात्रा उत्सव में भगवान् जगन्नाथ एक बार फिर जनता के समक्ष आते हैं। इस तरह स्नान-उत्सव के बाद पन्द्रह दिनों तक जगन्नाथजी के दर्शन नहीं होते।

भक्तसने दिन कत ताहाञि रहिला।
गौडेर भक्त आइसे, समाचार पाइला॥१२३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ दिनों तक आलालनाथ में रहे। तभी उन्हें यह समाचार मिला कि बंगाल से सारे भक्तगण जगन्नाथ पुरी आ रहे हैं।

नित्यानन्द-सार्वभौम आग्रह करिञा।
नीलाचले आइला महाप्रभुके लइञा॥१२४॥

अनुवाद

जब बंगाल के भक्तगण जगन्नथ पुरी आ गये तो नित्यानन्द प्रभु तथा सार्वभौम भट्टाचार्य ने काफी प्रयास किया कि वे श्री चैतन्य महाप्रभु को जगन्नाथ

पुरी वापस ले चलें।

विरहे विह्वल प्रभु ना जाने रात्रि-दिने।
हेन काले आइला गौड़ेर भक्तगणे॥१२५॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अन्ततः आलालनाथ छोड़ कर जगन्नाथ पुरी लौटने लगे तो वे जगन्नाथ के विरह में रात-दिन भावविभोर रहने लगे। उनके शोक का वारापार न था। इस समय बंगाल के विभिन्न भागों के और विशेष रूप से नवद्वीप के सारे भक्त जगन्नाथ पुरी आये।

सबे मिलि' युक्ति करि' कीर्तन आरम्भिल।
कीर्तन-आवेशे प्रभुर मन स्थिर हैल॥१२६॥

अनुवाद

काफी विचार-विमर्श के बाद सभी भक्तों ने सामूहिक कीर्तन प्रारम्भ किया। इस तरह श्री चैतन्य का मन कीर्तन के आह्लाद से शान्त हुआ।

तात्पर्य

ब्रह्म होने के कारण जगन्नाथजी शरीर, रूप, चित्र, कीर्तन तथा अन्य सारी परिस्थितियों में अभिन्न हैं। अतएव जब चैतन्य महाप्रभु ने भगवन्नाम का कीर्तन सुना तो वे शान्त हो गये। इसके पहले वे जगन्नाथ के विरह के कारण अत्यन्त खिन्न थे। निष्कर्ष यह निकला कि जब भी शुद्ध भक्तों द्वारा कीर्तन किया जाता है तो भगवान् वहाँ तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं। भगवन्नाम-कीर्तन करने से साक्षात् भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है।

पूर्वे यबे प्रभु रामानन्देर मिलिला।
नीलाचले आसिबारे ताँरे आज्ञा दिला॥१२७॥

अनुवाद

इसके पूर्व जब श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत का भ्रमण कर रहे थे तो गोदावरी-तट पर उनकी भेंट रामानन्द राय से हुई थी। उस समय यह तय हुआ था कि रामानन्द राय अपना राज्यपाल-पद त्याग कर जगन्नाथ पुरी आयेंगे और श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ रहेंगे।

राज-आज्ञा लञा तेँहो आइला कत दिने।
रात्रि-दिने कृष्णकथा रामानन्द सने॥१२८॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु के आदेश पर श्री रामानन्द राय ने राजा से छुट्टी माँगी और जगन्नाथ पुरी आ गये। जब वे आ गये तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके साथ रात-दिन कृष्ण तथा उनकी लीलाओं के विषय में बातें करते हुए काफी आनन्द उठाया।

काशीमिश्र कृपा, प्रद्युम्नमिश्रादि-मिलन।
परमानन्दपुरी-गोविन्द-काशीश्वरागमन ॥१२९॥

अनुवाद

रामानन्द राय के आने के बाद, श्री चैतन्य महाप्रभु ने काशीमिश्र पर कृपा की और प्रद्युम्न मिश्र से भेंट की। उस समय परमानन्द पुरी, गोविन्द तथा कवीश्वर नामक तीन व्यक्ति श्री चैतन्य से मिलने जगन्नाथ पुरी आये।

दामोदरस्वरूप-मिलने परम आनन्द।
शिखिमाहित-मिलन, राय भवानन्द॥१३०॥

अनुवाद

अन्ततः स्वरूप दामोदर गोस्वामी से भेंट होने पर चैतन्य महाप्रभु परम प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् शिखिमाहिति तथा रामानन्द राय के पिता भवानन्द राय से उनकी भेंट हुई।

गौड़ हइते सर्व वैष्णवेर आगमन।
कुलीनग्रामवासि-सङ्गे प्रथम मिलन॥१३१॥

अनुवाद

बंगाल के सारे भक्त क्रमशः जगन्नाथ पुरी आने लगे। उस समय कुलीन ग्राम के निवासी भी श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने पहली बार आये।

नरहरिदास आदि यत खण्डवासी।
शिवानन्दसेन-सङ्गे मिलिला सबे आसि'॥१३२॥

अनुवाद

अन्ततोगत्वा नरहरिदास तथा खण्ड के सारे निवासी शिवानन्द सेन समेत आये और श्री चैतन्य महाप्रभु उन सबों से मिले।

स्नानयात्रा देखि' प्रभु सङ्गे भक्तगण।
सबा लञा कैला प्रभु गुण्डिचा मार्जन॥१३३॥

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ के स्नान उत्सव को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने अनेक भक्तों की सहायता से श्री गुण्डिचा मन्दिर को झाड़ा-बुहारा और सफाई की।

सबा-सङ्गे रथयात्रा कैल दरशन।
रथ-अग्रे नृत्य करि' उद्याने गमन॥१३४॥

अनुवाद

इसके बाद समस्त भक्तों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु ने रथयात्रा का दर्शन किया। स्वयं चैतन्य महाप्रभु रथ के आगे नाचे और नाचने के बाद बगीचे में गये।

प्रतापरुद्रेर कृपा कैल सेइ स्थाने।
गौड़ीयाभक्ते आज्ञा दिल विदायेर दिने॥१३५॥

अनुवाद

उस बगीचे में श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रतापरुद्र पर कृपा प्रदर्शित की। तत्पश्चात् जब बंगाल के भक्तगण अपने घरों को लौटने वाले थे तो महाप्रभु ने सबों को अलग-अलग आदेश दिये।

प्रत्यब्द आसिबे रथयात्रा-दरशने।
एइ छले चाहे भक्तगणेर मिलन॥१३६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बंगाल के सारे भक्तों से प्रतिवर्ष मिलते रहना चाहते थे। अतएव उन्होंने उन्हें आज्ञा दी कि वे प्रतिवर्ष रथयात्रा का दर्शन करने आया करें।

सार्वभौम-घरे प्रभुर शिक्षा-परिपाटी।
षाठीर माता कहे, याते राण्डी हउक् षाठी॥१३७॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर भोजन करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु आमन्त्रित किये गये। जब महाप्रभु भोजन कर रहे थे तो सार्वभौम के जामाता (उनकी पुत्री षाठी के पति) ने उनकी आलोचना की। इसके कारण षाठी की माता ने उसे शाप दे दिया कि षाठी विधवा हो जाय। अर्थात् उसने अपने जामाता को मर जाने का शाप दे डाला।

वर्षान्तरे अद्वैतादि भक्तेर आगमन।
प्रभुरे देखिते सबे करिले गमन॥१३८॥

अनुवाद

साल के अन्त में अद्वैत आचार्य के साथ बंगाल के सारे भक्त पुनः श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने आये। निस्सन्देह जगन्नाथ पुरी के लिए भक्तों की भारी भीड़ थी।

आनन्दे सबारे निया देन वास-स्थान।
शिवानन्द सेन करे सबार पालन॥१३९॥

अनुवाद

जब बंगाल के सारे भक्त आ गये तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों को रहने के लिए कमरे दिये और शिवानन्द सेन को उनकी देखरेख का भार सौंप दिया।

शिवानन्द सङ्गे आइला कुक्कुर भाग्यवान।
प्रभुर चरण देखि' कैल अन्तर्धान॥१४०॥

अनुवाद

शिवानन्द तथा भक्तों के साथ एक कुत्ता आया था जो इतना भाग्यवान निकला कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का दर्शन करने के बाद मुक्त हो गया और भगवद्धाम चला गया।

पथे सार्वभौम सह सबार मिलन।
सार्वभौम भट्टाचार्येर काशीते गमन॥१४१॥

अनुवाद

वाराणसी जाते हुए मार्ग में सार्वभौम भट्टाचार्य से सभी लोग मिले।

प्रभुरे मिलिला सर्व वैष्णव आसिया।
जलक्रीड़ा कैल प्रभु सबारे लइया॥१४२॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी आकर सारे वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले। बाद में सभी भक्तों को साथ लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने जलक्रीड़ा की।

सबा लञा कैल गुण्डिचा-गृह-संमार्जन।
रथयात्रा-दरशने प्रभुर नर्तन॥१४३॥

अनुवाद

सबसे पहले महाप्रभु ने गुण्डिचा-मन्दिर को ठीक से धोया। फिर सबों ने रथयात्रा एवं रथ के आगे-आगे महाप्रभु के नृत्य का दर्शन किया।

उपवने कैल प्रभु विविध विलास।
प्रभुर अभिषेक कैल विप्र कृष्णदास॥१४४॥

अनुवाद

जगन्नाथ मन्दिर से गुण्डिचा के रास्ते में पड़ने वाले बगीचे में श्री चैतन्य महाप्रभु ने विविध लीलाएँ कीं। कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को स्नान कराया।

गुण्डिचाते नृत्य-अन्ते कैल जलकेलि।
हेरा-पञ्चमीते देखिल लक्ष्मीदेवीर केली॥१४५॥

अनुवाद

गुण्डिचा-मन्दिर में नाचने के बाद महाप्रभु ने भक्तों के साथ जलक्रीड़ा की और हरापञ्चमी के दिन उन सबों ने लक्ष्मीदेवी के कार्यकलापों का दर्शन किया।

कृष्णजन्म-य़ात्राते प्रभु गोपवेश हैला।
दधिभार वहि'तबे लगुड फिराइला॥१४६॥

अनुवाद

कृष्ण के जन्मदिन, जन्माष्टमी को श्री चैतन्य महाप्रभु ग्वालबाल का वेश बनाकर दही के मटकों से युक्त बहँगी धारण की तथा एक लाठी घुमाते रहे।

गौडेर भक्तगणे तबे करिल विदाय।
सङ्गेर भक्त लञा करे कीर्तन सदाय॥१४७॥

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने गौड़देश (बंगाल) से आये सारे भक्तों को विदा किया और अपने उन घनिष्ठ भक्तों के साथ कीर्तन करते रहे जो सदा उनके साथ रहते थे।

वृन्दावन य़ाइते कैल गौडेर गमन।
प्रतापरुद्र कैल पथे विविध सेवन॥१४८॥

अनुवाद

वृन्दावन जाने के लिए, महाप्रभु पहले गौड़देश (बंगाल) गये। रास्ते में राजा प्रतापरुद्र ने महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार से सेवाएँ कीं।

पुरीगोसाञि-सङ्गे वस्त्र-प्रदान-प्रसङ्ग।
रामानन्द राय आइला भद्रक पर्यन्त॥१४९॥

अनुवाद

बंगाल से होकर वृन्दावन जाते समय एक घटना घटी जिसमें पुरी गोसाईं का वस्त्र उनसे बदल गया। श्री रामानन्द राय महाप्रभु के साथ साथ भद्रक तक गये।

आसि' विद्यावाचस्पतिर गृहेते रहिला।
प्रभुरे देखिते लोकसंघट्ट हइला॥१५०॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जाते हुए विद्यानगर (बंगाल में ही) पहुँचे तो वे सार्वभौम भट्टाचार्य के भाई विद्यावाचस्पति के घर पर रुके। जब महाप्रभु सहसा उनके घर पहुँचे तो वहाँ लोगों की भीड़ जमा हो गई।

पञ्चदिन देखे लोक नाहिक विश्राम।
लोकभये रात्रे प्रभु आइया कुलिया-ग्राम।।१५१।।

अनुवाद

लोग पाँच दिनों तक महाप्रभु का दर्शन करने आते रहे, फिर भी अन्त नहीं हो रहा था। अतएव भीड़ के भयं से महाप्रभु ने रात्रि में ही प्रस्थान कर दिया और वे कुलिया नामक ग्राम (आजकल नवद्वीप) में आये।

तात्पर्य

यदि *चैतन्य-भागवत* में दिये गये कथनों के साथ-साथ लोचनदास ठाकुर के विवरण पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल का नवद्वीप पहले कुलियाग्राम कहलाता था। कुलियाग्राम में महाप्रभु ने देवानन्द पंडित पर कृपा की तथा गोपाल चापल एवं अन्य कई अपराधियों का उद्धार किया। उन दिनों विद्यानगर से कुलियाग्राम जाने के लिए गंगा नदी की एक शाखा को पार करना होता था। वे सारे पुराने स्थान आज भी हैं। पहले कुलियाग्राम में चिनाडांग स्थित था, जो आजकल कोलेरगञ्ज के नाम से प्रसिद्ध है।

कुलिया-ग्रामेते प्रभुर शुनिया आगमन।
कोटि कोटि लोक आसि' कैल दरशन।।१५२।।

अनुवाद

कुलियाग्राम में महाप्रभु का आगमन सुन कर हजारों-लाखों लोग उनका दर्शन करने आये।

कुलिया-ग्रामे कैल देवानन्देरे प्रसाद।
गोपाल-विप्रेरे क्षमाइल श्रीवासापराध।।१५३।।

अनुवाद

इस समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने जो विशेष कार्य किये उनमें देवानन्द पंडित पर कृपा करना तथा गोपाल चापल नामक ब्राह्मण को क्षमा प्रदान करना मुख्य हैं। चापल ने श्रीवास ठाकुर के चरणकमलों पर अपराध किया था।

पाषंडी निन्दक आसि' पड़िला चरणे।
अपराध क्षमि' तारे दिल कृष्णप्रेमे॥१५४॥

अनुवाद

अनेक नास्तिक तथा निन्दक भी महाप्रभु के चरणकमलों पर आ-आकर गिरते रहे, जिन्हें उन्होंने क्षमा करके कृष्ण-प्रेम प्रदान किया।

वृन्दावन य़ाबेन प्रभु शुनि' नृसिंहानन्द।
पथ साजाइल मने पाइया आनन्द॥१५५॥

अनुवाद

जब श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जायेंगे तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन ही मन उस मार्ग को सजाने लगे।

कुलिया नगर हैते पथ रत्ने बान्धाइल।
निवृन्त पुष्पशय्या उपरे पातिल॥१५६॥

अनुवाद

सर्वप्रथम उन्होंने कुलिया नगरी से वहाँ तक एक चौड़ी सड़क की कल्पना की। फिर इस सड़क को रत्नों से सजाया और उसके ऊपर डंठलरहित फूलों की सेज बिछायी।

पथे दुइ दिके पुष्प-बकुलेर श्रेणी।
मध्य़े मध्य़े दुइपाशे दिव्य पुष्करिणी॥१५७॥

अनुवाद

उन्होंने मन-ही-मन सड़क के दोनों किनारों को बकुल पुष्प के वृक्षों से सजाया और बीच-बीच में दिव्य सरोवरों के लिए स्थान रखा।

रत्नबाँधा घाट, ताहे प्रफुल्ल कमल।
नाना पक्षि-कोलाहल, सुधा-सम जल॥१५८॥

अनुवाद

इन सरोवरों में स्नान करने के घाट रत्नों से बने थे और वे जल से भरे थे, जिनमें कमल के फूल फूले थे। तरह-तरह के पक्षी चहक रहे थे और सरोवरों का जल अमृत के समान था।

शीतल समीर बहे नाना गन्ध लञा।
'कानाइर नाटशाला' पर्यन्त लइल बान्धिञा॥१५९॥

अनुवाद

पूरी सड़क में नाना प्रकार की शीतल हवा बह रही थी जो विविध फूलों की सुगन्ध से सजी थी। वे इस सड़क को कानाइ नाटशाला तक बनाते हुए ले गये।

तात्पर्य

कानाइ नाटशाला कलकत्ता से लगभग २०२ मील दूरी पर पूर्वी रेलवे की लूप लाइन में है। रेलवे स्टेशन का नाम तालझण्डि है, जहाँ उतर कर लगभग दो मील चलने पर कानाइ नाटशाला मिलता है।

आगे मन नाहिं चले, नां पारे बान्धिते।
पथबान्धा ना ग़ाय, नृसिंह हैल विस्मिते॥१६०॥

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी अपने मन में कानाइ नाटशाला के आगे सड़क नहीं बना पाये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि सड़क आगे क्यों नहीं बन पा रही, अतः वे चकित थे।

निश्चय करिया कहि, शुन, भक्तगण।
एबार ना ग़ाबेन प्रभु श्रीवृन्दावन॥१६१॥

अनुवाद

फिर उन्होंने विश्वासपूर्वक भक्तों से बतलाया कि इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन नहीं जायेंगे।

तात्पर्य

श्री नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी श्री चैतन्य महाप्रभु के बहुत बड़े भक्त थे, अतएव जब उन्होंने सुना कि महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन जा रहे हैं, तो गरीब होते हुए भी वे अपने मन के भीतर उनके लिए एक आकर्षक सड़क (मार्ग) बनाने लगे, जिससे होकर महाप्रभु जा सकें। इस मार्ग का कुछ विवरण ऊपर दिया हुआ है। किन्तु वे अपने मन के भीतर भी कानाइ नाटशाला से आगे मार्ग न बना सके। अतएव उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस बार श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन नहीं जा सकेंगे।

शुद्ध भक्त के लिए इसका कोई अर्थ नहीं होता कि वह धन लगाकर मार्ग बनाता है या अपने मन के भीतर। इसका कारण यह है कि भगवान् जनार्दन *भावग्राही* हैं अर्थात् उन्हें भाव पसन्द हैं। उनके लिए चाहे मार्ग वास्तविक रत्नों से बनाया जाय या काल्पनिक रत्नों से—दोनों एक-से हैं। मन सूक्ष्म होते हुए भी आखिर पदार्थ है, अतएव कोई भी मार्ग, चाहे वह स्थूल पदार्थ का हो या सूक्ष्म पदार्थ का, यदि भगवान् की सेवा के लिए है तो भगवान् उसे समान रूप से स्वीकार करते हैं। भगवान् तो भक्त के भाव को ग्रहण करते हैं और यह देखते हैं कि वह कितनी सेवा कर सकता है। भक्त को छूट रहती है कि वह चाहे स्थूल पदार्थ से या सूक्ष्म पदार्थ से भगवान् की सेवा करे। महत्वपूर्ण बात यह होती है कि यह सेवा भगवान् से सम्बन्धित हो। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (९.२६) हुई है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयात्मनः॥

"यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्तिपूर्वक एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" असली वस्तु *भक्ति* है। शुद्ध भक्ति में भौतिक प्रकृति के गुणों का कल्मष नहीं रहता। *अहैतुक्य प्रतिहता*—अहैतुकी भक्ति को किसी भी भौतिक अवस्था द्वारा रोका नहीं जा सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् की सेवा करने के लिए धनवान होना आवश्यक नहीं है। यहाँ तक कि गरीब से गरीब व्यक्ति भी शुद्ध भक्ति होने पर उसी तरह से भगवान् की सेवा कर सकता है। यदि कोई परोक्ष उद्देश्य नहीं होता है तो भक्ति को किसी भी प्रकार से रोका नहीं जा सकता।

'कानाञिर नाटशाला' हैते आसिब फिरिञा।
जानिबे पश्चात्, कहिलु निश्चय करिञा॥१६२॥

अनुवाद

नृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने कहा, "महाप्रभु कानाइ नाटशाला तक जायेंगे और फिर लौट आयेंगे। इसे तुम बाद में जानोगे, किन्तु मैं अभी बड़े ही विश्वास के साथ बतलाये दे रहा हूँ।"

गोसाञि कुलिया हैते चलिला वृन्दावन।
सङ्गे सहस्रेक लोक य़त भक्तगण॥१६३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कुलिया से वृन्दावन की ओर चलने लगे तो जो हजारों लोग उनके साथ थे और ये सारे भक्त थे।

य़ाहाँ पाय प्रभु, ताहाँ कोटिसंख्य लोक।
देखिते आइसे, देखि' खण्डे दुःख-शोक॥१६४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जहाँ-जहाँ गये, वहीं असंख्य लोगों की भीड़ उनका दर्शन करने आई। दर्शन करने पर उनका सारा दुख और शोक दूर हो गया।

य़ाहाँ य़ाहाँ प्रभुर चरण पड़ये चलिते।
से मृत्तिका लय लोक, गर्त हय पथे॥१६५॥

अनुवाद

जहाँ-जहाँ महाप्रभु के चरणकमल भूमि पर पड़ते थे, लोग तुरन्त आकर वहाँ की धूल लेते थे। उन्होंने इतनी धूल उठा ली कि इससे मार्ग में अनेक गड्ढे बन गये।

ऐछे चलि, आइला प्रभु 'रामकेलि' ग्राम।
गौड़ेर निकट ग्राम अति अनुपाम॥१६६॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु रामकेलि नाम के ग्राम में आये। यह ग्राम

बंगाल की सीमा पर स्थित है और अत्यन्त मनोहर है।

तात्पर्य

रामकेलि ग्राम बंगाल की सीमा पर गंगा नदी के तट पर स्थित है। श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी इसी ग्राम के रहने वाले थे।

ताहाँ नृत्य करे प्रभु प्रेमे अचेतन।
कोटि कोटि लोक आइस देखिते चरन॥१६७॥

अनुवाद

रामकेलि ग्राम में संकीर्तन करते समय महाप्रभु नाचते और कभी-कभी ईश-प्रेमवश अपनी चेतना खो देते थे। रामकेलि ग्राम में रहते हुए असंख्य लोग उनके चरणकमलों का दर्शन पाने के लिए आये थे।

गौड़ेश्वर य़वन-राजा प्रभाव शुनिञा।
कहिते लागिल किछु विस्मित हञा॥१६८॥

अनुवाद

जब बंगाल के मुसलमान राजा ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से असंख्य लोग आकृष्ट हो रहे हैं तो वह अत्यन्त विस्मित हुआ और इस प्रकार कहने लगा।

तात्पर्य

उस समय बंगाल का मुसलमान राजा नवाब हुसेन साहा बादशाह था।

विना दाने एत लोक य़াँর पाछे हय।
सेइ त' गोसाञा, इहा जानिह निश्चय॥१६९॥

अनुवाद

"बिना कुछ दान दिये ही जिस व्यक्ति के इतने लोग अनुयायी हों वह निश्चय ही पैगम्बर होगा। ऐसा मेरी समझ में आ रहा है।"

काजी, य़वन इहार ना करिह हिंसन।
आपन-इच्छाय बुलुन, य़ाहाँ उँहार मन॥१७०॥

अनुवाद

उस मुसलमान राजा ने अपने काजी (मैजिस्ट्रेट) को आदेश दिया, "इस

हिन्दू पैगम्बर को ईर्ष्यावश मत छेड़ना। यह जहाँ भी जो कुछ चाहे उसे करने दिया जाय।"

तात्पर्य

एक मुसलमान राजा तक श्री चैतन्य महाप्रभु को पैगम्बर के दिव्य पद पर स्थित जान गया था, अतएव उसने स्थानीय काजी को आदेश दिया कि वह उसे छेड़े नहीं, अपितु उसे इच्छानुसार रहने-करने दिया जाय।

केशव-छत्रीह राजा वार्ता पूछिल।
प्रभुर महिमा छत्री उड़ाइया दिल॥१७१॥

अनुवाद

जब मुसलमान राजा ने अपने सहायक केशव छत्री से श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव की बात जाननी चाही तो वह महाप्रभु के बारे में सबकुछ जानते हुए उनके कार्यों को कोई महत्व न देने के उद्देश्य से बात टाल गया।

तात्पर्य

जब केशव छत्री से श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में पूछा गया तो वह कूटनीतिज्ञ बन गया। यद्यपि वह उनके विषय में सबकुछ जानता था, किन्तु उसे भय था कि कहीं मुसलमान राजा उनका शत्रु न बन जाय। अतः उसने महाप्रभु के कार्यों को कोई प्रधानता नहीं दी जिससे राजा उन्हें सामान्य व्यक्ति समझ कर किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाये।

भिखारी संन्यासी करे तीर्थपर्यटन।
ताँरे देखिबारे आइस दुइ चारि जन॥१७२॥

अनुवाद

केशव छत्री ने मुसलमान राजा को बतलाया कि चैतन्य महाप्रभु एक संन्यासी हैं जो विभिन्न तीर्थस्थलों की यात्रा कर रहे हैं, अतएव कुछेक लोग उन्हें देखने आते रहते हैं।

य़वने तोमार ठाञि करये लागानि।
ताँर हिंसाय लाभ नाहि, हय आर हानि॥१७३॥

अनुवाद

केशव छत्री ने कहा, "आपका मुसलमान नौकर ईर्ष्यावश उनके विरुद्ध षड्यन्त्र करता है। मेरे विचार से उनमें अधिक रुचि लेना आपके लिए लाभप्रद नहीं होगा, प्रत्युत इससे नुकसान ही हो सकता है।"

राजारे प्रबोधि' केशव ब्राह्मण पाठाञा।
चलिबार तरे प्रभुरे पाठाइल कहिञा।।१७४।।

अनुवाद

इस प्रकार राजा को समझा-बुझाकर केशव छत्री ने श्री चैतन्य महाप्रभु के पास इस प्रार्थना के साथ एक ब्राह्मण दूत भेजा कि वे शीघ्र ही वहाँ से चले जायें।

दबिर खासेर राजा पूछिल निभृते।
गोसाञिर महिमा तेँहो लागिल कहिते।।१७५।।

अनुवाद

राजा ने एकान्त में दबिर खास (श्रील रूप गोस्वामी) से पूछताछ की तो वे महाप्रभु की महिमा का वर्णन करने लगे।

ये तोमारे राज्य दिल, ये तोमार गोसाञि।
तोमार देशे तोमार भाग्ये जन्मिला आसिञा।।१७६।।

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी ने कहा, "जिस भगवान् ने आपको यह राज्य दिया है और जिसे आप पैगम्बर मानते हैं, उसी ने आपके सौभाग्य से आपके देश में जन्म लिया है।"

तोमार मङ्गल वाञ्छे, कार्यसिद्धि हय।
इहार आशीर्वादे तोमार सर्वत्र जय।।१७७।।

अनुवाद

"यह पैगम्बर सदैव आपके मंगल का आकांक्षी है। उसी की कृपा से आपके सारे कार्य सफल होते हैं। उसके आशीर्वाद से आपकी सर्वत्र विजय होगी।"

मोरे केन पुछ, तुमि पुछ आपन-मन।
तुमि नराधिप हओ विष्णु-अंश सम॥१७८॥

अनुवाद

"आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं? आप अपने मन से क्यों नहीं पूछते। आप जनता के राजा होने के कारण भगवान् के प्रतिनिधि हैं। अतएव आप मुझसे अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं।"

तोमार चित्ते चैतन्येर कैछे हय ज्ञान।
तोमार चित्ते ग्रेइ लय, सेइ त' प्रमाण॥१७९॥

अनुवाद

इस प्रकार श्रील रूप गोस्वामी ने राजा को बतलाया कि आपका मन ही श्री चैतन्य महाप्रभु को जानने का साधन है। उन्होंने राजा को विश्वास दिलाया कि अपने मन में जो भी आये उसे ही प्रमाण मानें।

राजा कहे, शुन, मोर मने ग्रेइ लय।
साक्षात् ईश्वर इहँ नाहिक संशय॥१८०॥

अनुवाद

राजा ने उत्तर दिया, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को भगवान् मानता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

एत कहि' राजा गेला निज अभ्यन्तरे।
तबे दबिर खास आइला आपनार घरे॥१८१॥

अनुवाद

रूप गोस्वामी के साथ इस बातचीत के बाद राजा अपने अन्तःपुर में गया। तब रूप गोस्वामी भी (जो उस समय दबिर खास कहलाते थे) अपने घर लौट गये।

तात्पर्य

राजा निश्चित रूप से भगवान् का प्रतिनिधि होता है। *भगवद्गीता* में कहा गया है—*सर्वलोकमहेश्वरम्*—भगवान् सभी लोकों के मालिक हैं। प्रत्येक लोक में कोई न कोई शासक या राजा होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को भगवान् विष्णु का प्रतिनिधि माना जाता है। उसे भगवान् की ओर से सभी लोगों

के हितों को ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए परमात्मा रूप में भगवान् विष्णु राजा को बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे वह सरकारी कामकाज सम्पन्न कर सके। अतएव श्रील रूप गोस्वामी ने राजा से पूछा कि उसके मन में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति कैसा भाव है और यह संकेत किया कि राजा जो भी उनके विषय में सोच रहा था, वह ठीक ही था।

घरे आसि' दुइ भाइ युकति करिञा।
प्रभु देखिबारे चले वेश लुकाञा॥१८२॥

अनुवाद

अपने घर लौट आने के बाद दबिर खास तथा उनके भाई ने मिल कर विचार किया कि वेश बदल कर महाप्रभु का दर्शन करने चला जाय।

अर्धरात्रे दुइ भाइ आइला प्रभु-स्थाने।
प्रथमे मिलिला नित्यानन्द-हरिदास सने॥१८३॥

अनुवाद

इस प्रकार दबिर खास तथा साकर मल्लिक दोनों भाई आधी रात को वेश बदल कर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने गये। सर्वप्रथम वे नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर से मिले।

ताँरा दुइजन जानाइला प्रभुर गोचरे।
रूप, साकरमल्लिक आइला तोमा' देखिबारे॥१८४॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द तथा हरिदास ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि दो व्यक्ति—श्री रूप तथा सनातन—उनका दर्शन करने के लिए आये हैं।

तात्पर्य

साकर मल्लिक नाम था सनातन गोस्वामी का और दबिर खास नाम था रूप गोस्वामी का। वे मुसलमान राजा की नौकरी में इसी नाम से प्रसिद्ध थे, अतएव ये मुसलमानी नाम थे। सरकारी अफसर होने के कारण इन दोनों भाइयों ने मुसलमानी रिवाजें ग्रहण कर रखी थीं।

दुइ गुच्छ तृण दुँहे दशने धरिञा।
गले वस्त्र बान्धि' पड़े दण्डवत् हञा॥१८५॥

अनुवाद

दोनों भाई दीनतावश अपने दाँतों में तिनके दबाकर और अपने अपने गले के चारों ओर कपड़े बाँध कर महाप्रभु के सामने दंड के समान गिर पड़े।

दैन्य रोदन करे, आनन्दे विह्वल।
प्रभु कहे,—उठ, उठ, हइल मङ्गल॥१८६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को देख कर दोनों भाई आनन्द से अभिभूत हो गये और दीनतावश रोने लगे। महाप्रभु ने उनसे उठने के लिए कहा और उन्हें परम भाग्यशाली होने का वरदान दिया।

उठि' दुइ भाइ तबे दन्ते तृण धरि'।
दैन्य करि' स्तुति करे करय़ोड़ करि॥१८७॥

अनुवाद

दोनों भाई उठ खड़े हुए और पुनः अपने दाँतों में तिनका दबाकर उन्होंने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से प्रार्थना की।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य दयामय।
पतितपावन जय, जय महाशय॥१८८॥

अनुवाद

"पतितात्माओं के सर्वाधिक दयालु त्राता श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जय हो! भगवान् की जय हो!"

नीच-जाति, नीच-सङ्गी, करि नीच काज।
तोमार अग्रेते प्रभु कहिते वासि लाज॥१८९॥

अनुवाद

"महाशय! हम नीच जाति के हैं और हमारे संगी तथा हमारी नौकरी भी निम्न कोटि की है। अतएव हम आपके समक्ष नहीं आ सकते।

हमें आपके समक्ष खड़े होने में अत्यधिक लाज आती है।

तात्पर्य

यद्यपि रूप तथा सनातन (उस समय दबिर खास तथा साकर मल्लिक) दोनों भाइयों ने अपने को निम्न कुल में उत्पन्न बतलाया, किन्तु वे अति-सम्मानित ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध थे, जो मूलतः कर्णाट से आया था। इस तरह वे वास्तव में ब्राह्मण जाति के थे। दुर्भाग्यवश मुसलमानी नौकरी में होने के कारण उनके रीति-रिवाज मुसलमानों जैसे थे। इसीलिए उन्होंने अपने आपको *नीच जाति* का कहा है। *जाति* शब्द जन्म का सूचक है। शास्त्रों के अनुसार जन्म तीन प्रकार के होते हैं—पहला माता के गर्भ से, दूसरा संस्कार द्वारा तथा तीसरा गुरु-दीक्षा से। गर्हित काम करने या गर्हित लोगों की संगति करने से मनुष्य गर्हित बनता है। रूप तथा सनातन दबिर खास तथा साकर मल्लिक के रूप में मुसलमानों की संगति में रहते थे, जो ब्राह्मण संस्कृति तथा गो-रक्षा के विरोधी होते हैं। *श्रीमद्भागवत* के सातवें स्कंध में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी वर्ण का होता है। वह शास्त्रों में उल्लिखित विशेष लक्षणों द्वारा पहचाना जाता है। वह अपने लक्षणों से ही किसी जाति विशेष का माना जाता है। दबिर खास तथा साकर मल्लिक दोनों ही ब्राह्मण जाति के थे, लेकिन चूँकि वे मुसलमानों के यहाँ नौकर थे, अतएव उनकी मूल आदतें गिर कर मुसलमान जाति जैसी बन गईं थीं। चूँकि उनमें ब्राह्मण-संस्कृति के एक भी लक्षण नहीं थे, इसीलिए वे अपने को नीच जाति का कहते थे। *भक्तिरत्नाकर* में स्पष्ट कहा गया है कि चूँकि दबिर खास तथा साकर मल्लिक नीच जाति के लोगों के साथ रहते थे, इसीलिए उन्होंने अपना परिचय नीच जाति से सम्बद्ध कह कर दिया। किन्तु वास्तव में वे सम्मान्य ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे।

मत्तुल्यो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन।
परिहारेऽपि लज्जा मे किं ब्रुवे पुरुषोत्तम॥१९०॥

अनुवाद

"हे प्रभु! मैं आपको बतला दूँ कि न तो मुझसे बड़ा कोई पापी है, न ही मेरे समान कोई अपराधी है। यदि मैं अपने पापकर्म बताना भी चाहूँ तो तुरन्त लज्जा आ जाती है। उन्हें छोड़ने की बात तो दूर रही।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत-सिन्धु* (१.२.१५४) का है।

पतित-पावन-हेतु तोमार अवतार।
आमा-वइ जगते, पतित नाहि आर॥१९१॥

अनुवाद

दोनों भाइयों ने निवेदन किया, "हे प्रभु! आपने पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए अवतार लिया है। आपको मानना पड़ेगा कि इस संसार में हम जैसा पतित कोई नहीं है।"

जगाइ-माधाइ दुइ करिले उद्धार।
ताहाँ उद्धारिते श्रम नहिल तोमार॥१९२॥

अनुवाद

"आपने जगाइ तथा माधाइ दोनों भाइयों का उद्धार किया है, किन्तु उनका उद्धार करने में आपको कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा।"

ब्राह्मणजाति तारा, नवद्वीपे घर।
नीच-सेवा नाहि करे, नहे नीचेर कूर्पर॥१९३॥

अनुवाद

"जगाइ तथा माधाइ ब्राह्मण जाति के थे और उनका निवास-स्थान नवद्वीप की पुण्यभूमि में था। उन्होंने न तो कभी नीच पुरुषों की सेवा की थी, न ही वे गर्हित कार्यों के निमित्त थे।

सबे एक दोष तार, हय पापाचार।
पापराशि दहे नामाभासेइ तोमार॥१९४॥

अनुवाद

"किन्तु जगाइ तथा माधाइ में एक दोष था—वे पापकर्मों में लिप्त रहते थे। किन्तु पापकर्मों का समूह आपके पवित्र नाम के कीर्तन धुँधली झलक से भी जल कर क्षार हो सकता है।"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने अपने को जगाइ तथा माधाइ

नामक उन दो भाइयों से भी अधम कहा जिनका उद्धार श्री चैतन्य महाप्रभु ने किया था। जब रूप तथा सनातन गोस्वामी ने अपनी तुलना जगाइ तथा माधाइ से की तो उन्होंने अपने को उनसे नीच पाया, क्योंकि इन दोनों शराबी भाइयों का उद्धार करने में महाप्रभु को तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ा। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि पापकर्मों में लिप्त रहने के बावजूद अन्य सभी प्रकार से उनका जीवन उज्ज्वल था। वे नवद्वीप के ब्राह्मण थे, अतएव वे स्वभाव से पवित्र ब्राह्मण थे। यद्यपि वे बुरी संगति के कारण पापकर्मों में लिप्त रहते थे, किन्तु ये अवांछित बातें भगवन्नाम-कीर्तन करने से ही लुप्त हो गईं। दूसरी बात यह थी कि ब्राह्मण परिवार के सदस्य होने के नाते उन्होंने किसी की नौकरी स्वीकार नहीं की थी। शास्त्र द्वारा वर्णित है कि कोई ब्राह्मण किसी दूसरे की नौकरी न करे। भाव यह है कि किसी को स्वामी बनाने पर कुत्ते का कार्य करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, कुत्ता बिना स्वामी के उन्नति नहीं कर सकता और स्वामी को प्रसन्न करने के लिए कुत्ता अनेक लोगों के साथ अपराध करता है। कुत्ता अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए निर्दोष लोगों पर भूँकता है। इसी प्रकार जब कोई नौकर बनता है तो उसे अपने मालिक के आदेशानुसार गर्हित कार्य करने होते हैं। अतएव जब दबिर खास तथा साकर मल्लिक ने अपनी स्थिति की तुलना जगाई तथा माधाइ से की तो उन्हें लगा कि उन दोनों की स्थिति उनसे अच्छी है। जगाइ तथा माधाइ ने कभी किसी नीच व्यक्ति की नौकरी नहीं की, न ही उसके आदेश पर कोई गर्हित कार्य किया। वे निन्दा के रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम का उच्चारण करते थे। किन्तु चूँकि वे उनका नामोच्चार-मात्र करते थे, इसलिए तुरन्त ही वे पापकर्मों के फलों से मुक्त हो गये। बाद में उन्हें बचा लिया गया।

तोमार नाम लञा तोमार करिल निन्दन।
सेइ नाम हइल तार मुक्तिर कारण॥१९५॥

अनुवाद

"जगाइ तथा माधाइ ने आपकी निन्दा करने के बहाने आपके पवित्र नाम का उच्चारण किया। सौभाग्यवश वही पवित्र नाम उनकी मुक्ति का कारण बना।"

जगाई-माधाइ हैते कोटी कोटी गुण।
अधम पतित पापी आमि दुइ जन॥१९६॥

अनुवाद

"हम दोनों जगाइ-माधाइ से करोड़ों गुना अधम हैं। हम उनसे अधिक नीच, पतित तथा पापी हैं।"

म्लेच्छजाति, म्लेच्छसेवी, करि म्लेच्छकर्म।
गो-ब्राह्मण-द्रोहि-सङ्गे आमार सङ्गम॥१९७॥

अनुवाद

"हम मांसाहारी जाति के हैं, क्योंकि हम मांसाहारियों के नौकर हैं। निस्सन्देह हमारे कार्य बिल्कुल मांसाहारियों की ही तरह हैं। चूँकि हम सदैव ऐसे लोगों की संगति करते हैं, अतएव हम गौवों तथा ब्राह्मणों के प्रति शत्रुभाव रखते हैं।"

तात्पर्य

मांसाहारी दो प्रकार के होते हैं—वे जो मांसाहारी परिवार में जन्म लेते हैं तथा वे जो मांसाहारियों की संगति में रहते हैं। हमें श्रील रूप तथा सनातन गोस्वामियों (पहले दबिर खास तथा साकर मल्लिक) से यह शिक्षा मिलती है कि किस प्रकार मांसाहारियों की संगति से कोई मांसाहारी बन जाता है। इस समय भारत में उच्च पदों पर तथाकथित ब्राह्मण आसीन हैं, किन्तु फिर भी राज्य की ओर से गो-वध के लिए कसाई-घर चलते हैं और वैदिक सभ्यता के विरुद्ध प्रचार होता है। वैदिक सभ्यता का पहला सिद्धान्त है मांसाहार तथा मद्यपान से दूर रहना। किन्तु इस समय भारत में मद्यपान तथा मांसाहार को प्रोत्साहित किया जा रहा है, और इस राज्य को चलाने वाले तथाकथित विद्वान् ब्राह्मण श्रील रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी द्वारा दिये गये मापदण्ड के अनुसार पतित हो गये हैं। ये तथाकथित ब्राह्मण अच्छा वेतन पाने के लिए इन कसाई-घरों को स्वीकृति प्रदान करते हैं और ऐसे जघन्य कार्यों का प्रतिरोध नहीं करते। इस तरह वैदिक सभ्यता के सिद्धान्तों की अवमानना एवं गो-वध का समर्थन करने के कारण वे *म्लेच्छों* तथा *यवनों* के पद को प्राप्त हैं। *म्लेच्छ* मांसाहार करने वाला है और *यवन* प्रशासन चलाता है। तब भला राज्य में समृद्धि और शान्ति

कैसे रह सकती है? राजा या राष्ट्रपति को भगवान् का प्रतिनिधि होना चाहिए। जब महाराज युधिष्ठिर ने भारतवर्ष का शासन सँभाला तो उन्होंने भीष्मदेव तथा भगवान् कृष्ण जैसे महापुरुषों की स्वीकृति प्राप्त की थी। इस तरह वे धार्मिक नियमों के अनुसार समूचे संसार पर शासन करते रहे। किन्तु इस समय राज्य के अध्यक्ष धार्मिक नियमों की परवाह नहीं करते। यदि अधार्मिक लोग किसी बात पर, चाहे वह शास्त्रों के नियमविरुद्ध क्यों न हो, मतदान करते हैं तो वह बिल पारित हो जाता है। ऐसे जघन्य कार्यों से सहमत होकर राष्ट्रपति तथा राज्य के अध्यक्ष पाप के भागी बनते हैं। सनातन तथा रूप गोस्वामी ने अपने को ऐसे ही कार्यों के लिए दोषी माना, इसलिए ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने पर भी उन्होंने अपनी गिनती म्लेच्छों में की।

मोर कर्म, मोर हाते-गलाय बान्धिया।
कु-विषय-विष्ठा-गर्ते दियाछे फेलाइया॥१९८॥

अनुवाद

साकर मल्लिक तथा दबिर खास दोनों भाइयों ने विनीत भाव से निवेदन किया कि अपने जघन्य कार्यों के फलस्वरूप हमें हाथ तथा गले बाँध कर भौतिक इन्द्रिय-भोग रूपी घृणित मल जैसे पदार्थों के गड्ढे में गिरा दिया गया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *कु-विषय-गर्त* की व्याख्या इस प्रकार की है, "इन्द्रियों के कार्यों के फलस्वरूप हम अनेक इन्द्रियतृप्ति की विधियों के शिकार होते हैं और इस तरह प्रकृति के नियमों से बँध जाते हैं।" यह बंधन *विषय* कहलाता है। जब इन्द्रियतृप्ति की विधियाँ पुण्य कार्य द्वारा सम्पन्न होती हैं तो वे *सुविषय* कहलाती हैं। *सु* का अर्थ है "अच्छा" तथा "विषय" का अर्थ है "इन्द्रिय-विषय"। जब इन्द्रियतृप्ति की विधियाँ पापमय अवस्थाओं में सम्पन्न की जाती हैं तो वे *कुविषय* कहलाती हैं। चाहे *कुविषय* हो या *सुविषय*, दोनों ही भौतिक कार्य हैं। इसीलिए उनकी तुलना विष्ठा या मल से की गई है। दूसरे शब्दों में, ऐसी वस्तुओं से बचना चाहिए। *सुविषय* तथा *कुविषय* से मुक्त होने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में अपने को लगाये। भक्ति

के कार्य भौतिक गुणों के कल्मष से मुक्त होते हैं। अतएव सुविषय तथा कुविषय के फलों से मुक्त होने के लिए कृष्णभावनामृत ग्रहण करना चाहिए। इस तरह से कल्मष से बचा जा सकता है। इसी सन्दर्भ में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड
अमृत बलिया येब खाय।
नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे
तार जन्म अधःपाते याय॥

सुविषय तथा कुविषय दोनों ही *कर्म-काण्ड* के अन्तर्गत आते हैं। एक अन्य काण्ड भी है—ज्ञान-काण्ड अर्थात् भव-बन्धन से उद्धार पाने के विचार से सुविषय तथा कुविषय के प्रभावों के बारे में दार्शनिक चिन्तन। ज्ञान-काण्ड में मनुष्य कुविषय तथा सुविषय के लक्ष्यों का परित्याग कर सकता है। किन्तु यह जीवन की पूर्णता नहीं है। पूर्णता तो ज्ञान-काण्ड तथा कर्म-काण्ड दोनों से परे है। यह भक्ति के स्तर पर होती है। यदि हम कृष्णभावनामृत में भक्ति ग्रहण नहीं करते तो हमें इसी संसार के भीतर रह कर ज्ञान-काण्ड तथा कर्म-काण्ड के प्रभावों के कारण जन्म-मृत्यु के चक्कर को सहना पड़ता है। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—

नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे
तार जन्म अधःपाते याय।

"मनुष्य नाना योनियों में फिरता है और सभी तरह का सड़ा-गला खाता है। इस प्रकार वह अपने जन्म को बिगाड़ देता है।" मल मल ही है, चाहे वह गीला हो या सूखा। इसी प्रकार भौतिक कर्म, पवित्र या अपवित्र हो सकते हैं, किन्तु भौतिक होने के कारण वे मल के तुल्य हैं। कीड़े अपने आप मल से बाहर नहीं निकल पाते। इसी प्रकार जो इस संसार से लिप्त हैं वे भौतिकतावाद से निकल कर सहसा कृष्णभावनाभावित नहीं हो जाते। उनमें लिप्तता तो रहती ही है। जैसा कि प्रह्लाद महाराज *श्रीमद्भागवत* में (७.५.३०) बतलाते हैं—

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥

"जिन लोगों ने इस जगत् में रह कर इन्द्रियतृप्ति भोगने का निश्चय कर लिया है वे कृष्णभावनाभावित नहीं हो सकते। भौतिक कर्म में लिप्त रहने के कारण वे न तो अपने गुरुजनों के उपदेशों से, न ही अपने निजी प्रयासों से या बड़े-बड़े सम्मेलनों में प्रस्ताव पारित करने से मुक्ति प्राप्त कर पाते हैं। अपनी असंयमित इन्द्रियों के कारण वे संसार के अंधेरे गर्त में गिर कर इच्छित या अनिच्छित योनि में जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ते रहते हैं।

आमा उद्धारिते बली नाहि त्रिभुवने।
पतितपावन तुमि—सबे तोमा विने॥१९९॥

अनुवाद

"तीनों लोकों में हमारा उद्धार करने में कोई भी समर्थ नहीं है। आप पतितात्माओं के एकमात्र त्राता हैं, अतएव आपके अतिरिक्त हमारा कोई दूसरा नहीं है।"

आमा उद्धारिया य़दि देखाओ निज-बल।
'पतितपावन' नाम तबे से सफल॥२००॥

अनुवाद

"यदि आप अपने दिव्य बल से हमारा उद्धार कर दें तो निश्चय ही आपका नाम 'पतितपावन' कहलायेगा।"

सत्ये एक बात कहों, शुन, दयामय।
मो-विनु दयार पात्र जगते ना हय॥२०१॥

अनुवाद

"मैं एक बात कह रहा हूँ जो बिल्कुल सत्य है। हे दयामय! इसे सुन लीजिये। तीनों संसारों में हमारे अतिरिक्त कोई दूसरा दया का पात्र नहीं है।"

मोरे दया करि' कर स्वदया सफल।
अखिल ब्रह्माण्ड देखुक तोमार दया-बल॥२०२॥

अनुवाद

"हम सर्वाधिक पतित हैं, अतएव हम पर दया करने पर आपकी दया सर्वाधिक सफल होगी। आपकी दया-शक्ति अखिल ब्रह्माण्ड-भर में प्रकट है।"

न मृषा परमार्थेव मे, शृणु विज्ञापनमेकमग्रतः।
यदि मे न दयिष्यसे तदा, दयनीयस्तव नाथ दुर्लभः॥२०३॥

अनुवाद

"हे प्रभु! हमें अपने समक्ष एक बात कहने दें। यह रंचमात्र भी झूठ नहीं है अपितु सार्थक है। यह है—यदि आप हम पर दयालु नहीं होंगे तो आपकी कृपा के लिए हमसे बढ़ कर पात्र ढूँढ पाना अत्यधिक कठिन होगा।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री यामुनाचार्य कृत *स्तोत्र-रत्न* (४७) से है।

आपने अयोग्य देखि' मने पाञ क्षोभ।
तथापि तोमार गुणे उपजय लोभ॥२०४॥

अनुवाद

"आपकी कृपा के लिए उपयुक्त पात्र न होने से हम अत्यधिक क्षुब्ध हैं। फिर भी चूँकि हमने आपके दिव्य गुणों के विषय में सुन रखा है, अतएव हम आपके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हैं।"

वामन यैछे चाँद धरिते चाहे करे।
तैछे एइ वाञ्छा मोर उठये अन्तरे॥२०५॥

अनुवाद

"निस्सन्देह हम उस बौने के तुल्य हैं जो चाँद को पकड़ना चाहता है। यद्यपि हम सर्वथा अयोग्य हैं किन्तु हमारे मनों में आपकी कृपा प्राप्त करने की इच्छा उठ रही है।"

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिंकरः
प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥२०६॥

अनुवाद

"आपकी निरन्तर सेवा करने से मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्ण शान्ति प्राप्त करता है। वह समय कब आयेगा जब मैं आपका नित्य दास बनूँगा और ऐसा योग्य स्वामी पाकर सदैव प्रसन्नता का अनुभव करूँगा।"

तात्पर्य

सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह घोषणा की है कि प्रत्येक जीव भगवान् का नित्य दास है। यही समस्त जीवों की वैधानिक स्थिति है। जिस प्रकार एक कुत्ता या नौकर दक्ष मालिक पाकर या एक बालक सक्षम पिता पाकर पूर्ण सन्तुष्ट रहता है, उसी तरह जीव भगवान् की सेवा में निरत रह कर पूर्णतया सन्तुष्ट रहता है। इससे वह जान लेता है कि उसका सक्षम स्वामी उसे सभी प्रकार के संकटों से उबार लेगा। जब तक जीव को भगवान् का निश्चित संरक्षण प्राप्त नहीं हो जाता तब तक वह चिन्तित रहता है। यह चिन्तापूर्ण जीवन ही भौतिक जीवन कहलाता है। पूर्ण तुष्ट एवं चिन्तामुक्त होने के लिए मनुष्य को भगवान् की निरन्तर सेवा करनी होगी। यह श्लोक भी श्री यमुनाचार्य कृत *स्तोत्र रत्न* से (४३) है।

शुनि महाप्रभु कहे—शुन दबिर खास।
तुमि दुइ भाइ—मोर पुरातन दास॥२०७॥

अनुवाद

दबिर खास तथा साकर मल्लिक की प्रार्थना सुनने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे दबिर खास! तुम दोनों भाई मेरे पुराने दास हो।"

आजि हैते दुँहार नाम 'रूप' 'सनातन'।
दैन्य छाड़, तोमार दैन्ये फाटे मोर मन॥२०८॥

अनुवाद

"हे साकर मल्लिक! आज से तुम्हारे नाम श्रील रूप तथा श्रील सनातन होंगे। अब अपनी दीनता छोड़ो, क्योंकि तुम लोगों को इतना दीन देख कर मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

तात्पर्य

वास्तव में यह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दबिर खास तथा साकर मल्लिक की दीक्षा है। वे भगवान् के पास परम दीन बन कर आये और महाप्रभु ने उन्हें प्राचीन दासों या नित्य दासों की तरह स्वीकार कर लिया। उन्होंने उनके नाम भी बदल दिये। इससे यह समझना चाहिए कि दीक्षा के बाद शिष्य को अपना नाम बदलना आवश्यक होता है।

शंखचक्राद्यूर्ध्वपुण्ड्रधारणाद्यात्मलक्षणम् ।
तन्नामकरणं चैव वैष्णवत्वमिहोच्यते॥

"दीक्षा के बाद शिष्य का नाम बदल दिया जाना चाहिए जिससे सूचित हो कि वह भगवान् विष्णु का दास है। शिष्य को तुरन्त ही अपने शरीर पर, विशेषतया मस्तक पर तिलक (*उर्ध्वपुण्ड्र*) लगाना चाहिए। ये दिव्य चिह्न हैं ये पूर्ण वैष्णव के लक्षण हैं।" यह श्लोक *पद्मपुराण* के *उत्तर खण्ड* से है। सहजिया सम्प्रदाय का सदस्य अपना नाम नहीं बदलता, अतएव उसे गौड़ीय वैष्णव के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति दीक्षा के बाद अपना नाम नहीं बदलता तो समझ लीजिये कि वह अपनी देहात्म बुद्धि में ही बना रहेगा।

दैन्यपत्री लिखि' मोरे पाठाले बार बार।
सेइ पत्रीद्वारा जानि तोमार व्यवहार॥२०९॥

अनुवाद

"तुमने मेरे पास अपनी दीनता जताने वाले अनेक पत्र लिखे हैं। मैं उन पत्रों से तुम्हारे व्यवहार को समझ गया हूँ।

तोमार हृदय़ आमि जानि पत्रीद्वारे।
तोमा शिखाइते श्लोक पाठाइल तोमारे।।२१०।।

अनुवाद

"मैं तुम्हारे पत्रों से ही तुम्हारे हृदय को जान गया हूँ। इसीलिए तुम्हें शिक्षा देने के लिए मैंने तुम्हारे पास एक श्लोक लिख भेजा था, जो इस प्रकार है।

परव्यसनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्मसु।
तदेवास्वादयत्यन्तर्नवसंगरसायनम् ।।२११।।

अनुवाद

"यदि कोई स्त्री अपने पति को छोड़ कर किसी अन्य पुरुष से अनुरक्त रहती है तो वह अपने घरेलू कामों में अत्यधिक व्यस्त दिखेगी। किन्तु अपने अन्तर में वह अपने जारपति (उपपति) के सान्निध्य की अनुभूति का सदैव आस्वादन करती रहती है।"

गौड़-निकट आसिते नाहि मोर प्रयोजन।
तोमा-दूँहा देखिते मोर इहाँ आगमन।।२१२।।

अनुवाद

"वास्तव में बंगाल आने में मेरा कोई अन्य प्रयोजन नहीं था। मैं तुम दोनों भाइयों को देखने के लिए ही आया हूँ।

एइ मोर मनेर कथा केह नाहि जाने।
सबे बले, केने आइला रामकेलि-ग्रामे।।२१३।।

अनुवाद

"हर कोई पूछता है कि मैं इस रामकेलि ग्राम क्यों आया हूँ। कोई भी मेरे मनोभावों को नहीं जानता।

भाल हैल, दुइ भाइ आइला मोर स्थाने।
घरे य़ाह, भय किछु ना करिह मने।।२१४।।

अनुवाद

"अच्छा हुआ कि तुम दोनों भाई मुझे देखने आये हो। अब तुम घर

जा सकते हो। अब किसी बात से डरो नहीं।

जन्मे जन्मे तुमि दुइ—किङ्कर आमार।
अचिराते कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥२१५॥

अनुवाद

"तुम दोनों जन्म-जन्मान्तर मेरे नित्य दास रहे हो। मुझे विश्वास है कि कृष्ण जल्द ही तुम्हारा उद्धार करेंगे।"

एइ बलि दुँहार शिरे धरिल दुइ हाते।
दुइ भाइ प्रभु-पद निल निज माथे॥२१६॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उन दोनों के सिरों पर अपने दोनों हाथ रख दिये। और उन दोनों ने तुरन्त ही अपने-अपने मस्तक महाप्रभु के चरणकमलों पर टेक दिये।

दोँहा आलिङ्गिया प्रभु बलिल भक्तगणे।
सबे कृपा करि' उद्धारइ दुइ जने॥२१७॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने उन दोनों को अपने आलिंगन में ले लिया और वहाँ पर उपस्थित सारे भक्तों से अनुरोध किया कि उन पर दयालु हों और उनका उद्धार करें।

दुइ जने प्रभुर कृपा देखि' भक्तगणे।
'हरि' 'हरि' बले सबे आनन्दित-मने॥२१८॥

अनुवाद

जब समस्त भक्तों ने दोनों भाइयों पर महाप्रभु की कृपा देखी तो वे अत्यन्त पुलकित हुए और "हरि" "हरि" कह कर भगवन्नाम का कीर्तन करने लगे।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पेछे केबा*—वैष्णव की सेवा किये बिना किसी का उद्धार सम्भव नहीं। गुरु शिष्य का उद्धार

करने के लिए उसे दीक्षा देता है और यदि शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करता है तथा अन्य वैष्णवों का अपमान नहीं करता तो उसका मार्ग निष्कंटक हो जाता है। फलस्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णवों से आग्रह किया कि वे रूप तथा सनातन दोनों भाइयों पर कृपा करें जिन्हें महाप्रभु ने उसी समय दीक्षा दी थी। जब कोई वैष्णव देखता है कि दूसरे वैष्णव को भगवान् की कृपा प्राप्त हो रही है तो वह अत्यधिक सुखी होता है। वैष्णव ईर्ष्या नहीं करते। यदि भगवान् किसी वैष्णव को संसार-भर में भगवन्नाम वितरित करने की शक्ति प्रदान करते हैं तो अन्य वैष्णव, यदि वे सच्चे वैष्णव हैं तो अत्यधिक हर्षित होते हैं। जो व्यक्ति वैष्णव की सफलता से ईर्ष्या करता है वह निश्चित रूप से वैष्णव नहीं होता, अपितु सामान्य संसारी व्यक्ति होता है। भला कोई वैष्णव दूसरे वैष्णव से, जो भगवन्नाम को फैलाने में सफल हुआ हो, ईर्ष्या क्यों करेगा? असली वैष्णव उस दूसरे वैष्णव से अत्यन्त प्रसन्न रहता है जो भगवान् की कृपा प्रदान करता है। वैष्णव-वेश में संसारी व्यक्ति का सम्मान नहीं करना चाहिए, अपितु उसका बहिष्कार (उपेक्षा) करना चाहिए। ऐसा शास्त्रों का आदेश है। *उपेक्षा* का अर्थ है "परवाह न करना"। ईर्ष्यालु व्यक्ति की उपेक्षा की जानी चाहिए। प्रचारक का कर्तव्य है कि वह भगवान् से प्रेम करे, वैष्णवों से मैत्री स्थापित करे, अबोध पर कृपा करे और जो ईर्ष्यालु हैं उनकी उपेक्षा या वहिष्कार करे। इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में वैष्णवों के वेश में न जाने कितने ऐसे ईर्ष्यालु व्यक्ति हैं। इनकी पूरी तरह उपेक्षा की जानी चाहिए। ऐसे व्यक्ति की सेवा करने की आवश्यकता नहीं जो वैष्णव का वेश बनाये हो। जब नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*छाड़िया वैष्णव सेवा निस्तार पेछे केबा*—तो वे वास्तविक वैष्णव की ओर इंगित करते हैं, वैष्णव वेशधारी ईर्ष्यालु व्यक्ति को नहीं।

नित्यानन्द, हरिदास, श्रीवास, गदाधर।
मुकुन्द, जगदानन्द, मुरारि, वक्रेश्वर॥२१९॥

अनुवाद

महाप्रभु के सभी वैष्णव संगी वहाँ उपस्थित थे, जिनमें नित्यानन्द, हरिदास ठाकुर, श्रीवास ठाकुर, गदाधर पंडित, मुकुन्द, जगन्नाथ, मुरारि तथा वक्रेश्वर सम्मिलित थे।

सबार चरणे धरि, पड़े दुइ भाइ।
सबे बले,—धन्य तुमि, पाइल गोसाञि॥२२०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार रूप तथा सनातन दोनों भाइयों ने तुरन्त ही इन वैष्णवों के चरणकमलों का स्पर्श किया। वे सभी परम प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनों भाइयों को महाप्रभु की कृपा प्राप्त होने पर बधाई दी।

तात्पर्य

यह व्यवहार असली वैष्णवों का सूचक है। जब उन्होंने देखा कि रूप तथा सनातन को भगवान् की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो वे सब इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने दोनों भाइयों को बधाई दी। ईर्ष्यालु व्यक्ति वैष्णव के वेश में भी अन्य वैष्णव द्वारा प्रभु की कृपा प्राप्त करने में सफल होने पर तनिक भी प्रसन्न नहीं होता। दुर्भाग्यवश इस कलियुग में वैष्णव-वेश में ऐसे संसारी पुरुषों की कमी नहीं है और श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने ऐसे व्यक्तियों को कलि का शिष्य कहा है। वे इन्हें *कलि-चेला* कहते हैं। वे सूचित करते हैं कि एक छद्म वैष्णव होता है जो अपनी नाक पर तिलक लगाता है और गले में *कुन्ति गुरिया* (कण्ठी) पहनता है। ऐसा छद्म वैष्णव धन तथा स्त्रियों की संगति करता है और सफल वैष्णवों से ईर्ष्या करता है। उसका एकमात्र धंधा होता है वैष्णव-वेश में धन कमाना। भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि ऐसा छद्म वैष्णव वैष्णव नहीं होता, अपितु *कलि-चेला* होता है। कलि का शिष्य (कलि-चेला) किसी उच्च न्यायालय के निर्णय से आचार्य नहीं बन सकता। वैष्णव आचार्य तेजस्वी होता है, उसे किसी उच्च न्यायालय के निर्णय की आवश्यकता नहीं पड़ती। बनावटी आचार्य भले ही उच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा किसी वैष्णव को परास्त करने का प्रयत्न करे किन्तु भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि वह मात्र कलि-चेला होता है।

सबा-पाश आज्ञा मागि' चलन-समय।
प्रभु-पदे कहे किछु करिया विनय॥२२१॥

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे वैष्णवों से आज्ञा लेकर दोनों भाइयों ने विदा लेते समय महाप्रभु के चरणकमलों पर कुछ निवेदन किया।

इहाँ हैते चल, प्रभु, इहाँ नाहि काय।
यद्यपि तोमारे भक्ति करे गौड़राज॥२२२॥

अनुवाद

उन्होंने कहा, "हे प्रभु! यद्यपि बंगाल का राजा नवाब हुसेन साहा आपका अत्यन्त सम्मान करता है किन्तु अब आपका यहाँ कोई काम नहीं है। कृपया इस स्थान से चले जायँ।"

तथापि य़वन जाति, ना करि प्रतीति।
तीर्थय़ात्राय एत संघट्ट भाल नहे रीति॥२२३॥

अनुवाद

"यद्यपि राजा आपके प्रति आदर-भाव रखता है तो भी वह यवन जाति का है और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हमारे विचार से वृन्दावन की तीर्थयात्रा के समय अपने साथ इतनी बड़ी भीड़ बटोरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

य़ार सङ्गे चले एइ लोक लक्षकोटि।
वृन्दावन-य़ात्रार ए नहे परिपाटी॥२२४॥

अनुवाद

"हे प्रभु! आप अपने साथ हजारों लोगों को लेकर वृन्दावन जा रहे हैं, किन्तु तीर्थयात्रा करने की यह उपयुक्त विधि नहीं है।"

तात्पर्य

कभी-कभी व्यापारिक दृष्टि से लोगों की टोली विभिन्न तीर्थस्थलों को ले जाई जाती है और उनसे धन एकत्र किया जाता है। यह बहुत ही लाभप्रद व्यापार हैं, किन्तु रूप तथा सनातन गोस्वामियों ने श्री चैतन्य महाप्रभु की उपस्थिति में यह मत व्यक्त किया कि भीड़ के साथ तीर्थयात्रा ठीक नहीं होती। वास्तव में जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन गये थे तो वे अकेले थे और अपने भक्तों के अनुरोध पर एक नौकर ले गये थे। वे कभी-भी

व्यापारिक उद्देश्य से भीड़ लेकर वृन्दावन नहीं गये।

यद्यपि वस्तुतः प्रभुर किछु नाहि भय।
तथापि लौकिकलीला, लोक चेष्टामय॥२२५॥

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् थे, अतएव उन्हें तनिक भी भय नहीं था, फिर भी उन्होंने अपने नवदीक्षित भक्तों को यह शिक्षा देने के लिए कि किस प्रकार कर्म करना चाहिए एक मनुष्य की भाँति आचरण किया।

एत बलि' चरण वन्दि' गेला दुइजन।
प्रभुर सेइ ग्राम हैते चलिते हैल मन॥२२६॥

अनुवाद

यह कह कर दोनों भाइयों ने महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की और अपने घर लौट आये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने उस ग्राम को छोड़ने का विचार किया।

प्राते चलि' आइला प्रभु 'कानाइर नाटशाला'।
देखिल सकल ताहाँ कृष्णचरित्र-लीला॥२२७॥

अनुवाद

प्रातःकाल महाप्रभु वहाँ से चल पड़े और कानाइ नाटशाला नामक स्थान गये। वहाँ उन्होंने भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाएँ देखीं।

तात्पर्य

उन दिनों बंगाल में कई स्थान कानाइ नाटशाला नाम से विख्यात थे, जहाँ कृष्ण की लीलाओं के चित्र रखे रहते थे। लोग वहाँ जाकर उन्हें देखते थे। इसे *कृष्णचरित्र-लीला* कहा जाता है। बंगाल में आज भी अनेक स्थान हैं जिन्हें *हरिसभा* कहते हैं, और जिससे सूचित होता है कि इस स्थान पर वहाँ के लोग एकत्र होकर हरे-कृष्ण-महामंत्र का कीर्तन करते हैं और भगवान् कृष्ण की लीलाओं पर विचार-विमर्श करते हैं। *कानाइ* शब्द का अर्थ है "कृष्ण का" और *नाटशाला* का अर्थ है वह स्थान जहाँ लीलाओं का प्रदर्शन होता है। अतएव वे स्थान जिन्हें आजकल *हरिसभा* कहा जाता

है, हो सकता है पहले *कानाइ नाटशाला* कहलाते रहे हों।

सेइ रात्रे प्रभु ताहाँ चिन्ते मने मन।
सङ्गे संघट्ट भाल नहे, कैल सनातन।।२२८।।

अनुवाद

उस रात को महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी के इस प्रस्ताव पर विचार किया कि मुझे इतने लोगों को साथ लेकर वृन्दावन नहीं जाना चाहिए।

मथुरा य़ाइब आमि एत लोक सङ्गे।
किछु सुख ना पाइब, हबे रसभङ्गे।।२२९।।

अनुवाद

महाप्रभु ने सोचा, "यदि मैं इतनी बड़ी भीड़ के साथ मथुरा जाऊँगा तो बहुत अच्छा नहीं होगा क्योंकि इससे वातावरण अशान्त हो जायेगा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इसकी पुष्टि करते हैं कि इतने सारे लोगों के साथ वृन्दावन जैसे पवित्र स्थान की यात्रा करना केवल शान्ति भंग करना होगा। इस तरह से पवित्र स्थानों में जाने से उन्हें इच्छित सुख प्राप्त नहीं हो सकेगा।

एकाकी य़ाइब, किम्वा सङ्गे एक जन।
तबे से शोभये वृन्दावनेरे गमन।।२३०।।

अनुवाद

महाप्रभु इस नतीजे पर पहुँचे कि उन्हें अकेले ही वृन्दावन जाना चाहिए या अधिक से अधिक एक व्यक्ति को अपने संगी के रूप में ले जाना चाहिए। इस तरह से वृन्दावन जाना अत्यन्त सुखद होगा।

एत चिन्ति प्रातःकाले गङ्गास्नान करि'।
'नीलाचले य़ाब' बलि' चलिला गौरहरि।।२३१।।

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए महाप्रभु ने प्रातःकाल गंगा नदी में स्नान किया और यह कह कर चल पड़े कि "मैं नीलाचल जाऊँगा।"

एइ मत चलि' चलि' आइला शान्तिपुरे।
दिन पाँच-सात रहिला आचार्येर घरे॥२३२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु चलते-चलते शान्तिपुर पहुँचे और अद्वैत आचार्य के घर में पाँच-सात दिन रहे।

शचीदेवी आनि' ताँरे कैल नमस्कार।
सात दिन ताँर ठाञि भिक्षा-व्यवहार॥२३३॥

अनुवाद

इस अवसर का लाभ उठाकर श्री अद्वैत आचार्य प्रभु ने माता शचीदेवी को बुला भेजा और वे उनके घर में महाप्रभु का भोजन बनाने के लिए सात दिन तक रहीं।

ताँर आज्ञा लञा पुनः करिला गमने।
विनय करिया विदाय़ दिल भक्तगणे॥२३४॥

अनुवाद

अपनी माता से आज्ञा लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये। जब भक्तगण उनके साथ चलने लगे तो उन्होंने उनसे विनती की कि वे वहीं रहें और सबों से उन्होंने विदा ली।

जना दुइ सङ्गे आमि य़ाब नीलाचले।
आमारे मिलिबा आसि' रथयात्रा-काले॥२३५॥

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे भक्तों से लौट जाने के लिए कहा, किन्तु उनमें से दो लोगों को उन्होंने अपने साथ आने दिया। उन्होंने सारे भक्तों से प्रार्थना की कि वे रथयात्रा के अवसर पर जगन्नाथ पुरी आकर उनसे भेंट करें।

बलभद्र भट्टाचार्य, आर पण्डित दामोदर।
दुइजन-सङ्गे प्रभु आइला नीलाचल॥२३६॥

अनुवाद

बलभद्र भट्टाचार्य तथा पण्डित दामोदर दो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ साथ जगन्नाथ पुरी (नीलाचल) तक गये।

दिन कत ताहाँ रहि' चलिला वृन्दावन।
लुकाञा चलिला रात्रे, ना जाने कोन जन॥२३७॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में कुछ दिन रह कर महाप्रभु रात में चुपके से वृन्दावन के लिए चल पड़े। उन्होंने यह बिना किसी के जाने ही किया।

बलभद्र भट्टाचार्य रहे मात्र सङ्गे।
झारिखंड-पथे काशी आइला महारङ्गे॥२३८॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी से वृन्दावन के लिए रवाना हुए तो उनके साथ केवल बलभद्र भट्टाचार्य थे। इस तरह वे मार्ग में झारखण्ड होते हुए बड़ी प्रसन्नतापूर्वक काशी पहुँचे।

दिन चार काशीते रहि' गेला वृन्दावन।
मथुरा देखिया देखे द्वादश कानन॥२३९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बनारस में केवल चार दिन रहे और फिर वृन्दावन के लिए चल पड़े। मथुरा नगरी देखने के बाद उन्होंने बारह वन देखे।

तात्पर्य

आज भी जो लोग वृन्दावन जाते हैं वे सामान्यतया उन बारह स्थानों को देखते हैं जो द्वादश वन कहलाते हैं। वे मथुरा से चलते हैं जहाँ काम्य-वन है। वहाँ से वे ताल-वन, तमाल-वन, मधु-वन, कुसुम-वन, भाण्डीर-वन, बिल्व-वन, भद्र-वन, खदिर-वन, लोह-वन, कुमुद-वन तथा गोकुल महावन जाते हैं।

लीलास्थल देखि' प्रेमे हइला अस्थिर।
बलभद्र कैल ताँरे मथुरार बाहिर॥२४०॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण की लीला के बारहो स्थल देख चुके तो भावावेश के कारण वे अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे। उन्हें बलभद्र भट्टाचार्य किसी तरह मथुरा से बाहर ले गये।

गङ्गातीर-पथे लञा प्रयागे आइला।
श्रीरूप आसि' प्रभुके तथाइ मिलिला॥२४१॥

अनुवाद

मथुरा छोड़ने के बाद महाप्रभु गंगा नदी के किनारे-किनारे चलने लगे और अंत में प्रयाग (इलाहबाद) नामक पवित्र स्थान आ पहुँचे। यहीं पर श्रील रूप गोस्वामी आकर महाप्रभु से मिले।

दण्डवत् करि' रूप भूमिते पड़िला।
परम आनन्दे प्रभु आलिङ्गन दिला॥२४२॥

अनुवाद

प्रयाग में रूप गोस्वामी ने आकर महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया और महाप्रभु ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उनका आलिंगन किया।

श्रीरूपे शिक्षा कराइ' पाठाइल वृन्दावन।
आपने करिला वाराणसी गमन॥२४३॥

अनुवाद

प्रयाग में दशाश्वमेध-घाट पर श्रील रूप गोस्वामी को शिक्षा देने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें वृन्दावन जाने का आदेश दिया। तत्पश्चात् महाप्रभु वाराणसी लौट आये।

काशीते प्रभुके आसि' मिलिला सनातन।
दुइ मास रहि' ताँरे कराइला शिक्षण॥२४४॥

अनुवाद

जब महाप्रभु वाराणसी आ गये तो वहाँ उनसे सनातन गोस्वामी मिले। महाप्रभु वहाँ दो मास तक रहे और सनातन गोस्वामी को पूरी तरह से शिक्षा दी।

मथुरा पाठाइला ताँरे दिया भक्तिबल।
संन्यासीरे कृपा करि' गेला नीलाचल॥२४५॥

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को पूरी तरह शिक्षित करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें भक्ति-बल देकर मथुरा के लिए भेज दिया। बनारस में उन्होंने मायावादी संन्यासियों पर भी कृपा की। तत्पश्चात् वे नीलाचल (जगन्नाथ पुरी) लौट गये।

छय वत्सर ऐछे प्रभु करिला विलास।
कभु इति-उति, कभु क्षेत्रवास॥२४६॥

अनुवाद

महाप्रभु छः वर्षों तक सारे भारत में भ्रमण करते रहे। वे अपनी दिव्य लीलाएँ सम्पन्न करते हुए कभी इधर-उधर रहते और कभी वे जगन्नाथ पुरी में रहते।

आनन्दे भक्त-सङ्गे सदा कीर्तन-विलास।
जगन्नाथ-दरशन, प्रेमेर विलास॥२४७॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में रहते हुए महाप्रभु संकीर्तन करते और भाव-विभोर होकर जगन्नाथ मन्दिर जाने में अपना समय बिताते रहे।

मध्यलीलार कैलूँ एइ सूत्र-विवरण।
अन्त्यलीलार सूत्र एबे शुन, भक्तगण॥२४८॥

अनुवाद

इस प्रकार मैंने महाप्रभु की मध्यलीला का सारांश दिया है। हे भक्तो! अब महाप्रभु की अन्तिम लीला का सारांश सुनो जो अन्त्यलीला कहलाता है।

वृन्दावन हैते यदि नीलाचल आइला।
आठार वर्ष ताहाँ वास, काहाँ नाहि गेला॥२४९॥

अनुवाद

जब महाप्रभु वृन्दावन से लौट कर जगन्नाथ पुरी आ गये तो वे वहीं पर बने रहे और अठारह वर्षों तक कहीं नहीं गये।

प्रतिवर्ष आइसेन ताहाँ गौड़ेर भक्तगण।
चारि मास रहे प्रभुर सङ्गे सम्मिलन॥२५०॥

अनुवाद

इन अठारह वर्षों तक बंगाल के सारे भक्त प्रतिवर्ष उनसे जगन्नाथ पुरी में आकर मिलते रहे। वे वहाँ लगातार चार महीने रहते और प्रभु की संगति का आनन्द लूटते थे।

निरन्तर नृत्यगीत कीर्तन-विलास।
आचण्डाले प्रेमभक्ति करिला प्रकाश॥२५१॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु निरन्तर कीर्तन और नृत्य करते रहे। इस तरह वे संकीर्तन-लीला का आनन्द भोगते। वे सबों पर, यहाँ तक कि सबसे नीच व्यक्ति पर भी अपनी अहैतुकी कृपा अर्थात् शुद्ध भगवत्प्रेम प्रकट करते।

पण्डित-गोसाञि कैल नीलाचल वास।
वक्रेश्वर, दामोदर, शङ्कर, हरिदास॥२५२॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में चैतन्य महाप्रभु के साथ रहने वालों में पण्डित गोसाईं तथा अन्य भक्त यथा, वक्रेश्वर, दामोदर, शंकर तथा हरिदास ठाकुर थे।

जगदानन्द, भगवान्, गोविन्द, काशीश्वर।
परमानन्द पुरी, आर स्वरूप दामोदर॥२५३॥

अनुवाद

महाप्रभु के साथ जो अन्य भक्त रह रहे थे उनके नाम थे—जगदानन्द, भगवान्, गोविन्द, काशीश्वर, परमानन्द पुरी तथा स्वरूप दामोदर।

क्षेत्रवासी रामानन्द राय प्रभृति।
प्रभुसङ्गे ग्रेइ सब कैल नित्यस्थिति॥२५४॥

अनुवाद

श्री रामानन्द राय तथा जगन्नाथ पुरी के निवासी अन्य भक्तगण भी महाप्रभु के साथ स्थायी रूप से रहते थे।

अद्वैत, नित्यानन्द, मुकुन्द, श्रीवास।
विद्यानिधि, वासुदेव, मुरारि,—ग्रत दास॥२५५॥
प्रतिवर्षे आइसे सङ्गे रहे चारिमास।
ताँ-सबा लञा प्रभुर विविध विलास॥२५६॥

अनुवाद

जो अन्य भक्त जगन्नाथ पुरी आया करते थे और लगातार चार मास तक महाप्रभु के साथ रहा करते थे, वे थे अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द, मुकुन्द, श्रीवास, विद्यानिधि, वासुदेव तथा मुरारि। महाप्रभु इन सबों के साथ विविध लीलाओं का आनन्द लूटते थे।

हरिदासेर सिद्धिप्राप्ति,—अद्‌भुत से सब।
आपनि महाप्रभु ग्राँर कैल महोत्सव॥२५७॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी में हरिदास ठाकुर का देहान्त हो गया। यह घटना अत्यन्त अद्‌भुत थी, क्योंकि स्वयं महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर का अन्तिम संस्कार किया।

तबे रूप-गोसाञिर पुनरागमन।
ताँहार हृदये कैल प्रभु शक्ति-सञ्चारण॥२५८॥

अनुवाद

श्रील रूप गोस्वामी जगन्नाथ पुरी में महाप्रभु से पुनः मिले। महाप्रभु ने उनके हृदय में सारी दिव्य शक्ति भर दी।

तबे छोट हरिदासे प्रभु कैल दण्ड।
दामोदर-पण्डित कैल प्रभुके वाक्य-दण्ड॥२५९॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने छोटे हरिदास को दण्ड दिया और दामोदर पण्डित ने महाप्रभु को ताड़ना दी।

तात्पर्य

वास्तव में दामोदर पण्डित महाप्रभु के नित्य दास थे। वे महाप्रभु को कभी भी दण्ड नहीं दे सकते थे, न ही उनकी ऐसी इच्छा थी, किन्तु उन्होंने महाप्रभु को चेतावनी अवश्य दी जिससे अन्य लोग उनकी निन्दा न कर सकें। हाँ, उन्हें यह जान लेना चाहिए था कि महाप्रभु भगवान् हैं और कुछ भी करने के लिए मुक्त हैं। उन्हें आगाह करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अतएव दामोदर पण्डित की इस कार्यवाही को उच्च भक्तगण अच्छा नहीं मानते।

तबे सनातन-गासाञिर पुनरागमन।
ज्येष्ठमासे प्रभु ताँरे कैल परीक्षण॥२६०॥

अनुवाद

तत्पश्चात् सनातन गोस्वामी पुनः चैतन्य महाप्रभु से मिले और महाप्रभु ने ज्येष्ठ मास की झुलसाने वाली गर्मी में उनकी परीक्षा ली।

तुष्ट हञा प्रभु ताँरे पाठाइला वृन्दावन।
अद्वैतेर हस्ते प्रभुर अद्भुत भोजन॥२६१॥

अनुवाद

प्रसन्न होकर महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को फिर से वृन्दावन भेज दिया। इसके बाद वे श्री अद्वैत आचार्य के हाथों का बना हुआ अद्भुत भोजन करते रहे।

नित्यानन्द-सङ्गे युक्ति करिया निभृते।
ताँरे पाठाइला गौड़े प्रेम प्रचारिते॥२६२॥

अनुवाद

सनातन गोस्वामी को वृन्दावन वापस भेजने के बाद महाप्रभु ने श्री नित्यानन्द प्रभु से एकान्त में परामर्श किया। तत्पश्चात् उन्होंने उन्हें ईश्वर-प्रेम का प्रचार करने के लिए बंगाल भेज दिया।

तबे त'वल्लभ भट्ट प्रभुरे मिलिला।
कृष्णनामेर अर्थ प्रभु ताँहारे कहिला॥२६३॥

अनुवाद

इसके तुरन्त बाद वल्लभ भट्ट महाप्रभु से जगन्नाथ पुरी में मिले और महाप्रभु ने उन्हें कृष्ण-नाम का सार बतलाया।

तात्पर्य

ये वल्लभ भट्ट उस वैष्णव सम्प्रदाय के अग्रणी हैं जो पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। *चैतन्य-चरितामृत* की *अन्त्यलीला* के सातवें अध्याय में और मध्यलीला के उन्नीसवें अध्याय में वल्लभ आचार्य के विषय में लम्बी कहानी दी हुई है। चैतन्य महाप्रभु प्रयाग के उस पार आडैल ग्राम में वल्लभ आचार्य के घर गये थे। बाद में वल्लभ भट्ट *श्रीमद्भागवत* पर लिखी गई अपनी टीका की व्याख्या करने चैतन्य महाप्रभु के पास जगन्नाथ पुरी गये। उन्हें अपनी कृतियों पर बड़ा गर्व था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें यह समझाया कि वैष्णव को विनीत होना चाहिए और अपने पूर्ववर्तियों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। महाप्रभु ने उनसे कहा कि श्रीधर स्वामी से बड़ा बनने का उनका गर्व वैष्णव के लिए शोभनीय नहीं है।

प्रद्युम्न मिश्रेर प्रभु रामानन्द-स्थाने।
कृष्णकथा शुनाइल कहि' ताँर गुणे॥२६४॥

अनुवाद

रामानन्द राय के दिव्य गुण बतलाकर श्री महाप्रभु ने प्रद्युम्न मिश्र को रामानन्द राय के घर भेजा और प्रद्युम्न मिश्र ने उनसे कृष्ण-कथा सुनी।

गोपीनाथ पट्टनायक—रामानन्द भ्राता।
राजा मारिते छिल, प्रभु हैल त्राता॥२६५॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु ने रामानन्द के छोटे भाई गोपीनाथ पट्टनायक को राजा द्वारा दिये जाने वाले मृत्यु-दण्ड से बचाया।

रामचन्द्रपुरी-भये भिक्षा घाटाइला।
वैष्णवेर दुःख देखि' अर्धेक राखिला॥२६६॥

अनुवाद

रामचन्द्र पुरी ने महाप्रभु के भोजन की आलोचना की अतएव उन्होंने अपना भोजन घटा दिया। किन्तु जब सारे वैष्णव दुखी हुए तो महाप्रभु ने उसे बढ़ाकर पहले का आधा कर दिया।

ब्रह्माण्ड-भितरे हय चोद्द भुवन।
चोद्दभुवन वैसे य़त जीवगण।।२६७।।

अनुवाद

इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत चौदह भुवन (लोक) हैं और सारे जीव इन्हीं लोकों में रहते हैं।

मनुष्येर वेश धरि' य़ात्रिकेर छले।
प्रभुर दर्शन करे आसि' नीलाचले।।२६८।।

अनुवाद

वे सभी यात्रियों का वेश धारण कर श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने जगन्नाथ पुरी आया करते थे।

एकदिन श्रीवासादि य़त भक्तगण।
महाप्रभुर गुण गाञा करेन कीर्तन।।२६९।।

अनुवाद

एक दिन श्रीवास ठाकुर इत्यादि सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों का कीर्तन कर रहे थे।

शुनि' भक्तगणे कहे सक्रोध वचने।
कृष्ण-नाम-गुण छाड़ि, कि कर कीर्तन।।२७०।।

अनुवाद

अपने दिव्य गुणों का कीर्तन श्री चैतन्य महाप्रभु को पसन्द नहीं आया। अतएव उन सबों को प्रताड़ित किया मानो नाराज हों। उन्होंने पूछा, "यह कैसा कीर्तन है? क्या तुम लोग भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन छोड़ रहे हो?"

उद्धत्य करिते हैल सबाकार मन।
स्वतन्त्र हइया सबे नाशा'बे भुवन॥२७१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहते हुए सबों को प्रताड़ित किया कि तुम लोग स्वतन्त्र बन कर अपना औद्धत्य मत दिखलाओ और इस तरह सारे संसार का विनाश मत करो।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे अनुयायियों को स्वतन्त्र या उद्धत बनने से मना किया। दुर्भाग्यवश, श्री चैतन्य महाप्रभु के तिरोभाव के बाद अनेक *अपसम्प्रदायों* ने ऐसी अनेक विधियाँ खोज निकालीं जो आचार्यों द्वारा समर्थित नहीं थीं। भक्तिविनोद ठाकुर ने उनके नाम इस प्रकार बतलाये हैं—आउल, बाउल, कार्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, सानि सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त, जात-गोसाईं, अतिवाडी, चूड़ाधारी तथा गौरांग नागरी।

आउल सम्प्रदाय, बाउल सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायों ने आचार्यों के पदचिह्नों पर न चल कर भगवान् चैतन्य के दर्शन को समझने के लिए अपनी अपनी विधियाँ खोज निकालीं। यहाँ पर स्वयं चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि ऐसे प्रयासों से उनके सम्प्रदाय की आत्मा विनष्ट हो जायेगी।

दशदिके कोटि कोटि लोक हेन काले।
'जय कृष्णचैतन्य' बलि' करे कोलाहले॥२७२॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु नाराज थे और अपने भक्तों को प्रताड़ित कर रहे थे तो बाहर से हजारों लोग उच्च स्वर में चिल्ला उठे, "श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो।"

जय जय महाप्रभु—व्रजेन्द्रकुमार।
जगत् तारिते प्रभु, तोमार अवतार॥२७३॥

अनुवाद

सारे लोग जोर-जोर से बोलने लगे, "महाराज नन्द के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। आप सारे जगत का उद्धार करने के लिए प्रकट

हुए हैं।''

बहुदूर हैते आइनु हञा बड़ आर्त।
दरशन दिया प्रभु करह कृतार्थ॥२७४॥

अनुवाद

''हे प्रभु! हम बहुत दुखी हैं। हम बहुत दूर से चल कर आपका दर्शन करने आये हैं। कृपया दयालु होकर हमें कृतार्थ करें।''

शुनिया लोकेर दैन्य द्रविला हृदय।
बाहिरे आसि' दरशन दिला दयामय॥२७५॥

अनुवाद

जब महाप्रभु ने लोगों की विनीत याचना सुनी तो उनका हृदय द्रवित हो उठा। अत्यन्त दयालु होने के कारण वे तुरन्त बाहर निकल आये और उन सबों को दर्शन दिया।

बाहु तुलि' बले प्रभु बल' 'हरि' 'हरि'।
उठिल—श्रीहरिध्वनि चतुर्दिक भरि'॥२७६॥

अनुवाद

अपना हाथ उठाकर महाप्रभु ने सबों से भगवान् हरि के नाम का उच्च स्वर से कीर्तन करने के लिए कहा। तुरन्त ही वहाँ हलचल मच गई और ''हरि'' की ध्वनि से सारी दिशाएँ भर गईं।

प्रभु देखि' प्रेमे लोक आनन्दित मन।
प्रभुके ईश्वर बलि' करये स्तवन॥२७७॥

अनुवाद

महाप्रभु को देख कर सारे लोग प्रेमवश आनन्दित हो उठे। सबों ने महाप्रभु को परमेश्वर मान कर उनकी स्तुति की।

स्तव सुनि' प्रभुके कहेन श्रीनिवास।
घरे गुप्त हओ, केने बाहिरे प्रकाश॥२७८॥

अनुवाद

जब लोग इस प्रकार से महाप्रभु की स्तुति कर रहे थे तो श्रीनिवास

आचार्य ने महाप्रभु से व्यंग्यपूर्वक कहा, "आप घर में गुप्त रहना चाहते हैं। किन्तु आपने अपने को बाहर क्यों प्रकट कर रखा है?"

के शिखाल एइ लोके, कहे कोन् वात।
इहा-सबार मुख ढाक दिया निज हात॥२७९॥

अनुवाद

श्रीनिवास आचार्य कहते गये, "इन लोगों को किसने सिखाया है? ये सब क्या कह रहे हैं? अब आप ही इनके मुँह अपने हाथ से बन्द कर सकते हैं।"

सूर्य यैछे उदय करि' चाहे लुकाइते।
बूझिते ना पारि तैछे तोमार चरिते॥२८०॥

अनुवाद

"ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो उदय होने के बाद सूर्य अपने को छिपाना चाहता है। हम आपके चरित्र (व्यवहार) के ऐसे गुणों को समझ नहीं पाते।"

प्रभु कहेन,—श्रीनिवास, छाड़ विडम्बना।
सबे मेलि' कर मोर कतेक लाञ्छना॥२८१॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे श्रीनिवास! तुम यह मजाक बन्द करो। तुम सब लोग इस प्रकार से मुझे लाञ्छित करने के लिए मिल गये हो।"

एत बलि' लोके करि' शुभदृष्टि दान।
अभ्यन्तरे गेला, लोकेर पूर्ण हैल काम॥२८२॥

अनुवाद

इस प्रकार कह कर लोगों पर अपनी शुभ दृष्टि डाल कर महाप्रभु अपने कमरे में चले गये। इस तरह लोगों की इच्छाएँ पूरी हुईं।

रघुनाथ-दास नित्यानन्द-पाशे गेला।
चिड़ा-दधि-महोत्सव ताहाँइ करिला॥२८३॥

अनुवाद

इसके बाद रघुनाथ दास श्री नित्यानन्द प्रभु के पास पहुँचे और उनके आदेशानुसार चिउड़ा तथा दही से युक्त प्रसाद का वितरण किया।

तात्पर्य

बंगाल में एक विशेष व्यंजन होता है जिसमें चिउड़ा को दही तथा कभी-कभी सन्देश और आम के साथ मिला देते हैं। यह अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन है, जिसे अर्चा-विग्रह को अर्पित किया जाता है और फिर जन-समूह में वितरित कर दिया जाता है। रघुनाथ दास गोस्वामी उस समय गृहस्थ थे। वे जाकर नित्यानन्द प्रभु से मिले और उनके आदेशानुसार दही-चिउड़ा प्रसाद का महोत्सव सम्पन्न किया।

ताँर आज्ञा लञा गेला प्रभुर चरणे।
प्रभु ताँरे समर्पिला स्वरूपेर स्थाने॥२८४॥

अनुवाद

बाद में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी ने अपना घरबार छोड़ दिया और जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण ले ली। उस समय महाप्रभु ने उन्हें अंगीकार किया और आध्यात्मिक प्रकाश पाने के लिए स्वरूप-दामोदर के संरक्षण में रख दिया।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी *विलाप कुसुमांजलि* में (५) लिखते हैं—

यो मां दुस्तरगेहनिर्जलमहाकूपाद् अपारक्लमात्
सद्यः सान्द्र-दयाम्बुधिः प्रकृतितः स्वैरीकृपारज्जुभिः
उद्धृत्यात्मसरोजनिन्दिचरणप्रान्तं प्रपाद्य स्वयं
श्रीदामोदरसाच्चकार तमहं चैतन्यचन्द्रं भजे।

"मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपनी अपार करुणा से मुझे उस गृहस्थ जीवन से बचा लिया जो जलरहित अंधे कुएँ के तुल्य है और मुझे स्वरूप-दामोदर गोस्वामी के संरक्षण रूपी दिव्य आनन्द के सागर में लाकर रख दिया है।"

ब्रह्मानन्द-भारतीर घुचाइल चर्माम्बर।
एइ मत लीला कैल हय वत्सर॥२८५॥

अनुवाद

तत्पश्चात श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्रह्मानन्द भारती की मृगचर्म पहनने की आदत छुड़ाई। इस प्रकार महाप्रभु छः वर्षों तक निरन्तर अपनी लीलाएँ करते हुए अनेक प्रकार के दिव्य आनन्द का अनुभव करते रहे।

एइ त' कहिल मध्यलीलार सूत्रगण।
शेष द्वादश वत्सरेर शुन विवरण॥२८६॥

अनुवाद

मैंने मध्यलीला का सारांश कह दिया। अब कृपा करके महाप्रभु द्वारा अन्तिम बारह वर्षों में सम्पन्न लीलाओं को सुनें।

तात्पर्य

इस प्रकार श्रील कविराज गोस्वामी श्री व्यासदेव के चरणचिह्नों पर चलते हुए *चैतन्य-चरितामृत* की लीलाओं का सारांश प्रस्तुत करते चलते हैं। उन्होंने प्रत्येक स्कंध के अन्त में ऐसा ही विवरण दिया है। *आदिलीला* में उन्होंने महाप्रभु के बाल्यकाल की पाँच अवस्थाओं की लीलाओं की रूपरेखा दी है और उसका विस्तार श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के लिए छोड़ दिया है। अब इस अध्याय में उन लीलाओं का सारांश दिया जा रहा है, जो महाप्रभु के जीवन के अन्तिम काल में सम्पन्न हुईं। ये *मध्यलीला* तथा *अन्त्यलीला* में वर्णित हैं। शेष लीलाएँ *मध्यलीला* के द्वितीय अध्याय में सूत्र-रूप में वर्णित हैं। इस तरह लेखक ने क्रमशः *मध्यलीला* तथा *अन्त्यलीला* का वर्णन कर दिया है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥२८७॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की स्तुति करते हुए एवं सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा रखते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों

पर चलता हुआ श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के प्रथम अध्याय का, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की परवर्ती लीलाओं का संक्षेपण है, भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय २

श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य भावाभिव्यक्ति

मध्यलीला के इस द्वितीय अध्याय में महाप्रभु के जीवन के अन्तिम बारह वर्षों में सम्पन्न लीलाओं का वर्णन हुआ है। इस तरह इसमें *अन्त्यलीला* की भी कुछ लीलाएँ वर्णित हुई हैं। प्रणेता ने ऐसा क्यों किया, यह समझ पाना सामान्य व्यक्ति के लिए अत्यधिक कठिन है। प्रणेता को उम्मीद है कि भगवान् की लीलाएँ पढ़ने से मनुष्य में क्रमशः कृष्ण के प्रति उसका सुप्त प्रेम जाग्रत होगा। वास्तव में *चैतन्य-चरितामृत* के प्रणेता ने इसे अपनी वृद्धावस्था में लिखा था। इसीलिए *अन्त्यलीला* के भी सूत्र इस द्वितीय अध्याय में वर्णित हैं। श्रील कविराज गोस्वामी ने भक्ति के मामले में स्वरूप दामोदर के मत को प्रामाणिक माना है। इसके अतिरिक्त स्वरूप दामोदर की टिप्पणियों से भी, जिन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी ने कण्ठस्थ कर लिया था, *चैतन्य-चरितामृत* के लेखन में सहायता मिली है। स्वरूप दामोदर गोस्वामी के तिरोधान के बाद रघुनाथ दास गोस्वामी वृंदावन देखने गये। उस समय वे इस ग्रंथ के प्रणेता श्रील कविराज गोस्वामी रघुनाथ दास गोस्वामी से मिले, जिनकी कृपा से उन्हें भी सारी सूचनाएँ कण्ठस्थ हो गईं। इस तरह से प्रणेता ने इस दिव्य ग्रंथ *श्रीचैतन्य-चरितामृत* को पूरा किया।

विच्छेदेऽस्मिन् प्रभोरन्त्यलीलाश्रुत्वानुवर्णने।
गौरस्य कृष्णविच्छेदप्रलापाद्यसुवर्ण्यते॥१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्त्यलीला के सारांश को प्रस्तुत करते हुए इस अध्याय में मैं उनके दिव्य भाव का वर्णन करूँगा जो कृष्ण से उनके विछोह के कारण उन्माद जैसा प्रतीत होता है।

तात्पर्य

इस द्वितीय अध्याय में महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने के बाद के कार्यकलापों का वर्णन हुआ है। इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु के *गौर* अर्थात् गोरा रंग होने का विशेष उल्लेख है। कृष्ण सामान्यतया अपने श्याम रंग के कारण प्रसिद्ध हैं, किन्तु जब वे गोपियों के विचार में डूबे रहते हैं तो कृष्ण भी गोरे हो जाते हैं, क्योंकि गोपियाँ गौर वर्ण की हैं। चैतन्य महाप्रभु को उसी तरह कृष्ण का विरह विशेष रूप से सताता था जिस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका से वियुक्त होकर निराश हो जाता है। इस तरह के भावों का जो श्री चैतन्य द्वारा उनकी अन्तिम लीलाओं के बारह वर्षों में व्यक्त हुए, संक्षिप्त वर्णन *मध्यलीला* के इस द्वितीय अध्याय में हुआ है।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द ॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र की जय हो और महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

शेष ये रहिल प्रभुर द्वादश वत्सर।
कृष्णेर वियोग-स्फूर्ति हय निरन्तर ॥३॥

अनुवाद

अपने अन्तिम बारह वर्षों में, श्री चैतन्य महाप्रभु में कृष्ण के विरह-भाव के सारे लक्षण प्रकट होते रहे।

श्रीराधिकार चेष्टा ग्रेन उद्धव-दर्शने।
एइमत दशा प्रभुर हय रात्रि-दिने ॥४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की मानसिक दशा रात-दिन वैसी ही रहती थी जैसी कि राधारानी की थी, जब उद्धव गोपियों को देखने वृन्दावन आये थे।

निरन्तर हय प्रभुर विरह-उन्माद।
भ्रममय चेष्टा सदा, प्रलापमय वाद ॥५॥

अनुवाद

महाप्रभु लगातार विरहजन्य उन्माद का भाव प्रदर्शित करते रहे। उनके सारे कार्यकलाप विस्मृति पर आधारित होते और उनकी बातचीत सदैव उन्माद पर आश्रित रहती।

रोमकूपे रक्तोद्‌गम, दन्त सब हाले।
क्षणे अङ्ग क्षीण हय, क्षणे अङ्ग फूले॥६॥

अनुवाद

उनके शरीर के रोमछिद्रों से रक्त निकलता और उनके सारे दाँत हिलने लगते। कभी उनका सारा शरीर दुबला हो जाता और दूसरे ही क्षण वही स्थूल हो जाता।

गम्भीरा-भितरे रात्रे नाहि निद्रा-लव।
भित्ते मुख-शिर घषे, क्षत हय सब॥७॥

अनुवाद

दालान के आगे का छोटा कमरा गम्भीरा कहलाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु उसी कमरे में रुका करते थे, किन्तु वे एक क्षण-भर भी नहीं सोते थे। वे रात-भर अपना मुँह और सिर जमीन पर रगड़ते रहते थे। उनके सारे मुखमण्डल में तमाम घाव हो गये थे।

तिन द्वारे कपाट, प्रभु ग्रायेन बाहिरे।
कभु, सिंहद्वारे पड़े, कभु सिन्धुनीरे॥८॥

अनुवाद

यद्यपि घर के तीनों दरवाजे सदैव बन्द रहते थे, किन्तु फिर भी महाप्रभु बाहर चले जाते थे। कभी वे जगन्नाथ मन्दिर के द्वार अर्थात् सिंहद्वार पर पाये जाते थे और कभी वे समुद्र में पेट के बल पड़े दिखते थे।

चटक पर्वत देखि' 'गोवर्धन' भ्रमे।
धाञा चले आर्तनाद करिया क्रन्दने॥९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु बालू के टीलों को गोवर्धन पर्वत समझ कर तेजी

से दौड़ते, विलाप करते और जोर-जोर से चिल्लाते थे।

तात्पर्य

समुद्र की हवाओं से कभी-कभी बालू के टीले बन जाते हैं। ऐसे टीले *चटक पर्वत* कहलाते हैं। इन टीलों को देख कर महाप्रभु को गोवर्धन पर्वत का भ्रम होता था। अतएव कभी-कभी वे इन टीलों की ओर तेजी से दौड़ते और जोर से चिल्लाते, जिससे राधारानी के मनोभाव व्यक्त होते। इस तरह चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा उनकी लीलाओं में मग्न रहते थे। उनकी इस मनोदशा के कारण वृन्दावन तथा गोवर्धन पर्वत का वातावरण बन जाता और इस तरह वे विरह तथा मिलन का दिव्य आनन्द लूटते रहते।

उपवनोद्यान देखि' वृन्दावन ज्ञान।
ताहाँ याइ' नाचे, गाये, क्षणे मूर्च्छा या' न॥१०॥

अनुवाद

कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु को नगर के छोटे छोटे पार्कों से वृन्दावन का भ्रम हो जाता। कभी वे वहाँ जाते, नाचते और कीर्तन करते और कभी-कभी आध्यात्मिक भाव में अचेत हो जाते।

काहाँ नाहि शुनि ग्रेइ भावेर विकार।
सेइ भाव हय प्रभुर शरीरे प्रचार॥११॥

अनुवाद

दिव्य भावों के कारण शरीर में जो अद्वितीय परिवर्तन होते थे, वे केवल महाप्रभु में ही सम्भव थे क्योंकि उनके शरीर में सारे परिवर्तन (विकार) प्रकट होते थे।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु जैसे उच्च कोटि के ग्रंथ में शरीर के जिन भावमय-परिवर्तनों का वर्णन हुआ है वे इस भौतिक जगत में नहीं देखे जाते। किन्तु ये लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भलीभाँति विद्यमान थे। ये लक्षण *महाभाव* के सूचक हैं। कभीं-कभी *सहजिये* कृत्रिम रूप से इन लक्षणों का अनुकरण करते हैं। किन्तु अनुभवी भक्त उनको *तिरस्कृत* कर देते हैं। इस ग्रंथ का प्रणेता यह स्वीकार करता है कि ये लक्षण एकमात्र श्री चैतन्य महाप्रभु के

ही शरीर में पाये जाते थे।

हस्तपदेर सन्धि सब वितस्ति-प्रमाणे।
सन्धि छाड़ि' भिन्न हये, चर्म रहे स्थाने॥१२॥

अनुवाद

कभी-कभी उनके हाथों तथा पैरों के जोड़ आठ इंच (एक बित्ता) हट जाते थे और ऊपर से केवल चमड़ी से जुड़े रहते थे।

हस्त, पद, शिर, सब शरीर-भितरे।
प्रविष्ट हय—कूर्मरूप देखिये प्रभुरे॥१३॥

अनुवाद

कभी कभी श्री चैतन्य महाप्रभु के हाथ, पैर तथा सिर उनके शरीर के भीतर उसी तरह घुस जाते जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को भीतर समेट लेता है।

एइ मत अद्भुत-भाव शरीरे प्रकाश।
मनेते शून्यता, वाक्ये हाहा-हुताश॥१४॥

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु अद्भुत भावपूर्ण लक्षण (भाव) प्रदर्शित करते थे। उनका मस्तिष्क शून्य प्रतीत होता और उनके शब्दों में निराशा तथा हताशा प्रकट होती थी।

काहाँ मोर प्राणनाथ मुरलीवदन।
काहाँ करों काहाँ पाञ व्रजेन्द्रनन्दन॥१५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य अपने मन के भाव इस प्रकार प्रकट करते थे, "मुरलीवादक मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? अब मैं क्या करूँ? मैं महाराज नन्द के बेटे को ढूँढने कहाँ जाऊँ?"

काहारे कहिब, केबा जाने मोर दुःख।
व्रजेन्द्रनन्दन विनु फाटे मोर बुक॥१६॥

अनुवाद

"मैं किससे कहूँ? मेरी निराशा को कौन समझ सकेगा? नन्द महाराज के बेटे के बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है।"

एइमत विलाप करे विह्वल अन्तर।
रायेर नाटक-श्लोक पड़े निरन्तर॥१७॥

अनुवाद

इस प्रकार कृष्ण के विरह में श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी विह्वलता प्रकट करते और विलाप करते रहते। ऐसे अवसरों पर वे रामानन्द राय के नाटक, *जगन्नाथ-वल्लभ-नाटक*, से श्लोक पढ़ा करते थे।

प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति हरिर्नायं न च प्रेम वा
स्थानास्थानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः।
अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलं नो जीवनं वाश्रवं
द्वित्रान्येव दिनानि यौवनमिदं हाहा विधे का गतिः॥१८॥

अनुवाद

[श्रीमती राधारानी विलाप किया करती थीं] "हमारा कृष्ण इस पर कोई ध्यान नहीं देता कि हमने प्रेमालाप के दौरान न जाने कितनी चोटें सही हैं। वास्तव में प्रेम हमारा दुरुपयोग करता है, क्योंकि वह यह नहीं जानता कि कहाँ प्रहार किया जाय और कहाँ नहीं। यहाँ तक कि कामदेव भी हमारी दुर्बल अवस्था से परिचित नहीं है। मैं किसी से क्या कहूँ? कोई दूसरे की कठिनाइयों को नहीं समझ सकता। हमारा जीवन हमारे वश में नहीं रहा, क्योंकि यौवन तो दो-तीन दिन रहेगा और शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा। ऐसी अवस्था में हे विधाता! हमारी गति क्या होगी?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री रामानन्दरायकृत *जगन्नाथ-वल्लभ नाटक* (३.९) से है।

उपजिल प्रेमाङ्कुर, भाङ्गिल ये दुःख-पूर
कृष्ण ताहा नाहि करे पान।

बाहिरे नागरराज, भितरे शठेर काज,
परनारी वधे सावधान॥१९॥

अनुवाद

[कृष्ण के विरह में दुखी श्रीमती राधारानी ने इस प्रकार कहा] "ओह! मैं अपने दुख के बारे में क्या कहूँ? कृष्ण से मिलने के बाद ही प्रेम का अंकुर फूटा, किन्तु उनसे विलग होने पर मुझे इतना बड़ा धक्का लगा कि वह व्याधि जैसा जाने का नाम नहीं ले रहा। इस व्याधि का एकमात्र वैद्य स्वयं कृष्ण है, किन्तु वह भक्ति की इस अंकुरित लता की कोई परवाह नहीं कर रहा। मैं कृष्ण के व्यवहार के बारे में क्या कहूँ? बाहर से यह सलोना तरुण प्रेमी है, किन्तु भीतर से महा ठग है, वह अन्यों की पत्नियों को मारने में बड़ा पटु है।"

सखि हे, ना बूझिये विधिर विधान।
सुख लागि' कैलूँ प्रीत, हैल दुःख विपरीत,
एबे य़ाय, ना रहे परान॥२०॥

अनुवाद

[कृष्ण से प्रेम करने के परिणामों के विषय में श्रीमती राधा विलाप करती हैं] "हे सखि! मैं विधाता के विधान को नहीं समझ पा रही। मैंने तो सुख के लिए कृष्ण से प्रेम किया था, लेकिन परिणाम विपरीत निकला। मैं अब दुख के सागर में हूँ। हो सकता है कि मैं मरने वाली होऊँ, क्योंकि मेरी जीवनी-शक्ति चुक गई है। ऐसी है मेरी मानसिक दशा।"

कुटिल प्रेमा अगेयान, नाहि जाने स्थानास्थान
भाल-मन्द नारे विचारिते।
क्रूर शठेर गुण-डोरे, हाते-गले बान्धि' मोरे
राखियाछे, नारि' उकाशिते॥२१॥

अनुवाद

"प्रेम-व्यापार प्रकृति से कुटिल होते हैं। उनमें पर्याप्त ज्ञान नहीं होता, न ही वे इसका विचार करते हैं कि स्थान उपयुक्त है या नहीं। न

ही वे परिणामों की परवाह करते हैं। क्रूर कृष्ण ने अपने सद्‌गुणों की डोरी से मेरी गर्दन तथा मेरे हाथ बाँध दिये हैं और अब मैं चैन पाने में असमर्थ हूँ।''

ये मदन तनुहीन, परद्रोहे परवीण
पाँच बाण सन्धे अनुक्षण।
अबलार शरीरे, विन्धि' कैल जरजरे
दुःख देय, ना लय जीवन॥२२॥

अनुवाद

''मेरे प्रेम-व्यापार में मदन नाम का व्यक्ति है। उसके गुण इस प्रकार हैं—उसके कोई स्थूल शरीर नहीं है, किन्तु वह अन्यों को पीड़ा देने में बहुत ही प्रवीण है। उसके पास पाँच बाण हैं, जिन्हें वह अपने धनुष में चढ़ाकर निर्दोष स्त्रियों के शरीर में सन्धान करता है। इस प्रकार ये स्त्रियाँ जर्जर हो जाती हैं। अच्छा तो यह होता कि वह बिना हिचक के मेरा प्राण ले लेता, किन्तु ऐसा न करता। वह मुझे केवल पीड़ा देता है।''

अन्येर ये दुःख मने, अन्ये ताहा नाहि जाने,
सत्य एइ शास्त्रेर विचारे।
अन्य जन काहाँ लिखि, ना जानये प्राणसखी,
ग्राते कहे धैर्य धरिबारे॥२३॥

अनुवाद

''शास्त्रों में कहा गया है कि एक मनुष्य दूसरे के मन के दुख को नहीं जान सकता। अतएव मैं अपनी ललिता तथा अपनी अन्य प्रिय सखियों के बारे में क्या कह सकती हूँ? न ही वे मेरे अन्तर के दुख को समझ सकती हैं। वे बारम्बार यही कह कर मुझे सान्त्वना देती हैं ''सखी! धैर्य धरो।''

'कृष्ण—कृपा-पारावार, कभु करिबेन अङ्गीकार',
सखि, तोर ए व्यर्थ वचन।

जीवेर जीवन चञ्चल, य़ेन पद्मपत्रेर जल,
तत दिन जीवे कोन् जन॥२४॥

अनुवाद

"मैं कहती हूँ, "हे सखियो! तुम मुझे यह कह कर धैर्य धरने को कहती हो कि कृष्ण कृपासिन्धु हैं और एक न एक दिन मुझे स्वीकार कर लेंगे। किन्तु मैं बतला दूँ कि मुझे इससे सान्त्वना नहीं मिल सकेगी। जीव का जीवन क्षणभंगुर है। यह कमल के फूल पर पड़े जल के समान है। कृष्ण की कृपा की आशा करके भला इतने दिन कौन जीवित रहेगा?"

शत वत्सर पर्य़न्त, जीवेर जीवन अन्त,
एइ वाक्य कह ना विचारि'।
नारीर य़ौवन-धन, चारे कृष्ण करे मन,
से य़ौवन—दिन दुइचारि॥२५॥

अनुवाद

"मनुष्य सौ वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता। तुम्हें यह भी विचार करना होगा कि स्त्री का यौवन, जो कृष्ण का एकमात्र आकर्षण है, कुछ ही दिनों तक रहता है।"

अग्नि यैछे निज-धाम, देखाइया अभिराम,
पतङ्गीरे आकर्षिया मारे।
कृष्ण ऐछे निज-गुण, देखाइया हरे मन
पाछे दुःख-समुद्रेते डारे॥२६॥

अनुवाद

"यदि तुम यह कहती हो कि कृष्ण सद्‌गुणों के सागर हैं, अतएव कभी न कभी दयालु होंगे तो मुझे इतना ही कहना है कि वे उस अग्नि के समान हैं जो अपनी चकाचौंध से पतंगों को आकृष्ट करती है और उन्हें मार डालती है। कृष्ण के गुण ऐसे हैं। वे अपने दिव्य गुण दिखलाकर हमारे मनों को आकृष्ट करते हैं और फिर हमसे विलग होकर हमें दुख के सागर में डुबो देते हैं।"

एतेक विलाप करि', विषादे श्रीगौरहरि,
उघाड़िया दुःखेर कपाट।
भावेर तरङ्ग-बले, नानारूपे मन चले,
आर एक श्लोक कैल पाठ॥२७॥

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु विषाद के महासागर में विलाप करते और अपने दुख के कपाटों को खोल देते थे। भाव की तरंग के वशीभूत होकर उनका मन दिव्य रसों में विचरण करता और इस तरह वे दूसरा श्लोक पढ़ते (जो निम्नवत् है)।

श्रीकृष्णरूपादिनिषेवणं विना
व्यर्थानि मेऽहान्यखिलेन्द्रियान्यलम्।
पाषाणशुष्केन्धनभारकान्यहो
विभर्मि वा तानि कथं हतत्रपः॥२८॥

अनुवाद

"हे सखियो! यदि मैं श्रीकृष्ण के दिव्य रूप, गुणों तथा लीलाओं की सेवा नहीं करती तो मेरे दिन तथा मेरी सारी इन्द्रियाँ व्यर्थ हो जायेंगी। अब मैं पत्थर के खण्डों तथा सूखे काठ जैसी अपनी इन्द्रियों का भार व्यर्थ ही ढो रही हूँ। मैं नहीं जानती कि निर्लज्ज बन कर कब तक इसी तरह ढोती रहूँगी।"

वंशीगानामृत-धाम, लावण्यामृत-जन्मस्थान,
ये ना देखे से चाँद वदन।
से नयने किबा काज, पड़ूक तार मुण्डे वाज,
से नयन रहे कि कारण॥२९॥

अनुवाद

"उन आँखों से क्या लाभ जिनसे कृष्ण के उस चन्द्र जैसे मुख को न निहारा जाय जो सारी सुन्दरता की खान है और उनकी वंशी के अमृततुल्य गीतों का उत्स है? अरे! उसके सिर पर वज्रपात हो जाय। उसे ऐसी आँखें मिली ही क्यों?"

तात्पर्य

कृष्ण का चन्द्रमा जैसा मुख अमृततुल्य गीतों का उत्स है और उनकी वंशी का आवास है। यही उनकी शारीरिक सुन्दरता का भी मूल कारण है। यदि गोपियों की आँखें कृष्ण के ऐसे सुन्दर मुखड़े को नहीं देखतीं तो इससे अच्छा यही होगा कि उन पर वज्रपात हो जाय। गोपियों के लिए कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का दर्शन करना अरुचिकर एवं घृणास्पद है। गोपियाँ कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को देख कर कभी भी प्रसन्न नहीं होतीं। उनकी आँखों के लिए एकमात्र सान्त्वना कृष्ण का चन्द्रमा जैसा सुन्दर मुखड़ा है, वही समस्त इन्द्रियों के लिए आराध्य है। जब वे कृष्ण के सुन्दर मुख को नहीं देखतीं तो सब कुछ शून्य दिखता है और उनकी इच्छा होती है कि उन पर वज्रपात हो जाय। कृष्ण के सौन्दर्य से विलग होने पर उन्हें अपनी आँखों को बनाये रखने का कोई औचित्य नहीं दिखता।

सखि हे, शुन, मोर हत विधिबल।
मोर वपु-चित्त-मन, सकल इन्द्रियगण,
कृष्ण विनु सकल विफल॥३०॥

अनुवाद

"हे सखियो! सुनो न! विधाता द्वारा प्रदत्त मेरी सारी शक्ति जाती रही है। कृष्ण के बिना मेरा शरीर, मेरी चेतना तथा मन तथा उसी के साथ मेरी सारी इन्द्रियाँ व्यर्थ हो चुकी हैं।

कृष्णेर मधुर वाणी, अमृतेर तरङ्गिणी,
तार प्रवेश नाहि ग्रे श्रवणे।
काणाकड़ि-छिद्र सम, जानिह से श्रवण,
तार जन्म हैल अकारणे॥३१॥

अनुवाद

"कृष्ण की कथाएँ अमृत की तरंगों जैसी हैं। यदि ऐसा अमृत किसी के कानों में प्रविष्ट नहीं करता तो वे कान क्षतविक्षत शंख के समान हैं। ऐसे कान का जन्म ही निष्प्रयोजन होता है।

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर *श्रीमद्भागवत* से (२.३.१७-२४) निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं—

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीता उत्तमश्लोकवार्तया॥

तरवः किं न जीवन्ति भास्त्राः किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामे पशवोऽपरे॥

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्ण पथोपेतो जातु नाम गजाग्रजः॥

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सुता न चोपगायत्युरुगाय गाथाः॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम्।
श्वावौ करौ नो कुरुते सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकंकणौवा॥

बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ॥

जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलषेत यस्तु।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वासञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम्॥

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनाम ध्येयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

"सूर्य अपने उदय तथा अस्त द्वारा हर एक की आयु को घटाता है, वह उन्हें ही छोड़ता है जो सर्वमंगलकारी भगवान् की कथाओं के कहने में अपना समय बिताते हैं। क्या वृक्ष जीवित नहीं रहते? क्या लुहार की धौंकनी श्वास नहीं लेती? क्या हमारे चारों ओर सारे पशु भोजन नहीं करते, कि वीर्यस्खलन नहीं करते? जो मनुष्य कुत्तों, सुअरों, ऊँटों तथा गधों की तरह हैं वे उन लोगों की प्रशंसा करते हैं जो समस्त बुराइयों के उद्धारक भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं का कभी-भी श्रवण नहीं करते। जिसने भगवान्

के पराक्रम तथा उनके अद्भुत कर्मों के विषय में नहीं सुना है और जिसने भगवान् विषयक सुन्दर गीतों को न तो गाया है न कीर्तन किया है उसके कान मानो साँपों के बिल के समान हैं और जीभ मानो मेढ़क की जीभ है। भले ही कोई शीश पर रेशमी दुपट्टा क्यों न पहने हो, यदि वह मुक्तिदाता भगवान् के समक्ष झुकता नहीं तो उसे भारस्वरूप समझना चाहिए। हाथ भले ही चमकीले बाजूबन्दों से सुशोभित क्यों न हों, यदि वे भगवान् हरि की सेवा नहीं करते तो उन्हें मृतक पुरुष के हाथ समझना चाहिए। जो आँखें भगवान् विष्णु के स्वरूप (उनके रूप, नाम, गुण आदि) को नहीं देखतीं वे मोरपंख में बनी आँखों के समान होती हैं। जो पाँव पवित्र स्थानों को नहीं जाते (जहाँ भगवान् का स्मरण करना चाहिए) वे वृक्षों के तनों के समान हैं। जिस व्यक्ति ने कभी भी भगवान् के शुद्ध भक्त के चरणों की धूलि अपने सिर पर धारण नहीं कि, समझो कि वह शव है। जिस व्यक्ति ने भगवान् के चरणकमलों पर चढ़े तुलसी-दल की सुगन्ध का अनुभव नहीं किया, वह श्वास लेते हुए भी मृतक तुल्य है। वह हृदय इस्पात का बना हुआ है, जो भगवान् के नाम का मनोयोग के साथ कीर्तन करते रहने पर, जब भाव उठते हों, आँखें अश्रु से पूरित हो जाती हैं और रोमांच हो उठता हो, नहीं बदलता है।

कृष्णेर अधरामृत, कृष्णगुणचरित,
सुधासार-स्वाद-विनिन्दन ।
तार स्वाद ये ना जाने, जन्मिया ना मैल केने,
से रसना भेक जिह्वा सम॥३२॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के होठों का अमृत तथा उनके दिव्य गुण अमृत के सारे सार के स्वाद को तुच्छ बनाने वाले हैं। अतएव ऐसे अमृत को चखने में कोई दोष नहीं है। जो इसे नहीं चखता वह जन्मते ही मर जायेगा और उसकी जीभ मेढ़क की जीभ के समान है।"

मृगमद नीलोत्पल, मिलने ये परिमल,
येइ हरे तार गर्व-मान।

हेन कृष्ण-अङ्ग-गन्ध, य़ार नाहि से सम्बन्ध
सेइ नासा भस्त्रार समान॥३३॥

अनुवाद

"कृष्ण के शरीर की सुगन्ध कस्तूरी के साथ मिली नीले कमल के फूल की गन्ध के समान है। जिसने इसे नहीं सूँघा उसके नथुने लोहार की धौंकनी के तुल्य हैं। ऐसी मिश्रित सुगंध कृष्ण के शरीर की सुगंध के आगे फीकी पड़ जाती है।

कृष्ण-कर-पदतल, कोटिचन्द्र-सुशीतल,
तार स्पर्श य़ेन स्पर्शमणि।
तार स्पर्श नाहि य़ार, से य़ाउक् छारखार,
सेइ वपु लौह-सम जानि॥३४॥

अनुवाद

"कृष्ण के हाथ तथा पैर के तलवे इतने शीतल और सुहावने हैं कि उनकी उपमा करोडों चन्द्रमाओं के प्रकाश से ही दी जा सकती है। जिसने ऐसे हाथों तथा पैरों का स्पर्श किया है उसने सचमुच पारस पत्थर के प्रभाव का आस्वाद किया है। यदि किसी ने उन्हें नहीं छुआ तो उसका जन्म व्यर्थ है और उसका शरीर लोहे के समान है।"

करि' एत विलपन, प्रभु शचीनन्दन,
उघाड़िया हृदयेर शोक।
नैन्य-निर्वेद-विषादे, हृदयेर अवसादे
पुनरपि पड़े एक श्लोक॥३५॥

अनुवाद

इस प्रकार विलाप करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने हृदय के भीतर के शोक-कपाट खोल दिये। उन्होंने खिन्न, दीन एवं उदास होकर निराश हृदय से बारम्बार एक ही श्लोक पढ़ा।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में *दैन्य* शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है "जब दुख, भय तथा अपराध-भाव मिलते हैं तो मनुष्य अपने को धिक्कारता है।

यही धिक्कारने का भाव *दीनता* है। जब मनुष्य में ऐसी दीनता आ जाती है तो वह शरीर से निष्क्रिय प्रतीत होता है, वह क्षमा-याचना करता है और उसकी चेतना विचलित हो जाती है। उसका मन भी अशान्त हो उठता है और अन्य अनेक लक्षण दिखने लगते हैं।'' *निर्वेद* शब्द की भी व्याख्या *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में मिलती है। ''मनुष्य अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकने के कारण दुख तथा विच्छेद एवं उसी के साथ-साथ ईर्ष्या तथा पश्चाताप का अनुभव कर सकता है। इस तरह से जो निराशा उत्पन्न होती है वह *निर्वेद* कहलाती है। एक बार इस निराशा से ग्रस्त होने पर विचार, अश्रु, शारीरिक कान्ति का ह्रास, दैन्य तथा उच्छ्वास उत्पन्न होते हैं।'' *विषाद* की भी व्याख्या *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में हुई है। ''जब मनुष्य को वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाता और वह अपने अपराधों के लिए पश्चाताप करता है तो खेद की यह दशा *विषाद* कहलाती है।'' विषाद के लक्षण भी बतलाये गये हैं, ''मनुष्य अपनी मूल स्थिति प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है और पूछता रहता है कि इसे किस तरह प्राप्त किया जाय। गम्भीर विचार, दीर्घ श्वास, चिल्लाना तथा विलाप के साथ ही शरीर का रंग बदलना और जीभ का सूखना—ये लक्षण देखे जाते हैं।''

भक्तिरसामृत-सिन्धु में इस प्रकार के ३३ घातक लक्षणों का उल्लेख हुआ है। ये शब्दों से, भौहों से तथा आँखों से व्यक्त होते हैं। ये लक्षण *व्यभिचारी भाव* कहलाते हैं। यदि ये बने रहते हैं तो कभी-कभी *सञ्चारी* कहलाते हैं।

यदा यातो दैवान्मधुरिपुरसौ लोचनपथं
तदास्माकं चेतो मदनहतकेनाहृतमभूत्।
पुनर्यस्मिन्नेष क्षणमपि दृशोरेति पदवीं
विधास्यामस्तस्मिन्नखिलघटिका रत्नखचिताः॥३६॥

अनुवाद

''यदि दैववश कृष्ण का दिव्य रूप मेरी दृष्टि के सामने आता है तो मेरा हृदय धड़कने से क्षतविक्षत होकर साक्षात् आनन्द तथा कामदेव के द्वारा चुरा लिया जाता है। चूँकि मैं कृष्ण के सुन्दर रूप को जी-भरकर नहीं देख सका, अतएव जिस क्षण मैं इस रूप को दुबारा देखूँगा तो उस क्षण को मैं अनेक रत्नों से अलंकृत कर दूँगा।''

तात्पर्य

यह श्लोक रामानन्दराय-कृत *जगन्नाथ वल्लभ नाटक* से (३.११) लिया गया है। यह श्रीमती राधारानी की उक्ति है।

> य़ा काले वा स्वपने, देखिनु वंशीवदने,
> सेइ काले आइला दुइ वैरि।
> 'आनन्द' आर 'मदन', हरि' निल मोर मन,
> देखिते ना पाइनु नेत्र भरि॥३७॥

अनुवाद

"जब भी, यहाँ तक कि स्वप्न में भी जब मुझे कृष्ण के मुख तथा उनकी बाँसुरी का दर्शन करने का अवसर मिलता है तो मेरे सामने दो शत्रु प्रकट हो जाते हैं—आनन्द तथा कामदेव। चूँकि ये मेरे चित्त को चुरा लेते हैं, अतएव मैं जी-भरकर कृष्ण के मुख को नहीं देख सकता हूँ।"

> पुनः य़दि कोन क्षण, कयाय कृष्ण दरशन
> तबे सेइ घटी-क्षण-पल।
> दिया माल्यचन्दन, नाना रत्न-आभरण,
> अलंकृत करिमु सकल॥३८॥

अनुवाद

"यदि दैववश ऐसा क्षण उपस्थित होता है कि मुझे कृष्ण के फिर से दर्शन हों तो मैं उन क्षणों, घड़ियों तथा घंटों की फूल की मालाओं तथा चन्दन-लेप से पूजा करूँगा और उन्हें सभी प्रकार के रत्नों तथा आभूषणों से सजाऊँगा।"

> क्षणे बाह्य हैल मन, आगे देखे दुइ जन,
> ताँरे पुछे,—आमि ना चैतन्य?
> स्वप्नप्राय कि देखिनु, किबा आमि प्रलापिनु
> तोमरा किछु शुनियाछ दैन्य?३९॥

अनुवाद

क्षण-भर में श्री चैतन्य महाप्रभु के बाह्य चेतना आ गई और उन्होंने अपने सामने दो व्यक्तियों को देखा। उनसे पूछते हुए उन्होंने कहा, "क्या मैं सचेत हूँ? मैं कौन-सा सपना देख रहा था? मैं कौन-सा पागलपन बतिया रहा था? क्या आपने दीनता के कोई वचन सुने हैं?"

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह भाव में बोल रहे थे तो उन्होंने अपने सामने दो व्यक्तियों को देखा। एक था उनका सचिव स्वरूप दामोदर तथा दूसरा राय रामानन्द। बाह्य चेतना आने पर उन्होंने उन दोनों को देखा और यद्यपि महाप्रभु अभी भी श्रीमती राधारानी के भाव में बातें कर रहे थे किन्तु तुरन्त ही पूछने लगे कि क्या मैं ही श्री चैतन्य महाप्रभु हूँ।

शुन मोर प्राणेर बान्धव।
नाहि कृष्ण-प्रेमधन, दरिद्र मोर जीवन,
देहेन्द्रिय वृथा मोर सब॥४०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मित्रो! तुम लोग मेरे प्राण हो, अतएव मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि मेरे पास कृष्ण-प्रेम का धन नहीं है। इसलिए मेरा जीवन निर्धन है। मेरे अंग तथा मेरी इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं।

पुनः कहे—हाय, हाय, शुन, स्वरूप-रामराय,
एइ मोर हृदय-निश्चय।
शुनि, करइ विचार, हय, नय—कह सार,
एत बलि' श्लोक उच्चारय॥४१॥

अनुवाद

इसके बाद उन्होंने फिर से स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्द को निराशा-भरे शब्दों में सम्बोधित किया "हाय! मेरे मित्रो, अब तुम मेरे हृदय के निश्चय को जान सकते हो और जान लेने के बाद तुम यह निर्णय करो कि मैं सही हूँ या नहीं। तभी तुम ठीक से कह सकते हो।" तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु दूसरे श्लोक का उच्चारण करने लगे।

कइअवरहिअं पेम्मं ण हि होइ मानुसे लोए।
जइ होइ कस्स विरहे होन्तम्मि को जीअइ॥४२॥

अनुवाद

"प्रवञ्चना (कैतव) से रहित भगवत्प्रेम इस भौतिक जगत में सम्भव नहीं। यदि ऐसा प्रेम है तो उसमें विरह नहीं हो सकता, क्योंकि यदि विरह होता है तो कोई कैसे जीवित रहता है?"

तात्पर्य

यह श्लोक प्राकृत भाषा में है। इसका सही संस्कृत पाठ होगा—*कैतवरहितं प्रेम न हि भवति मानुषे लोके / यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति।*

अकैतव कृष्णप्रेम, ग़ेन जाम्बूनद-हेम,
सेइ प्रेमा नृलोके ना हय।
ग़दि हय तार ग़ोग, ना हय तबे वियोग,
वियोग हैले केह ना जीयय॥४३॥

अनुवाद

"कृष्ण का शुद्ध प्रेम जम्बू नदी से मिलने वाले सोने की भाँति है जो मानव समाज में नहीं पाया जाता। यदि यह होता तो विरह न हुआ होता। यदि विरह होता तो कोई जीवित न रहता।"

एत कहि' शचीसुत, श्लोक पड़े अद्‌भुत,
शुने दुँहे एक-मन हञा।
आपन-हृदय-काज, कहिते वासिये लाज
तबु कहि लाजबीज खाञा॥४४॥

अनुवाद

इस प्रकार कहते हुए श्रीमती शचीमाता के पुत्र ने एक दूसरा अद्‌भुत श्लोक सुनाया तथा रामानन्द राय एवं स्वरूप दामोदर ने इसे एकाग्र चित्त से सुना। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं अपने मन की बातें कहने में लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। फिर भी मैं सारी औपचारिकताओं को तोड़ कर अपने मन की बात कहूँगा। सुनो।"

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलास्याननलोकनं विना
विभर्मि यं प्राणपतङ्कान् वृथा॥४५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सुनाया, "हे मित्रो! मेरे हृदय में भगवान् के प्रति रंचमात्र भी प्रेम नहीं है। जब तुम लोग मुझे विरह में रोते देखते हो तो मैं अपने सौभाग्य का झूठा प्रदर्शन करता होता हूँ। निस्सन्देह जब मैं मुरली बजाते कृष्ण का मुखड़ा नहीं देखता तो मैं कीड़े जैसा व्यर्थ जीवन व्यतीत करता होता हूँ।"

दूरे शुद्धप्रेमगन्ध, कपट प्रेमेर बन्ध,
सेइ मोर नाहि कृष्ण-पाय।
तबे ग्रे करि क्रन्दन, स्वसौभाग्य प्रख्यापन,
करि, इहा जानिह निश्चय॥४६॥

अनुवाद

"वास्तव में मेरा कृष्ण-प्रेम बहुत ही दूर है। जो भी मैं करता हूँ वह सब झूठ है। जब मैं रोता हूँ तो मात्र अपने सौभाग्य को प्रकट करता हूँ। इसे निश्चय जानो।

ग़ाते वंशीध्वनि-सुख, ना देखिऽसे चाँद मुख,
ग़द्यपि नाहिक 'आलम्बन'।
निज-देहे करि प्रीति, केवल कामेर रीति,
प्राण-कीटेर करिये धारण॥४७॥

अनुवाद

"यद्यपि मैं बाँसुरी बजाते हुए कृष्ण का चन्द्रमा जैसा मुखड़ा नहीं देख पाता, न ही उनसे भेंट होने की कोई सम्भावना है, फिर भी मैं अपने शरीर को सँभालता हूँ। यही काम की रीति है। इस प्रकार मैं अपने कीट सदृश जीवन को धारण करता हूँ।"

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि सेव्य परमेश्वर ही परम आश्रय है। भगवान् ही परम विषयी हैं और भक्त के आश्रय हैं। विषय तथा आश्रय का एकपास होना *आलम्बन* कहलाता है। आश्रय सुनता है और विषय वंशी बजाता है। जब आश्रय चन्द्रमा जैसे मुख वाले कृष्ण को नहीं देख सकता और न उसमें उसे देखने की उत्सुकता रहती है तो यह *आलम्बनविहीन* होने का संकेत है। ऊपर से ऐसी कल्पना करने से मनुष्य की काम-वासनाओं की तुष्टि होती है और वह निरुद्देश्य जीवित रहता है।

कृष्णप्रेमा सुनिर्मल, ग्नेन शुद्धगङ्गाजल,
सेइ प्रेमा—अमृतेर सिन्धु।
निर्मल से अनुरागे, ना लुकाय अन्य दागे
शुक्लवस्त्रे ग्नैछे मसीविन्दु॥४८॥

अनुवाद

"कृष्ण-प्रेम गंगाजल के समान अत्यन्त शुद्ध है। यह प्रेम अमृत का समुद्र है। कृष्ण के प्रति यह शुद्ध अनुराग किसी ऐसे दाग को छिपाता नहीं, जो सफेद वस्त्र में स्याही के दाग जैसा लगता है।"

तात्पर्य

कृष्ण का शुद्ध प्रेम बहुत बड़े सफेद वस्त्र की भाँति है। अनुराग का अभाव इस सफेद वस्त्र पर काले दाग की तरह है। जिस प्रकार काला धब्बा सुस्पष्ट होता है उसी तरह शुद्ध भगवत्प्रेम के धरातल पर इस प्रेम का अभाव सुस्पष्ट होता है।

शुद्धप्रेम-सुखसिन्धु, पाइ तार एक विन्दु,
सेइ विन्दु जगत् डुबाय।
कहिबार ग्नोग्य नय, तथापि बाउले कय,
कहिले वा केबा पातियाय॥४९॥

अनुवाद

"कृष्ण का शुद्ध प्रेम सुख के सागर जैसा है। यदि किसी को उसकी

एक भी बूँद मिल जाय तो उस बूँद में सारा संसार डूब सकता है। यद्यपि ऐसे भगवत्प्रेम को व्यक्त करने के लिए कोई योग्य नहीं है फिर भी उन्मत्त उसे कह देगा। किन्तु उसके कहते रहने पर भी उस पर कोई विश्वास नहीं करता।''

एइ मत दिने दिने, स्वरूप-रामानन्द-सने,
निज भाव करेन विदित।
बाह्ये विषज्वाला हय, भितरे आनन्दमय,
कृष्णप्रेमार अद्भुत चरित॥५०॥

अनुवाद

इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु नित्य प्रति अपने भावों को प्रकट करते और इन भावों को स्वरूप तथा रामानन्द को दिखाते। ऊपर से तो दारुण कष्ट प्रतीत होता था, मानों किसी विषैले प्रभाव से पीड़ित हों, किन्तु अन्दर से उन्हें आनन्द की अनुभूति होती रहती। कृष्ण के दिव्य प्रेम का यही गुण है।

एइ प्रेमा-आस्वादन, तप्त-इक्षु-चर्वण,
मुख ज्वले, ना याय त्यजन।
सेइ प्रेमा याँर मने, तार विक्रम सेइ जाने,
विषामृते एकत्र मिलन॥५१॥

अनुवाद

जो ईश-प्रेम का आस्वाद पा लेता है, वह इसकी तुलना गर्म शीरे से करता है। यदि कोई गर्म शीरा पीता है तो उसका मुँह जल जाता है, किन्तु वह उसे उगलता नहीं। इसी प्रकार यदि किसी में लेश-भर भी भगवत्प्रेम होता है तो वह इसके सशक्त प्रभाव का अनुभव करता है। इसकी तुलना अमृत और विष के मिश्रण से ही की जा सकती है।

पीडाभिर्नवकालकूट-कटुतागर्वस्य निर्वासनो
निस्यन्देन मुदां सुधा-मधुरिमाहङ्कारसङ्कोचनः।

प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः ॥५२॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु बोले, "हे सुन्दरियो! यदि कोई भगवत्प्रेम या नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण का प्रेम उत्पन्न कर लेता है तो उसके हृदय में इस प्रेम के कड़ुवे तथा मीठे सभी प्रभाव प्रकट होंगे। ऐसा भगवत्प्रेम दो प्रकार से कार्य करता है। भगवत्प्रेम का विषैला प्रभाव सर्प के ताजे तथा तीक्ष्ण विष को भी मात देने वाला है। फिर भी उसी के साथ दिव्य आनन्द भी मिलता है जो अमृत के अहंकार को चूर करके उसके मान को घटाता है। दूसरे शब्दों में, कृष्ण-प्रेम इतना शक्तिशाली है कि वह सर्प के विषैले प्रभाव के साथ ही सिर पर गिरने वाले अमृत से प्राप्त सुख को भी परास्त करने वाला होता है। इसका अनुभव एक साथ दो रूपों में किया जाता है—एकसाथ विषैला तथा अमृततुल्य।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी-कृत *विदग्ध माधव* में (२.१८) पौर्णमासी की नन्दीमुखी से उक्ति के रूप में आया है।

य़े काले देखे जगन्नाथ-श्रीराम-सुभद्रा-साथ,
तबे जाने—आइलाम कुरुक्षेत्र।
सफल हैल जीवन, देखिलूँ पद्मलोचन,
जुड़ाइल तनु-मन-नेत्र ॥५३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी को श्री बलराम तथा सुभद्रा के साथ देखते तो तुरन्त सोचने लगते कि वे कुरुक्षेत्र पहुँच गये हैं जहाँ वे तीनों आये हैं। वे अपने जीवन को कृतार्थ समझते, क्योंकि उन्होंने उन कमलनयन के दर्शन किये हैं जो तन, मन तथा नेत्रों को शान्त करने वाले हैं।

गरुड़ेर सन्निधाने, रहि' करे दरशने,
से आनन्देर कि कहिब ब'ले।

गरुड़-स्तम्भेर तले, आछे एक निम्न खाले,
से खाल भरिल अश्रुजले।।५४।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु गरुड़-स्तम्भ के पास से भगवान् जगन्नाथ को देखते रहते थे। भला उस प्रेम की शक्ति के विषय में क्या कहा जा सकता है? उस गरुड़-स्तम्भ के नीचे जमीन पर एक गड्ढा था जो उनके अश्रु-जल से भर जाता था।

तात्पर्य

जगन्नाथ मन्दिर के सामने एक स्तम्भ पर गरुड़ की प्रतिमा है। यह गरुड़-स्तम्भ कहलाता है। उसी स्तम्भ के पीछे एक गड्ढा है जो महाप्रभु के अश्रुओं से भर गया था।

ताहाँ हैते घरे आसि' माटीर उपरे वसि'
नखे करे पृथिवी लिखन।
हा-हा काहाँ वृन्दावन, काहाँ गोपेन्द्रनन्दन,
काहाँ सेइ वंशीवदन।।५५।।

अनुवाद

जगन्नाथ-मन्दिर से अपने घर लौटते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु जमीन पर बैठा करते थे और अपने नाखूनों से उसे कुरेदते थे। ऐसे अवसर पर वे अत्यन्त खिन्न होकर चिल्ला उठते, "हाय, कहाँ है वृन्दावन? कहाँ है ग्वालों के राजा का पुत्र कृष्ण? वह वंशी बजाने वाला कहाँ है?"

काहाँ से त्रिभङ्गठाम, काहाँ सेइ वेणुगान,
काहाँ सेइ यमुना-पुलिन।
काहाँ से रासविलास, काहाँ नृत्यगीत-हास
काहाँ प्रभु मदनमोहन।।५६।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु यह कह कर विलाप करते, "कहाँ हैं कृष्ण जो तीन स्थानों से मुड़े हुए हैं (त्रिभंगी हैं)? कहाँ है उनकी बाँसुरी का मधुर गान? कहाँ है वह यमुना का तट? कहाँ है रास-नृत्य? कहाँ

है वह नाचना, गाना और हँसना? कहाँ है मेरा स्वामी मदनमोहन, जो कामदेव को मोहने वाला है?''

उठिल नाना भावावेग, मने हैल उद्वेग,
क्षणमात्र नारे गोङाइते।
प्रबल विरहानले, धैर्य हैल टलमले
नाना श्लोक लागिला पड़िते॥५७॥

अनुवाद

इस प्रकार विविध भावावेग उत्पन्न होते और महाप्रभु का मन चिन्ता से भर जाता। वे एक क्षण भी निश्चिन्त नहीं पाते थे। इस तरह विरह की दारुण भावनाओं के कारण उनका धैर्य छूटने लगता और वे तरह-तरह के श्लोक सुनाने लगते।

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैक सिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि॥५८॥

अनुवाद

''हे प्रभु! हे भगवन्! हे असहायों के मित्र! आप एकमात्र कृपा के सागर हैं! चूँकि मैं आपसे मिल नहीं पाया, इसलिए मेरे अशुभ दिन तथा रातें असह्य हो गई हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं अपना समय किस तरह काटूँ?''

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर-कृत *कृष्णकर्णामृत* से (४१) लिया गया है।

तोमार दर्शन-विने, अधन्य ए रात्रि-दिने,
एइ काल ना ग्राय काटन।
तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणा-सिन्धु,
कृपा करि' देह दरशन॥५९॥

अनुवाद

''ये अशुभ दिन तथा रातें कट नहीं रही हैं क्योंकि मैं आपसे मिला नहीं। समझ में नहीं आता कि यह समय कैसे काटा जाय। किन्तु

आप असहायों के मित्र और करुणा के सागर हैं। कृपा करके अपना दर्शन दें क्योंकि मैं मरणासन्न दशा में हूँ।''

उठिल भाव-चापल, मन हइल चञ्चल,
भावेर गति बुझन ना ग्राय।
अदर्शने पोड़े मन, केमने पाव दरशन,
कृष्ण-ठाञि पुछेन उपाय॥६०॥

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु की बेचैनी भावावेग के कारण जाग्रत हो गई और उनका मन विक्षुब्ध हो गया। कोई यह न समझ पाया कि यह भाव किधर जायेगा। भगवान् कृष्ण से न मिल सकने के कारण चैतन्य महाप्रभु का मन जलने लगा। वे भगवान् कृष्ण से उन तक पहुँचने का साधन पूछने लगे।

त्वच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि
मच्चापलं च तव वा मम वाधिगम्यम्।
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुभीक्षणाभ्याम्॥६१॥

अनुवाद

''हे कृष्ण! हे वंशी के बजैया! आपके बाल्यकाल की माधुरी तीनों लोकों में अद्भुत है। आप मेरी चपलता को जानते हैं और मैं आपकी। इसके विषय में अन्य कोई नहीं जानता। मैं आपका सुन्दर आकर्षक मुखड़ा एकान्त में देखना चाहता हूँ, किन्तु यह हो कैसे?''

तात्पर्य

यह श्लोक बिल्वमंगल ठाकुर-कृत *कृष्णकर्णामृत* से (३२) उद्धृत है।

तोमार माधुरी-बल, ताते मोर चापल,
एइ दुइ, तुमि आमि जानि।
काहाँ करों काहाँ ग्राङ्, काहाँ गेले तोमा त्राङ्
ताहा मोरे कह त'आपनि॥६२॥

अनुवाद

"हे कृष्ण! आपके सुन्दर रूप के बल को दो ही व्यक्ति जानते हैं—या तो आप या मैं, और मेरी अस्थिरता (चपलता) का कारण भी वही है। अब मेरी स्थिति ऐसी है कि समझ मे नहीं आता कहाँ जाऊँ। आपको कहाँ पा सकता हूँ। मैं तो आपसे ही मार्गदर्शन करने के लिए कह रहा हूँ।"

नाना-भावेर प्राबल्य, हैल सन्धि-शाबल्य,
भावे-भावे हैल महारण।
औत्सुक्य, चापल्य, दैन्य, रोषामर्ष आदि सैन्य,
प्रेमोन्माद—सबार कारण॥६३॥

अनुवाद

विभिन्न प्रकार के भावों के कारण मन में विरोधी दशाएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे विभिन्न प्रकार के भावों में डट कर युद्ध होता है। चिन्ता, क्लैव्यता, (चापल्य), दीनता, क्रोध तथा अधैर्य सैनिकों की भाँति युद्ध करते हैं और इसका कारण है प्रेमोन्माद।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में बतलाया गया है कि जब विभिन्न कारणों से एक-से भावों का मिलन होता है तो उन्हें *स्वरूप-सन्धि* कहा जाता है। जब विरोधी तत्त्व मिलते हैं तो चाहे वे एक कारण से या विभिन्न कारणों से क्यों न उदय हों, उनका संगम *भिन्न-रूप-सन्धि* कहलाता है। विभिन्न भावों का—यथा भय और सुख, शोक तथा सुख का एकसाथ मिलना *सन्धि* कहलाता है। *शाबल्य* शब्द एकसाथ कई भाव-लक्षणों यथा, गर्व, निराशा, दैन्य, स्मृति, संशय, अपमानजनित अधैर्य, भय, निराशा, धैर्य तथा उत्सुकता को सूचित करने वाला है। जब ये मिलते हैं तो इनसे उत्पन्न रगड़ ही *शाबल्य* है। इसी प्रकार जब वस्तु को देखने की इच्छा बलवती होती है या जब वाञ्छित वस्तु को देखने में विलम्ब को सहा नहीं जा सकता तो यह असमर्थता *औत्सुक्य* या उत्सुकता कहलाती है। यदि किसी में ऐसी उत्सुकता रहती है तो उसका मुँह सूखता है और वह बेचैन हो उठता है। उसे चिन्ता भी सवार हो जाती है और कठिनाई से साँस ली जाती है तथा धैर्य देखा

जाता है। इसी प्रकार प्रबल अनुरक्ति के कारण हृदय का हल्कापन तथा मन का प्रबल विक्षोभ *चापल्य* कहलाता है। निर्णय न कर सकना, शब्दों का दुरुपयोग तथा चिन्तारहित सनकी कार्यकलाप देखे जाते हैं। इस प्रकार जब कोई व्यक्ति विपक्षी पर अत्यधिक क्रुद्ध होता है तो आक्रामक तथा कुत्सित शब्दावली का प्रयोग होता है। तब वह क्रोध *रोष* कहलाता है। जब कोई अपमानित किये जाने या डाँट खाने से ऊब उठता है तो मन की इस दशा को *अमर्ष* कहते हैं। ऐसी मनोदशा में शरीर में पसीना आ जाता है (प्रस्वेद), शरीर का रंग उतर जाता है (विवर्णता), व्यक्ति को चिन्ता होती है तथा वह कोई उपाय ढूँढ़ निकालने के लिए प्रेरित होता है। आक्रोश, घृणा तथा प्रताड़ना ये प्रत्यक्ष लक्षण हैं।

मत्तगज भावगण, प्रभुर देह—इक्षुवन
गजयुद्धे वनेर दलन।
प्रभुर हैल दिव्योन्माद, तनुमनेर अवसाद,
भावावेश करे सम्बोधन॥६४॥

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर उस गन्ने के खेत के तुल्य था जिसमें भावरूपी उन्मत्त हाथी घुस गये हों। इन हाथियों में युद्ध होने से सारे खेत की ईख नष्ट हो गई। इस तरह महाप्रभु के शरीर में उन्माद का उदय हुआ और उन्हें मन तथा शरीर से निराशा का अनुभव होने लगा। इसी भाव-दशा में वे इस प्रकार बोलने लगे।

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥६५॥

अनुवाद

हे प्रभु, हे सर्वप्रिय, हे ब्रह्माण्ड के एकमात्र सखा, हे कृष्ण, हे चपल, हे करुणासिन्धु, हे स्वामी, हे मेरे भोक्ता, हे मेरे आँखों के प्यारे! हाय, आप मुझे अब फिर कब दिखेंगे?"

तात्पर्य

यह *कृष्णकर्णामृत* का ४०वाँ श्लोक है।

उन्मादेर लक्षण, कराय कृष्ण-स्फुरण,
भावावेशे उठे प्रणय मान।
सोल्लुण्ठ-वचन-रीति, मान, गर्व, व्याजस्तुति
कभु निन्दा, कभु वा सम्मान।।६६।।

अनुवाद

उन्माद के लक्षणों से कृष्ण का स्मरण करने में प्रोत्साहन मिलता था। भावावेश में प्रेम (प्रणय), मान, मीठे वचनों की चुटकी, गर्व, आदर तथा व्याजस्तुति जाग्रत होते। इस प्रकार कभी कृष्ण की निन्दा होती और कभी उनका सम्मान होता।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में *उन्माद* शब्द की व्याख्या अत्यधिक हर्ष, दुर्भाग्य तथा विरह के कारण मोहग्रस्तता के रूप में की गई है। *उन्माद* के लक्षण हैं—उन्मत्त की तरह हँसना, बकवास करना, दौड़ना, चिल्लाना तथा कभी-कभी विरोधी तरीकों से व्यवहार करना। *प्रणय* की व्याख्या इस प्रकार की गई है—जब प्रत्यक्ष सम्मान मिलने की सम्भावना हो, किन्तु उससे बचा जाय तो वह प्रेम *प्रणय* कहलाता है। श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* में *मान* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—जब प्रेमी हार्दिक प्रेम-भरे शब्दों के आदान-प्रदान से नवीन मिठास का अनुभव करता है, किन्तु टेढ़े वचनों द्वारा अपनी अनुभूति को छिपाना चाहता है तो *मान* का अनुभव होता है।

तुमि देव—क्रीडारत, भुवनेर नारी य़त,
ताहे कर अभीष्ट क्रीड़न।
तुमि मोर दयित, मोते वैसे तोमार चित,
मोर भाग्ये कैले आगमन।।६७।।

अनुवाद

"हे प्रभु! आप अपनी लीलाओं में व्यस्त हैं और अपनी इच्छानुसार ब्रह्माण्ड की सारी स्त्रियों का उपभोग करते हैं। आप मुझ पर इतने

कृपालु हैं। आप अपना ध्यान मेरी ओर दें क्योंकि भाग्यवश आप मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं।''

भुवनेर नारीगण, सबा' कर आकर्षण,
ताहाँ कर सब समाधान।
तुमि कृष्ण—चित्तहर, ऐछे कोन पामर,
तोमारे वा केबा करे मान॥६८॥

अनुवाद

''हे प्रभु! आप ब्रह्माण्ड की सारी स्त्रियों को आकृष्ट करते हैं और जब वे प्रकट होती हैं तो उन सबों के साथ मेल करते हैं। आप भगवान् कृष्ण हैं और हर एक को मोहने वाले हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा आप हैं नीच ही। भला आपका सम्मान कौन करेगा?

तोमार चपलमति, एकत्र ना हय स्थिति,
ता'ते तोमार नाहि किछु दोष।
तुमि त' करुणासिन्धु, आमार पराण-बन्धु,
तोमाय नाहि मोर कभु रोष॥६९॥

अनुवाद

''हे कृष्ण! आपका मन सदैव चंचल रहता है। आप एक स्थान पर नहीं रह सकते, किन्तु यह आपका दोष नहीं। आप वास्तव में करुणा के सागर हैं, मेरे दिली दोस्त हैं। अतएव आपसे रुष्ट होने का कोई कारण नहीं है।

तुमि नाथ—व्रजप्राण, व्रजेर कर परित्राण,
बहु कार्ये नाहि अवकाश।
तुमि आमार रमण, सुख दिते आगमन,
ए तोमार वैदग्ध्य विलास॥७०॥

अनुवाद

''हे नाथ! आप वृन्दावन के स्वामी तथा उसके प्राण हैं। कृपा करके वृन्दावन के उद्धार का उपाय कीजिये। हमें अपने अनेक कार्यकलापों

से तनिक भी विश्राम नहीं मिलता। वास्तव में आप मेरे भोक्ता (रमण) हैं। आप मुझे सुख प्रदान करने के लिए ही प्रकट हुए हैं और यह आपके पटु कार्यकलापों में से एक है।

तात्पर्य

वैदग्ध्य शब्द का अर्थ है अत्यन्त दक्ष, विद्वान्, विनोदी, चतुर, सुन्दर तथा व्यंग्य-पटु व्यक्ति।

मोर वाक्य निन्दा मानि, कृष्ण छाडि' गेला जानि,
शुन, मोर ए स्तुति-वचन।
नयनेर अभिराम, तुमि मोर धन-प्राण,
हाहा पुनः देह दरशन॥७१॥

अनुवाद

"मेरे शब्दों को निन्दा मान कर भगवान् कृष्ण ने मुझे छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि वे चले गये हैं, किन्तु मेरी प्रशस्ति तो सुने जाओ। आप मेरे नेत्रों की तुष्टि हो। आप ही मेरे धन और मेरे जीवन हो। हाय! एक बार मुझे अपना दर्शन दे दो।"

स्तम्भ, कम्प, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वरभेद,
देह हैल पुलके व्यापित।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, उठि' इति उति धाय,
क्षणे भूमे पड़िया मूर्च्छित॥७२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में विविध विकार देखे जाते थे—स्तम्भित होना, हिलना, पसीना आना, रंग उतरना, रोना और गला रुँधना। इस प्रकार उनका सारा शरीर दिव्य हर्ष से परिव्याप्त रहता था। फलस्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते तो कभी गाते थे। कभी वे उठ कर इधर-उधर दौड़ते और कभी जमीन पर गिर कर अचेत हो जाते।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में शरीर में होने वाले आठ प्रकार के दिव्य परिवर्तनों

(सात्विक भावों) का वर्णन हुआ है। *स्तम्भ* मन की तल्लीनता का सूचक है। इस दशा में शान्त मन प्राण-वायु पर स्थित होता है और शरीर में विविध प्रकार के विकार प्रकट होते हैं। ये लक्षण उच्च कोटि के भक्त के शरीर में दिखलाई पड़ते हैं। जब जीवन निश्चेष्टप्राय हो जाता है तो उसे *स्तम्भित* कहते हैं। इस दशा में जो भाव प्रकट होते हैं वे हैं हर्ष, भय, आश्चर्य, विषाद तथा क्रोध। इस दशा में वाक्शक्ति जाती रहती है और हाथ-पैर की गति बन्द हो जाती है। अन्यथा स्तम्भ तो मानसिक दशा है। प्रारम्भ में शरीर में अन्य अनेक लक्षण देखे जाते हैं। पहले वे सूक्ष्म होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे वे प्रकट होने लगते हैं। जब कोई बोल नहीं सकता तो स्वाभाविक है कि उसकी कर्मेन्द्रियाँ रुद्ध हो जाती हैं और ज्ञानेन्द्रियाँ निष्क्रिय बन जाती हैं। *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में *कम्प* को विशेष प्रकार के भय, क्रोध तथा हर्ष से उत्पन्न बतलाया गया है। जब हर्ष, भय तथा क्रोध के मिलने से शरीर में पसीना आने लगता है तो इसे *स्वेद* कहते हैं। शरीर के रंग में परिवर्तन होने को *वैवर्ण्य* कहा जाता है। यह विषाद, क्रोध तथा भय के मिलने से उत्पन्न होता है। जब इन भावों की अनुभूति होती है तो मुख का रंग पीला पड़ जाता है और शरीर दुर्बल पड़ जाता है। *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में अश्रु को हर्ष, क्रोध तथा विषाद का मेल कहा गया है जिससे बिना प्रयास के ही आँखों से आँसू आ जाते हैं। जब हर्ष के कारण अश्रु आते हैं तो वे ठण्डे होते हैं, किन्तु क्रोध के कारण गर्म अश्रु आते हैं। दोनों ही दशाओं में आँखें चंचल रहती हैं, पुतलियाँ लाल हो जाती हैं और उनमें खुजली छूटती है। ये सारे *अश्रु* के लक्षण हैं। विषाद, आश्चर्य, क्रोध, हर्ष तथा भय के मेल से वाणी रुद्ध हो जाती है। यह अवरोध *गदगद* कहलाता है। श्री चैतन्य महाप्रभु *गदगद रुद्धाय गिरा* का नाम लेते हैं। *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में *पुलक* को हर्ष, उत्साह तथा भय कहा गया है। इनके मिलने पर, शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और यह शारीरिक दशा *पुलक* कहलाती है।

मूर्च्छाय हैल साक्षात्कार, उठि' करे हुहुंकार,
कहे—एइ आइला महाशय।
कृष्णेर माधुरी-गुणे, नाना भ्रम हय मने
श्लोक पड़ि' करये निश्चय॥७३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत होते थे तो उनकी भेंट भगवान् से होती थी। फलस्वरूप वे उठ बैठते थे और तुरन्त तुमुल ध्वनि करने लगते कि महापुरुष कृष्ण आ गये हैं। इस प्रकार कृष्ण के मधुर गुणों के कारण महाप्रभु को मन में तरह-तरह के भ्रम होते थे। वे निम्नलिखित श्लोक को पढ़ कर भगवान् कृष्ण की उपस्थिति सुनिश्चित करते थे।

मारः स्वयं नु मधुरद्युतिमण्डलं नु
माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु।
वेणीमृजो नु मम जीवितवल्लभो नु
कृष्णोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय॥७४॥

अनुवाद

राधारानी के भाव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपियों को सम्बोधित किया, "कहाँ हैं वे कामदेव रूप कृष्ण जिनका तेज ही कदम्ब पुष्प है, जो मेरी आँखों तथा मन के अमृत हैं, जो गोपियों के बालों को शिथिल करने वाले हैं, जो दिव्य आनन्द के परम स्रोत हैं और मेरे प्राण हैं? क्या वे मेरे नेत्रों के समक्ष फिर से आ गये हैं?"

तात्पर्य

यह *कृष्णकर्णामृत* का श्लोक (६८) है।

किवा एइ साक्षात् काम, द्युतिबिम्ब मूर्तिमान
कि माधुर्य स्वयं मूर्तिमन्त।
किवा मनो-नेत्रोत्सव, किवा प्राणवल्लभ,
सत्य कृष्ण आइला नेत्रानन्द॥७५॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु इस तरह बातें करते, "क्या कदम्ब वृक्ष के तेज एवं प्रतिबिम्ब के सहित साक्षात् कामदेव उपस्थित है? क्या यह व्यक्ति, साक्षात् माधुर्य मूर्तिमान हो उठा है, जो मेरी आँखों तथा मन का आनन्द है, जो मेरा प्राण है? क्या सचमुच कृष्ण मेरी आँखों के सामने आ गये हैं?"

गुरु—नाना भावगण, शिष्य—प्रभुर तनु-मन,
नाना रीते सतत नाचाय।
निर्वेद, विषाद, दैन्य, चापल्य, हर्ष, धैर्य, मन्यु,
एइ नृत्ये प्रभुर काल याय ॥७६॥

अनुवाद

जिस प्रकार गुरु शिष्य को ताड़ना देता है और उसे भक्ति की कला सिखलाता है उसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु के तमाम भाव, जिनमें निर्वेद, विषाद, दीनता, चंचलता, हर्ष, धैर्य और क्रोध सम्मिलित हैं, उनके शरीर तथा मन को शिक्षा देते थे। इस तरह महाप्रभु अपना समय बिताते थे।

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति,
कर्णामृत, श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रि-दिने,
गाय, शुने—परम आनन्द ॥७७॥

अनुवाद

वे अपना समय पुस्तकें पढ़ने तथा चण्डीदास और विद्यापति के गीत गाने और जगन्नाथ वल्लभ नाटक, कृष्णकर्णामृत तथा गीतगोविन्द के उद्धरण सुनने में बिताते थे। इस तरह स्वरूप दामोदर तथा राय रामानन्द के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु परम हर्ष के साथ कीर्तन करने एवं सुनने में दिन-रात बिताते रहे।

पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्धसख्य,
गोविन्दाद्येर शुद्ध-दास्य-रस।
गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर मुख्य रसानन्द,
एइ चारि भावे प्रभु वश ॥७८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने संगियों में परमानन्द पुरी से वात्सल्य, रामानन्द राय से सख्य, गोविन्द तथा अन्यों से शुद्ध सेवा और गदाधर, जगदानन्द तथा स्वरूप दामोदर से माधुर्य रस प्राप्त होता था। वे इन

चारों रसों का आनन्द लूटते थे और इस तरह अपने भक्तों के प्रति कृतज्ञ बने रहते थे।

तात्पर्य

कहा जाता है कि उद्धव ही वृन्दावन में परमानन्द पुरी बने। उनका श्री चैतन्य से वत्सल प्रेम था। इसका कारण यह था कि परमानन्द पुरी श्री चैतन्य के गुरु के गुरुभाई थे। इसी प्रकार रामानन्द राय, जिन्हें कोई अर्जुन का अवतार मानते हैं तो कोई विशाखा देवी का, भगवान् के साथ सख्य प्रेम निभाते थे। गोविन्द तथा अन्यों को शुद्ध सेवा करने का अवसर प्राप्त था। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने विश्वसनीय भक्तों, यथा गदाधर पंडित, जगदानन्द तथा स्वरूप दामोदर के सामने कृष्ण के साथ श्रीमती राधारानी के माधुर्य भाव का आनन्द लेते थे। इन चारों दिव्य रसों में निमग्न रह कर श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रहते थे और अपने भक्तों के प्रति परम कृतज्ञता का अनुभव करते थे।

लीलाशुक-मर्त्यजन, ताँर हय भावोद्गम,
ईश्वरे से—कि इहा विस्मय।
ताहे मुख्य-रसाश्रय, हइयाछेन महाशय,
ताते हय सर्वभावोदय ॥७९॥

अनुवाद

लीलाशुक (बिल्वमंगल ठाकुर) एक सामान्य मनुष्य थे, फिर भी उनके शरीर में अनेक भाव उत्पन्न होते थे। तो फिर यदि भगवान् के शरीर में ये लक्षण प्रकट हों तो कौन-सा आश्चर्य है? श्री चैतन्य महाप्रभु माधुर्य भाव में सर्वोच्च स्थिति पर होते थे, अतएव उनके शरीर में अत्यधिक भावों का उदय होता था।

तात्पर्य

लीलाशुक बिल्वमंगल ठाकुर गोस्वामी हैं। वे दक्षिण भारत के ब्राह्मण थे और उनका पहले का नाम शिल्हन मिश्र था। जब वे गृहस्थ थे तो चिन्तामणि नामक एक वेश्या पर अनुरक्त हो गये। किन्तु अन्त में उसी से उपदेश ग्रहण करके उन्होंनेवैराग्य ले लिया। उन्होंने एक पुस्तक *शान्तिशतक* लिखी और बाद में वे कृष्ण तथा वैष्णवों की कृपा से महाभागवत बने। तब

वे बिल्वमंगल ठाकुर गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। उच्च पद प्राप्त होने पर उन्होंने *कृष्णकर्णामृत* नामक एक पुस्तक लिखी जो वैष्णवों में अत्यधिक विख्यात है। चूँकि वे अनेक भावमय लक्षण प्रदर्शित करते थे, अतएव लोग उन्हें लीलाशुक कह कर पुकारते थे।

पूर्व व्रजविलासे, य़ेइ तिन अभिलाषे,
य़त्नेह आस्वाद ना हैल।
श्रीराधार भावसार, आपने करि' अंगीकार,
सेइ तिन वस्तु आस्वादिल॥८०॥

अनुवाद

वृन्दावन की अपनी पूर्ववर्ती लीलाओं में भगवान् कृष्ण तीन विभिन्न प्रकार के भावों का आस्वाद करना चाहते थे। किन्तु अत्यधिक प्रयत्नों के बावजूद भी वे वैसा नहीं कर पाये। ऐसे भाव तो एकमात्र श्रीमती राधारानी की निधि हैं। अतएव उनका आस्वादन करने के निमित्त ही श्रीकृष्ण ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में श्रीमती राधारानी का पद अंगीकार किया।

आपने करि' आस्वादने, शिखाइल भक्तगणे,
प्रेमचिन्तामणिर प्रभु धनी।
नाहि जाने स्थानास्थान, य़ारे तारे कैल दान,
महाप्रभु—दाता-शिरोमणि ॥८१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं भगवत्प्रेम रस का आस्वादन करके अपने शिष्यों को इस विधि की शिक्षा दी। वे ईश-प्रेम रूपी चिन्तामणि (पारस पत्थर) के सर्वाधिक दानशील अवतार हैं। वे देते समय सुपात्र या कुपात्र का विचार नहीं करते, अपितु हर एक को यह निधि प्रदान करते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त उदार दाता हैं।

तात्पर्य

श्री महाप्रभु की पूँजी है भगवत्प्रेम रूपी चिन्तामणि, अतएव वे दिव्य कोष के स्वामी हैं। असीम मात्रा में सोना बनाने के बाद भी चिन्तामणि जैसे

का तैसा बना रहता है। इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु भगवत्प्रेम का वितरण करते रहे, जिसका कोई वारापार न था, फिर भी वे इस दिव्य ऐश्वर्य के परम स्वामी बने रहे। शिष्यों ने उनसे सीख कर सारे विश्व में मुक्तहस्त से इसका वितरण किया। यह कृष्णभावनामृत-आन्दोलन श्री चैतन्य महाप्रभु एवं उनके प्रधान शिष्यों के चरणचिह्नों पर चल कर सारे विश्व में हरे-कृष्ण-महामन्त्र के संकीर्तन द्वारा ईश-प्रेम का वितरण कर रहा है।

एइ गुप्त भाव-सिन्धु, ब्रह्मा ना पाय एक बिन्दु,
हेन धन विलाइल संसारे।
ऐछे दयालु अवतार, ऐछे दाता नाहि आर
गुण केह नारे वर्णिवारे॥८२॥

अनुवाद

इस गुप्त भाव-सिन्धु की एक बूँद का भी आस्वाद कोई नहीं कर सकता, यहाँ तक कि ब्रह्मा भी नहीं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा से इस भगवत्प्रेम को सारे विश्व में बाँट दिया है। अतएव उनसे बढ़ कर कोई अधिक दानी अवतार नहीं हो सकता। उनसे बड़ा दाता कोई नहीं है। भला उनके दिव्य गुणों का वर्णन कौन कर सकता है?

कहिबार कथा नहे, कहिले केह ना बुझये,
ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग।
सेइ से बुझिते पारे, चैतन्येर कृपा य़ाँरे,
हय ताँर दासानुदास-सङ्ग॥८३॥

अनुवाद

ऐसी कथाएँ सरेआम कहने के लिए नहीं हैं, क्योंकि यदि होतीं तो उन्हें कोई न समझ पाता। ऐसी हैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ। जो उन्हें समझ सकता है, उसे श्री चैतन्य महाप्रभु अपने निजी दास के दास की संगति प्रदान करके उस पर कृपा प्रदर्शित करते हैं।

तात्पर्य

सामान्य व्यक्ति श्रीमती राधारानी के रूप में दिव्य भावों को नहीं समझ

सकता। ऐसे अयोग्य व्यक्ति जो उनका उपयोग करते हैं, विकृत होकर *सहजिया, बाउल* तथा अन्य सम्प्रदायों में चले जाते हैं। इस तरह उनकी शिक्षाएँ विकृत होती हैं। यहाँ तक कि शैक्षिक जगत के विद्वान् पंडित भी श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके शुद्ध भक्तों द्वारा प्रदर्शित भाव एवं दिव्य आनन्द को नहीं समझ पाते। मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों के तात्पर्य को समझ पाने के योग्य होना चाहिए।

श्रीचैतन्यलीला-रत्न-सार, स्वरूपेर भाण्डार,
तेंहो थुइला रघुनाथेर कण्ठे।
ताहाँ किछु ये शुनिलूँ, ताहा इहाँ विस्तारिलूँ,
भक्तगणे दिलूँ एइ भेटे॥८४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं। वे स्वरूप दामोदर गोस्वामी के भंडार में रखी हुई थीं, जिन्होंने उन्हें रघुनाथ दास गोस्वामी को बतलाया और फिर इन्होंने मुझे सुनाया है। मैंने जो कुछ भी रघुनाथ दास गोस्वामी से सुना है उसी को इस पुस्तक में वर्णित किया है जो सभी भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलाप उनके निजी सचिव स्वरूप दामोदर द्वारा अंकित किये जाते थे और रघुनाथ दास गोस्वामी उनको स्मरण करके दुहराया करते थे। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने जो कुछ सुना, उसे ही *श्रीचैतन्य-चरितामृत* में लिपिबद्ध कर दिया है। यह *परम्परा-* पद्धति कहलाती है जो श्री चैतन्य महाप्रभु से स्वरूप दामोदर, उनसे रघुनाथ दास गोस्वामी, उनसे कविराज गोस्वामी तक चली आती है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने इस सूचना को अपनी कृति *चैतन्य-चरितामृत* में वितरित किया है। दूसरे शब्दों में, *चैतन्य-चरितामृत* उस उपदेश का सार है जो परम्परा-पद्धति द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रारम्भ होती है।

य़दि केह हेन कय, ग्रन्थ कैल श्लोकमय,
इतर जने नारिबे बुझिते।

प्रभुर ग्रेइ आचरण, सेइ करि वर्णन,
सर्व-चित्त नारि आराधिते॥८५॥

अनुवाद

यदि कोई यह कहता है कि *श्रीचैतन्य-चरितामृत* संस्कृत श्लोकों से पूर्ण होने के कारण सामान्य व्यक्तियों की समझ में नहीं आता तो मैं इसका उत्तर यही दूँगा कि मैंने इसमें श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का ही वर्णन किया है और मैं हर एक को सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

तात्पर्य

श्रील कविराज गोस्वामी तथा उनके अनुसरणकर्ताओं को जनता का मनोरंजन नहीं करना है। उनका कार्य एकमात्र पूर्ववर्ती आचार्यों को सन्तुष्ट करना और भगवान् की लीलाओं का वर्णन करना होता है। जो समझ सकता है वही इस पूज्य ग्रंथ का आस्वादन कर सकता है, क्योंकि यह ग्रंथ पंडितों तथा साहित्यिक व्यक्तियों के लिए नहीं है। सामान्यतया श्रीचैतन्य-चरितामृत में लिपिबद्ध श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का अध्ययन विश्वविद्यालयों में साहित्यिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया जाता है, किन्तु वास्तव में यह ग्रंथ शोधकर्ताओं या साहित्यिक विद्वानों के लिए नहीं है। यह उन भक्तों के निमित्त है, जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया है।

नाहि काहाँ सविरोध, नाहि काहाँ अनुरोध,
सहज वस्तु करि विवरण।
ग्रग्रदि हय रागोद्देश्य, ताहाँ हये आवेश,
सहज वस्तु ना ग्राय लिखन॥८६॥

अनुवाद

इस चैतन्य-चरितामृत में न तो कोई विरोधी निर्णय है न ही किसी अन्य के मत को स्वीकृति दी गई है। मैंने यह पुस्तक उस सीधीसादी विषयवस्तु का वर्णन करने के लिए लिखा है, जिसे मैंने अपने गुरुजनों से सुना है। यदि मैं किसी की रुचि तथा अरुचि में फँसता तो शायद मैं सत्य को न लिख पाता।

तात्पर्य

मनुष्यों के लिए सबसे आसान बात होती है कि अपने पूर्वजों का अनुगमन करें। अपनी संसारी इन्द्रियों के द्वारा कोई निर्णय कर पाना आसान काम नहीं है। अपने पूर्वज के प्रति अनुराग से भक्ति जाग्रत होती है जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इंगित किया है। किन्तु ग्रंथकार का कहना है कि वह उन लोगों के मतों पर विचार नहीं कर सकता जो ऐसी बातों से आकृष्ट या विकृष्ट होते हैं, क्योंकि तब निष्पक्ष भाव से लेखन-कार्य नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, ग्रन्थकार कहता है कि उसने चैतन्य-चरितामृत में निजी विचार नहीं ठूँसे हैं। उसने अपने गुरुजनों से जो सीखा है उसे ही लिपिबद्ध किया है। यदि वह किसी की रुचियों और अरुचियों के फेर में पड़ता तो इतने सरल ढंग से ऐसे भव्य विषय पर ग्रंथ नहीं लिख सकता था। वास्तविक तथ्य असली भक्तों की ही समझ में आते हैं। जब इन तथ्यों को लिपिबद्ध किया जाता है तो वे भक्तों के अनुकूल हो जाते हैं, किन्तु अभक्त उन्हें नहीं समझ पाते। ऐसा विषय आत्म-साक्षात्कार के लिए है। संसारी पाण्डित्य तथा राग और विराग से ईश-प्रेम का उद्भव नहीं हो सकता। संसारी विद्वान् ऐसे प्रेम का वर्णन नहीं कर पाते।

ग्रेबा नाहि बूझे केह, शुनिते सेह,
कि अद्भुत चैतन्यचरित।
कृष्ण उपजिबे प्रीति, जानिबे रसेर रीति,
शुनिलेइ बड़ हय हित ॥८७॥

अनुवाद

शुरू-शुरू में किसी की समझ में नहीं आता। किन्तु जो बारम्बार इसे सुनता रहता है तो उसमेंमहाप्रभु की लीलाओं के अद्भुत प्रभाव से कृष्ण-प्रेम उत्पन्न हो जायेगा। धीरे-धीरे वह कृष्ण तथा गोपियों एवं वृन्दावन के अन्य संगियों के मध्य प्रेम-व्यापार को समझने लगेगा। पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए हर एक को सलाह दी जाती है कि वह बारम्बार श्रवण करता रहे।

भागवत—श्लोकमय, टीका तार संस्कृत हय,
तबु कैछे बुझे त्रिभुवन।

इहाँ श्लोक दुइ चारि, तार व्याख्या भाषा करि,
केने ना बूझिबे सर्वजन ॥८८॥

अनुवाद

जो आलोचक यह कहते हैं कि श्रीचैतन्य-चरितामृत संस्कृत श्लोकों से पूर्ण है, उसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत भी संस्कृत श्लोकों से पूर्ण है और उसकी टीकाएँ भी। फिर भी श्रीमद्भागवत को हर कोई समझ लेता है, वे उच्च भक्तगण भी, जो संस्कृत टीकाएँ पढ़ते हैं। तो फिर लोग चैतन्य-चरितामृत को क्यों नहीं समझ पायेंगे? इसमें कुछ ही संस्कृत श्लोक हैं और उनकी व्याख्या भाषा (हिन्दी, बंगला) में दी हुई है। तो फिर समझने में कौन कठिनाई है?

शेषलीलार सूत्रगण, कैलूँ किछु विवरण,
इहाँ विस्तारिते चित्त हय।
थाके यदि आयुः-शेष, विस्तारिब लीलाशेष,
यदि महाप्रभुर कृपा हय ॥८९॥

अनुवाद

मैंने पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं से सम्बन्धित सारे तथ्यों तथा आँकड़ों को सूत्र रूप में दे दिया है। मेरी इच्छा है कि मैं इनका विस्तृत वर्णन करूँ। यदि मैं अधिक काल तक जीवित रहा और श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता तो मैं पुनः इनका विस्तार से वर्णन करने का प्रयास करूँगा।

अमी वृद्ध जरातुर, लिखिते काँपेर कर,
मने किछु स्मरण ना हय।
ना देखिये नयने, ना शुनिये श्रवणे,
तबु लिखि'—ए बड़ विस्मय ॥९०॥

अनुवाद

मैं अब अत्यन्त वृद्ध हो गया हूँ और अपने बुढ़ापे से विलचित हूँ। लिखते समय मेरे हाथ काँपते हैं। न तो मुझे कुछ स्मरण रहता है, न मैं ठीक से देख या सुन सकता हूँ। फिर भी मैं लिखता हूँ। यही

बहुत बड़ा आश्चर्य है।

एइ अन्त्यलीला-सार, सूत्रमध्ये विस्तार,
करि' किछु करिलूँ वर्णन।
इहा मध्ये मरि य़बे, वर्णिते ना पारि तबे,
एइ लीला भक्तगण-धन॥९१॥

अनुवाद

इस अध्याय में मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की अन्तिम लीलाओं के सार का वर्णन किया है। यदि इसी बीच मैं मर जाऊँ और विस्तार से उनका वर्णन न कर पाऊँ तो भक्तों को कम-से-कम यह दिव्य कोष तो मिल ही जायेगा।

संक्षेपे एइ सूत्र कैल, य़ेइ इहाँ ना लिखिल,
आगे ताहा करिर विस्तार।
य़दि तत दिन जिये, महाप्रभुर कृपा हये,
इच्छा भरि' करिब विचार॥९२॥

अनुवाद

मैंने इस अध्याय में संक्षेप में सूत्रों का वर्णन किया है। जो कुछ बच रहा है उसका विस्तार से वर्णन भविष्य में करूँगा। यदि चैतन्य महाप्रभु की कृपा से मैं इतने दिनों तक जीवित रहा और अपनी इच्छाएँ पूरी कर पाया तो इन लीलाओं पर पूरी तरह विचार करूँगा।

छोट बड़ भक्तगण, बन्दों सबार श्रीचरण
सबे मोरे करइ सन्तोष।
स्वरूप-गोसाञिर मत, रूप-रघुनाथ जाने य़त,
ताइ लिखि' नाहि मोर दोष॥९३॥

अनुवाद

मैं छोटे तथा बड़े सभी प्रकार के भक्तों के चरणकमलों की पूजा करता हूँ। मेरी उनसे प्रार्थना है कि मुझ पर प्रसन्न हों। मैं निर्दोष हूँ, क्योंकि मैंने स्वरूप दामोदर गोस्वामी तथा रूप और रघुनाथ दास गोस्वामियों

से जैसा सुना है वैसा ही लिख दिया है। मैंने उसमें न तो अपनी ओर से कुछ जोड़ा है न कम किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार भक्त तीन तरह के होते हैं—*भजनविज्ञ* (भक्ति में दक्ष), *भजनशील* (भक्ति में रत) तथा *कृष्णनामे-दीक्षित कृष्णनामकारी* (कीर्तन में रत दीक्षित भक्त)। *चैतन्य-चरितामृत* का प्रणेता इन सारे भक्तों का कृपाकांक्षी है और उनसे प्रसन्न होने के लिए निवेदन करता है। वह कहता है "नवदीक्षित भक्त मुझसे इसलिए रुष्ट न हों कि मैंने कोई त्रुटि की है, क्योंकि ये भक्त तर्क अधिक करते हैं, यद्यपि इनमें भक्ति का ज्ञान अधिक नहीं होता, फिर भी अपने को उन्नत मानते हैं, क्योंकि वे स्मार्त ब्राह्मणों की नकल करते हैं। मैं विनम्र होकर क्षमा-याचना करता हूँ। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इसमें मैं कोई बढ़ती या घटती नहीं करना चाहता। मैंने परम्परा से जो सुना है उसी को लिख रहा हूँ, क्योंकि मैं स्वरूप दामोदर, रघुनाथ दास गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी जैसे पूर्ववर्ती आचार्यों के चरणकमलों में समर्पित हूँ। मैंने वही लिखा है, जो मैंने उनसे सीखा है।"

श्रीचैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैतादि भक्तवृन्द,
शिरे धरि सबार चरण।
स्वरूप, रूप, सनातन, रघुनाथेर श्रीचरण,
धूलि करों मस्तक भूषण॥९४॥

अनुवाद

परम्परा-पद्धति के अनुसार, मैं श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के संगियों यथा स्वरूप दामोदर, रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी और रघुनाथ दास गोस्वामी के चरणकमलों की धूलि लेता हूँ। मैं उनके चरणकमलों की धूलि अपने मस्तक पर धारण करना चाहता हूँ। इस प्रकार मैं उनकी कृपा का आशीर्वाद चाहता हूँ।

पाञा याँर आज्ञा-धन, व्रजेर वैष्णवगण,
वन्दों ताँर मुख्य हरिदास।

चैतन्यविलाससिन्धु-कल्लोलेर एक बिन्दु,
तार कणा कहे कृष्णदास॥९५॥

अनुवाद

उपर्युक्त महापुरुषों एवं वृन्दावन के वैष्णवों, विशेष कर गोविन्दजी के पुरोहित हरिदास की आज्ञा से मैंने (कृष्णदास ने) श्री चैतन्य महाप्रभु के लीला-सिन्धु की एक लहर के एक बिन्दु के भी एक कण का वर्णन करने का प्रयास किया है।

इस तरह श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय ३

श्री चैतन्य महाप्रभु का अद्वैत आचार्य के घर रुकना

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में तृतीय अध्याय का निम्नलिखित सारांश दिया है। कटवा में सन्यास ग्रहण कर लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु लगातार तीन दिनों तक राढ़देश में यात्रा करते रहे और नित्यानन्द प्रभु की युक्ति से अन्ततः वे शान्तिपुर की पश्चिमी दिशा में आये। उन्हें गंगा नदी को ही यमुना नदी कह कर विश्वास दिलाया गया। जब वे इस पवित्र नदी की पूजा कर रहे थे तो अद्वैत प्रभु नाव लेकर वहाँ आये, उनसे प्रार्थना की कि गंगा में स्नान करें। फिर उन्हें वे अपने घर ले गये। उस घर में नवद्वीप के सारे भक्त तथा उनकी माता शचीदेवी भी श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने आये। यह घर शान्तिपुर में था। माता शचीदेवी ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के साथ मिल कर रसोई तैयार की। उसी समय अद्वैत प्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु के बीच हास-परिहास चला। फिर संध्या-समय अद्वैत प्रभु के घर में संकीर्तन हुआ और माता शचीदेवी ने चैतन्य महाप्रभु को विदा होने की अनुमति प्रदान की। उन्होंने अनुरोध किया कि वे अपना मुख्य आवास जगन्नाथ पुरी नीलाचल को बनायें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की बात मान ली और नित्यानन्द, मुकुन्द, जगदानन्द तथा दामोदर के साथ शान्तिपुर से रवाना हो गये। शचीदेवी से विदा लेकर वे सभी छत्रभोग के रास्ते से जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े।

न्यासं विधायोत्प्रणयोऽथ गौरो
वृन्दावनं गन्तुमना भ्रमाद् यः।
राढ़े भ्रमन् शान्तिपुरीमयित्वा
ललास भक्तैरिह तं नतोऽस्मि॥१॥

अनुवाद

संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने के बाद चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेमवश वृन्दावन जाना चाह रहे थे, किन्तु भ्रमवश वे राढ़देश में घूमते रहे। बाद में वे शान्तिपुर आये और वहाँ भक्तों के साथ आनन्दपूर्वक रहे। मैं उन श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द की जय हो। श्री अद्वैत प्रभु की जय हो। श्रीवास आदि श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

चब्बिश वत्सर-शेष ग़ेइ माघमास।
तार शुक्लपक्षे प्रभु करिला संन्यास॥३॥

अनुवाद

अपनी आयु के चौबीसवें वर्ष के अन्त में माघ मास के शुक्लपक्ष में श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम स्वीकार किया।

संन्यास करि' प्रेमावेशे चलिला वृन्दावन।
राढ़-देशे तिन दिन करिला भ्रमण॥४॥

अनुवाद

संन्यास ग्रहण करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेमवश वृन्दावन के लिए रवाना हुए। किन्तु गलती से वे लगातार तीन दिनों तक अचेतनावस्था में राढ़ नामक देश में भ्रमण करते रहे।

तात्पर्य

राढ़देश शब्द *राष्ट्र* अर्थात् राज्य से व्युत्पन्न है। *राष्ट्र* शब्द बिगड़ कर *राढ़* बना है। बंगाल का जो भाग गंगा के पश्चिम है, वह राढ़देश अथवा पौण्ड्रदेश कहलाता है। पौण्ड्र शब्द के बिगड़ने पर *पेंडो* बनता है। ऐसा लगता है कि राष्ट्रदेश की राजधानी बंगाल के इसी भाग में स्थित थी।

एइ श्लोक पड़ि' प्रभु भावेर आवेशे।
भ्रमिते पवित्र कैल सब राढ़-देशे॥५॥

अनुवाद

राढ़देश नामक भूभाग से गुजरते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में निम्नलिखित श्लोक सुनाया।

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पुर्वतमैर्महद्भिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥६॥

अनुवाद

[जैसा कि अवन्ती देश के एक ब्राह्मण ने कहा है] "भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर मैं अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर जाऊँगा। इसकी पुष्टि उन पूर्ववर्ती आचार्यों ने की है, जो परमात्मा की दृढ़ भक्ति में स्थिर हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (११.२३.५८) है। इसकी टीका करते हुए श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि भक्ति करने में जिन ६४ वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनमें संन्यास के चिह्नों को स्वीकार करने का विधान है। संन्यास स्वीकार करने पर मनुष्य का मुख्य कार्य मुकुन्द कृष्ण की सेवा में अपना जीवन अर्पित करना है। यदि वह मन तथा तन से भगवान् की सेवा नहीं कर सकता तो वह वास्तविक संन्यासी नहीं है। केवल वस्त्र बदलने से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। *भगवद्गीता* में भी (६.१) कहा गया है—*अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः / स संन्यासी च योगी च*—जो कृष्ण की तुष्टि के लिए भक्तिपूर्वक कार्य करता है, वह *संन्यासी* है। वस्त्र नहीं अपितु कृष्ण की सेवा के प्रति प्रवृत्ति ही संन्यास है।

परात्मनिष्ठा का अर्थ है भगवान् कृष्ण का भक्त बनना। *परमात्मा* कृष्ण हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः*। जो कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में पूर्णतया समर्पित होते हैं वे ही वास्तविक *संन्यासी* हैं। हर भक्त औपचारिकतावश अपने पूर्ववर्ती आचार्य की देखादेखी संन्यास-वस्त्र ग्रहण करता है। वह तीन दण्ड भी धारण करता है। बाद में विष्णुस्वामी ने यह विचार किया कि त्रिदण्ड-वेश धारण करना *परात्मनिष्ठा* है। अतएव निष्ठावान भक्तगण इन तीन

दण्डों के अतिरिक्त एक चौथे दण्ड *जीवदण्ड* को भी सम्मिलित करते हैं। वैष्णव संन्यासी *त्रिदण्डी सन्यासी* कहलाता है। किन्तु मायावादी संन्यासी त्रिदण्ड का उद्देश्य न समझ पाने के कारण केवल एक दण्ड धारण करता है। बाद में शिवस्वामी सम्प्रदाय के अनेक लोग भगवान् की *आत्मनिष्ठा* (भक्ति) त्याग कर शंकराचार्य के मार्ग का अनुसरण करने लगे। शिवस्वामी सम्प्रदाय वाले संन्यास के १०८ नाम के बजाय शंकराचार्य मार्ग के दस नाम स्वीकार करते हैं। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस समय के संन्यास (*एक दण्ड*) को ग्रहण किया था फिर भी वे *श्रीमद्भागवत* के उस श्लोक को सुनाया करते थे जो अवन्तीपुर के ब्राह्मण द्वारा *त्रिदण्ड संन्यास* ग्रहण करने के सम्बन्ध में था। *परात्मनिष्ठा* (कृष्ण की भक्ति) के बिना श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्ड संन्यास स्वीकार नहीं है। सही विधान के अनुसार त्रिदण्ड के साथ जीवदण्ड को सम्मिलित करना चाहिए। ये चारों दण्ड एकसाथ बँध कर भगवान् की शुद्ध भक्ति के प्रतीक बन जाते हैं। चूँकि मायावादी एकदण्डी संन्यासी कृष्ण के भक्त नहीं होते अतः वे ब्रह्मतेज में लीन होना चाहते हैं। वे इस निर्विशेष स्थिति को मुक्ति मानते हैं। मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु को एकदण्डी संन्यासी ही मानते हैं, क्योंकि उन्हें यह पता नहीं है कि वे त्रिदण्डी संन्यासी थे। यह मायावादियों के *विवर्त* अर्थात् मोह के कारण है। *श्रीमद्भागवत* में एकदण्डी संन्यासी जैसी कोई वस्तु नहीं मिलती। हाँ, त्रिदण्डी संन्यासी को संन्यास आश्रम का प्रतीक माना गया है। *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक को सुनाने का यही अर्थ होता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु को *श्रीमद्भागवत* द्वारा संस्तुत संन्यास आश्रम ही मान्य था। भगवान् की बहिरंगा शक्ति से चमत्कृत रहने वाले मायावादी संन्यासी श्री चैतन्य महाप्रभु के मन की बात कभी नहीं समझ पायेंगे।

आज भी श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्त उनके पदचिह्नों पर चलते हुए संन्यास ग्रहण करते हैं, जनेऊ धारण करते हैं और चोटी रखते हैं। किन्तु मायावादी सम्प्रदाय के एकदण्डी संन्यासी न तो जनेऊ धारण करते हैं, न ही चोटी रखते हैं। इसलिए वे त्रिदण्ड संन्यास का तात्पर्य नहीं समझ सकते। फलस्वरूप वे मुकुन्द को अपना जीवन अर्पित करने की ओर उन्मुख नहीं रहते। वे संसार से घृणा होने के कारण ब्रह्म में लीन होने के बारे में ही सोचते रहते हैं। जो आचार्य *दैव वर्णाश्रम* का अनुमोदन करते हैं (जिसका उल्लेख भगवद्गीता में हुआ है) वे *आसुर वर्णाश्रम* की विचारधारा

को नहीं मानते जिसके अनुसार जन्म से ही वर्ण सूचित होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तरंगी भक्त श्री गदाधर पण्डित ने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया और श्री माधव उपाध्याय को अपने त्रिदण्डी संन्यासी-शिष्य के रूप में स्वीकार किया। कहते हैं कि इन्हीं मध्वाचार्य से पश्चिम भारत में वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। श्रील गोपाल भट्ट बोस ने, जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में स्मृत्याचार्य के नाम से विख्यात हैं, बाद में त्रिदण्डी-पाद प्रबोधानन्द सरस्वती से त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। यद्यपि गौड़ीय वैष्णव साहित्य में त्रिदण्ड सन्यास स्वीकार करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु श्रील रूप गोस्वामी-कृत *उपदेशामृत* के प्रथम श्लोक में वकालत की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि वह छह शक्तियों को वश में करके त्रिदण्ड संन्यास स्वीकार करे—

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगम् उदरोपस्थवेगम्।
एतान्वेगान्यो विषहेत धीराः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात्॥

"जो व्यक्ति वाणी, मन, क्रोध, उदर, जीभ तथा जननेन्द्रियों के वेगों को नियन्त्रित कर सकता है, वह गोस्वामी कहलाता है और विश्व-भर में शिष्य बना सकता है।" श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायियों ने कभी भी मायावाद सन्यास स्वीकार नहीं किया; अतएव उन पर कोई दोषारोपण नहीं लगाया जा सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु ने त्रिदण्डी संन्यासी श्रीधर स्वामी को माना है, किन्तु मायावादी संन्यासी सोचते हैं कि श्रीधर स्वामी मायावाद के एकदण्ड संन्यास सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है।

प्रभु कहे,—साधु एइ भिक्षुर वचन।
मुकुन्द सेवन-व्रत कैल निर्धारण॥७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के तात्पर्य का अनुमोदन संन्यासी भक्त द्वारा भगवान् मुकुन्द की सेवा में लगने के संकल्प के कारण किया। उन्होंने इस श्लोक के विषय में अपनी सहमति दे दी, जिससे सूचित होता है कि यह श्लोक अत्युत्तम है।

परात्मनिष्ठा-मात्र वेष-धारण।
मुकुन्द-सेवाय हय संसार-तारण॥८॥

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने का असली प्रयोजन मुकुन्द की सेवा में अपने आप को समर्पित करना है। मुकुन्द की सेवा करने से मनुष्य सचमुच भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास स्वीकार किया और अवन्तीपुर भिक्षु द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प की संस्तुति की है। उन्होंने ब्राह्मण की उक्ति को उसके द्वारा मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प के कारण स्वीकार किया। संन्यासी का वेश भौतिक शिष्टाचार के लिए आकर्षक होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसा शिष्टाचार पसन्द नहीं है। प्रत्येक दशा में ऐसा संकल्प *परात्मनिष्ठा* है और इसी की अपेक्षा रहती है। निष्कर्ष यह निकला कि संन्यास आश्रम वेश पर नहीं अपितु मुकुन्द की सेवा करने के संकल्प पर निर्भर करता है।

सेइ वेष कैल, एबे वृन्दावन गिया।
कृष्ण निषेवण करि निभृते रसिया॥९॥

अनुवाद

संन्यास स्वीकार करने के बाद महाप्रभु ने वृन्दावन जाने और वहाँ एकान्त स्थान में पूर्ण मनोयोग से मुकुन्द की सेवा में लग जाने का निश्चय किया।

एइ बलि' चले प्रभु, प्रेमोन्मादेर चिह्न।
दिक्-विदिक्-ज्ञान नाहि, किबा रात्रिदिन॥१०॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन के रास्ते में थे तो उन्हें प्रेमोन्माद के सारे लक्षण प्रकट होने लगे और इसका पता नहीं चल पा रहा था कि वे किस दिशा में जा रहे हैं अथवा यह दिन है या रात।

नित्यानन्द, आचार्यरत्न, मुकुन्द—तिन जन।
प्रभु-पाछे-पाछे तिने करेन गमन॥११॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन की ओर जा रहे थे तो नित्यानन्द प्रभु, चन्द्रशेखर तथा प्रभु मुकुन्द उनके साथ-साथ चल रहे थे।

ये़इ ये़इ प्रभु देखे, सेइ सेइ लोक।
प्रेमावेशे 'हरि' बले, खण्डे दुःक-शोक॥१२॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु राढ़देश से होकर जा रहे थे तो जो भी उन्हें देखता वह भाववश 'हरि' 'हरि' कहता। ज्योंही वे महाप्रभु के साथ कीर्तन करते कि संसार के सारें दुख विनष्ट हो जाते।

गोप-बालक सब प्रभुके देखिया।
'हरि' 'हरि' बलि' डाके उच्च करिया॥१३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को जाते देख कर सारे ग्वालबाल उनके साथ हो लिये और जोर-जोर से 'हरि' 'हरि' पुकारने लगे।

शुनि ता-सबार निकट गेला गौरहरि।
'बल' 'बल' बले सबार शिरे हस्त धरि'॥१४॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी ग्वालबालों को 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते सुना तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे उनके पास गये, उनके सिर पर हाथ रखा और उनसे बोले, "इसी तरह कीर्तन करते रहो।"

ता'-सबार स्तुति करे,—तोमरा भाग्यवान्।
कृतार्थ करिले मोरे शुनाञा हरि-नाम॥१५॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों को यह आशीर्वाद दिया कि तुम सभी भाग्यवान हो। उन्होंने उनकी प्रशंसा की और चूँकि उन

लोगों ने हरि नाम का कीर्तन किया था इसलिए महाप्रभु ने अपने को कृतार्थ समझा।

गुप्ते ता-सबाके आनि' ठाकुर नित्यानन्द।
शिखाइला सबाकारे करिया प्रबन्ध॥१६॥

अनुवाद

सारे बालकों को एकान्त में बुलाकर और तर्कपूर्ण कहानी बतलाते हुए नित्यानन्द ने उन सबों को इस प्रकार उपदेश दिया—

वृन्दावन पथ प्रभु पुछेन तोमारे।
गङ्गातीर-पथ तबे देखाइह तारे॥१७॥

अनुवाद

"यदि श्री चैतन्य महाप्रभु तुम लोगों से वृन्दावन का रास्ता पूछें तो उन्हें गंगा नदी के किनारे का रास्ता दिखला देना।"

तबे प्रभु पूछिलेन,—'शुन, शिशुगण।
कह देखि, कोन् पथे य़ाब वृन्दावन'॥१८॥
शिशु सब गङ्गातीरपथ देखाइल।
सेइ पथे आवेशे प्रभु गमन करिल॥१९॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने ग्वालबालों से वृन्दावन का रास्ता पूछा तो उन बालकों ने गंगा के किनारे वाला रास्ता बतला दिया और महाप्रभु भावावेश में उसी रास्ते चल पड़े।

आचार्यरत्नेर कहे नित्यानन्द-गोसाञि।
शीघ्र य़ाह तुमि अद्वैत-आचार्येर ठाञि॥२०॥

अनुवाद

ज्योंही महाप्रभु गंगा के किनारे-किनारे चल पड़े कि श्री नित्यानन्द प्रभु ने आचार्यरत्न (चन्द्रशेखर आचार्य) से प्रार्थना कि 'वे तुरन्त अद्वैत आचार्य के घर जायें।

प्रभु लये य़ाब आमि ताँहार मन्दिरे।
सावधाने रहेन य़ेन नौका लञा तीरे॥२१॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द गोस्वामी ने उनसे कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को गंगा के किनारे स्थित शान्तिपुर ले जाऊँगा। आप अद्वैत आचार्य से कहें कि वे सावधान होकर एक नाव लेकर किनारे पर रहें।"

तबे नवद्वीपे तुमि करिह गमन।
शची-सह लञा आइस सब भक्तगण॥२२॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "उसके बाद मैं अद्वैत आचार्य के घर जाऊँगा और आप नवद्वीप जाकर माता शची तथा अन्य भक्तों को लेकर लौट आयें।"

ताँरे पाठाइया नित्यानन्द महाशय।
महाप्रभुर आगे आसि' दिल परिचय॥२३॥

अनुवाद

आचार्यरत्न को अद्वैत आचार्य के घर भेज कर श्री नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने आये और अपने आने की सूचना दी।

प्रभु कहे,—श्रीपाद, तोमार कोथाके गमन।
श्रीपाद कहे, तोमार सङ्गे य़ाब वृन्दावन॥२४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में थे अतएव उन्होंने पूछा "नित्यानन्द प्रभु तुम कहाँ जा रहे हो?" नित्यानन्द ने उत्तर दिया कि "मैं आपके साथ वृन्दावन जा रहा हूँ।"

प्रभु कहे,—कत दूरे आछे वृन्दावन।
तेँहो कहेन,—कर एइ य़मुना दरशन॥२५॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से पूछा कि अब वृन्दावन

कितनी दूर है तो नित्यानन्द ने उत्तर दिया "देखिये न! यह रही यमुना नदी।"

एत बलि' आनिल ताँरे गंगा-सन्निधाने।
आवेशे प्रभुर हैल गंगारे य़मुना-ज्ञाने॥२६॥

अनुवाद

यह कह नित्यानन्द प्रभु उन्हें गंगा नदी के पास ले गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश के कारण गंगा नदी को ही यमुना नदी के रूप में स्वीकार कर लिया।

अहो भाग्य, य़मुनारे पाइलुँ दरशन।
एत बलि' यमुनार करेन स्तवन॥२७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा " ओह कितना सौभाग्य है! आज मुझे यमुना नदी के दर्शन हुए हैं।" इस तरह गंगा को ही यमुना नदी मान कर उन्होंने उसकी स्तुति करनी प्रारम्भ की।

चिदानन्दभानोः सदा नन्दसूनोः
परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री।
अघानां लवित्री जगत्क्षेमधात्री
पवित्रीक्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री॥२८॥

अनुवाद

"हे यमुना नदी! तुम वह आनन्दमय दिव्य जल हो, जो नन्द महाराज के बेटे को प्रेम प्रदान करता है। तुम वैकुण्ठ-लोक के जल के ही समान हो क्योंकि तुम हमारे जीवन-भर में किये गये सारे अपराधों एवं पापफलों को नष्ट करने वाली हो। तुम संसार के लिए सभी मंगल वस्तुओं की जननी हो। हे सूर्यदेव की पुत्री! तुम अपने पुण्यकर्मों से हम सबों को शुद्ध कर दो।"

तात्पर्य

यह श्लोक कवि कर्णपुर-कृत *चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* में (५.१३) अंकित है।

एत बलि' नमस्करि' कैल गंगास्नान।
एक कौपीन, नाहि द्वितीय़ परिधान॥२९॥

अनुवाद

यह मन्त्र सुनाने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने नमस्कार करके गंगा नदी में स्नान किया। उस समय उनके पास एक ही लँगोटा (कच्छा) था, कोई दूसरा वस्त्र नहीं था।

हेन काले आचार्य-गोसाञि नौकाते पड़िञा।
आइल नूतन कोपीन-बहिर्वास लञा॥३०॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ द्वितीय वस्त्र के बिना खड़े थे तो अद्वैत आचार्य अपने साथ नया लँगोटा तथा बाह्य वस्त्र लेकर नाव से वहाँ आ गये।

आगे आचार्य आसि' रहिला नमस्कार करि'।
आचार्य देखि' बले प्रभु मने संशय़ करि'॥३१॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य आकर महाप्रभु के समक्ष खड़े हो गये और उन्हें नमस्कार किया। उन्हें देख कर महाप्रभु को सारी परिस्थिति के विषय में सन्देह होने लगा।

तुमि त' आचार्य गोसाञि, एथा केने आइला।
आमि वृन्दावने, तुमि केमते जानिला॥३२॥

अनुवाद

भावावेश में ही महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से पूछा, "आप यहाँ क्यों आये? आपको कैसे पता चला कि मैं वृन्दावन में हूँ?"

आचार्य कहे,—तुमि य़ाँहाँ, सेइ वृन्दावन।
मोर भाग्ये गंगातीरे तोमार आगमन॥३३॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य से यह कह कर सारी स्थिति प्रकट कर

दी "आप जहाँ हैं वहीं वृन्दावन है। यह तो मेरा परम सौभाग्य है कि आप गंगा नदी के तट पर आये हैं।"

प्रभु कहे,—नित्यानन्द आमारे वञ्चिला।
गंगाके आनिया मोरे य़मुना कहिला।।३४।।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "नित्यानन्द ने मुझे धोखा दिया है। वह मुझे गंगा के तट पर ले आया है और मुझसे यह बतलाया है कि यह यमुना है।"

आचार्य कहे, मिथ्या नहे श्रीपाद-वचन।
य़मुनाते स्नान तुमि करिला एखन।।३५।।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द पर धोखा देने का आरोप लगाया तो श्रील अद्वैत आचार्य ने कहा, "नित्यानन्द प्रभु ने आपसे जो कुछ कहा है वह झूठ नहीं है। आपने सचमुच अभी यमुना नदी में स्नान किया है।"

गंगाय य़मुना वहे हञा एकधार।
पश्चिमे य़मुना वहे, पूर्वे गंगाधार।।३६।।

अनुवाद

फिर अद्वैत आचार्य ने समझाया कि उस स्थान पर गंगा तथा यमुना दोनों साथ-साथ बहती हैं। पश्चिम की ओर यमुना है और पूर्व की ओर गंगा।

तात्पर्य

गंगा तथा यमुना दोनों इलाहाबाद (प्रयाग) में संगम करती हैं। यमुना पश्चिम से बह कर आती है और गंगा पूर्व से और फिर दोनों मिल जाती हैं। चूँकि चैतन्य महाप्रभु पश्चिम की ओर थे, अतएव उन्होंने यमुना नदी में स्नान किया था।

पश्चिमधारे यमुना बहे, ताहाँ कैल स्नान।
आर्द्र कोपीन छाडि' शुष्क कर परिधान॥३७॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने सुझाया कि चूँकि चैतन्य महाप्रभु ने यमुना नदी में स्नान किया है और उनका लँगोटा गीला है, अतएव उन्हें अपना लँगोटा बदल कर सूखा वस्त्र पहन लेना चाहिए।

प्रेमावेशे तिन दिन आछ उपवास।
आजि मोर घरे भिक्षा, चल मोर वास॥३८॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृष्ण-प्रेम के भावावेश में रह कर आप तीन दिन से अनवरत उपवास करते आ रहे हैं, अतएव मैं आपको अपने घर पर आमन्त्रित करता हूँ, जहाँ आप भिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। आप मेरे साथ मेरे घर चलें।"

एकमुष्टि अन्न मुनि करियाछों पाक।
शुखारुखा व्यञ्जन कैलूँ, सूप आर शाक॥३९॥

अनुवाद

"मैंने अपने घर में मुट्ठी-भर चावल पकाया है। तरकारियाँ भी अत्यन्त सादी हैं। कोई भी व्यञ्जन नहीं है—थोड़ा रसाखा है और कुछ पालक।"

एत बलि' नौकाय चडाञा निल निज-घर।
पादप्रक्षालन कैल आनन्द-अन्तर॥४०॥

अनुवाद

यह कह कर श्री अद्वैत आचार्य उन्हें नाव में चढ़ाकर अपने घर ले आये। वहाँ पर अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के चरण पखारे और इस तरह भीतर-भीतर परम सुखी हुए।

प्रथमे पाक करियाछेन आचार्याणी।
विष्णु-समर्पण कैल आचार्य आपनि॥४१॥

अनुवाद

सर्वप्रथम अद्वैत आचार्य की पत्नी ने सारी खाद्य सामग्री तैयार की। फिर स्वयं श्रील अद्वैत आचार्य ने हर वस्तु भगवान् विष्णु को अर्पित की।

तात्पर्य

यह आदर्श गृहस्थ जीवन है। पति तथा पत्नी एकसाथ रहते हैं और पति भगवान् विष्णु की पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने हेतु कठिन श्रम करता है। पत्नी घर पर भगवान् विष्णु के लिए तरह-तरह के पकवान तैयार करती है और पति उन्हें अर्चाविग्रह को अर्पित करता है। इसके बाद आरती की जाती है और परिजनों तथा अतिथियों को प्रसाद दिया जाता है। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ के घर में कोई-न-कोई अतिथि सदैव रहना चाहिए। अपने बचपन में मैंने देखा है कि मेरे पिता प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथियों का सत्कार करते थे, यद्यपि उन दिनों मेरे पिता की आय अधिक नहीं थी। फिर भी प्रतिदिन कम-से-कम चार अतिथियों को प्रसाद देने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। वैदिक नियमों के अनुसार गृहस्थ को चाहिए कि दोपहर का भोजन करने के पूर्व घर से बाहर निकल कर पुकारे कि कोई बिना खाये तो नहीं है। इस तरह वह लोगों को प्रसाद के लिए बुलाता है। यदि कोई आ जाता है तो वह उसे प्रसाद देता है और यदि अधिक नहीं बचता तो उसे अपने हिस्से में से देना होता है। यदि कोई बुलाने पर नहीं आता तो वह अपना भोजन ग्रहण कर सकता है। इस तरह गृहस्थ का जीवन भी एक तरह की तपस्या है। इसी कारण गृहस्थ का जीवन *गृहस्थ-आश्रम* कहलाता है। यद्यपि अपनी पत्नी और बच्चों के साथ व्यक्ति कृष्णभावनामृत में सुखपूर्वक रह सकता है, किन्तु वह इसके साथ किसी भी मन्दिर में पालन किये जाने वाले नियमों को भी निभाता है। यदि कृष्णभावनामृत नहीं होता तो गृहस्थ का घर *गृहमेधी* का घर कहलाता है। कृष्णभावनामृत से युक्त गृहस्थ वास्तविक गृहस्थ होते हैं अर्थात् वे अपने परिवार तथा अपनी सन्तान के साथ *आश्रम* में रहते हैं। श्री अद्वैत आचार्य आदर्श गृहस्थ थे और उनका घर आदर्श गृहस्थ आश्रम था।

तिन ठाञि भोग बाड़ाइल सम करि'।
कृष्णेर भोग बाड़ाइल धातु-पात्रोपरि॥४२॥

अनुवाद

सारे पकाये गये भोजन के तीन बराबर भाग किये गये। एक भाग भगवान् कृष्ण को अर्पित करने के लिए धातु की थाली पर परोसा गया।

तात्पर्य

बाड़ाइल का अर्थ है "बढ़ा हुआ" और यह शब्द इस श्लोक में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बंगाल में गृहस्थों में प्रचलित अत्यन्त शिष्ट शब्द है। जब तैयार भोजन में से एक अंश निकाल लिया जाता है तो वह घट जाता है। किन्तु बंगाल में इसे *बढ़ाइल* कहने का प्रचलन है। यदि कृष्ण के लिए भोजन तैयार किया ज़ाता है और फिर उसे कृष्ण तथा वैष्णवों को अर्पित किया जाता है तो भंडार बढ़ जाता है, कभी घटता नहीं।

बत्तिशा-आठिया-कलार आङ्गटिया पाते।
दुइ ठाञि भोग बाड़ाइल भाल मते॥४३॥

अनुवाद

तीन भागों में से एक भाग धातु की थाली पर रखा गया और शेष दो को केले के पत्तों पर। ये पत्तियाँ बीच से कटी नहीं थीं और ऐसे केले के वृक्ष से ली गई थीं जिसमें कम-से-कम बत्तीस घेवर लगे थे। इन दोनों पत्तों में निम्नलिखित व्यंजन रखे गये थे।

मध्ये-पीत-घृतसिक्त शाल्यन्नेर स्तूप।
चारिदिके व्यञ्जन-डोङ्गा, आर मुद्ग-सूप॥४४॥

अनुवाद

अत्यन्त सुन्दर दाने वाले ठीक से पके चावल का ढेर लगा था और बीच में गाय के दूध से निकाला गया पीले रंग का घी था। चावल के ढेर के चारों ओर केले के पेड़ों की छाल से बने पात्र थे जिनमें तरह तरह की तरकारियाँ तथा मूँग की दाल थी।

सार्द्रक, वास्तुक-शाक विविध प्रकार।
पटोल, कुष्माण्ड-बड़ि, मानकचु आर॥४५॥

अनुवाद

पकी तरकारियों में पटोला, कुम्हड़ा, मानकचु था तथा अदरक और पालक से बना सलाद था।

चड़-मरिच-सुख्त दिया सब फल-मूले।
अमृत-निन्दक पञ्चविध तिक्त-झाले।।४६।।

अनुवाद

सभी प्रकार की तरकारियों के साथ सुख्त एक तिक्त तरबूज मिला था जो अमृत के स्वाद को मात करने वाला था। कडुवे तथा चरपरे सुख्त की पाँच किस्में थीं।

कोमल निम्बपत्र सह भाजा वार्ताकी।
पटोल-फुलबड़ि-भाजा, कुष्माण्ड-मानचाकि।।४७।।

अनुवाद

विविध तरकारियों में नीम की मुलायम पत्तियों का एवं बैंगन का भरता था। पटोल फल को फुलबड़ी के साथ तला गया था। कुष्माण्ड-मानचाकि नामक व्यंजन भी था।

तात्पर्य

पाकशास्त्र के सम्पादकों से प्रार्थना है कि वे श्री कविराज गोस्वामी द्वारा अनुभव किये गये इन सारे व्यंजनों को सम्मिलित कर लें।

नारिकेल-शस्य, छाना, शर्करा मधुर।
मोछा-घण्ट, दुग्धकुष्माण्ड, सकल प्रचुर।।४८।।

अनुवाद

नारियल का गूदा, दही तथा मिश्री से बना व्यंजन अत्यन्त मीठा था। केला के फूल की कढ़ी और दूध के साथ पकाया गया कुम्हड़ा प्रचुर मात्रा में था।

मधुराम्लबड़ा, अम्लादि पाँच-छय।
सकल व्यञ्जन कैल लोके य़त हय।।४९।।

अनुवाद

मीठे तथा खट्टे बड़े और पाँच-छः तरह के खट्टे व्यंजन थे। सारी तरकारियाँ इस तरह बनाई गई थीं कि वहाँ पर उपस्थित सारे लोग प्रसाद-रूप में ग्रहण कर सकें।

मुद्गबड़ा, कलाबड़ा, माषबड़ा, मिष्ट।
क्षीरपुली, नारिकेल, य़त पिठा इष्ट॥५०॥

अनुवाद

मूँग की दाल के बड़े, पके केले से बने बड़े, उड़द की दाल के बड़े, तरह तरह की मिठाइयाँ, क्षीरपुली (चावल के बड़े खीर के साथ), नारियल से बना व्यंजन तथा सभी प्रकार के बड़े थे।

बत्तिशा-आठिया कलार डोङ्गा बड़-बड़।
चले हाले नाहि,—डोङ्गा अति बड़-बड़॥५१॥

अनुवाद

सारी तरकारियाँ ऐसे केले के पत्तों से बने दोनों में परोसी गई थीं जिनमें कम-से-कम बत्तीस घेवर लगे थे। ये दोने काफी मजबूत थे और इधर-उधर हिलडुल नहीं सकते थे, न तिरछे हो सकते थे।

पञ्चाश पञ्चाश डोङ्गा व्यञ्जने पूरिञा।
तिन भोगेर आशे पाशे राखिल धरिञा॥५२॥

अनुवाद

भोजन करने के तीनों स्थानों के चारों ओर तरह तरह की तरकारियों से भरे एक सौ दोने थे।

सघृत-पायस नव-मृत्कुण्डिका भरिञा।
तिन पात्रे घनावर्त-दुग्ध राखेत धरिञा॥५३॥

अनुवाद

सभी तरकारियों के चारों ओर घी से मिश्रित खीर रखी थी। इसे नये मिट्टी के बर्तनों में रखा गया था। औंटे दूध से भरे मिट्टी के बर्तन तीनों स्थानों पर रखे गये थे।

दुग्ध-चिड़ा-कल आर दुग्ध-लक्लकी।
यतेक करिल' ताहा कहिते ना शकि॥५४॥

अनुवाद

अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त दूध में बना चिउड़ा और उसके साथ मिलाया गया केला तथा दूध में पकाया सफेद कुम्हड़ा था। वहाँ पर उपस्थित सभी व्यंजनों को बता पाना मेरे लिये कठिन है।

दुइ पाशे धरिल सब मृत्कुण्डिका भरि'।
चाँपाकला-दधि-सन्देश कहिते ना पारि॥५५॥

अनुवाद

दो स्थानों पर दही, सन्देश (एक मिठाई) तथा केला से बना एक अन्य व्यंजन मिट्टी के पात्रों में भर कर रखा हुआ था। मैं उन सबों का वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ।

अन्न-व्यंजन-उपरि दिल तुलसीमञ्जरी।
तिन जलपात्रे सुवासित जल भरि'॥५६॥

अनुवाद

पके चावल एवं सारी तरकारियों के ढेर के ऊपर तुलसी की मञ्जरियाँ थीं। सुगन्धित गुलाब-जल से भरे पात्र भी रखे थे।

तिन शुभ्रपीठ, तार उपरि वसन।
एइरूपे साक्षात् कृष्णे कराइल भोजन॥५७॥

अनुवाद

तीनों आसनों पर मुलायम कपड़े बिछे थे। इस तरह भगवान् कृष्ण को सारी भोज्य सामग्री अर्पित की गई और उन्होंने इसे बड़े ही मन से ग्रहण किया।

आरतिर काले दुइ प्रभु बोलाइल।
प्रभु-संगे सबे आसि' आरति देखिल॥५८॥

अनुवाद

भोजन अर्पित करने के बाद भोग-आरती सम्पन्न करने की प्रथा है।

अद्वैत प्रभु ने दोनों भाइयों—चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द—प्रभु को आरती देखने के लिए कहा। दोनों प्रभु तथा वहाँ उपस्थित सारे लोग आरती उत्सव देखने गये।

आरति करिया कृष्णे करा'ल शयन।
आचार्य आसि' प्रभुरे तबे कैला निवेदन॥५९॥

अनुवाद

मन्दिर में अर्चा-विग्रहों की आरती हो चुकने के बाद कृष्ण को सुला दिया गया। तब अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ निवेदन करने के लिए निकले।

गृहेर भितरे प्रभु करुन गमन।
दुइ भाइ आइला तबे करिते भोजन॥६०॥

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु ने कहा, "हे प्रभुओ! इस कमरे में चलें।" तब श्री चैतन्य तथा नित्यानन्द दोनों भाई प्रसाद लेने के लिए आगे बढ़े।

मुकुन्द, हरिदास,—दुइ प्रभु बोलाइल।
य़ोडहाते दुइजन कहिते लागिल॥६१॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु प्रसाद लेने गये तो उन्होंने मुकुन्द तथा हरिदास को अपने साथ चलने के लिए बुलाया। किन्तु मुकुन्द तथा हरिदास दोनों ने हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा।

मुकुन्द कहे—मोर किछु कृत्य नाहि सरे।
पाछे मुञि प्रसाद पामु, तुमि य़ाह घरे॥६२॥

अनुवाद

बुलाये जाने पर मुकुन्द ने निवेदन किया, "हे महाशय! मुझे कुछ काम करना शेष है। मैं बाद में प्रसाद ग्रहण करूँगा, अतएव आप दोनों प्रभु कमरे के भीतर जायँ।"

हरिदास कहे—मुञि पापिष्ठ अधम।
बाहिरे एक मुष्टि करिमु भोजन॥६३॥

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "मैं अत्यन्त पापी और अधम हूँ। मैं बाहर ही प्रतीक्षा करते हुए बाद में एक मुट्ठी प्रसाद खाऊँगा।"

तात्पर्य

यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमान अत्यन्त हिल-मिलकर रहते थे, फिर भी उनमें अन्तर तो था ही। मुसलमानों को *यवन* अथवा निम्न कुल में उत्पन्न माना जाता था और जब भी उन्हें आमन्त्रित किया जाता था तो उन्हें दरवाजे पर ही भोजन परोसा जाता था। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु ने हरिदास ठाकुर को अपने साथ प्रसाद ग्रहण करने के लिए बुलाया, किन्तु उन्होंने अत्यन्त विनीत भाव से कहा, "मैं घर के बाहर ही प्रसाद ले लूँगा।" यद्यपि हरिदास ठाकुर सम्मान्य वैष्णव थे, जिन्हें अद्वैत आचार्य, नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु ने स्वीकार किया था, फिर भी सामाजिक शान्ति भंग न हो इसलिए अपने को मुसलमान के पद पर रखते हुए वे हिन्दू जाति की सीमा के बाहर ही रहे। इसीलिए उन्होंने घर के बाहर प्रसाद ग्रहण करने की बात की। यद्यपि वे उच्च पद पर थे और अन्य महान् वैष्णवों के समान थे, फिर भी वे अपने को *पापिष्ट* और *अधम* मानते थे। भले ही आध्यात्मिक दृष्टि से कोई वैष्णव कितना ही बढ़ाचढ़ा क्यों न हो, ऊपर से वह अत्यन्त दीन एवं विनीत बना रहता है।

दुइ प्रभु लञा आचार्य गेला भितर घरे।
प्रसाद देखिया प्रभुर आनन्द अन्तरे॥६४॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य अपने साथ नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु को कमरे के भीतर ले गये, जहाँ दोनों प्रभुओं ने प्रसाद की व्यवस्था देखी। देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यधिक प्रसन्न हुए।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु इसलिए अत्यधिक प्रसन्न हुए क्योंकि उन्होंने देखा कि कृष्ण के लिए नाना प्रकार के पकवान तैयार किये गये हैं। वास्तव में सभी

प्रकार का प्रसाद कृष्ण के लिए तैयार किया जाता है, मनुष्यों के लिए नहीं, किन्तु भक्तगण इस प्रसाद को बड़े ही आनन्द के साथ खाते हैं।

ऐछे अन्न ये कृष्णके कराय भोजन।
जन्मे जन्मे शिरे धरों ताँहार चरण॥६५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को अर्पित किये जाने वाले भोजन के पकाने की सारी विधियों की अभ्यर्थना की। वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कह दिया "साफ-साफ कहता हूँ कि जो कोई कृष्ण को इतना अच्छा भोजन अर्पित कर सकता है, उसके चरणकमलों को मैं जन्म-जन्मान्तर अपने शिर पर धारण करने को तैयार हूँ।"

प्रभु जाने तिन भोग—कृष्णेर नैवेद्य।
आचार्येर मनःकथा नहे प्रभुर वेद्य॥६६॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कमरे में घुसे तो उन्होंने भोजन के तीन भाग देखे और यह समझा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं। किन्तु वे अद्वैत आचार्य के मनोभावों को नहीं समझ पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि धातु की थाली में जो भोजन परोसा गया था, वह कृष्ण के लिए था और अन्य दो भाग केला के बड़े बड़े पत्तों पर परोसे गये थे। धातु की थाली का भोग अद्वैत आचार्य ने अपने हाथों से कृष्ण को अर्पित किया। शेष दो भाग जो केले के पत्तों पर थे वे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा ग्रहण किये जाने थे। यही अद्वैत आचार्य की मंशा थी, किन्तु उन्होंने यह बात श्री चैतन्य महाप्रभु को नहीं बतलाई। अतएव जब महाप्रभु ने तीन स्थानों पर भोजन परोसा देखा तो उन्होंने सोचा कि ये तीनों कृष्ण के लिए हैं।

प्रभु बले—वैस तिने करिये भोजन।
आचार्य कहे—आमि करिब परिवेशन॥६७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चलो, इन तीनों स्थानों में बैठ कर हम प्रसाद ग्रहण करें।" किन्तु अद्वैत आचार्य ने कहा "मैं प्रसाद वितरित करूँगा।"

कोन् स्थाने वसिब, आर आन दुइ पात।
अल्प करि' आनि' ताहे देह व्यञ्जन भात॥६८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सोचा कि तीनों परसे (भोजन) वितरण करने के लिए हैं, अतएव उन्होंने यह कहते हुए दो बड़ेबड़े केले के पत्ते माँगे—"हमें थोड़ी तरकारी तथा चावल परोसें।"

आचार्य कहे—वैस दोँहे पिँडिर उपरे।
एत बलि' हाते धरि' बसाइल दूँहारे॥६९॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "इन आसनों पर बैठें।" उन्होंने उन दोनों के हाथ पकड़ कर बैठाया।

प्रभु कहे—संन्यासीर भक्ष्य नहे उपकरण।
इहा खाइले कैछे हय इन्द्रिय वारण॥७०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा "संन्यासी के लिए उचित नहीं कि इतनी तरह के भोजन करे। यदि वह ऐसा करता है तो फिर वह अपनी इन्द्रियों को किस तरह वश में रख सकता है?"

तात्पर्य

उपकरण शब्द दाल, तरकारी तथा चावल के साथ खाये जाने वाले नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों को सूचित करने वाला है। किन्तु संन्यासी के लिए ऐसे स्वादिष्ट व्यंजन खाना उचित नहीं। यदि वह ऐसा करता है तो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। श्रील चैतन्य महाप्रभु संन्यासियों को स्वादिष्ट व्यंजन खाने के लिए प्रोत्साहन नहीं देते थे, क्योंकि सारा वैष्णव मत *वैराग्य-विद्या* अर्थात् वैराग्य-भाव-सम्पन्न होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु

ने रघुनाथ दास गोस्वामी को भी सलाह दी थी कि वे न तो स्वादिष्ट व्यंजन खायें, न अच्छे वस्त्र पहनें, न संसारी विषयों की बात करें। संन्यासियों के लिए ये बातें वर्जित हैं। भक्त कभी भी ऐसी वस्तु ग्रहण नहीं करता जो पहले कृष्ण को अर्पित न हुई हो। कृष्ण को जो भी अच्छे व्यंजन अर्पित किये जाते हैं, वे गृहस्थों को दे दिये जाते हैं। वैसे कृष्ण को अनेक अच्छी अच्छी वस्तुएँ अर्पित की जाती हैं—जैसे हार, आभूषण, उत्तम भोजन, यहाँ तक कि अच्छी तरह से तैयार पान-सुपारी, किन्तु विनीत वैष्णव अपने शरीर को भौतिक तथा घृणित मान कर ऐसी वस्तुएँ स्वयं ग्रहण नहीं करता। वह सोचता है कि ऐसी वस्तुएँ ग्रहण करने से वह भगवान् के चरणकमलों के प्रति अपराध करेगा। जो *सहजिया* हैं, वे यह नहीं समझ सकेंगे कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से दो अलग-अलग केला के पत्ते लाने के लिए और एक में अपने लिए थोड़ा-सा प्रसाद देने के लिए कहा था तो इसमें उनका क्या मन्तव्य था।

आचार्य कहे—छाड़ तुमि आपनार चुरि।
आमि सब जानि तोमार सँन्यासेर भारिभूरि॥७१॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले से परोसे हुए उस भोजन को ग्रहण नहीं किया तो अद्वैत आचार्य ने कहा "कृपया अपना दुराव त्यागिये। मैं जानता हूँ कि तुम कौन हो और मैं तुम्हारे द्वारा संन्यास लेने के रहस्य को भी जानता हूँ।"

भोजन करह, छाड़ वचन-चातुरी।
प्रभु कहे—एत अन्न खाइते ना पारि॥७२॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे वाक्चातुरी त्याग कर भोजन करें। इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं इतना भोजन नहीं खा सकता।"

आचार्य बले—अकपटे करह आहार।
यदि खाइते ना पार पाते रहिबेक आर॥७३॥

अनुवाद

तब अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु से अनुरोध किया कि वे बहाना छोड़ कर प्रसाद ग्रहण करें। यदि वे पूरा नहीं खा सकते तो शेष भाग थाली पर पड़ा रहेगा।

प्रभु बले—एत अन्न नारिब खाइते।
संन्यासीर धर्म नहे उच्छिष्ट राखिते॥७४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं इतना भोजन नहीं खा सकूँगा और यह सन्यासी का धर्म नहीं है कि जूठन छोड़े।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अनुसार (११.१८.१९)—

बहिर्जलाशयम् गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः।
विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषं आहृतम्॥

"संन्यासी को गृहस्थ के घर से जो भी खाद्य पदार्थ मिले वह उसे लेकर किसी झील या नदी के किनारे जाये और विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य को (तीन भाग) अर्पित करके पूरी भिक्षा खा ले, उसका तनिक भी भाग दूसरों के खाने के लिए न छोड़े।" यह आदेश है श्रीमद्भागवत का संन्यासियों के लिए।

आचार्य बले—नीलाचले खाओ चौयान्नबार।
एकबारे अन्न खाओ शत शत भार॥७५॥

अनुवाद

इस सन्दर्भ में श्री अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु द्वारा जगन्नाथ पुरी में भोजन करने का हवाला दिया। भगवान् जगन्नाथ और श्री चैतन्य महाप्रभु अभिन्न हैं। अद्वैत आचार्य ने बतलाया कि जगन्नाथ पुरी में श्री चैतन्य महाप्रभु इससे चौवन गुना खाते थे और हर बार वे सैकड़ों पात्र का भोजन करते थे।

तिन जनार भक्ष्यपिण्ड—तोमार एक ग्रास।
तार लेखाय एइ अन्न नहे पञ्चग्रास॥७६॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने कहा, "तीन जन जितना खाते हैं वह तुम्हारे एक कौर के बराबर भी नहीं है। उसकी तुलना में ये खाद्य पदार्थ तुम्हारे पाँच कौर भी नहीं होंगे।"

मोर भाग्ये, मोर घरे, तोमार आगमन।
छाडइ चातुरी, प्रभु, करह भोजन॥७७॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने आगे कहा, "यह मेरा परम सौभाग्य है कि आप मेरे घर पधारे हैं। कृपया बातें मत बनाइये। बातें न करके भोजन करना शुरू कीजिये।"

एत बलि' जल दिल दुइ गोसाञिर हाते।
हासिया लागिला दुँहे भोजन करिते॥७८॥

अनुवाद

यह कह कर अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं को जल दिया, जिससे वे दोनों अपने हाथ धो सकें। तब दोनों प्रभु बैठ गये और हँसते हुए दोनों प्रसाद खाने लगे।

नित्यानन्द कहे,—कैलूँ तिन उपवास।
आजि पारणा करिते छिल बड़ आश॥७९॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "मैं लगातार तीन दिनों से उपवास करता रहा हूँ। मुझे आशा थी कि आज मेरा उपवास टूटेगा।"

आज उपवास हैल आचार्य-निमन्त्रणे।
अर्धपेट ना भरिबे एइ ग्रासेक अन्ने॥८०॥

अनुवाद

जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु सोच रहे थे कि भोजन की मात्रा अत्यधिक

है, वहीं नित्यानन्द प्रभु ने सोचा कि वह तो एक कौर भी नहीं है। वे तीन दिन से उपवास कर रहे थे और उन्हें पूरी आशा थी कि आज वे अपना उपवास भंग करेंगे। उन्होंने कहा, "यद्यपि अद्वैत आचार्य ने मुझे आज खाने के लिए बुलाया है, किन्तु आज भी मेरा उपवास है। इतने भोजन से तो मेरा आधा पेट भी नहीं भरेगा।"

आचार्य कहे—तुमि हओ तैर्थिक संन्यासी।
कभु फल-मूल खाओ, कभु उपवासी॥८१॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "आप तो तीर्थों की यात्रा करने वाले संन्यासी ठहरे। कभी आप फल खाते हैं तो कभी कन्दमूल और कभी केवल उपवास करते हैं।"

दरिद्र-ब्राह्मण-घरे ये पाइला मुष्ट्येक अन्न।
इहाते सन्तुष्ट हओ, छाड़ लोभ-मन॥८२॥

अनुवाद

"मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ और आप मेरे घर पधारे हैं। आपको जो थोड़ा-बहुत भोजन मिला है, इतने से सन्तुष्ट हों और अपनी लोभी मनोवृत्ति को छोड़ दें।"

नित्यानन्द बले—येबे कैले निमन्त्रण।
तत दिते चाह, यत करिये भोजन॥८३॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, "मैं जो भी होऊँ, तुमने मुझे बुलाया है, अतएव तुम्हें चाहिए कि मैं जितना खाना चाहूँ उतना दें न!"

शुनि' नित्यानन्देर कथा ठाकुर अद्वैत।
कहेन ताँहारे किछु पाइया पिरीत॥८४॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य को नित्यानन्द की बातें सुनने के बाद मौका मिला कि वे मजाक करते, अतः वे इस प्रकार बोले।

"भ्रष्ट अवधूत तुमि, उदर भरिते।
संन्यास लइयाछ, बूझि, ब्राह्मण दण्डिते॥८५॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "तुम भ्रष्ट परमहंस हो और तुमने पेट भरने के लिए संन्यास ग्रहण किया है। मैं समझ गया तुम्हारा पेशा है ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाना।"

तात्पर्य

एक स्मार्त ब्राह्मण तथा एक वैष्णव गोस्वामी में सदैव मतभेद रहता है। यहाँ तक कि फलित ज्योतिष तथा नक्षत्र गणनाओं तक में स्मार्त मत तथा वैष्णव मत पाये जाते हैं। नित्यानन्द को *भ्रष्ट अवधूत* (भ्रष्ट परमहंस) कह कर एक तरह से अद्वैत आचार्य ने नित्यानन्द को परमहंस के रूप में स्वीकार किया। दूसरे शब्दों में, नित्यानन्द प्रभु को स्मार्त ब्राह्मणों के नियमों से कोई सरोकार न था। इस तरह उनकी भर्त्सना करने के बहाने अद्वैत आचार्य वास्तव में उनकी प्रशंसा कर रहे थे। *अवधूत* अर्थात् *परमहंस* अवस्था में कोई *विषयी* प्रतीत हो सकता है, लेकिन वास्तव में उसे विषयों से कोई प्रयोजन नहीं रहता। इस अवस्था में वह कभी संन्यासी का वेश धारण करता है और कभी नहीं भी। कभी-कभी वह गृहस्थ की तरह वस्त्र धारण करता है। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि यह अद्वैत आचार्य और नित्यानन्द प्रभु के बीच मजाक चल रहा था। वे इसे अपमान नहीं समझ रहे थे।

खडदह में कभी-कभी लोग नित्यानन्द प्रभु को *शाक्त सम्प्रदाय* से सम्बद्ध मान बैठते हैं, जिनका दर्शन है *अन्तः शाक्तः बहिः शैवः सभायां वैष्णवो मतः*। शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार *कौलावधूत* कहलाने वाला व्यक्ति बाहर से शिव का महान् भक्त प्रतीत होता है, किन्तु सोचता है भौतिक दृष्टि से। जब ऐसा व्यक्ति वैष्णवों की सभा में होता है तो वह वैष्णव प्रतीत होता है। वास्तव में नित्यानन्द प्रभु इस सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं थे। वे वैदिक संन्यासी स्वरूप ब्रह्मचारी थे। वे *परमहंस* थे। कभी-कभी उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ का शिष्य माना जाता है। ऐसा मान लेने पर वे मध्व सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। वे बंगाल के *तान्त्रिक सम्प्रदाय* से सम्बद्ध नहीं थे।

तुमि खेते पार दश-विश मानेर अन्न।
आमि ताहा काँहा पाव दरिद्र ब्राह्मण॥८६॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु को कोसते हुए अद्वैत आचार्य ने कहा, "तुम दस-बीस मन चावल खा सकते हो। मैं तो ठहरा निर्धन ब्राह्मण। भला मैं इतना चावल कैसे पा सकता हूँ?"

तात्पर्य

एक मन लगभग चार किलो के बराबर होता है।

ये पाञछ मुष्ट्येक अन्न, ताहा खाञा उठ।
पागलामि ना करिह, ना छड़ाइओ झूठ॥८७॥

अनुवाद

"जो कुछ तुम्हें दिया है, भले ही वह मुट्ठी-भर चावल क्यों न हो, उसे खाओ और उठ जाओ। अपना पागलपन मत दिखलाओ और जूठन को इधर-उधर मत बिखराओ।"

एइ मत हास्यरसे करेन भोजन।
अर्ध-अर्ध खाञा प्रभु छाड़ेन व्यञ्जन॥८८॥

अनुवाद

इस तरह नित्यानन्द प्रभु तथा चैतन्य महाप्रभु भोजन करते रहे और अद्वैत आचार्य से मजाक करते रहे। श्री चैतन्य महाप्रभु को जितनी तरकारियाँ परासी गयी थीं उन्होंने उनमें से हर एक को आधा-आधा खाकर छोड़ दिया।

सेइ व्यञ्जन आचार्य पुनः करेन पूरण।
एइ मत पुनः पुनः परिवेशे व्यञ्जन॥८९॥

अनुवाद

जब पत्ते की आधी तरकारी चुक जाती तो अद्वैत आचार्य फिर से उसे पूरा कर देते। इस तरह ज्योंही महाप्रभु आधा व्यंजन समाप्त करते कि अद्वैत आचार्य पुनः-पुनः उसे पूरा कर देते।

दोना व्यञ्जने भरि' करेन प्रार्थना।
प्रभु बलेन—आर कत करिब भोजन॥९०॥

अनुवाद

दोने को तरकारी से पूर्ण करके अद्वैत आचार्य ने उनसे प्रार्थना की कि और खायें किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने कहा—"मैं और कितना खा सकता हूँ?"

आचार्य कहे—ये दियाछि, ताहा ना छाड़िबा।
एखन ये दिये, तार अर्धेक खाइबा॥९१॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "कृपा करके मेरे द्वारा दिये हुए अन्न को न छोड़ें। अब मैं जो भी दे रहा हूँ, उसका आधा खाकर आधा छोड़ सकते हैं।"

नाना यत्न-दैन्य प्रभुरे कराइल भोजन।
आचार्येर इच्छा प्रभु करिल पूरण॥९२॥

अनुवाद

इस तरह विविध प्रकार से अनुनय-विनय करके अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु एवं नित्यानन्द प्रभु को भोजन कराया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य की सारी इच्छाएँ पूरी कर दीं।

नित्यानन्द कहे—आमार पेट ना भरिल।
लञा याह, तोर अन्न किछु ना खाइल॥९३॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने पुनः हँसी में कहा, "मेरा पेट अब भी नहीं भरा। अपना भोजन ले जाइये। मैंने इसमें से कुछ भी नहीं खाया।"

एत बलि' एक ग्रास भात हाते लञा।
उझालि' फेलिल आगे येन क्रुद्ध हञा॥९४॥

अनुवाद

यह कह कर नित्यानन्द ने एक मुट्ठी चावल लिया और उसे फर्श पर

अपने आगे फेंक दिया मानों वे क्रुद्ध हों।

भात दुइ-चारि लागे आचार्येर अङ्गे।
भात अङ्गे लञा आचार्य नाचे बहुरङ्गे॥९५॥

अनुवाद

जब इस फेंके हुए चावल के दो-चार दाने अद्वैत आचार्य के शरीर से लगे तो वे उसी तरह चावल लगे शरीर से तरह-तरह से नाचने लगे।

अवधूतेर झूठा लागिल मोर अङ्गे।
परम पवित्र मोरे कैल एइ ढङ्गे॥९६॥

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंका गया चावल अद्वैत आचार्य के शरीर से जा लगा तो आचार्य ने परमहंस नित्यानन्द द्वारा फेंके गये उस जूठन के स्पर्श से अपने को परम पवित्र समझा।

तात्पर्य

अवधूत शब्द समस्त विधि-विधानों के परे रहने वाले व्यक्ति का सूचक है। कभी-कभी नित्यानन्द प्रभु संन्यासियों के विधि-विधानों का पालन न करते हुए मस्त अवधूत का आचरण प्रदर्शित करते थे। उन्होंने अपने जूठे भोजन को जमीन पर फेंक दिया था, जिसका कुछ भाग अद्वैत आचार्य के शरीर से छू गया था। अद्वैत आचार्य ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया क्योंकि उन्होंने अपने को स्मार्त ब्राह्मण समुदाय के सदस्य-रूप में प्रस्तुत किया। नित्यानन्द प्रभु द्वारा फेंके गये जूठन के स्पर्श से अद्वैत आचार्य ने अनुभव किया मानों उनके समस्त स्मार्त कलुष धुल गये हों। शुद्ध वैष्णव का जूठन *महामहाप्रसाद* कहलाता है। यह अत्यन्त आध्यात्मिक होता है और विष्णु-तुल्य माना जाता है। ऐसा जूठन सामान्य नहीं होता। गुरु को परमहंस पद को प्राप्त माना जाता है और वह वर्णाश्रम-व्यवस्था के दायरे में नहीं आता। गुरु तथा उसके ही तुल्य परमहंसों या शुद्ध वैष्णवों के जूठन पवित्र करने वाले होते हैं। जब सामान्य व्यक्ति ऐसे प्रसाद का स्पर्श करता है तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और वह शुद्ध ब्राह्मण के पद तक उठ जाता है। अद्वैत आचार्य का व्यवहार तथा उनके कथन उन सामान्य लोगों

के समझने के लिए हैं जो आध्यात्मिक मूल्यों की शक्ति से अवगत नहीं होते और प्रामाणिक गुरु तथा शुद्ध वैष्णवों के जूठन की शक्ति को नहीं जानते।

तोरे निमन्त्रण करि' पाइनु तार फल।
तोर जाति-कुल नाहि, सहजे पागल॥९७॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने हँसी-हँसी में कहा, "अरे नित्यानन्द! मैंने तुम्हें आमन्त्रित किया है और उसका फल भी मुझे मिल चुका। तुम्हारी कोई जाति या कुल नहीं है। तुम स्वभाव से पगले हो।"

तात्पर्य

सहजे पागल इसका सूचक है कि नित्यानन्द प्रभु परमहंस अवस्था को प्राप्त थे। चूँकि वे सदैव राधाकृष्ण तथा उनकी सेवा का स्मरण किया करते थे, अतएव यह दिव्य पागलपन था। श्री अद्वैत आचार्य इसी तथ्य की ओर संकेत कर रहे थे।

आपनार सम मोरे करिबार तरे।
झूठा दिले, विप्र बलि' भय ना करिले॥९८॥

अनुवाद

"तुमने मुझे भी अपने समान पागल बनाने के लिए ही मेरे ऊपर जूठन फेंका है। तुम्हें इसका भी डर नहीं हुआ कि मैं एक ब्राह्मण हूँ।"

तात्पर्य

आपनार सम शब्द इस बात के सूचक हैं कि अद्वैत आचार्य अपने को स्मार्त ब्राह्मण मानते थे और नित्यानन्द प्रभु को शुद्ध वैष्णव। नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें अपना जूठन इसीलिए दिया जिससे वे उन्हीं के समान पद को प्राप्त हों और शुद्ध वैष्णव या परमहंस बन सकें। अद्वैत आचार्य का कथन इसका सूचक है कि परमहंस वैष्णव दिव्य पद पर आसीन होता है। शुद्ध वैष्णव पर स्मार्त ब्राह्मणों के विधि-विधान लागू नहीं होते। इसीलिए अद्वैत आचार्य ने कहा—*आपनार सम मोरे करिबार तरे*—"अपने ही बराबर करने के लिए।" शुद्ध वैष्णव या परमहंस पद को प्राप्त व्यक्ति जूठन (*महा-प्रसाद*)

को आध्यात्मिक मानता है। वह उसे भौतिक या इन्द्रियतृप्ति करने वाला नहीं मानता। वह महाप्रसाद को सामान्य दाल-भात नहीं, अपितु आध्यात्मिक वस्तु मानता है। शुद्ध वैष्णव के जूठन की बात और ही है, यहाँ तक कि यदि इसमें चण्डाल भी अपना मुँह लगा दे तो भी इसके दूषित होने का प्रश्न नहीं उठता। वास्तव में ऐसा *महाप्रसाद* खाने से मनुष्य सारे सांसारिक कल्मष से मुक्त हो जाता है। ऐसा शास्त्रों का मत है।

नित्यानन्द बले,—एइ कृष्णेर प्रसाद।
इहाके 'झूठा' कहिले, तुमि कैल अपराध॥९९॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने उत्तर दिया, " यह भगवान् कृष्ण द्वारा छोड़ा गया जूठन है। यदि आप इसे सामान्य जूठन समझते हैं तो आप अपराध कर रहे हैं।"

तात्पर्य

बृहद् विष्णु-पुराण में बतलाया गया है कि जो *महाप्रसाद* को सामान्य दाल-भात मानता है, वह महान् अपराध करता है। सामान्य खाद्य वस्तुएँ स्पृश्य तथा अस्पृश्य होती हैं, किन्तु प्रसाद के साथ ऐसा द्वैतभाव नहीं होता। *प्रसाद* दिव्य होता है। उसमें उसी तरह कोई विकार या कलुष नहीं होता, जिस तरह विष्णु के शरीर में कोई विकार या कलुष नहीं रहता। इस तरह यदि चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि द्वैतभाव रखता है तो उसे कोढ़ हो जाता है और वह अपने सारे परिवार वालों के द्वारा त्यक्त हो जाता है। ऐसा अपराधी नरक जाता है। यह *बृहद विष्णु-पुराण* का आदेश है।

शतेक संन्यासी य़दि कराइ भोजन।
तबे एइ अपराध हइबे खण्डन॥१००॥

अनुवाद

"यदि आप एक सौ संन्यासियों को अपने घर बुलाकर उन्हें भोजन करायें तो आपका अपराध खण्डित हो सकेगा।"

आचार्य कहे—ना करिब संन्यासि-निमन्त्रण।
संन्यासी नाशिल मोर सब स्मृति-धर्म॥१०१॥

बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान।
मुकुन्द-हरिदास लइया करइ भोजन॥१०६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अद्वैत आचार्य! तुमने मुझे बहुत नाच नचाया। अब तो यह आदत छोड़ो। मुकुन्द और हरिदास के साथ जाकर भोजन करो।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ पर अद्वैत आचार्य को यह बतला रहे हैं कि संन्यासी के लिए न तो अच्छे बिस्तर पर लेटना शोभा देता है न लौंग इलायची खाना और न ही पूरे शरीर पर चन्दन-लेप करना। उसे सुगन्धित फूल-मालाएँ स्वीकार करना और शुद्ध वैष्णव से पाँव दबाना भी शोभा नहीं देता। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुमने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले ही मुझे नाच नचा दिया है। कृपा करके अब तो रुको। अब जाकर मुकुन्द तथा हरिदास के साथ भोजन करो।"

तबे त' आचार्य सङ्गे लञा दुइ जने।
करिल इच्छाय भोजन, ये आछिल मने॥१०७॥

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य ने मुकुन्द तथा हरिदास के साथ प्रसाद ग्रहण किया और उन तीनों ने भरपेट इच्छानुसार भोजन किया।

शान्तिपुरेर लोक शुनि' प्रभुर आगमन।
देखिते आइला लोक प्रभुर चरण॥१०८॥

अनुवाद

जब शान्तिपुर के लोगों ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ ठहरे हैं तो वे तुरन्त ही उनके चरणकमलों का दर्शन करने आये।

'हरि' 'हरि' बले लोक आनन्दित हञा।
चमत्कार पाइल प्रभुर सौन्दर्य देखिञा॥१०९॥

अनुवाद

सारे लोग अत्यन्त हर्षित होकर जोर-जोर से भगवान् का नाम—'हरि

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने उत्तर दिया, "अब मैं फिर से किसी संन्यासी को नहीं बुलाऊँगा, क्योंकि संन्यासी ने ही मेरे ब्राह्मण स्मृति-नियमों को बिगाड़ा है।"

एत बलि' दुइ जने कराइल आचमन।
उत्तम शय्याते लइया कराइल शयन।।१०२।।

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने दोनों प्रभुओं के हाथ और मुँह धुलवाये। फिर उन्हें उत्तम बिस्तर पर लेकर विश्राम कराने के लिए लिटा दिया।

लवङ्ग एलाची-बीज—उत्तम रसवास।
तुलसी-मञ्जरी सह दिल मुखवास।।१०३।।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों जनों को लौंग तथा इलायची के साथ तुलसी-मंजरी खिलाई। इस तरह उनके मुखों में सुगन्ध-युक्त स्वाद उत्पन्न हो गया।

सुगन्धि चन्दने लिप्त कैल कलेवर।
सुगन्धि पुष्पमाला आनि' दिल हृदय-उपर।।१०४।।

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने दोनों जनों के शरीरों पर चन्दन का लेप किया और फिर उनके वक्षस्थलों पर सुगन्धित फूल की मालाएँ पहनाईं।

आचार्य करिते चाहे पाद-सम्वाहन।
संकुचित हञा प्रभु बलेन वचन।।१०५।।

अनुवाद

जब महाप्रभु बिस्तर पर लेट गये तो अद्वैत आचार्य उनके पाँव दबाना चाहते थे, किन्तु महाप्रभु को संकोच हो रहा था, अतएव वे उनसे इस प्रकार बोले।

बहुत नाचाइले तुमि, छाड़ नाचान।
मुकुन्द-हरिदास लइया करइ भोजन।।१०६।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "अद्वैत आचार्य! तुमने मुझे बहुत नाच नचाया। अब तो यह आदत छोड़ो। मुकुन्द और हरिदास के साथ जाकर भोजन करो।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु यहाँ पर अद्वैत आचार्य को यह बतला रहे हैं कि संन्यासी के लिए न तो अच्छे बिस्तर पर लेटना शोभा देता है न लौंग इलायची खाना और न ही पूरे शरीर पर चन्दन-लेप करना। उसे सुगन्धित फूल-मालाएँ स्वीकार करना और शुद्ध वैष्णव से पाँव दबाना भी शोभा नहीं देता। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "तुमने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले ही मुझे नाच नचा दिया है। कृपा करके अब तो रुको। अब जाकर मुकुन्द तथा हरिदास के साथ भोजन करो।"

तबे त' आचार्य सङ्गे लञा दुइ जने।
करिल इच्छाय भोजन, ये आछिल मने।।१०७।।

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य ने मुकुन्द तथा हरिदास के साथ प्रसाद ग्रहण किया और उन तीनों ने भरपेट इच्छानुसार भोजन किया।

शान्तिपुरेर लोक शुनि' प्रभुर आगमन।
देखिते आइला लोक प्रभुर चरण।।१०८।।

अनुवाद

जब शान्तिपुर के लोगों ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु वहाँ ठहरे हैं तो वे तुरन्त ही उनके चरणकमलों का दर्शन करने आये।

'हरि' 'हरि' बले लोक आनन्दित हञा।
चमत्कार पाइल प्रभुर सौन्दर्य देखिञा।।१०९।।

अनुवाद

सारे लोग अत्यन्त हर्षित होकर जोर-जोर से भगवान् का नाम—'हरि

हरि' उच्चारण करने लगे। वास्तव में वे भगवान् का सौन्दर्य देख कर आश्चर्यचकित रह गये।

गौर-देह-कान्ति सूर्य जिनिया उज्ज्वल।
अरुण-वस्त्रकान्ति ताहे करे झलमल॥११०॥

अनुवाद

उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के गोरे शरीर तथा उसकी उज्ज्वल कान्ति को देखा जो सूर्य के तेज को भी परास्त करने वाली थी। इससे भी बढ़ कर उनके केसरिया वस्त्रों का सौन्दर्य था जो उनके शरीर पर झलमला रहे थे।

आइस ग्राय लोक हर्षे, नाहि समाधान।
लोकेर सङ्घट्टे दिन हैल अवसान॥१११॥

अनुवाद

लोग बड़े ही हर्ष के साथ आते और जाते थे। इसकी कोई गिनती न थी कि सूर्यास्त तक कितने लोग एकत्र होते थे।

सन्ध्याते आचार्य आरम्भिल सङ्कीर्तन।
आचार्य नाचेन, प्रभु करेन दर्शन॥११२॥

अनुवाद

शाम होते ही अद्वैत आचार्य ने सामूहिक कीर्तन प्रारम्भ किया। वे नाचने लगे और महाप्रभु उनका यह कृत्य देखने लगे।

नित्यानन्द गोसाञि बुले आचार्य धरिञा।
हरिदास पाछे नाचे हरषित हञा॥११३॥

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य नाचने लगे तो नित्यानन्द प्रभु उनके पीछेपीछे नाचने लगे। हरिदास ठाकुर भी अत्यन्त हर्षित होकर उनके पीछे नाचने लगे।

कि कहिब रे सखि आजुक आनन्द ओर।
चिरदिने माधव मन्दिरे मोर॥११४॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने कहा, "मित्रो! मैं क्या कहूँ? आज मुझे सर्वोच्च दिव्य आनन्द प्राप्त हुआ है। अनेकानेक दिनों के बाद भगवान् कृष्ण मेरे घर आये हैं।"

तात्पर्य

यह विद्यापति द्वारा विरचित गीत है। कभी-कभी *माधव* शब्द से माधवेन्द्र पुरी अर्थ निकाला जाता है। अद्वैत आचार्य शिष्य थे माधवेन्द्र पुरी के, इसीलिए कुछ लोग माधव शब्द का प्रयोग होने से यह सोचते हैं कि यह माधवेन्द्र पुरी के लिए आया है। किन्तु तथ्य यह नहीं है। यह गीत मथुरा में कृष्ण की अनुपस्थिति में राधारानी से कृष्ण के विरह की स्मृति दिलाने के लिए रचा गया था। जब श्रीकृष्ण लौट आये तो यह गीत श्रीमती राधारानी के द्वारा गाया गया था। यह *मथुरा-विरह* के नाम से विख्यात है।

एइ पद गाओयाइया हर्षे करेन नर्तन।
स्वेद-कम्प-पुलकाश्रु-हुङ्कार-गर्जन ॥११५॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य संकीर्तन टोली का नेतृत्व कर रहे थे, और उन्होंने इस श्लोक को बड़े हर्ष से गाया। भावमय अश्रु, कँपकँपी, रोमांच, अश्रु तथा कभी-कभी गर्जन और हुंकार का प्राकट्य हो रहा था।

फिरि' फिरि' कभु प्रभुर धरेन चरण।
चरणे धरिया प्रभुरे बलेन वचन॥११६॥

अनुवाद

नाचते हुए अद्वैत आचार्य कभी-कभी घूम-घूम जाते और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लेते। फिर वे उनसे इस प्रकार बोलते।

अनेक दिन तुमि मोरे बेड़ाइले भाण्डिया।
घरेते पाञाछि, एबे राखिब बाँधिया॥११७॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य कहते जाते, "आप बहुत दिनों तक बहकाकर मुझसे भगते रहे। अब आप मेरे घर आये हैं और मैं आपको बाँध कर रखूँगा।"

एत बलि' आचार्य आनन्दे करेन नर्तन।
प्रहरेकरात्रि आचार्य कैल सङ्कीर्तन॥११८॥

अनुवाद

इस तरह कह कर उस रात को अद्वैत आचार्य ने बड़े ही आनन्द के साथ तीन घंटे तक संकीर्तन किया और सारे समय नाचते रहे।

प्रेमेर उत्कण्ठा,—प्रभुर नाहि कृष्ण-सङ्ग।
विरहे बाड़िल प्रेमज्वालार तरङ्ग॥११९॥

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य इस प्रकार नाच रहे थे तो चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण के भावमय प्रेम की अनुभूति हुई और विरह के कारण प्रेम की लहरें और ज्वालाएँ तीव्रतर हो उठीं।

व्याकुल हञा प्रभु भूमिते पड़िला।
गोसाञि देखिया आचार्य नृत्य सम्बरिला॥१२०॥

अनुवाद

भाव से व्याकुल होकर श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा जमीन पर गिर पड़े। यह देख कर अद्वैत आचार्य ने नाचना बन्द कर दिया।

प्रभुर अन्तर मुकुन्द जाने भाल-मते।
भावेर सदृश पद लागिला गाइते॥१२१॥

अनुवाद

जब मुकुन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु का भाव देखा तो वे समझ गये और उनकी भाव-शक्ति को बढ़ाने वाले अनेक पद गाने लगे।

आचार्य उठाइल प्रभुके करिते नर्तन।
पद शुनि' प्रभुर अङ्ग ना याय धारण॥१२२॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाकर खड़ा किया जिससे वे नाच सकें, किन्तु मुकुन्द द्वारा गाये जाने वाले पदों को सुन कर महाप्रभु को उनके शारीरिक लक्षणों के कारण पकड़े नहीं रखा जा

सका।

अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, गद्‌गद वचन।
क्षणे उठे, क्षणे पड़े, क्षणेक रोदन॥१२३॥

अनुवाद

उनके नेत्रों से अश्रु गिरने लगे और उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्हें रोमांच हो आया, उनका शरीर पसीना-पसीना हो गया और उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। कभी वे उठ खड़े होते और कभी गिर पड़ते, तो कभी चिल्ला उठते।

हा हा प्राणप्रियसखि, कि ना हैल मोरे।
कानु-प्रेम-विषे मोर तनु-मन जरे॥१२४॥

अनुवाद

मुकुन्द गाने लगे, "हे मेरे घनिष्ठ मित्र! मेरे साथ क्या-क्या नहीं बीता! कृष्ण के प्रेमरूपी विष के प्रभाव से मेरा शरीर तथा मन दोनों बुरी तरह से जल रहे हैं।"

तात्पर्य

जब मुकुन्द ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु को भावमय पीड़ा हो रही है और उनके शरीर से भाव के लक्षण प्रकट हो रहे हैं जो कि कृष्ण के विरह से उत्पन्न अनुभूतियाँ हैं तो वे कृष्ण-मिलन के गीत गाने लगे। अद्वैत आचार्य ने भी नाचना बन्द कर दिया।

रात्रि-दिने पोड़े मन सोयास्ति ना पाङ्।
य़ाहाँ गेले कानु पाङ्, ताहाँ उडि' याङ्॥१२५॥

अनुवाद

"मेरी भावना इस प्रकार है—मेरा मन रात-दिन जलता है और मुझे तनिक भी आराम नहीं मिलता। यदि कोई ऐसा स्थान हो जहाँ मैं श्रीकृष्ण से मिल सकूँ तो मैं तुरन्त वहाँ उड़ जाऊँ।"

एइ पद गाय मुकुन्द मधुर सुस्वरे।
शुनिया प्रभुर चित्त अन्तरे विदरे॥१२६॥

अनुवाद

मुकुन्द ने इस पद को बड़ी ही मीठी वाणी से गाया, किन्तु ज्योंही श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह पद सुना उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

निर्वेद, विषाद, हर्ष, चापल्य, गर्व, दैन्य।
प्रभुर सहित युद्ध करे भाव-सैन्य॥१२७॥

अनुवाद

दिव्य भावों के सारे लक्षण निराशा, खिन्नता, हर्ष, चपलता, गर्व तथा दीनता महाप्रभु के अन्तर में सैनिकों की तरह लड़ने लगे।

तात्पर्य

हर्ष का वर्णन *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में हुआ है। *हर्ष* का अनुभव तब होता है जब किसी को जीवन-लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, फलस्वरूप वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। हर्ष उपस्थित होने पर शरीर काँपता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं, पसीना छूट आता है, अश्रु आ जाते हैं और काम तथा उन्माद का विस्फोट होता है। मुँह सूज जाता है और मनुष्य में जड़ता तथा मोह प्रकट हो आते हैं। जब मनुष्य को इच्छित लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और वह अपने को भाग्यशाली समझता है तो उसके शरीर की कान्ति बढ़ जाती है। वह अपनी महानता के गुणों तथा अनुभूतियों के कारण किसी की परवाह नहीं करता। यह *गर्व* कहलाता है। इस स्थिति में मनुष्य स्तुति करता है और किसी के प्रश्नों का उत्तर नहीं देता। अपने शरीर को देखना अपनी इच्छाओं को छिपाना तथा अन्यों के वचनों की परवाह न करना—ये लक्षण हैं *गर्व* के।

जर-जर हैल प्रभु भावेर प्रहारे।
भूमिते पड़िल, श्वास नाहिक शरीरे॥१२८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का सारा शरीर विविध भाव-लक्षणों के प्रतिघात से जर्जर होने लगा। फलस्वरूप वे तुरन्त ही भूमि पर गिर गये और उनकी साँस रुक-सी गई।

दुखिया चिन्तित हैला ग्रत भक्तगण।
आचम्भिते उठे प्रभु करिया गर्जन॥१२९॥

अनुवाद

महाप्रभु की यह दशा देख कर सारे भक्त अत्यन्त चिन्तित हो उठे। तभी महाप्रभु सहसा उठ खड़े हुए और गर्जना करने लगे।

'बल्' 'बल्' बले, नाचे, आनन्दे विह्वल।
बूझन ना ग्राय भाव-तरङ्ग प्रबल॥१३०॥

अनुवाद

महाप्रभु ने खड़े होकर कहा, "बोलो! बोलो!" इस तरह वे आनन्द-विभोर होकर नाचने लगे। कोई भी उनके इस भाव की प्रबल तरंगों को जान नहीं सका।

नित्यानन्द सङ्ग बुले प्रभुके धरिञा।
आचार्य, हरिदास बुले पाछेत, नाचिञा॥१३१॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ चलने लगे जिससे वे गिरे नहीं और अद्वैत आचार्य तथा हरिदास ठाकुर नाचते हुए उनके पीछे-पीछे हो लिये।

एइ मत प्रहरेक नाचे प्रभु रङ्गे।
कभु हर्ष, कभु विषाद, भावेर तरङ्गे॥१३२॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु कम-से-कम तीन घंटे नाचे। कभी-कभी उनमें हर्ष, विषाद तथा अन्य भावों की अनेक तरंगे दृष्टिगोचर होती थीं।

तिन दिन उपवासे करिया भोजन।
उद्दण्ड-नृत्येते प्रभुर हैल परिश्रम॥१३३॥

अनुवाद

महाप्रभु तीन दिनों से उपवास कर रहे थे और उसके बाद उन्होंने डट कर भोजन किया था। अतएव जब वे नाचे और कूदे तो उन्हें थोड़ी

थकान हो आई।

तबु त' ना जाने श्रम प्रेमाविष्ट हञा।
नित्यानन्द महाप्रभुके राखिल धरिञा।।१३४।।

अनुवाद

किन्तु ईश्वर के प्रेम में मग्न होने के कारण उन्हें अपनी थकान समझ में नहीं आई। फिर भी नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें नाचने से रोका।

आचार्य-गोसाञि तबे राखिल कीर्तन।
नाना सेवा करि' प्रभुके कराइल शयन।।१३५।।

अनुवाद

यद्यपि महाप्रभु थके हुए थे किन्तु नित्यानन्द प्रभु उन्हें पकड़े रहे। उस समय अद्वैत आचार्य ने कीर्तन बन्द कर दिया और तरह-तरह की सेवाएँ करके महाप्रभु को सुला दिया।

एइमत दशदिन भोजन-कीर्तन।
एकरूपे करि' करे प्रभुर सेवन।।१३६।।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य लगातार दस दिनों तक शाम के समय भोजन और कीर्तन कराते रहे। इस तरह वे बिना किसी परिवर्तन के महाप्रभु की सेवा करते रहे।

प्रभाते आचार्यरत्न दोलाय चड़ाञा।
भक्तगण-सङ्गे आइला शचीमाता लञा।।१३७।।

अनुवाद

प्रातःकाल चन्द्रशेखर शचीमाता को उनके घर से अनेक भक्तों समेत ले आये और उन्हें एक पालकी में बिठाया।

नदीया-नगरेर-लोक—स्त्री-बालक-वृद्ध।
सब लोक आइला, हैल संघट्ट समृद्ध।।१३८।।

अनुवाद

इस प्रकार नदिया नगर के सारे लोग—जिसमें स्त्रियाँ, बालक तथा वृद्ध सम्मिलित थे—वहाँ आये। इस तरह भीड़ बढ़ गई।

प्रातः कृत्य करि' करे नाम-संकीर्तन।
शचीमाता लञा आइला अद्वैत-भवन॥१३९॥

अनुवाद

प्रातःकाल शौच आदि कृत्यों से निवृत्त होकर महाप्रभु हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर रहे थे तभी शचीमाता को साथ लिये लोग अद्वैत आचार्य के घर पहुँचे।

शची-आगे पड़िला प्रभु दण्डवत् हञा।
कान्दिते लागिला शची कोले उठाइञा॥१४०॥

अनुवाद

ज्योंही शचीमाता वहाँ पर प्रकट हुईं तो चैतन्य महाप्रभु उनके चरणों पर दण्ड के समान गिर पड़े। शचीमाता महाप्रभु को गोद में उठा कर रोने लगीं।

दोँहार दर्शन दुँहे हइला विह्वल।
केश ना देखिया शची हइला विकल॥१४१॥

अनुवाद

एक-दूसरे को देखकर दोनों विह्वल हो उठे। महाप्रभु के शिर को केशविहीन देख कर शचीमाता अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठीं।

अङ्ग मुछे, मुख चुम्बे, करे निरीक्षण।
देखिते ना पाय,—अश्रु—भरिल नयन॥१४२॥

अनुवाद

वे महाप्रभु के शरीर का चुम्बन लेने लगीं। कभी वे मुख चूमतीं और ध्यान से उन्हें देखने का प्रयत्न करतीं, किन्तु अश्रुपूरित नेत्र होने से वे देख न सकीं।

कान्दिया कहेन शची, बाछारे निमाञि।
विश्वरूप-सम ना करिह निठुराइ॥१४३॥

अनुवाद

यह जान कर कि चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया है शचीमाता ने रोते हुए महाप्रभु से कहा, "मेरे दुलारे निमाई! तुम अपने बड़े भाई विश्वरूप की तरह निष्ठुर न बनो।"

संन्यासी हइया पुनः ना दिल दरशन।
तुमि तैछे कैले मोर हइबे मरण॥१४४॥

अनुवाद

शचीमाता कहती रहीं, "विश्वरूप ने संन्यास लेने के बाद फिर मुझे कभी दर्शन नहीं दिया। यदि तुम उसी की तरह करोगे तो तुम समझ लो कि मेरी मृत्यु निश्चित है।"

कान्दिया बलेन प्रभु—शुन, मोर आइ।
तोमार शरीर एइ, मोर किछु नाइ॥१४५॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "हे माता! सुनिये तो। यह शरीर आपका है। मेरा अपना कुछ भी नहीं है।"

तोमार पालित देह, जन्म तोमा हैते।
कोटि जन्मे तोमार ऋण ना पारि शोधिते॥१४६॥

अनुवाद

"यह शरीर आपके द्वारा पालित है और यह आपसे ही उत्पन्न है। मैं करोड़ों जन्मों में भी इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता।"

जानि' वा ना जानि' कैल यद्यपि संन्यास।
तथापि तोमारे कभु नहिब उदास॥१४७॥

अनुवाद

"मैंने यह संन्यास जाने या अनजाने में स्वीकार किया है। फिर भी मैं आपसे कभी विमुख नहीं हो सकूँगा।"

तुमि य़ाहाँ कह, आमि ताँहाइ रहिब।
तुमि य़ेइ आज्ञा कर, सेइ त' करिब॥१४८॥

अनुवाद

"हे माता! आप मुझे जहाँ भी रहने के लिए कहेंगी, मैं वहीं रहूँगा और आप जो भी आज्ञा देंगी, उसका मैं पालन करूँगा।"

एत बलि' पुनः पुनः करे नमस्कार।
तुष्ट हञा आइ कोले करे बार-बार॥१४९॥

अनुवाद

यह कह कर महाप्रभु ने अपनी माता को बारम्बार नमस्कार किया। शचीमाता भी उनसे प्रसन्न होकर उन्हें बारम्बार अपनी गोद में भरती रहीं।

तबे आइ लञा आचार्य गेला अभ्यन्तर।
भक्त-गण मिलिते प्रभु हइला सत्वर॥१५०॥

अनुवाद

तत्पश्चात् अद्वैत आचार्य शचीमाता को घर के भीतर ले गये। महाप्रभु तुरन्त ही सारे भक्तों से मिलने के लिए तैयार थे।

एके एके मिलिल प्रभु सब भक्तगण।
सबार मुख देखि' करे दृढ आलिङ्गन॥१५१॥

अनुवाद

महाप्रभु एक-एक करके सारे भक्तों से मिले और हर एक के मुख को देख-देखकर जोर से आलिंभन करते रहे।

केश ना देखिया भक्त य़द्यपि पाय दुःख।
सौन्दर्य देखिते तबु पाय महासुख॥१५२॥

अनुवाद

यद्यपि भक्तगण महाप्रभु के बालों को न देख कर दुखी थे, फिर भी उनके सौन्दर्य को देखकर परम सुख प्राप्त कर रहे थे।

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर।
गङ्गादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर॥१५३॥
बुद्धिमन्त खाँन, नन्दन, श्रीधर, विजय।
वासुदेव, दामोदर, मुकुन्दर, सञ्जय॥१५४॥
कत नाम लइब यत नवद्वीप वासी।
सबारे मिलिला प्रभु कृपादृष्ट्ये हासि'॥१५५॥

अनुवाद

श्रीवास, रामाइ, विद्यानिधि, गदाधर, गंगादास, वक्रेश्वर, मुरारि, शुक्लाम्बर, बुद्धिमन्त खान, नन्दन, श्रीधर, विजय, वासुदेव, दामोदर, मुकुन्द, सञ्जय तथा अन्य जितने भी नाम मैं गिना सकता हूँ—सभी नवद्वीप के वासी वहाँ आये और महाप्रभु हँसी-खुशी से तथा कृपा की दृष्टि से सब से मिले।

आनन्दे नाचये सबे बलि' 'हरि' 'हरि'।
आचार्य-मन्दिर हैल श्रीवैकुण्ठपुरी॥१५६॥

अनुवाद

हर कोई नाच रहा था और हरि के पवित्र नाम का उच्चारण कर रहा था। इस तरह अद्वैत आचार्य का निवास-स्थान श्री वैकुण्ठपुरी में बदल गया था।

य़त लोक आइल महाप्रभुके देखिते।
नाना-ग्राम हैते, आर नवद्वीप हैते॥१५७॥

अनुवाद

नवद्वीप के अतिरिक्त आसपास के अन्य गाँवों के भी लोग श्री चैतन्य महाप्रभु को देखने आये।

सबाकारे वासा दिल—भक्ष्य, अन्नपान।
बहुदिन आचार्य-गोसाञि कैल समाधान॥१५८॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु का दर्शन करने के लिए हर व्यक्ति को,

विशेषतया नवद्वीप से आये व्यक्तियों को रहने के लिए स्थान दिया और कई दिनों तक सभी प्रकार की खाने की वस्तुएँ दीं। उन्होंने हर बात का अच्छी तरह समाधान किया।

आचार्य गोसाञिर भाण्डार—अक्षय, अव्यय।
यत द्रव्य व्यय करे तत द्रव्य हय॥१५९॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य के घर की सामग्री अक्षय तथा अटूट थी। वे जितनी भी सामग्री का उपयोग करते उतनी ही सामग्री फिर से प्रकट हो आती।

सेइ दिन हैते शची करेन रन्धन।
भक्तगण लञा प्रभु करेन भोजन॥१६०॥

अनुवाद

जिस दिन से शचीमाता अद्वैत आचार्य के घर आईं वे ही भोजन पकाती थीं और श्री चैतन्य महाप्रभु सारे भक्तों के साथ भोजन करते थे।

दिने आचार्येर प्रीति—प्रभुर दर्शन।
रात्रे लोक देखे प्रभुर नर्तन-कीर्तन॥१६१॥

अनुवाद

दिन में जितने सारे लोग आते थे वे श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करते थे और अद्वैत आचार्य के प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखते थे। रात्रि में उन्हें महाप्रभु का नृत्य देखने और उनका कीर्तन सुनने का अवसर प्राप्त होता था।

कीर्तन करिते प्रभुर सर्वभावोदय।
स्तम्भ, कम्प, पुलकाश्रु, गदगद, प्रलय॥१६२॥

अनुवाद

कीर्तन करते समय महाप्रभु में सभी प्रकार के दिव्य लक्षण प्रकट हो जाते थे। वे स्तम्भित एवं कम्पित लगने लगते थे, उन्हें रोमांच हो आया करता था और उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती थी। आंसुओं से प्रलय उपस्थित हो जाता था।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में प्रलय को सुख और दुख का ऐसा मेल बताया गया है जो उनकी अनुपस्थिति के द्वारा प्रकट होता है। ऐसी दशा में भक्त जमीन पर गिर पड़ता है और शरीर में अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण ऊपर वर्णित हैं और जब शरीर में इनकी प्रधानता हो जाती है तो प्रलय अवस्था प्रकट होती है।

क्षणे क्षणे पडे प्रभु आछाड़ खाञा।
देखि' शचीमाता कहे रोदन करिया॥१६३॥

अनुवाद

महाप्रभु रह-रहकर पछाड़ खाकर जमीन पर गिर पड़ते थे। यह देख कर उनकी माता शची रोने लगतीं।

चूर्ण हैल, हेन वासों निमाञि-कलेवर।
हाहाकरि' विष्णु-पाशे मागे एइ वर॥१६४॥

अनुवाद

श्रीमती शचीमाता ने सोचा कि इस तरह भूमि में गिरने से निमाई का शरीर चूर-चूर हो रहा होगा, अतएव वे चिल्लाईं, "हाय" और फिर भगवान् विष्णु से वर माँगने लगीं।

बाल्यकाल हैते तोमार ये कैलूँ सेवन।
तार एइ फल मोरे देह नारायण॥१६५॥

अनुवाद

"हे प्रभु! मैंने अपने बचपन से लेकर आज तक आपकी जो भी सेवा की है, उसके बदले में कृपा करके मुझे यह वर दें।"

ये काले निमाञि पड़े धरणी-उपरे।
व्यथा येन नाहि लागे निमाञि-शरीरे॥१६६॥

अनुवाद

"जब-जब निमाई धरती के ऊपर गिरे तब-तब उसे पीड़ा का अनुभव न हो।"

एइमत शचीदेवी वात्सल्य विह्वल।
हर्ष-भय-दैन्यभावे हइल विकल॥१६७॥

अनुवाद

इस तरह जब श्री चैतन्य महाप्रभु के वात्सल्य-प्रेम से शचीमाता अभिभूत हो गईं तब वे हर्ष, भय तथा दीनता से विह्वल, साथ ही शारीरिक लक्षणों से युक्त हो, गईं।

तात्पर्य

ये श्लोक बतलाते हैं कि नीलाम्बर चक्रवर्ती के परिवार में जन्मी शचीमाता अपने विवाह के पहले से ही भगवान् विष्णु की पूजा करती थीं। जैसा कि *भगवद्गीता* में (६.४१) कहा गया है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥

"पुण्यात्माओं के लोकों का अनेकानेक वर्षों तक भोग करने के बाद भ्रष्ट योगी या तो पुण्यात्माओं के परिवार में या धनी परिवार में जन्म लेता है।" शचीमाता *नित्यसिद्ध* जीव होने के कारण माता यशोदा की अवतार हैं। वे नीलाम्बर च्रकवर्ती के घर में जन्मीं और निरन्तर भगवान् विष्णु की सेवा में लगी रहीं। बाद में उन्हें भगवान् विष्णु-रूप चैतन्य महाप्रभु अपने पुत्ररूप में प्राप्त हुए और वे उनके जन्मदिन से ही उनकी सेवा करती रहीं। यह स्थिति है *नित्यसिद्ध* पार्षदों की। इसीलिए नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है, *गौरांगेर संगि-गणे नित्यसिद्ध करि माने*। हर भक्त को यह जान लेना चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे संगी (पार्षद)—उनके परिजन, मित्र तथा अन्य संगी—सभी-के-सभी *नित्यसिद्ध* थे। नित्यसिद्ध भगवान् की सेवा को कभी नहीं भूलता। वह सदा-सदा से, यहाँ तक कि अपने बाल्यकाल से, भगवान् की पूजा में लगा रहता है।

श्रीवासादि य़त प्रभुर विप्र भक्तगण।
प्रभुके भिक्षा दिते हैल़ सबाकार मन॥१६८॥

अनुवाद

चूँकि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा तथा भोजन देते

थे, अतएव श्रीवास ठाकुर आदि अन्य भक्त भी उन्हें भिक्षा देना और भोजन करने के लिए निमन्त्रित करना चाह रहे थे।

तात्पर्य

यह समस्त गृहस्थों का धर्म है कि यदि कोई संन्यासी उनके पड़ोस में या गाँव में हो तो वे उसे अपने घर आमन्त्रित करें। भारत में आज भी यह प्रथा चालू है। यदि कोई संन्यासी किसी गाँव के पड़ोस में रहता है तो सारे गृहस्थ बारी-बारी से उसे आमन्त्रित करते हैं। जब तक वह संन्यासी गाँव में रहता है, वह गाँव वालों को आध्यात्मिक ज्ञान देता है। दूसरे शब्दों में, संन्यासी को दूर-दूर तक यात्रा करते हुए भी रहने या खाने की समस्या नहीं सताती। यद्यपि अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को *प्रसाद* ही दे रहे थे, फिर भी नवद्वीप तथा शान्तिपुर के अन्य भक्त भी उन्हें प्रसाद देने के लिए इच्छुक थे।

शुनि' शची सबाकेर करिल मिनति।
निमाञिर दरशन आर मुञि पाब कति॥१६९॥

अनुवाद

महाप्रभु के भक्तों द्वारा ऐसे प्रस्तावों को सुन कर शचीमाता ने भक्तों से कहा, "अब मुझे निमाई के दर्शन पाने के कितने अवसर हाथ लगेंगे?"

तोमा-सबा-सने हबे अन्यत्र मिलन।
मुञि अभागिनीर मात्र एइ दरशन॥१७०॥

अनुवाद

शचीमाता ने निवेदन किया, "जहाँ तक तुम लोगों की बात है, तुम निमाई अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु से अन्यत्र भी अनेक बार मिल सकते हो, किन्तु मेरे लिए, उससे फिर से मिलने की सम्भावना कहाँ है? मैं तो घर पर रहूँगी। संन्यासी कभी अपने घर वापस नहीं आता।"

य़ावत् आचार्यगृहे निमाञिर अवस्थान।
मुञि भिक्षा दिमु, सबाकारे मागोँ दान॥१७१॥

अनुवाद

शचीमाता ने सभी भक्तों से अपने लिए यह दान माँगा, "जब तक श्री चैतन्य महाप्रभु अद्वैत आचार्य के घर में रहें, केवल मैं ही उन्हें भोजन दूँ।"

शुनि' भक्तगण कहे करि' नमस्कार।
मातार ये इच्छा सेइ सम्मत सबार॥१७२॥

अनुवाद

शचीमाता की यह अपील सुन कर सारे भक्तों ने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा, "हम सभी लोग शचीमाता की इच्छाओं से सहमत हैं।"

मातार व्यग्रता देखि' प्रभुर व्यग्र मन।
भक्तगण एकत्र करि' बलिला वचन॥१७३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी माता की परम उत्सुकता देखी तो वे कुछ विचलित हुए। अतएव उन्होंने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों को एकत्र किया और उनसे बोले।

तोमा-सबार आज्ञा विना चलिलाम वृन्दावन।
या हैते नारिल, विघ्न कैल निवर्तन॥१७४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों को बतलाया, "मैं तुम लोगों की आज्ञा लिये बिना वृन्दावन जाना चाह रहा था। किन्तु कुछ बाधा उत्पन्न हुई और मुझे लौटना पड़ा।"

यद्यपि सहसा आमि करियाछि संन्यास।
तथापि तोमा-सबा हैते नहिब उदास॥१७५॥

अनुवाद

"दोस्तो! यद्यपि मैंने अचानक ही यह संन्यास ग्रहण कर लिया है लेकिन मैं जानता हूँ कि तब भी मैं आप लोगों से कभी उदासीन नहीं हो सकूँगा।"

तोमा-सब ना छाड़िब, य़ावत् आमि जीब'।
मातारे तावत् आमि छाड़िते नारिब॥१७६॥

अनुवाद

"दोस्तो! जब तक मैं जीवित रहूँगा, तुम लोगों को नहीं छोडूँगा। न ही मैं अपनी माता को छोड़ पाऊँगा।"

संन्यासीर धर्म नहे—संन्यास करिञा।
निज जन्मस्थाने रहे कुटुम्ब लञा॥१७७॥

अनुवाद

"संन्यास स्वीकार करने के बाद संन्यासी का यह धर्म नहीं होता कि वह अपने जन्मस्थान में अपने कुटुम्बियों से घिरा रहे।"

केह य़ेन एइ बलि' ना करे निन्दन।
सेइ युक्ति कह, य़ाते रहे दुइ धर्म॥१७८॥

अनुवाद

"अतएव कुछ ऐसा प्रबन्ध करो जिससे मैं तुम लोगों को न छोडूँ और लोग मुझ पर संन्यास लेने के बाद सम्बन्धियों के साथ रहने का लांछन न लगा सकें।"

शुनिया प्रभुर एइ मधुर वचन।
शचीपाश आचार्यादि करिल गमन॥१७९॥

अनुवाद

महाप्रभु के वचन सुन कर अद्वैत आचार्य आदि सारे भक्त शचीमाता के पास गये।

प्रभुर निवेदन ताँरे सकल कहिल।
शुनि' शची जगन्माता कहिते लागिल॥१८०॥

अनुवाद

जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के वचनों का निवेदन किया तो अखिल विश्व की माता शची कहने लगीं।

तेँहो ग्रदि इहाँ रहे, तबे मोर सुख।
ताँ'र निन्दा हय ग्रदि, सेइ मोर दुख॥१८१॥

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह मेरे लिए परम सुख की बात होगी यदि निमाई अर्थात् श्री चैतन्य यहाँ रहता है। किन्तु यदि कोई उस पर लांछन लगाये तो यह मेरे लिए परम दुख की बात होगी।"

तात्पर्य

माता के लिए परम सुख की बात होती है, यदि उसका बेटा कृष्ण की खोज में गृहत्याग किये बिना उसके साथ रहता जाए। साथ ही, यदि बेटा कृष्ण की खोज न करके घर पर रहा आता है तो अनुभवी सन्त पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। ऐसी निन्दा माता के लिए अतीव दुखद होती है। यदि असली माता चाहती है कि उसका बेटा अध्यात्म में उन्नति करे तो श्रेयस्कर यही होगा कि वह उसे कृष्ण की खोज करने की अनुमति प्रदान कर दे। माता स्वभावतः अपने बेटे का कल्याण चाहती है। यदि माता अपने बेटे को कृष्ण की खोज करने की अनुमति नहीं देती तो वह *मा* कहलाती है जिसका अर्थ होता है *माया*। शचीमाता अपने बेटे को संन्यासी बनने तथा कृष्ण की खोज करने की अनुमति देकर विश्व-भर की माताओं को शिक्षा देती हैं। वे इंगित करती हैं कि सारे बेटों को कृष्ण का असली भक्त बनना चाहिए और उन्हें अपनी वात्सल्यमयी माता के पास घर पर ही नहीं बने रहना चाहिए। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* से (५.५.१८) होती है—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्
न मोचयेद्यः समुपेत-मृत्युम्॥

"जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को आसन्न मृत्यु के मार्ग से बचने में सहायक नहीं बन सकता उसे न तो गुरु बनना चाहिए, न परिजन, न पिता, न माता, न पूजनीय अर्चा-विग्रह न पति।" प्रत्येक जीव कर्म-नियम के अधीन होकर इस ब्रह्माण्ड में घूमता रहता है और एक शरीर से दूसरे में

तथा एक लोक से दूसरे लोक में देहान्तरण करता है। इसलिए सारी वैदिक विधि भ्रमणशील जीव को *माया*—जन्म, मृत्यु, रोग, बुढ़ापा—के चंगुल से बचाने के निमित्त होती है। इसका अर्थ है जन्म-मृत्यु के चक्कर को रोकना। यह चक्कर तभी रुक सकता है जब कोई कृष्ण को पूजता है। जैसा कि भगवान् ने *भगवद्गीता* में (४.९) कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो मेरे जन्म और कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है, हे अर्जुन! वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।"

जन्म-मृत्यु का चक्कर रोकने के लिए कृष्ण को यथारूप जानना चाहिए। कृष्ण को जान लेने से ही इस भौतिक जगत में पुनर्जन्म को रोका जा सकता है। कृष्णभावनाभावित होकर कर्म करने से भगवान् के पास वापस जाया जा सकता है। माता, पिता, गुरु, पति या अन्य परिजन के लिए जीवन की चरम सिद्धि यही है कि वे अन्यों को भगवद्धाम जाने में सहायक हों। परिजनों के लाभ के लिए यह सर्वोत्कृष्ट कल्याण-कार्य है। इसीलिए शचीमाता ने, निमाई पंडित अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु की माता होते हुए भी इन सारे तथ्यों पर विचार करके अपने बेटे को कृष्ण की खोज में बाहर जाने की अनुमति देने का निश्चय किया। उसी के साथ ही, उन्होंने ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलापों की खबर मिलती रहे।

ताते य़ेइ युक्ति भाल, मोर मने लय।
नीलाचले रहे य़दि, दुइ कार्य हय॥१८२॥

अनुवाद

शचीमाता ने कहा, "यह अच्छा विचार है। मेरे विचार से यदि निमाई जगन्नाथ पुरी में रहता है तो वह हममें से किसी को छोड़ेगा नहीं और उसी के साथ-साथ वह संन्यासी के रूप में अलग रहेगा। इस तरह दोनों उद्देश्य पूरे हो जायेंगे।"

नीलाचले नवद्वीपे ग्रेन दुइ घर।
लोक-गतागंति-वार्ता पाब निरन्तर॥१८३॥

अनुवाद

"चूँकि जगन्नाथ पुरी और नवद्वीप का निकट सम्बन्ध है—मानों एक ही घर के दो कमरे हों, इसलिए नवद्वीप के लोग जगन्नाथ पुरी जाते हैं और जगन्नाथ पुरी के लोग नवद्वीप आते रहते हैं। इस आने-जाने से चैतन्य महाप्रभु के समाचार मिलने में सुविधा होगी। इस तरह मुझे उसके समाचार मिलते रहेंगे।

तुमि सब करिते पार गमनागमन।
गंगास्नाने कभु हबे ताँर आगमन॥१८४॥

अनुवाद

"तुम सारे भक्त आ-जा सकोगे और कभी-कभी वह भी गंगास्नान करने के लिए आ सकता है।"

आपनार दुःख-सुख ताहाँ नाहि गणि।
ताँर ग्रेइ सुख, ताहा निज-सुख मानि॥१८५॥

अनुवाद

"मुझे अपने सुख ग्रा दुख की परवाह नहीं है, केवल उसके सुख की है। मैं उसके सुख को ही अपना सुख मानती हूँ।"

शुनि भक्तगण ताँरे करिल स्तवन।
वेद-आज्ञा ग्रैछे, माता, तोमार वचन॥१८६॥

अनुवाद

शचीमाता की बातें सुन कर सारे भक्तों ने उनकी स्तुति की और उन्हें विश्वास दिलाया कि आपका आदेश वेदों के आदेश के समान है, जिसका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता।

भक्तगण प्रभु-आगे आसिया कहिल।
शुनिया प्रभुर मने आनन्द हइल॥१८७॥

अनुवाद

सारे भक्तों ने चैतन्य महाप्रभु को शचीमाता के निर्णय की सूचना दी। यह सुन कर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

नवद्वीप-वासी आदि य़त भक्तगण।
सबारे सम्मान करि' बलिला वचन॥१८८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नवद्वीप तथा अन्य नगरों से आये भक्तों का सम्मान किया और उनसे इस प्रकार कहा—

तुमि-सब लोक—मोर परम बान्धव।
एइ भिक्षा मागोँ,—मोरे देह तुमि सब॥१८९॥

अनुवाद

"मित्रो! तुम सभी मेरे घनिष्ठ हो। अब मैं तुम सबों से एक भीख माँगता हूँ। कृपा करके मुझे यह भीख दें।"

घरे य़ाञा कर सदा कृष्णसङ्कीर्तन।
कृष्णनाम, कृष्णकथा, कृष्ण आराधन॥१९०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबों से प्रार्थना की कि वे घर लौट जायँ और वहाँ सामूहिक नाम-कीर्तन प्रारम्भ कर दें। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि वे कृष्ण की पूजा करें, उनके पवित्र नाम का कीर्तन करें तथा उनकी पवित्र लीलाओं की व्याख्या करें।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त प्रामाणिक रूप में श्री चैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय अर्थात् हरे-कृष्ण-आन्दोलन की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। ऐसा नहीं है कि हर कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की ही तरह संन्यास ग्रहण करे। जैसा कि महाप्रभु ने आदेश दिया है, प्रत्येक व्यक्ति घर पर कृष्णभावनामृत मत का अनुगमन कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण-नाम का अर्थात् हरे-कृष्ण-महामन्त्र का सामूहिक कीर्तन कर सकता है। वह *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की विषयवस्तु की व्याख्या कर सकता है और घर पर राधा-कृष्ण

या गौर निताई अथवा दोनों के अर्चा-विग्रह स्थापित करके उनकी ढंग से पूजा कर सकता है। इसके लिए हमें विश्व-भर में पृथक-पृथक केन्द्रों की स्थापना नहीं करनी होगी। जिसे भी कृष्णभावनामृत-आन्दोलन की परवाह है वह अपने गुरुजनों के निर्देशन में अपने घर में ही अर्चा-विग्रह स्थापित कर सकता है, उसकी नियमित पूजा कर सकता है, महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है और *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या कर सकता है। हम वास्तव में अपनी कक्षाओं में यही शिक्षा देते हैं कि यह सब कैसे किया जाय। यदि किसी को ऐसा लगता है कि वह मन्दिर में अभी रहने को तैयार नहीं अथवा मन्दिर के विधि-विधानों का कड़ाई से पालन नहीं कर सकता—विशेषतया ऐसे गृहस्थ जो पत्नी तथा बच्चों के साथ रहते हैं-वे घर पर ही अर्चा-विग्रह स्थापित करके, सुबह-शाम अर्चा-विग्रह की पूजा करके, हरे-कृष्ण का कीर्तन करके तथा *भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* की व्याख्या करके एक केन्द्र चालू कर सकते हैं। इसे हर कोई सरलता से कर सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित सारे भक्तों से ऐसा करने के लिए प्रार्थना की।

आज्ञा देह नीलाचले करिये गमन।
मध्ये मध्ये आसि' तोमाय दिब दरशन॥१९१॥

अनुवाद

भक्तों को इस प्रकार उपदेश देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने की अनुमति चाही। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे बीच बीच में वहाँ आते रहेंगे और उनसे बार-बार मिलते रहेंगे।

एत बलि' सबाकारे ईषत् हासिञा।
विदाय करिल प्रभु सम्मान करिञा॥१९२॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों का सम्मान करते हुए और कुछ-कुछ मुसकाते हुए सबों को विदा किया।

सबा विदाय दिया प्रभु चलिते कैल मन।
हरिदास कान्दि' कहे करुण वचन॥१९३॥

अनुवाद

सभी भक्तों से घर वापस जाने की विनती करने के बाद महाप्रभु ने जगन्नाथ पुरी जाने का निश्चय किया। उसी समय हरिदास ठाकुर चिल्लाकर करुण वचन बोले।

नीलाचले य़ाबे तुमि, मोर कोन् गति।
नीलाचले य़ाइते मोर नाहिक शकति॥१९४॥

अनुवाद

हरिदास ठाकुर ने कहा, "यह तो ठीक है कि आप नीलाचल जा रहे हैं, किन्तु मेरी क्या गति होगी? मैं तो जगन्नाथ पुरी जाने में असमर्थ हूँ।"

तात्पर्य

यद्यपि हरिदास ठाकुर मुसलमान परिवार में उत्पन्न हुए थे, किन्तु उन्हें शुद्ध दीक्षित ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया जा चुका था। इसलिए वे जगन्नाथ पुरी के मन्दिर में प्रवेश करने के अधिकारी थे, किन्तु कुछ ऐसे नियम थे जिनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लोग ही प्रवेश कर सकते थे। हरिदास ठाकुर दीनतावश इन नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा कि उनमें मन्दिर में प्रवेश करने की शक्ति नहीं है और उन्होंने यह संकेत किया कि यदि महाप्रभु मन्दिर के भीतर रहेंगे तो हरिदास के लिए दरवाजे बन्द हो जायेंगे। बाद में, जब हरिदास ठाकुर जगन्नाथ पुरी गये तो वे मन्दिर से बाहर समुद्र-तट पर रहते थे। वहाँ अब एक मठ बना दिया गया है जो सिद्धबकुल मठ के नाम से विख्यात है। लोग वहाँ हरिदास ठाकुर की समाधि देखने जाते हैं।

मुञि अधम तोमार ना पाव दरशन।
केमते धरिब एइ पापिष्ठ जीवन॥१९५॥

अनुवाद

"चूँकि मैं अत्यन्त नीच व्यक्ति हूँ, अतएव मैं आपके दर्शन नहीं पा सकूँगा। मैं अपने पापमय जीवन को किस तरह धारण किये रहूँगा?"

प्रभु कहे,—कर तुमि दैन्य सम्वरण।
तोमार दैन्येते मोर व्याकुल हय मन॥१९६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने हरिदास ठाकुर से कहा: "तुम अपनी दीनता का बखान बन्द करो। तुम्हारी दीनता देख कर मेरा मन अत्यधिक क्षुब्ध हो जाता है।"

तोमा लागि' जगन्नाथे करिब निवेदन।
तोमा-लञा याब आमि श्रीपुरुषोत्तम॥१९७॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने हरिदास को आश्वस्त किया कि मैं भगवान् जगन्नाथ के समक्ष निवेदन करूँगा और वे निश्चय ही तुम्हें जगन्नाथ पुरी ले चलेंगे।"

तबे त' आचार्य कहे विनय करिञा।
दिन दुइ-चारि रह कृपा त' करिञा॥१९८॥

अनुवाद

इसके बाद अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से अनुनय-विनय की कि वे दो-चार दिन रहने की कृपा करें।

आचार्येर वाक्य प्रभु ना करे लङ्घन।
रहिला अद्वैत-गृहे, ना कैल गमन॥१९९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कभी अद्वैत आचार्य की प्रार्थना का उल्लंघन नहीं किया अतएव वे उनके घर पर रुके रहे और जगन्नाथ पुरी के लिए तुरंत प्रस्थान नहीं किया।

आनन्दित हैल आचार्य, शची, भक्त, सब।
प्रतिदिन करे आचार्य महा-महोत्सव॥२००॥

अनुवाद

महाप्रभु के निर्णय से अद्वैत आचार्य, शचीमाता तथा सारे भक्त अत्यन्त

सुखी हुए। अद्वैत आचार्य प्रतिदिन महान उत्सव मनाते रहे।

दिन कृष्ण-कथा-रस भक्तगण सङ्गे।
रात्रे महा-महोत्सव संकीर्तन-रङ्गे।।२०१।।

अनुवाद

दिन के समय सारे भक्त कृष्ण विषयक कथाएँ कहते और रात में अद्वैत आचार्य के घर सामूहिक कीर्तन का महोत्सव मनाया जाता।

आनन्दित हञा शची करेन रन्धन।
सुखे भोजन करे प्रभु लञा भक्तगण।।२०२।।

अनुवाद

माता शची बड़े आनन्द से भोजन पकातीं और भक्तों सहित श्री चैतन्य महाप्रभु बड़े ही आनन्द के साथ प्रसाद ग्रहण करते।

आचार्येर श्रद्धा-भक्ति-गृह-सम्पद-धने।
सकल सफल हैल प्रभुर आराधने।।२०३।।

अनुवाद

इस तरह अद्वैत आचार्य के सारे ऐश्वर्य—उनकी श्रद्धा, भक्ति, घर, धन, सबकुछ— श्री चैतन्य महाप्रभु की पूजा में भलीभाँति काम आये।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों का स्वागत करने और अपने घर में नित्य उत्सव करने में समस्त गृहस्थ- भक्तों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है। यदि किसी के पास समुचित साधन और धन हो तो उसे चाहिए कि विश्व-भर में प्रचार करने वाले चैतन्य-भक्तों को आमन्त्रित करे और अपने घर पर उत्सव का आयोजन करे, जिसमें वह प्रसाद वितरण करे, कृष्ण के विषय में वार्ताएँ हों तथा शाम के समय कम-से-कम तीन घंटे का सामूहिक कीर्तन चले। यह विधि सभी कृष्णभावनामृत-आन्दोलन-केन्द्रों में अपनाई जाये। इस तरह से नित्य ही *संकीर्तन यज्ञ* सम्पन्न होता रहेगा। *श्रीमद्भागवत* में (११.५.३२) इस युग के लिए संकीर्तन यज्ञ करने की संस्तुति की गई है (*यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। हर एक को चाहिए कि चैतन्य महाप्रभु तथा उनके चारों संगियों—पंचतत्वों— की पूजा प्रसाद वितरण

और संकीर्तन द्वारा करे। वास्तव में इस कलियुग के लिए इसी यज्ञ की संस्तुति की गई है। इस युग में अन्य यज्ञों को सम्पन्न कर पाना सम्भव नहीं है, किन्तु इस यज्ञ को कहीं भी और किसी भी समय सम्पन्न किया जा सकता है।

शचीर आनन्द बाड़े देखि' पुत्रमुख।
भोजन कराञा पूर्ण कैल निजसुख॥२०४॥

अनुवाद

शचीमाता का सुख निरन्तर अपने बेटे का मुख देखकर बढ़ता रहा। भोजन करा कर उन्होंने अपने सुख को पूरा किया।

एइमत अद्वैत-गृहे भक्तगण मिले।
वञ्चिला कतकदिन महा-कुतूहले॥२०५॥

अनुवाद

इस तरह सारे भक्त अद्वैत आचार्य के घर में मिले और बड़े ही कूतूहल के साथ कुछ दिन बिताये।

आर दिन प्रभु कहे सब भक्तगणे।
निज-निज-गृह सबे करह गमन॥२०६॥

अनुवाद

अगले दिन चैतन्य महाप्रभु ने सभी भक्तों से अपने-अपने घर लौट जाने की बिनती की।

घरे गिया कर सबे कृष्ण-संकीर्तन।
पुनरपि आमा-सङ्गे हइबे मिलन॥२०७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबों से यह भी कहा कि वे अपने-अपने घरों में भगवन्नाम का संकीर्तन करें और उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे उनसे फिर से अवश्य मिल सकेंगे।

कभु वा तोमरा करिबे नीलाद्रि गमन।
कभु वा आसिब आमि करिते गङ्गास्नान॥२०८॥

अनुवाद

उन्होंने उनसे कहा, "कभी तुम लोग जगन्नाथ पुरी आओगे और कभी मैं गंगा में स्नान करने आऊँगा।"

नित्यानन्द-गोसाञि, पण्डित जगदानन्द।
दामोदर पण्डित, आर दत्त मुकुन्द॥२०९॥
एइ चारिजन आचार्य दिल प्रभु सने।
जननी प्रबोध करि' वन्दिल चरणे॥२१०॥

अनुवाद

श्री अद्वैत आचार्य ने महाप्रभु के साथ जाने के लिए चार जनों को भेजा। इनके नाम थे—नित्यानन्द गोसाईं, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पंडित तथा मुकुन्द दत्त। अपनी माता को सान्त्वना देने के बाद महाप्रभु ने उनके चरणकमलों में प्रार्थना की।

ताँरे प्रदक्षिण करि' करिल गमन।
एथा आचार्येर घरे उठिल क्रन्दन॥२११॥

अनुवाद

जब सब कुछ हो चुका तो चैतन्य महाप्रभु ने अपने माता की प्रदक्षिणा की और फिर वे जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये। इधर अद्वैत आचार्य के घर में तेजी से रोदन शुरू हो गया।

निरपेक्ष हञा प्रभु शीघ्र चलिला।
कान्दिते कन्दिते आचार्य पश्चात् चलिला॥२१२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अप्रभावित थे। वे तेजी से चल दिये और अद्वैत आचार्य रोते हुए उनके पीछे हो लिये।

तात्पर्य

जैसा कि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने व्याख्या की है, *निरपेक्ष* शब्द का अर्थ है किसी भौतिक वस्तु से प्रभावित न होना तथा भगवान् की सेवा में दृढ़ रहना। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य के घर में हो रहे क्रन्दन की परवाह नहीं की, जिसे उन्होंने जगन्नाथ पुरी के लिए

प्रस्थान करते समय सुना था। संसारी नैतिकतावादी भले ही श्री चैतन्य महाप्रभु की यह कह कर आलोचना करें कि वे निष्ठुर थे, किन्तु उन्हें इसकी कोई परवाह नहीं थी। इस कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के विश्व-गुरु के रूप में उन्होंने यह दिखलाया कि कृष्णभावनामृत में लगे व्यक्ति को संसारिक स्नेह से प्रभावित नहीं होना चाहिए। श्रेष्ठ मार्ग यही है कि भगवान् की सेवा में लगा जाय और भौतिक लक्ष्यों के प्रति *निरपेक्ष* रहा जाय। बाह्यतः हर व्यक्ति भौतिक वस्तुओं से जुड़ा हुआ है, किन्तु यदि वह ऐसी वस्तुओं में फँस जाता है तो कृष्णभावनामृत में प्रगति नहीं कर सकता। अतएव जो लोग कृष्णभावनामृत में लगे हुए हैं उन्हें भौतिक जगत की तथाकथित नैतिकता की परवाह नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह नैतिकता भगवान् की सेवा का विरोध करती है। जैसा कि स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने कर दिखलाया है निरपेक्ष हुए बिना कृष्णभावनामृत को ठीक-ठीक सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

कत दूर गिया प्रभु करि' य़ोड़ हात।
आचार्ये प्रबोधि' कहे किछु मिष्ट वात॥२१३॥

अनुवाद

जब अद्वैत आचार्य चैतन्य महाप्रभु के पीछे-पीछे कुछ दूर तक गये तो महाप्रभु ने हाथ जोड़ कर उनसे याचना की। वे निम्नलिखित मधुर शब्द बोले।

जननी प्रबोधि' कर भक्त समाधान।
तुमि व्यग्र हैले कारो ना रहिबे प्राण॥२१४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "कृपया सारे भक्तों को तथा मेरी माता को सान्त्वना दीजिये। यदि आप ही क्षुब्ध होंगे तो फिर कोई जीवित नहीं रह सकेगा।"

एत बलि' प्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन।
निवृत्ति करिया कैल स्वच्छन्द गमन॥२१५॥

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने अद्वैत महाप्रभु का आलिंगन किया

और उन्हें आगे चलने से रोक दिया। फिर निश्चिंत होकर वे जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

गङ्गातीरे-तीरे प्रभु चारिजन-साथे।
नीलाद्रि चलिला प्रभु छत्रभोग-पथे॥२१६॥

अनुवाद

महाप्रभु चारों व्यक्तियों के साथ साथ गंगा नदी के किनारे-किनारे छत्रभोग के मार्ग से नीलाद्रि अर्थात् जगन्नाथ पुरी की ओर चले गये।

तात्पर्य

चौबीस परगना जनपद में पूर्वी रेलवे के दक्षिणी खण्ड में मग्राहाट नामक रेलवे स्टेशन है। यदि इस स्टेशन से १४ मील दक्षिण पूर्व की ओर चलें तो जयनगर नामक स्थान मिलता है। इस स्थान से लगभग ६ मील दक्षिण में छत्रभोग गाँव है। कभी-कभी इसे खाडि भी कहते हैं। इस गाँव में वैजुर्कानाथ नामक शिवजी का अर्चा-विग्रह है। प्रतिवर्ष यहाँ पर मार्च-अप्रैल मास में एक उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव नन्दा-मेला के नाम से प्रसिद्ध है। इस समय वहाँ गंगा नदी नहीं बहतीं। इसी रेलवे लाइन पर एक अन्य स्टेशन है, जिसका नाम है बारुइपुर। इस स्टेशन के पास ही आटिसारा नामक एक दूसरा स्थान है। पहले यह भी गंगा के तट पर स्थित था। इस गाँव से पाणिहाटी जाया जा सकता है, जहाँ से कलकत्ता के उत्तर में स्थित वराह नगर जाया जा सकता है। उन दिनों गंगा नदी, जो आज भी *आदि गंगा* कहलाती हैं, कलकत्ता के दक्षिण स्थित कालीघाट से होकर बहती थीं। बारुइपुर से गंगा नदी की शाखाएँ फूट कर मथुरापुर थाना के निकट डायमंड हार्बर से होकर बहती थीं। यह ध्यान देने की बात है कि श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आते हुए इन सारे स्थानों से होकर गुजरे थे।

'चैतन्यमङ्गले' प्रभुर नीलाद्रि-गमन।
विस्तारि वर्णियाछेन दास-वृन्दावन॥२१७॥

अनुवाद

वृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी पुस्तक *चैतन्य-मंगल* में जगन्नाथ पुरी तक महाप्रभु के गमन का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती कहते हैं कि बंगाल से होकर जाते हुए चैतन्य महाप्रभु आटिसारांग्राम, वराह-ग्राम तथा छत्रभोग से होकर गये। फिर वे उड़ीसा प्रान्त में पहुँचे जहाँ वे प्रयाग-घाट, सुवर्णरेखा, रेमुणा, याजपुर, वैतरणी, दशाश्वमेध-घाट, कटक, महानदी, भुवनेश्वर (जहाँ विन्दु सरोवर है), कमलपुर तथा अथारनाला से होकर गये। इस तरह इन सारे तथा अन्य स्थानों से होते हुए महाप्रभु जगन्नाथ पुरी पहुँचे।

अद्वैत-गृहे प्रभुर विलास शुने ग्रेइ जन।
अचिरे मिलये ताँरे कृष्णप्रेम-धन॥२१८॥

अनुवाद

जो व्यक्ति अद्वैत आचार्य के घर में महाप्रभु के कार्यकलापों को सुनता है उसे निश्चय ही तुरंत कृष्ण-प्रेम रूपी धन प्राप्त होता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥२१९॥

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की विनती करके और सदा उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें चैतन्य महाप्रभु के अद्वैत आचार्य के घर में ठहरने, उनके संन्यास ग्रहण करने, अद्वैत आचार्य के घर पर नित्य उत्सव मनाने, भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करने और सभी भक्तों के साथ प्रसाद ग्रहण करने का वर्णन है।

अध्याय ४

श्री माधवेन्द्र पुरी की भक्ति

श्रील भक्तिवेदान्त ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में चौथे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है। छत्रभोग के मार्ग से गुजरते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु वृद्धमन्त्रेश्वर पहुँचे जो उड़ीसा की सीमा पर है। रास्ते-भर वे कीर्तन करते और विभिन्न ग्रामों में भिक्षा माँगते दिव्य आनन्द का अनुभव करते रहे। इस प्रकार वे रेमुणा नामक सुप्रसिद्ध गाँव पहुँचे, जहाँ गोपीनाथ का अर्चाविग्रह है। वहाँ पर उन्होंने अपने गुरु ईश्वर पुरी के मुख से सुनी हुई माधवेन्द्र पुरी की कथा सुनाई। यह कथा इस प्रकार है।

गोवर्धन में रहते हुए एक रात को माधवेन्द्र पुरी ने सपना देखा कि एक जंगल में गोपाल का अर्चाविग्रह है। अत: अगले दिन वे अपने पड़ोस के साथियों को लेकर उस अर्चाविग्रह को खोद निकालने के लिए जंगल पहुँचे। फिर उन्होंने गोपालजी के अर्चाविग्रह को बड़ी धूमधाम से गोवर्धन पर्वत की चोटी पर स्थापित किया। गोपाल की पूजा की गई और अन्नकूट उत्सव मनाया गया। जब इस उत्सव का सर्वत्र पता लग गया तो निकटवर्ती गाँवों के तमाम लोग उसमें सम्मिलित होने आये। एक रात गोपाल-विग्रह फिर माधवेन्द्र पुरी को सपने में दिखे और उनसे जगन्नाथ पुरी जाकर कुछ चन्दन का लगाने अर्चाविग्रह में लेप करने के लिए कहा। यह आदेश पाकर माधवेन्द्र पुरी तुरन्त उड़ीसा के लिए चल पड़े। बंगाल होकर यात्रा करते हुए वे रेमुणा गाँव पहुँचे और वहाँ पर गोपीनाथजी के अर्चाविग्रह पर एक कलश खीर (*क्षीर*) चढ़ा पाया। गोपीनाथ ने यह कलश चुरा कर माधवेन्द्र पुरी को दे दिया। तभी से गोपीनाथ-विग्रह क्षीर-चोर गोपीनाथ कहलाते हैं। जगन्नाथ पुरी पहुँचने पर माधवेन्द्र पुरी को राजा से अनुमति प्राप्त हो गई कि वे अपने साथ एक मन चन्दन तथा आठ औंस कपूर ले जायँ। वे दो व्यक्तियों की सहायता से यह साम्रगी रेमुणा लाये। उन्होंने फिर से सपना

देखा कि गोवर्धन पर्वत के गोपालजी की इच्छा है कि इस चन्दन को कपूर के साथ मिला कर लेप तैयार किया जाय और उसे गोपीनाथजी के शरीर पर चुपड़ा जाय। माधवेन्द्र पुरी ने यह सोच कर कि इससे गोपालजी संतुष्ट होंगे, उन्होंने आदेश का पालन किया और फिर जगन्नाथ पुरी लौय आये।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्तों को यह कथा सुनाई और माधवेन्द्र पुरी की भक्ति की प्रशंसा की। जब वे माधवेन्द्र पुरी द्वारा रचित कुछ श्लोक सुना रहे थे तो वे भावमग्न हो गये। किन्तु जब उन्होंने देखा कि वहाँ तमाम लोग एकत्र हो गये हैं तो अपने आप को सँभाला और खीर का थोड़ा-सा प्रसाद ग्रहण किया। फिर वहीं रात बिता कर अगले दिन वे फिर से जगन्नाथ पुरी के लिए चल पड़े।

यस्मै दातुं चोरयन् क्षीरभाण्डं
गोपीनाथः क्षीरचोराभिधोऽभूत्।
श्रीगोपालः प्रादुरासीद्वशः सन्
यत्प्रेम्णा तं माधवेन्द्र नतोऽस्मि॥१॥

अनुवाद

मैं उन माधवेन्द्र पुरी को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्हें श्री गोपीनाथ ने चुरा कर खीर दी और स्वयं क्षीर-चोर कहलाये। माधवेन्द्र पुरी के प्रेम से प्रसन्न होकर गोवर्धन-स्थित श्री गोपाल-विग्रह ने जनसमूह को दर्शन दिया।

तात्पर्य

भक्तिविनोद ठाकुर की टिप्पणी है कि इस गोपाल-विग्रह की प्रतिष्ठा कृष्ण के पौत्र वज्र ने की थी। माधवेन्द्र पुरी ने इसे फिर से ढूँढ़ निकाला और गोवर्धन पर्वत की चोटी पर स्थापित कर दिया। यही गोपाल-विग्रह आज भी नाथद्वारा में विद्यमान है और वल्लभाचार्य के वशं-जों की देखरेख में है। इस विग्रह की पूजा बड़े ठाठबाट से की जाती है और वहाँ जाने वाला कोई भी व्यक्ति अल्प मूल्य देकर तरह-तरह के प्रसाद खरीद सकता है।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो! तथा श्री चैतन्य के समस्त भक्तों की जय हो!

नीलाद्रिगमन, जगन्नाथ-दरशन।
सार्वभौम भट्टाचार्य-प्रभुर मिलन॥३॥
ए सब लीला प्रभुर दास वृन्दावन।
विस्तारि' करियाछेन उत्तम वर्णन॥४॥

अनुवाद

जगन्नाथ पुरी जाकर महाप्रभु ने जगन्नाथजी के मन्दिर के दर्शन किये। वे सार्वभौम भट्टाचार्य से भी मिले। इन सब लीलाओं का अत्यन्त विस्तृत वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा *चैतन्य-भागवत* में किया गया है।

सहजे विचित्र मधुर चैतन्य-विहार।
वृन्दावनदास-मुखे अमृतेर धार॥५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्यकलाप स्वभावतः अत्यन्त विचित्र और मधुर हैं और वृन्दावन दास ठाकुर के मुख से बखान किये जाने पर वे अमृत की फुहार बन जाते हैं।

अतएव ताहा वर्णिले हय पुनरुक्ति।
दम्भ करि' वर्णि यदि तैछे नाहि शक्ति॥६॥

अनुवाद

मेरा सविनय निवेदन है कि चूँकि इन घटनाओं का सुन्दर वर्णन वृन्दावन दास ठाकुर द्वारा पहिले ही हो चुका है, अतएव उसी बात को दुहराना मेरे लिए तो गर्व की बात होगी। किन्तु ऐसा करना इसलिए अच्छा नहीं होगा, क्योंकि मुझमें इतनी शक्ति नहीं है।

चैतन्यमङ्गले य़ाहा करिल वर्णन।
सूत्ररूपे सेइ लीला करिये सूचन॥७॥

अनुवाद

अतएव *चैतन्य-मंगल* (अब चैतन्य भागवत नाम से ज्ञात) में वृन्दावन दास ठाकुर जिन घटनाओं का पहले से वर्णन कर चुके हैं, उन्हें मैं सूत्र-रूप में दे रहा हूँ।

ताँर सूत्रे आछे, तेँह ना कैल वर्णन।
य़थाकथञ्चित् करि'से लीला कथन॥८॥

अनुवाद

उन्होंने कुछ सूत्रों का विस्तृत वर्णन नहीं किया, अतएव मैं इस पुस्तक में उनका वर्णन देने का प्रयास करूँगा।

अतएव ताँर पाये करि नमस्कार।
ताँर पाय अपराध ना हइक् आमार॥९॥

अनुवाद

अतएव मैं वृन्दावन दास ठाकुर के चरणकमलों पर अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ। मुझे आशा है कि मेरे इस कार्य से उनके चरणकमलों पर अपराध नहीं होगा।

एइमत महाप्रभु चलिला नीलाचले।
चारि भक्त सङ्गे कृष्णकीर्तन-कुतूहले॥१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने चार भक्तों सहित जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े और बड़ी ही उत्सुकता से वे भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते रहे।

भिक्षा लागि'एकदिन एक ग्राम गिया।
आपने बहुत अन्न आनिल मागिया॥११॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रतिदिन एक गाँव में जाते और प्रसाद तैयार करने

के लिए चावल तथा अन्य अनाज की काफी मात्रा माँग लाते।

पथे बड़ बड़ दानी विघ्न नाहि करे।
ता' सबारे कृपा करि' आइल रेमुनारे॥१२॥

अनुवाद

रास्ते में तमाम नदियाँ पड़ी और हर नदी में कर एकत्र करने वाले थे। किन्तु उन्होंने महाप्रभु को रोका नहीं। महाप्रभु ने भी उन सबों पर कृपा की। अन्त में वे रेमुणा ग्राम पहुँचे।

तात्पर्य

बलेश्वर नामक रेलवे स्टेशन से पाँच मील पश्चिम की ओर रेमुणा नामक गाँव है। इस गाँव में आज भी क्षीर-चोर गोपीनाथ का मन्दिर है और इस मन्दिर के भीतर आज भी श्यामानन्द गोस्वामी के प्रमुख शिष्य रसिकानन्द प्रभु की समाधि है।

रेमुणाते गोपीनाथ परम-मोहन।
भक्ति करि' कैल प्रभु ताँर दरशन॥१३॥

अनुवाद

रेमुणा के मन्दिर में गोपीनाथ का विग्रह अत्यन्त आकर्षक था। महाप्रभु ने इस मन्दिर के दर्शन किये और अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

ताँर पादपद्म निकट प्रणाम करिते।
ताँर पुष्प-चूड़ा पड़िल प्रभुर माथाते॥१४॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपीनाथ विग्रह के चरणकमलों को नमस्कार किया तो गोपीनाथ के सिर का पुष्प-मुकुट खिसक कर महाप्रभु के सिर में आ गिरा।

चूड़ा पाञा महाप्रभु आनन्दित मन।
बहु नृत्यगीत कैल लञा भक्तगण॥१५॥

अनुवाद

जब अर्चाविग्रह का पुष्प-मुकुट उनके सिर पर आ गिरा तो महाप्रभु

अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे अपने भक्तों के साथ खूब नाचे-गाये।

प्रभुर प्रभाव देखि' प्रेम-रूप-गुण।
विस्मित हइला गोपीनाथेर दासगण॥१६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रगाढ़ प्रेम, उनके परम सौन्दर्य तथा उनके दिव्य गुणों के कारण अर्चाविग्रह के सारे नौकर आश्चर्यचकित रह गये।

नानारूपे प्रीत्य कैल प्रभुर सेवन।
सेइ रात्रि ताहाँ प्रभु करिला वञ्चन॥१७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति अपने प्रेमवश उन नौकरों ने नाना प्रकार से महाप्रभु की सेवा की और उस रात महाप्रभु गोपीनाथ के मन्दिर में रुक गये।

महाप्रसाद-क्षीर-लोभे रहिला प्रभु तथा।
पूर्वे ईश्वरपुरी ताँरे कहियाछेन कथा॥१८॥

अनुवाद

महाप्रभु वहाँ इसीलिए रुके थे क्योंकि वे गोपीनाथ-विग्रह का खीर-प्रसाद पाने के लिए परम उत्सुक थे। उन्होंने अपने गुरु ईश्वर पुरी से यहाँ पर घटने वाली एक कथा सुन रखी थी।

'क्षीरचोरागोपीनाथ' प्रसिद्ध ताँर नाम।
भक्तगणे कहे प्रभु सेइ त' आख्यान॥१९॥

अनुवाद

यह विग्रह दूर-दूर तक क्षीरचोरा गोपीनाथ के नाम से विख्यात था और महाप्रभु ने अपने भक्तों को वह कथा सुनाई कि यह विग्रह इतना प्रसिद्ध कैसे हुआ।

पूर्वे माधवपुरीर लागि' क्षीर कैल चूरि।
अतएव नाम हैल 'क्षीरचोरा हरि'॥२०॥

अनुवाद

पूर्वकाल में इस विग्रह ने माधवेन्द्र पुरी के लिए खीर का बर्तन चुराया था, अतएव वे खीर चुराने वाले हरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पूर्वे श्रीमाधव-पुरी आइला वृन्दावन।
भ्रमिते, भ्रमिते गेला गिरि गोवर्धन॥२१॥

अनुवाद

एक बार श्री माधवेन्द्र पुरी वृन्दावन गये और वहाँ घूमते-घूमते उन्हें गोवर्धन पर्वत मिला।

प्रेमे मत्त,—नाहि ताँर रात्रि-दिन-ज्ञान।
क्षणे उठे, क्षणे पड़े, नाहि स्थानास्थान॥२२॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी भगवत्प्रेम के भाव में लगभग पगले रहते थे और उन्हें इसका पता नहीं चलता था कि दिन है या रात। कभी वे उठ बैठते और कभी जमीन पर गिर पड़ते। उन्हें इसका ज्ञान नहीं रह पाता था कि वे उचित स्थान पर है अथवा नहीं।

शैल परिक्रमा करि' गोविन्दकुण्डे आसि'।
स्नान करि, वृक्षतले आछे सन्ध्याय वसि'॥२३॥

अनुवाद

गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करने के बाद माधवेन्द्र पुरी गोविन्द-कुण्ड गये और वहाँ स्नान किया। फिर सन्ध्या विश्राम के लिए एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

गोपाल-बालक एक दुग्ध-भाण्ड लञा।
आसि' आगे धरि' किछु बलिल हासिया॥२४॥

अनुवाद

जब वे वृक्ष के नीचे बैठे थे तभी एक अज्ञान ग्वालबाल दूध का बर्तन लेकर आया और माधवेन्द्र पुरी के सामने बर्तन रख कर हँसते हुए उनसे इस प्रकार बोला।

पुरी, एइ दुग्ध लञा कर तुमि पान।
मागि' केने नाहि खाओ, किबा कर ध्यान॥२५॥

अनुवाद

"कृपया मेरे द्वारा लाया हुआ दूध पीजिये। आप खाने के लिए कुछ भोजन क्यों नहीं माँग लाते? आप किस तरह का ध्यान लगाये हैं?"

बालकेर सौन्दर्य पुरीर हइल सन्तोष।
ताहार मधुर-वाक्ये गेल भोक-शोष॥२६॥

अनुवाद

उस बालक के सौन्दर्य को देख कर माधवेन्द्र पुरी अत्यधिक सन्तुष्ट हुए। उसके मीठे बोल सुन कर वे अपनी भूख-प्यास भूल गये।

पुरी कहे,—के तुमि, काहाँ तोमार वास।
केमते जानिले, आमि करि उवास॥२७॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "तुम कौन हो? तुम कहाँ रहते हो? तुम कैसे जान पाये कि मैं उपवास कर रहा हूँ?"

बालक कहे,—गोप आमि, एइ ग्रामे वसि।
आमार ग्रामेते केह ना रहे उपवासी॥२८॥

अनुवाद

बालक ने उत्तर दिया, "महाशय! मैं ग्वालबाल हूँ और इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई उपवास नहीं रहता।"

केह अन्न मागि' खाय, केह दुग्धाहार।
अयाचक-जने आमि दिये त' आहार॥२९॥

अनुवाद

"इस गाँव में कोई भी व्यक्ति दूसरे से माँग कर भोजन कर सकता है। कुछ लोग केवल दूध पीकर रहते हैं, किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी से भोजन नही माँगता तो मैं उसके खाने की सारी वस्तुएँ पहुँचाता हूँ।"

जल निते स्त्रीगण तोमारे देखि' गेल।
स्त्रीसब दुग्ध दिया आमारे पाठाइल॥३०॥

अनुवाद

"पानी लेने आई हुई स्त्रियों ने आपको यहाँ देखा तो उन्होंने यह दूध देकर मुझे आपके पास भेजा है।"

गोदोहन करिते चाहि, शीघ्र आमि य़ाब।
आरबार आसि आमि एइ भाण्ड लइब॥३१॥

अनुवाद

बालक ने आगे कहा, "मुझे शीघ्र ही गाएँ दुहने जाना है, किन्तु मैं लौट कर यह दूध का बर्तन आपसे ले लूँगा।"

एत बलि' गेला बालक ना देखिये आर।
माधव-पुरीर चित्ते हइल चमत्कार॥३२॥

अनुवाद

यह कह कर वह बालक वहाँ से चला गया। किन्तु फिर से दिखाई नहीं पड़ा तो माधवेन्द्र पुरी का मन आश्चर्यपूरित हो उठा।

दुग्ध पान करि' भाण्ड धुञा राखिल।
बाट देखे, से बालक पुनः ना आइल॥३३॥

अनुवाद

दूध पीने के बाद माधवेन्द्र पुरी ने बर्तन को धोया और एक तरफ रख दिया। फिर वे उस बालक की राह देखते रहे, किन्तु वह लौटा नहीं।

वसि नाम लय पुरी निद्रा नाहि हय।
शेषरात्रे तन्द्रा हैल—बाह्यवृत्ति-लय॥३४॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी सो नहीं सके। वे बैठे रहे और हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करते रहे। रात्रि समाप्त होने पर उन्हें थोड़ी तन्द्रा आई और उनके सारे बाह्यकार्य ठप्प हो गये।

स्वप्न देखे, सेइ बालक सम्मुखे आसिञा।
एक कुञ्जे लञा गेल हातेते धरिञा॥३५॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने सपने में उसी बालक को देखा। वह उनके सामने आया और उनका हाथ पकड़ कर उन्हें जंगल में एक झाड़ी तक ले गया।

कुञ्ज देखाञा कहे,—आमि एइ कुञ्जे रह।
शीत-वृष्टि-वाताग्निते महा-दुःख पाइ॥३६॥

अनुवाद

बालक ने माधवेन्द्र पुरी को झाड़ी दिखाकर कहा "मैं इसी झाड़ी में रहता हूँ जिस कारण मुझे विकट ठण्ड, वर्षा, बतास तथा झुलसती गर्मी का सामना करना पड़ता है।

ग्रामेर लोक आनि' आमा काढ़' कुञ्ज हैत।
पर्वत-उपरि लञा राख भालमते॥३७॥

अनुवाद

"कृपा करके गाँव के लोगों को लाकर मुझे इस झाड़ी से निकालिये और उनसे कह कर मुझे पर्वत की चोटी पर ठीक से प्रतिष्ठित कर दीजिये।

एक मठ करि' ताहाँ करह स्थापन।
बहु शीतल जले कर श्रीअङ्ग मार्जन॥३८॥

अनुवाद

"उस पर्वत की चोटी पर एक मन्दिर बनवाइये और मुझे उसी में स्थापित कर दीजिये। इसके बाद मुझे पर्याप्त शीतल जल से नहलाइये, जिससे मेरा शरीर स्वच्छ हो जाये।

बहुदिन तोमार पथ करि निरीक्षण।
कबे आसि' माधव आमा करिबे सेवन॥३९॥

अनुवाद

"मैं बहुत दिनों से तुम्हारी बाट जोहता रहा हूँ और आश्चर्य करता रहा हूँ कि कब माधवेन्द्र पुरी यहाँ आकर मेरी सेवा करेगा?

तोमार प्रेमवशे करि' सेवा अङ्गीकार।
दर्शन दिया निस्तारिब सकल संसार।४०॥

अनुवाद

"मैंने तुम्हारे प्रेमभाव के कारण ही तुम्हारी सेवा स्वीकार की है। इस प्रकार मैं प्रकट होऊँगा और मेरा दर्शन करने से सारे पतित लोगों का उद्धार हो जायेगा।

'श्रीगोपाल' नाम मोर,—गोवर्धनधारी।
वज्रेर स्थापित, आमि इहाँ अधिकारी॥४१॥

अनुवाद

"मेरा नाम गोपाल है। मैं गोवर्धन-पर्वत को धारण करने वाला हूँ। मेरी स्थापना वज्र द्वारा की गई थी और मैं यहाँ का अधिकारी हूँ।

शैल-उपरि हैते आमा कुञ्जे लकाञा।
म्लेच्छ-भये सेवक मोर गेल पलाञा॥४२॥

अनुवाद

"जब मुसलमानों का आक्रमण हुआ तो मेरी सेवा करने वाले पुजारी ने मुझे जंगल की इस झाड़ी में छिपा दिया। फिर वह आक्रमण के भय से भाग खड़ा हुआ।

सेइ हैते रहि आमि एइ कुञ्ज-स्थाने।
भाल हैल आइला आमा काढ़ सावधाने॥४३॥

अनुवाद

"जब से पुजारी चला गया, मैं इसी झाड़ी में रह रहा हूँ। अच्छा हुआ कि तुम आ गये। अब सावधानी से मुझे निकाल लो।"

एत बलि' से-बालक अन्तर्धान कैल।
जागिया माधवपुरी विचार करिल॥४४॥

अनुवाद

यह कह कर बालक अन्तर्धान हो गया। जब माधवेन्द्र पुरी जगे तो अपने स्वप्न के बारे में विचार करने लगे।

श्रीकृष्णके देखिनु मुञि नारिनु चिनिते।
एत बलि' प्रेमावेशे पड़िला भूमिते॥४५॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी पश्चाताप करने लगे, "मैंने साक्षात् भगवान् कृष्ण को देखा, किन्तु उन्हें पहचान न सका।" यह कह कर वे प्रेमावेश में आकर जमीन पर गिर पड़े।

क्षणेक रोदन करि, मन कैल धीर।
आज्ञा-पालन लागि' हइला सुस्थिर॥४६॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी कुछ समय तक रोते रहे, किन्तु उसके बाद गोपाल की आज्ञा पूरी करने पर अपना चित्त स्थिर किया।

प्रातःस्नान करि' पुरी ग्राममध्ये गेला।
सब लोक एकत्र करि' कहिते लागिला॥४७॥

अनुवाद

प्रातःकाल स्नान करके माध्वेन्द्र पुरी गाँव में गये और सारे लोगों को एकत्र किया। फिर इस प्रकार बोले।

ग्रामेर ईश्वर तोमार—गोवर्धनधारी।
कुञ्जे आछे, चल, ताँरे बाहिर ये करि॥४८॥

अनुवाद

इस गाँव के स्वामी गोवर्धनधारी झाड़ियों में पड़े हुए हैं। चलो, चल कर उन्हें उस स्थान से निकाल लें।

अत्यन्त निविड़ कुञ्ज,—नारि प्रवेशिते।
कुठारि कोदालि लह द्वार करिते॥४९॥

अनुवाद

"झाड़ियाँ अत्यधिक घनी हैं और हम जंगल में घुस नहीं पायेंगे। अतएव रास्ता साफ करने के लिए कुल्हाड़े तथा फावड़े ले लो।"

शुनि लोक ताँर सङ्गे चलिला हरिषे।
कुञ्ज काटि' द्वार करि' करिला प्रवेशे॥५०॥

अनुवाद

यह सुन कर सारे लोग खुशी-खुशी माधवेन्द्र पुरी के साथ हो लिये। उनके आदेशानुसार उन्होंने झाड़ियाँ काट डालीं, रास्ता साफ कर लिया और जंगल में प्रवेश किया।

ठाकुर देखिल माटी-तृणे आच्छादित।
देखि' सब लोक हैल आनन्दे विस्मित॥५१॥

अनुवाद

जब उन्होंने अर्चाविग्रह को धूल तथा तिनके से ढका देखा तो सब आश्चर्य तथा हर्ष से भर गये।

आवरण दूर करि' करिल विदिते।
महा-भारी ठाकुर—कहे नारे चालाइते॥५२॥

अनुवाद

जब अर्चाविग्रह के शरीर को साफ कर दिया गया तो कुछ लोगों ने कहा, "यह विग्रह बहुत भारी है। इसे कोई भी व्यक्ति हिला नहीं सकता।"

महा-महा-बलिष्ठ लोक एकत्र करिञा।
पर्वत-उपरि गेल पुरी ठाकुर लञा॥५३॥

अनुवाद

चूँकि विग्रह बहुत भारी था अतएव कुछ मजबूत लोग उसे पर्वत की चोटी पर ले जाने के लिए एकत्र हुए। माधवेन्द्र पुरी भी वहाँ गये।

पाथरेर सिंहासने ठाकुर वसाइल।
बड़ एक पाथर पृष्ठे अवलम्ब दिल॥५४॥

अनुवाद

एक बड़े पत्थर को सिंहासन बनाकर उसी पर अर्चाविग्रह को प्रतिष्ठित कर दिया गया। एक दूसरा बड़ा पत्थर विग्रह के सहारे के लिए लगा दिया गया।

ग्रामेर ब्राह्मण सब नव घट लञा।
गोविन्द-कुण्डेर जल आनिल छानिञा॥५५॥

अनुवाद

गाँव के सारे ब्राह्मण पुरोहित जल के नौ घड़े लेकर एकत्र हुए, गोविन्द-कुण्ड से पानी लाया गया तथा उसे छाना गया।

नव शतघट जल कैल उपनीत।
नाना वाद्य-भेरी बाजे, स्त्रीगण गाय गीत॥५६॥

अनुवाद

अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा की जाते समय गोविन्द-कुण्ड से ९०० घड़े जल लाया गया। बिगुल तथा ढोल बज रहे थे और स्त्रियाँ गीत गा रही थीं।

केह गाय, केह नाचे, महोत्सव हैल।
दधि, दुग्ध, घृत आइल ग्रामे य़त छिल॥५७॥

अनुवाद

प्रतिष्ठा-उत्सव के समय कुछ लोग गा रहे थे तो कुछ नाच रहे थे। गाँव का सारा दूध, दही तथा घी उत्सव के लिए लाया गया।

भोग-सामग्री पाइल सन्देशादि य़त।
नाना उपहार, ताहा कहिते पारि कत॥५८॥

अनुवाद

वहाँ पर नाना प्रकार के व्यंजन तथा मिठाइयाँ और अन्य भेंटें लाई गईं। मैं उन सबका वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ।

तुलसी आदि, पुष्प, वस्त्र आइल अनेक।
आपने माधवपुरी कैल अभिषेक॥५९॥

अनुवाद

गाँव वाले प्रचुर मात्रा में तुलसीदल, फूल तथा विविध प्रकार के वस्त्र ले आये। तब स्वयं श्री माधवेन्द्र पुरी ने अभिषेक (स्नान कराने का उत्सव) प्रारम्भ किया।

तात्पर्य

हरि-भक्ति-विलास में (छठा विलास, श्लोक ३०) बतलाया गया है कि अर्चाविग्रह को दही तथा दूध-मिश्रित जल से स्नान कराना चाहिए और साथ ही शंख, घंटियाँ तथा अन्य बाजे बजा कर *ॐ भगवते वासुदेवाय* मन्त्र का तथा *ब्रह्म-संहिता* का श्लोक *चिन्तामणिप्रकरपद्मसु कल्पवृक्षलक्षावृतेषु सुरभिरभिपालयन्तम्* श्लोक का उच्चारण करना चाहिए।

अमङ्गला दूर करि' कराइल स्नान।
बहु तैल दिया कैल श्रीअङ्ग चिक्कण॥६०॥

अनुवाद

जब मन्त्रोच्चार से सारा अमंगल दूर हो गया तो अर्चाविग्रह का अभिषेक शुरू हुआ। सर्वप्रथम विग्रह पर प्रचुर तेल मला गया जिससे उसका शरीर चिकना हो उठा।

पञ्चगव्य, पञ्चामृत स्नान कराञा।
महास्नान कराइल शत घट दिञा॥६१॥

अनुवाद

प्रथम स्नान के बाद पञ्चगव्य से तथा फिर पञ्चामृत से स्नान कराया गया। फिर एक सौ घड़ों में लाये गये घी तथा जल से महास्नान कराया गया।

तात्पर्य

पञ्चगव्य में दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोबर मिले रहते हैं। ये सारे पदार्थ गाय से प्राप्त होते हैं, अतएव आप कल्पना कर सकते हैं कि गाय कितनी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका मूत्र तथा मल विग्रह को स्नान कराने में लगते हैं। *पञ्चामृत* में दही, दूध, घी, शहद तथा चीनी मिले रहते हैं। इस व्यंजन के भी अधिकांश अवयव गाय से प्राप्त होते हैं। इन्हें सुस्वादु

बनाने के लिए चीनी तथा शहद मिलाई जाती है।

पुनः तैल दिया कैल श्रीअङ्ग चिक्कण।
शंखगन्धोदके कैल स्नान समाधान॥६२॥

अनुवाद

महास्नान के बाद विग्रह को सुगन्धित तेल से मल कर उसके शरीर को चिकनाया गया। तत्पश्चात् शंख के भीतर सुगन्धित जल भर कर अन्तिम अभिषेक सम्पन्न किया गया।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इसकी टीका करते हुए *हरिभक्ति-विलास* से उद्धरण दिया है। जौ का आटा, गेहूँ का आटा, सिन्दूर, उड़द की पिसी दाल तथा *आवाट* (पिसे चावल तथा केले का चूर्ण) को गाय की पूँछ के बाल से बने ब्रश (तूली) से विग्रह के शरीर पर लेपा जाता है। इससे चमक आ जाती है। विग्रह के शरीर पर मला जाने वाला तेल सुगंधित होना चाहिए। महास्नान सम्पन्न कराने के लिए विग्रह के शरीर के ऊपर कम-से-कम २ १/२ मन (लगभग २४ गैलन) जल उड़ेलना चाहिए।

श्रीअङ्ग मार्जन करि' वस्त्र पराइल।
चन्दन, तुलसी, पुष्प-माला अङ्गे दिल॥६३॥

अनुवाद

विग्रह का शरीर स्वच्छ करने के बाद उन्हें सुन्दर नये वस्त्र पहनाये गये। फिर विग्रह पर चन्दन, तुलसी-माला तथा अन्य सुगन्धित फूलों की माला पहनाई गई।

धूप, दीप, करि' नाना भोग लागाइल।
दधि-दुग्ध-सन्देशादि यत किछु आइल॥६४॥

अनुवाद

अभिषेक कराने के बाद धूप तथा दीप जलाये गये और अर्चाविग्रह के समक्ष सभी तरह का भोजन अर्पित किया गया। भोजन में दही, दूध तथा आई हुई सभी तरह की मिठाइयाँ थीं।

सुवासित जल नवपात्रे समर्पिल।
आचमन दिया से ताम्बूल निवेदिल॥६५॥

अनुवाद

सर्वप्रथम अर्चाविग्रह को तरह-तरह का भोजन अर्पित किया गया, फिर नये पात्रों में सुवासित पीने का जल और तब मुँह धोने के लिए जल दिया गया। अन्त में मसालेदार पान भेंट किया गया।

आरात्रिक करि' कैल बहुत स्तवन।
दण्डवत् करि' कैल आत्म-समर्पण॥६६॥

अनुवाद

पान देने का बाद भोग आरात्रिक सम्पन्न हुआ। अन्त में हर एक ने विविध प्रार्थनाएँ कीं और फिर आत्मसमर्पण कर दण्डवत् प्रणाम किया।

ग्रामेर य़तेक तण्डुल, दालि, गोधूम-चूर्ण।
सकल आनिया दिल पर्वत हैल पूर्ण॥६७॥

अनुवाद

ज्योंही गाँववालों को पता चला कि अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा होने जा रही है, वे अपने यहाँ से चावल, दाल तथा गेहूँ के आटे की प्रचुर राशि ले आये। यह सामग्री मात्रा में इतनी हो गई कि पर्वत की चोटी उससे भर गई।

कुम्भकार घरे छिल य़े मृद्भाजन।
सब आनाइल प्राते, चड़िल रन्धन॥६८॥

अनुवाद

जब गाँव वाले चावल, दाल तथा आटा ले आये तो गाँव के कुम्हार भोजन पकाने के तमाम बर्तन ले आये और प्रात:काल से भोजन बनना प्रारम्भ हुआ।

दशविप्र अन्न रान्धि' करे एक स्तूप।
जना-पाँच रान्धे व्यञ्जनादि नाना सूप॥६९॥

अनुवाद

दस ब्राह्मणों ने अन्न पकाया और पाँच ब्राह्मणों ने सूखी तथा रसेदार सब्जियाँ पकाईं।

वन्य शाक-फल-मूले विविध व्यञ्जन।
केह बड़ा-बड़ि-कड़ि करे विप्रगण॥७०॥

अनुवाद

सारी तरकारियाँ जंगल से एकत्र किये गये पत्तों, जड़ों तथा फलों से तैयार की गईं। किसी ने दाल पीस कर बड़े तथा बड़ियाँ बनाईं। इस तरह ब्राह्मणों ने सभी तरह के व्यंजन तैयार किये।

जना पाँच-सात रुटि करे राशि-राशि।
अन्न-व्यञ्जन सब रहे घृते भासि'॥७१॥

अनुवाद

पाँच-सात व्यक्तियों ने तमाम रोटियाँ बनाईं और उन्हें पर्याप्त घी से चुपड़ दिया। सारी सब्जियाँ, दाल तथा भात भी घी से सिक्त था।

नववस्त्र पाति' ताहे पलाशेर पात।
रान्धि' रान्धि' तार ऊपर राशि कैल भात॥७२॥

अनुवाद

सारा पका चावल पलाश के पत्तों में ढेर कर दिया गया। ये पत्ते भूमि पर बिछे नये वस्त्र के ऊपर फैले थे।

तार पाशे रुटि-राशिर पर्वत हइल।
सूप-आदि-व्यञ्जन-भाण्डे चौदिके धरिल॥७३॥

अनुवाद

पके चावल के ढेर के पास ही रोटियों का ढेर था और सारी तरकारियों तथा रसेदार व्यंजनों को विभिन्न पात्रों में भर कर उनके चारों ओर रख दिया गया था।

तार पाशे दधि, दुग्ध, माठा, शिखरिणी।
पायस, मथनी, सर पाशे धरि आनि'॥७४॥

अनुवाद

तरकारियों के पास दही, दूध, माट्ठा, शिखरिणी, खीर, मलाई तथा साढ़ी-भरे पात्र रख दिये गये।

तात्पर्य

इस प्रकार का उत्सव *अन्नकूट* कहलाता है, जिसमें प्रसाद-वितरण हेतु पकाये चावल का ढेर लगा दिया जाता है।

हेनमते अन्नकूट करिल साजन।
पुरी-गोसाञि गोपालेर कैल समर्पण॥७५॥

अनुवाद

इस प्रकार अन्नकूट उत्सव मनाया गया और माधवेन्द्र पुरी ने अपने हाथ से गोपाल को हर वस्तु अर्पित की।

अनेक घट भरि' दिल सुवासित जल।
बहुदिनेर क्षुधाय गोपाल खाइल सकल॥७६॥

अनुवाद

पीने के लिए अनेक पात्रों में सुगंधित जल भरा गया और श्री गोपाल ने, जो इतने दिनों से भूखे थे, अर्पित की गई प्रत्येक वस्तु खाई।

यद्यपि गोपाल सब अन्न-व्यञ्जन खाइल।
ताँर हस्त-स्पर्शे पुनः तेमनि हइल॥७७॥

अनुवाद

यद्यपि गोपाल ने अपने ऊपर चढ़ी हुई सारी सामग्री खा ली फिर भी उनके दिव्य हाथ के स्पर्श से हर वस्तु पूर्ववत् बनी रही।

तात्पर्य

नास्तिक लोग कभी नहीं समझ पायेंगे कि किस तरह भगवान् अपने अर्चाविग्रह रूप में प्रकट होकर भक्तों द्वारा अर्पित सारा भोजन खा सकते हैं। *भगवद्गीता* में (९.२६) कृष्ण कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई प्रेम तथा भक्तिपूर्वक मुझ पर एक पत्ती, एक फूल, फल या जल भी चढ़ाता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" चूँकि भगवान् पूर्ण हैं, अतएव वे अपने भक्तों द्वारा चढ़ाई गई हर वस्तु को खाते हैं। फिर भी उनके दिव्य हाथ के स्पर्श से सारा भोजन पूर्ववत् बना रहता है। केवल गुण में अन्तर आता है। चढ़ाने के पूर्व भोजन कुछ और रहता है और चढ़ने के बाद उसमें दिव्य गुण आ जाता है। चूँकि भगवान् *पूर्ण* हैं इसलिए खाने के बाद भी वे वैसे के वैसे रहते हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते*। कृष्ण को भेंट किया गया भोजन गुण में कृष्ण जैसा होता है। जिस प्रकार कृष्ण *अव्यय* हैं अर्थात् नष्ट न होने वाले हैं, उसी तरह उनके द्वारा खाया गया भोजन पूर्ववत् बना रहता है।

इसके अतिरिक्त कृष्ण अपनी किसी भी दिव्य इन्द्रिय से भोजन कर सकते हैं। वे भोजन को देख कर या उसका स्पर्श करके ही खा चुकते हैं। कोई यह न सोचे कि कृष्ण के लिए भोजन को खाना आवश्यक है। वे सामान्य मनुष्य की तरह मूर्ख नहीं होते, तो भी वे अपने को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं मानो भूखे हों; अतएव वे कोई भी वस्तु खा सकते हैं, चाहे मात्रा कितनी ही क्यों न हो। कृष्ण द्वारा भोजन करने में जो दर्शन निहित है उसे दिव्य इन्द्रियों द्वारा ही समझा जा सकता है। जब हमारी इन्द्रियाँ भगवान् की भक्ति करते-करते शुद्ध हो जाती है, तभी हम कृष्ण के कार्यकलाप, नाम, रूप, गुण, लीलाएँ तथा परिकर को समझ सकते हैं।

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियेः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

"कृष्ण को स्थूल इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता। किन्तु वे भक्तों की दिव्य प्रेमाभक्ति से प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट होते हैं।" (भक्तिरसामृत सिंधु १.२.२३४)। भक्तगण अनुभूति से कृष्ण को समझते हैं। अभक्ति पद रह कर कृष्ण तथा उनकी लीलाओं को शोध-कार्य के द्वारा समझ पाना संसारी विद्वान् के लिए संभव नहीं है।

इहा अनुभव कैल माधव गोसाञि।
ताँर ठाञि गोपालेर लुकान किछु नाइ॥७८॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने दिव्य अनुभव से जान लिया कि किस तरह गोपाल द्वारा सब कुछ खा लिये जाने पर भी भोजन ज्यों का त्यों बना रहा। भगवान् के भक्तों से कुछ छिपा नहीं रहता।

एकदिनेर उद्योगे ऐछे महोत्सव कैल।
गोपाल-प्रभावे हय, अन्ये ना जानिल॥७९॥

अनुवाद

यह अद्भुत उत्सव तथा श्री गोपालजी की प्रतिष्ठा, दोनों को एक ही दिन रखा गया था। यह सब गोपाल की शक्ति से ही सम्पन्न हो सका। इसे भक्त के अलावा कोई दूसरा नहीं समझ सकता।

तात्पर्य

कुछ ही काल में (५ साल के भीतर) कृष्णभावनामृत-आन्दोलन सारे विश्व में फैल गया है और संसारी लोगों को यह देख कर हैरत है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से हम जानते हैं कि सब कुछ सम्भव है। तो फिर कृष्ण को पाँच वर्ष क्यों लगे? वे तो पाँच ही दिनों में अपने नाम तथा यश को सारे विश्व में फैला सकते हैं। जिन लोगों को कृष्ण पर श्रद्धा तथा भक्ति है वे समझ सकते हैं कि ये बातें श्री चैतन्य की कृपा से कितने विचित्र ढंग से फलित होती हैं। हम तो निमित्त मात्र हैं। कुरुक्षेत्र युद्ध में अर्जुन अठारह दिनों के भीतर ही विजयी हुए क्योंकि उन पर कृष्ण की कृपा थी।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥

"जहाँ भी योगेश्वर कृष्ण रहते हैं और जहाँ भी परम धनुर्धर अर्जुन हैं वहीं ऐश्वर्य, विजय, अद्वितीय शक्ति तथा नैतिकता रहती है। यह मेरा मत है।" (भगवद्गीता १८.७८)

यदि हमारे कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रचारक कृष्ण के निष्ठावान भक्त हों तो कृष्ण सदैव उनके साथ होंगे, क्योंकि वे अपने भक्तों पर अत्यन्त दयालु तथा अनुकूल रहते हैं। जिस तरह कृष्ण तथा अर्जुन कुरुक्षेत्र युद्ध में विजयी हुए थे उसी तरह यह कृष्णभावनामृत-आन्दोलन भी विजयी होगा,

यदि हम भगवान् के निष्ठावान भक्त बने रहेंगे और पूर्ववर्ती लोगों (षड् गोस्वामियों तथा अन्य भगवद्भक्तों) के अनुसार सेवा करेंगे। जैसा कि नरोत्तम दास ठाकुर ने कहा है *ताँदेर चरण सेवि भक्त-सने वास, जनमे-जनमे हय एइ अभिलाष*। कृष्णभावनामृत के भक्तों की यही आकांक्षा होनी चाहिए कि वे सदैव भक्तों की संगति में रहें। *भक्तसने वास*—वे कृष्णभावनामृत समिति या आन्दोलन से बाहर नहीं जा सकते। संघ में रहते हुए हमें चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करके तथा उनके नाम और यश को विश्व-भर में फैला करके पूर्ववर्तियों की सेवा करनी चाहिए। यह अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है कि यह कैसे होगा। इसे तो कृष्ण की कृपा से होना ही है।

आचमन दिया दिल विड़क-सञ्चय।
आरति करिल लोके, करे जय जय॥८०॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने गोपाल को मुख धोने के लिए पानी दिया और खाने के लिए पान दिये। फिर जब आरती की गई तो सारे लोगों ने जय-जयकार की।

शय्या कराइल, नूतन खाट आनाञा।
नव वस्त्र आनि' तार उपरे पातिया॥८१॥

अनुवाद

भगवान् के विश्राम का प्रबन्ध करने के उद्देश्य से माधवेन्द्र पुरी एक नई चारपाई ले आये और उसके ऊपर नया चादर बिछाकर बिस्तर तैयार कर दिया।

तृण-टाटि दिया चारिदिक् आवरिल।
उपरेते एक टाटि दिया आच्छादिल॥८२॥

अनुवाद

चारपाई को चारों ओर से टटिया से ढक कर एक अस्थायी मन्दिर तैयार कर दिया गया। इस तरह एक खाट थी और उसे ढकने के लिए टटिया।

पुरी-गोसाञि पाञा दिल सकल ब्राह्मणे।
आ-बाल-वृद्ध ग्रामेर लोक कराइ भोजने॥८३॥

अनुवाद

जब भगवान् चारपाई पर लेट गये तो माधवेन्द्र पुरी ने उन सारे ब्राह्मणों को एकत्र किया, जिन्होंने प्रसाद तैयार किया था, और उनसे बोले, "अब हर एक को—बच्चे से लेकर बूढ़े तक को—भरपेट भोजन कराइये।"

सबे वसि' क्रमे क्रमे भोजन करिल।
ब्राह्मण-ब्राह्मणीगणे आगे खाओयाइल॥८४॥

अनुवाद

वहाँ पर एकत्र सारे लोग प्रसाद प्राप्त करने के लिए बैठ गये और एक-एक करके सबों ने भोजन किया। सबसे पहले ब्राह्मणों तथा उनकी पत्नियों को भोजन कराया गया।

तात्पर्य

वर्णाश्रम प्रथा के अनुसार ब्राह्मणों का सबसे पहले सम्मान किया जाता है। अतएव सर्वप्रथम ब्राह्मणों तथा उनकी पत्नियों को प्रसाद दिया गया और उसके बाद अन्यों (क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों) को। यह प्रथा सदैव से रही हैं और आज भी भारत में चल रही है, यद्यपि ब्राह्मण जाति अब उतनी योग्य नहीं है। वर्णाश्रम-विधानों के कारण ही ऐसा चलता जा रहा है।

अन्य ग्रामेर लोक य़त देखिते आइल।
गोपाल देखिया सबे प्रसाद खाइल॥८५॥

अनुवाद

न केवल गोवर्धन गाँव के लोगों ने अपितु अन्य गाँवों से आये हुए लोगों ने भी प्रसाद प्राप्त किया। उन्होंने गोपाल-विग्रह का दर्शन किया और उन्हें प्रसाद भी मिला।

देखिया पुरीर प्रभाव लोके चमत्कार।
पूर्व अन्नकूट य़ेन हैल साक्षात्कार।८६॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी का प्रभाव देख कर वहाँ एकत्र सारे लोग आश्चर्यचकित

थे। उन्होंने देखा कि कृष्ण के समय जो अन्नकूट उत्सव मनाया गया था वही अब श्री माधवेन्द्र पुरी की कृपा से पुनः मनाया जा रहा है।

तात्पर्य

पुराकाल में, द्वापर युग के अन्त में, वृन्दावन के ग्वालों ने इन्द्रराज की पूजा का प्रबन्ध कर रखा था, किन्तु कृष्ण के कहने पर उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। उसके बदले उन्होंने गायों, ब्राह्मणों तथा गोवर्धन की पूजा का उत्सव चालू किया। उस समय कृष्ण ने अपना विस्तार करते हुए कहा था "मैं गोवर्धन पर्वत हूँ।" इस तरह उन्होंने गोवर्धन पर्वत पर चढ़ाये गये सारे भोजन तथा साज-सामान को स्वीकार किया। *श्रीमद्भागवत* में (१०.२४.२६,३१-३३) कहा गया है—

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ताः पायसादयः।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम॥

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता।
प्रोक्तंनिशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्॥

उपहृत्य बलीन् सर्वान् आदृता यवसं गवाम्।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम्॥

"यज्ञ से एकत्र किये गये अन्न तथा घी से सभी तरह के व्यंजन तैयार करो। चावल, दाल, हलवा, पकौड़ा, पूरी तथा दूध की वस्तुएँ यथा खीर, रसगुल्ला, सन्देश, लड्डू बनाओ।"

"इसलिए भगवान् कृष्ण ने ग्वालों को सलाह दी कि वे इन्द्र-यज्ञ बन्द कर दें और इन्द्र को दण्ड देने के लिए गोवर्धन पूजा शुरू करें, क्योंकि इन्द्र स्वर्गलोक का परम नियन्ता होने के कारण अत्यधिक गर्वित हो उठा है। नन्द महाराज समेत सारे ईमानदार तथा सरल ग्वालों ने कृष्ण का प्रस्ताव मान लिया और कृष्ण ने जो भी कहा उसे उन सबों ने विस्तारपूर्वक सम्पन्न किया। उन्होंने गोवर्धन की पूजा तथा प्रदक्षिणा पूरी की। कृष्ण के आदेशानुसार

नन्द महाराज तथा ग्वालों ने विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ तथा प्रसाद अर्पित करके गोवर्धन पर्वत की पूजा प्रारम्भ की। वृन्दावन के सारे निवासी एकत्र हुए, उन्होंने अपनी गाएँ सजाईं और उन्हें खाने के लिए घास दी। फिर गायों को आगे करके वे गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा करने लगे।"

सकल ब्राह्मणे पुरी वैष्णव करिल।
सेइ सेइ सेवा-मध्ये सबा नियोजित॥८७॥

अनुवाद

इस अवसर पर उपस्थित सारे ब्राह्मणों को माधवेन्द्र पुरी ने वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित किया और उन्हें विभिन्न सेवा-कार्यों में लगाया।

तात्पर्य

शास्त्रों का कथन है—*षटकर्मनिपुणो विप्रो मन्त्र-तन्त्र-विशारदः अवैष्णव*। भले ही ब्राह्मण जाति में उत्पन्न या योग्य ब्राह्मण अपने कर्मों में पटु क्यों न हो किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वैष्णव हो। उसके छह ब्राह्मण कर्मों का उल्लेख हुआ है। उसे *पठन* अर्थात् वैदिक शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए। उसे अन्यों को वैदिक साहित्य पढ़ाने में समर्थ होना चाहिए। यह *पाठन* है। उसे विभिन्न देवों की पूजा करने तथा वैदिक अनुष्ठान करने (*यजन*) में भी पटु होना चाहिए। इसी *यजन* के कारण, समाज का अग्रणी होने से ब्राह्मण क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों के लिए वैदिक अनुष्ठान पूरे करता है। इस तरह औरों को उत्सव सम्पन्न कराने में सहायता करना *याजन* कहलाता है। *दान* तथा *प्रतिग्रह* अन्य दो कर्म हैं। ब्राह्मण अपने यजमानों से (मुख्यतया क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों से) सभी प्रकार की भेंटें स्वीकार करता है (*प्रतिग्रह*)। किन्तु वह सारे धन को अपने पास नहीं रखता। वह आवश्यकता-भर के लिए रख कर शेष भाग अन्यों को दे देता है (*दान*)।

ऐसे योग्य ब्राह्मण को अर्चाविग्रह की पूजा करने के लिए वैष्णव होना आवश्यक है। अतएव वैष्णव का स्थान ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। माधवेन्द्र पुरी द्वारा प्रस्तुत दृष्टान्त से इसकी पुष्टि होती है कि कोई ब्राह्मण कितना ही पटु क्यों न हो, जब तक वह वैष्णव मन्त्र में दीक्षित नहीं होता तब तक वह पुरोहित या विष्णु-विग्रह का सेवक नहीं बन सकता। गोपाल के विग्रह की स्थापना करने के बाद माधवेन्द्र पुरी ने सारे ब्राह्मणों को वैष्णव धर्म

में दीक्षित कर लिया। इसके बाद ब्राह्मणों के लिए अर्चाविग्रह सम्बन्धी विविध सेवा-कार्य नियत कर दिया। किसी भी अर्चाविग्रह की रखवाली के लिए चार बजे प्रातःकाल से लेकर रात्रि के दस बजे तक कम-से-कम पाँच छह ब्राह्मण होने चाहिए। मन्दिर में छह बार *आरात्रिक* की जाती हैं और अर्चाविग्रह को प्रायः भोजन चढ़ा कर प्रसाद बाँटा जाता है। पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा विधि-विधानों के अनुसार निर्धारित अर्चाविग्रह की पूजा-विधि यही है। हमारा सम्प्रदाय माधवेन्द्र पुरी की ही शिष्य-परम्परा में आता है, जिनका सम्बन्ध मध्व सम्प्रदाय से था। हम श्री चैतन्य महाप्रभु की शिष्य-परम्परा में हैं, जिन्हें माधवेन्द्र पुरी के शिष्य ईश्वर पुरी ने दीक्षा दी थी। इसीलिए हमें श्री माधवेन्द्र पुरी के चरणचिह्नों का अनुसरण बहुत सावधानी से करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उन्होंने किस तरह गोवर्धन पर्वत की चोटी पर गोपाल का विग्रह स्थापित किया, किस तरह उन्होंने केवल एक ही दिन में अन्नकूट-उत्सव की तैयारी की और उसे सम्पन्न किया, इत्यादि इत्यादि। अमरीका तथा यूरप के धनी देशों में हम अर्चाविग्रहों की जो स्थापना करें, उसे श्री माधवेन्द्र पुरी के कार्यों के ही अनुसार होना चाहिए। विग्रह के सारे सेवकों को सर्वथा योग्य ब्राह्मण होना चाहिए और उन्हें यथासम्भव अधिक से अधिक मात्रा में प्रसाद चढ़ाने और उसे भगवान् का दर्शन करने आये हुए भक्तों में बाँटने की वैष्णव-प्रथा का पालन करना चाहिए।

पुनः दिन-शेष प्रभुर कराइल उत्थान।
किछु भोग लागाइल कराइल जलपान॥८८॥

अनुवाद

विश्राम के बाद विग्रह को संध्या-समय जगाना चाहिए और तुरन्त ही उसे कुछ-न-कुछ खाने और पीने के लिए दिया जाना चाहिए।

गोपाल प्रकट हैल,—देशे शब्द हैल।
आश-पाश ग्रामेर लोक देखिते आइल॥८९॥

अनुवाद

जब देश-भर में यह प्रचार हो गया कि भगवान् गोपाल गोवर्धन-पर्वत के ऊपर प्रकट हो चुके हैं तो आसपास के गाँव वाले विग्रह का दर्शन करने आये।

एकेक दिन एकेक ग्रामे लइल मागिञा।
अन्नकूट करे सबे हरषित हञा॥९०॥

अनुवाद

हर गाँव वालों ने एक-एक करके माधवेन्द्र पुरी से प्रार्थना की कि अन्नकूट उत्सव मनाने के लिए उन्हें उनका दिन नियत कर दिया जाय। इस तरह कुछ समय तक दिन-प्रतिदिन अन्नकूट उत्सव मनाया जाता रहा।

रात्रिकाले ठाकुरेरे कराइया शयन।
पुरी-गोसाञि कैल किछु गव्य भोजन॥९१॥

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने दिन-भर कुछ नहीं खाया, किन्तु रात में विग्रह को सुला देने के बाद उन्होंने दूध से बनी वस्तु खाई।

प्रात:काले पुन: तैछे करिल सेवन।
अन्न लञा एकग्रामेर आइल लोकगण॥९२॥

अनुवाद

पुन: अगली सुबह अर्चाविग्रह की सेवा प्रारम्भ हुई और एक गाँव के लोग विविध प्रकार के पक्वान्न लेकर आये।

अन्न, घृत, दधि, दुग्ध,—ग्रामे यत छिल।
गोपालेर आगे लोक आनिया धरिल॥९३॥

अनुवाद

गाँव के सारे निवासी गाँव-भर का सारा भोजन, अन्न, घी, दही तथा दूध गोपाल-अर्चाविग्रह पर चढ़ाने के लिए लाये।

तात्पर्य

वास्तव में अन्न, घृत, दधि तथा दुग्ध—ये ही सारे भोजन के आधार हैं। शाक तथा फल तो गौण हैं। अन्न, घृत, दुग्ध तथा घृत से लाखों प्रकार के व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं। अन्नकूट उत्सव में गोपाल को अर्पित किये गये भोजन में यही पाँचों सामग्रियाँ थीं। जो असुर हैं वे ही अन्य प्रकार के भोजन के प्रति आकृष्ट होते हैं, किन्तु यहाँ हम उनका उल्लेख

नहीं करेंगे। हमें यह समझना होगा कि पौष्टिक भोजन तैयार करने के लिए हमें अन्न, घी, दही और दूध की ही आवश्यकता होती है। अर्चाविग्रह को हम इनके अतिरिक्त और कुछ अर्पित भी नहीं कर सकते। वैष्णव पूर्ण मनुष्य होने के नाते अर्चाविग्रह पर अर्पित भोजन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करता। लोग प्राय: राष्ट्रीय खाद्य-नीति से विचलित हो जाते हैं, किन्तु वैदिक शास्त्रों को देखने से पता चलता है कि यदि प्रचुर गाएँ तथा अन्न हों तो सारी खाद्य-समस्या हल हो जाय। इसीलिए *भगवद्गीता* में संस्तुति की गई है कि वैश्यजन अन्न उत्पन्न करें और गाँवों को सुरक्षा प्रदान करें। गौवें सर्वाधिक महत्वपूर्ण पशु हैं क्योंकि वे दूध जैसा चमत्कारी भोजन प्रदान करती हैं, जिससे घी तथा दही तैयार किया जा सकता है।

मानव सभ्यता की सफलता कृष्णभावनामृत पर आश्रित है, जिसमें अर्चाविग्रह-पूजा की संस्तुति की जाती है। शाक, अन्न, दूध, घी तथा दही से बने व्यंजन अर्चाविग्रह को अर्पित करके वितरित किये जाते हैं। हमें यहीं पर पूर्व तथा पश्चिम का अन्तर देखने को मिलता है। जो लोग गोपाल-विग्रह का दर्शन करने आये थे वे सभी अपने साथ विग्रह को अर्पित करने हेतु तरह-तरह के पकवान लाये थे। वे अपने साथ जितना भी भोजन उपलब्ध था लेते आये थे और वे अर्चाविग्रह के समक्ष न केवल प्रसाद ग्रहण करने के लिए खड़े थे, अपितु उसे अन्यों में वितरित भी करना चाहते थे। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन भोजन बनाने, फिर उसे अर्चाविग्रह को अर्पित करके सामान्य लोगों में वितरित करने की प्रथा का हामी है। इस कार्य को सारे विश्व में प्रसारित करना चाहिए क्योंकि इससे लोगों की भोजन की आदतें सुधरेंगी और आसुरी आचरण में सुधार होगा। आसुरी सभ्यता से विश्व में कभी भी शान्ति नहीं आ सकती। चूँकि भोजन करना मानव-समाज की सर्वप्रथम आवश्यकता है अतएव जो भोजन बनाने और उसे वितरित करने के कार्य में लगे हैं, उन्हें माधवेन्द्र पुरी से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और अन्नकूट उत्सव मनाना चाहिए। जब लोग अर्चाविग्रह को अर्पित किया प्रसाद ही खाने लगेंगे, तो सारे असुर वैष्णव बन जायेंगे। जब लोग कृष्णभावनाभावित होंगे तो सरकार भी वैसी ही बनेगी। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सदैव अत्यन्त उदार एवं हर एक का शुभचिन्तक होता है। जब ऐसे लोग सरकार सँभालेंगे तो लोग निश्चित रूप से निष्पाप होंगे। तब उत्पात मचाने वाले असुर नहीं होंगे। तभी समाज में शान्तिमय वातावरण बना रह सकता है।

पूर्वदिन-प्राय विप्र करिल रन्धन।
तैछे अन्नकूट गोपाल करिल भोजन॥९४॥

अनुवाद

अगले दिन पहले की तरह अन्नकूट उत्सव मनाया गया। सारे ब्राह्मणों ने भोजन पकाया और गोपाल ने उसे ग्रहण किया।

व्रजवासी लोकेर कृष्ण सहज पिरीति।
गोपालेर सहज-प्रीति व्रजवासि-प्रति॥९५॥

अनुवाद

कृष्णभावनामृत सम्पन्न करने के लिए आदर्श स्थान व्रजभूमि या वृदावन है, जहाँ लोग स्वभावतः कृष्ण से प्रेम करने के प्रति उन्मुख होते हैं और कृष्ण भी उनसे प्रेम करने के प्रति उन्मुख रहते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता में कहा गया है—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*। भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्तों के बीच आदान-प्रदान होता है। भक्त जितनी ही निष्ठा से कृष्ण से प्रेम करते हैं, कृष्ण भी उतनी ही तीव्रता से प्रतिदान करते हैं—इतना कि उच्च कोटि का भक्त कृष्ण से साक्षात बातें कर सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (१०.१०) कृष्ण द्वारा हुई है—

तेषां सातत युक्तनां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं बुद्धि प्रदान करना हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते है।" मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य कृष्ण को समझना और भगवद्धाम को वापस जाना है। अतएव जो व्यक्ति प्रेम तथा भक्ति के साथ कृष्ण की सेवा में निष्ठापूर्वक लगा रहता है, वह कृष्ण से बातें कर सकता है और आदेश प्राप्त कर सकता है, जिससे वह शीघ्रता से भगवद्धाम लौट सके। आज अनेक विद्वान धर्म-विज्ञान का अनुमोदन करते हैं और भगवान् के विषय में उन्हें कुछ अनुमान भी है, किन्तु भगवान् के व्यावहारिक अनुभव के बिना धर्म धर्म नहीं रहता। *श्रीमद्भागवत* में इसे एक प्रकार की ठगी कहा

गया है। यदि कोई भगवान् से बातें करने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने के योग्य नहीं है तो भला वह धर्म के सिद्धान्तों को कैसे समझ सकता है? इस तरह कृष्णभावनामृत के बिना धर्म या धार्मिक अनुभव की बातें करना समय का अपव्यय मात्र है।

महाप्रसाद खाइल आसिया सब लोक।
गोपाल देखिया सबार खण्डे दुःख-शोक॥९६॥

अनुवाद

विभिन्न गाँवों से लोगों की भीड़-की-भीड़ गोपाल-विग्रह का दर्शन करने आई और उसी समय उन सबों ने महाप्रसाद ग्रहण किया। जब उन लोगों ने गोपाल के सर्वोत्कृष्ट रूप को देखा तो उनका शोक तथा दुख जाता रहा।

आश-पाश व्रजभूमेर ग्रत ग्राम सब।
एक एक दिन सबे करे महोत्सव॥९७॥

अनुवाद

व्रजभूमि (वृन्दावन) के पड़ोस के सारे गाँव गोपाल के प्राकट्य से भिज्ञ हो गये और इन गाँवों के सारे लोग इनका दर्शन करने आये। उन सबों ने एक-एक दिन अन्नकूट उत्सव मनाया।

गोपाल-प्रकट शुनि' नाना देश हैते।
नाना द्रव्य लञा लोक लागिल आसिते॥९८।

अनुवाद

इस तरह न केवल पड़ोसी गाँव अपितु अन्य प्रान्त भी गोपाल के प्रादुर्भाव के विषय में जान गये। फलतः सभी जगह से लोग नाना प्रकार की भेंटें लेकर आये।

मथुरार लोक सब बड़ बड़ धनी।
भक्ति करि' नाना द्रव्य भेट देय आनि'॥९९॥

अनुवाद

मथुरा के बड़े-बड़े धनी लोग भी नाना प्रकार की भेंटें लाये और भक्तिपूर्वक उन्हें अर्चाविग्रह को चढ़ाया।

स्वर्ण, रौप्य, वस्त्र, गन्ध, भक्ष्य-उपहार।
असंख्य आइसे, नित्य बाड़िल भाण्डार॥१००॥

अनुवाद

इस तरह सोना, चाँदी, वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य तथा खाद्य पदार्थों की असंख्य भेंटें आतीं और गोपाल का भंडार नित्य बढ़ता रहता।

एक महाधनी क्षत्रिय कराइल मन्दिर।
केह पाक-भाण्डार कैल, केह त' प्राचीर॥१०१॥

अनुवाद

कभी राजन्य वर्ग के किसी धनी क्षत्रिय ने मन्दिर बनवा दिया, किसी ने भोजन पकाने के बर्तन दे दिये और किसी ने चहारदीवारियाँ बनवा दीं।

एक एक व्रजवासी एक एक गाभी दिल।
सहस्र सहस्र गाभी गोपालेर हैल॥१०२॥

अनुवाद

व्रजभूमि में रहने वाले हर परिवार ने एक एक गाय दी। इस तरह हजारों गाएँ गोपाल की सम्पत्ति बन गईं।

तात्पर्य

अर्चाविग्रह की प्रतिष्ठा करने, मन्दिर बनवाने तथा मन्दिर की सम्पत्ति बढ़ाने का यही तरीका है। हर व्यक्ति को चाहिए कि मन्दिर के निर्माण-कार्य के लिए धन दे और प्रसाद वितरण के लिए अन्न भी दे। भक्तों को चाहिए कि भक्ति के सन्देश का प्रचार करें और इस तरह वे लोगों को अर्चाविग्रह की वास्तविक सेवा में लगायें। धनीमानी व्यक्ति भी इस कार्य में भाग ले सकते हैं। इस तरह सारे लोग आध्यात्मिक रूप से प्रवृत्त होंगे और सारा समाज कृष्णभावनामृत को ग्रहण कर सकेगा। इस तरह भौतिक इन्द्रियों को तुष्ट करने की इच्छा स्वयमेव घटेगी और इन्द्रियाँ शुद्ध होकर भक्ति की ओर उन्मुख होंगी। *हृषीकेण हृषीकेश सेवनम् भक्तिरुच्यते*। भगवान् की सेवा करने से इन्द्रियाँ धीरे-धीरे शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाना ही *भक्ति* है। जब भक्ति के प्रति सुप्त भावना जाग्रत होती

है तो भगवान् को उनके सही रूप में समझा जा सकता है। *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:* (भगवद्गीता १८.५५)। कृष्णभावनामृत जाग्रत करने के लिए मनुष्यों को अवसर देने की यही विधि है। इस तरह से लोग सभी तरह से अपने जीवन को पूर्ण बना सकते हैं।

गौड़ हइते आइला दुइ वैरागी ब्राह्मण।
पुरी-गोसाञि राखिल तारे करिया य़तन॥१०३॥

अनुवाद

तभी बंगाल से दो संन्यासी ब्राह्मण वहाँ आये। माधवेन्द्र पुरी ने उन्हें बहुत पसन्द किया; अतएव वृन्दावन में रख कर उन्हें सभी सुविधाएँ प्रदान कीं।

सेइ दुइ शिष्य करि' सेवा समर्पिल।
राज-सेवा हय,—पुरीर आनन्द बाड़िल॥१०४॥

अनुवाद

तब माधवेन्द्र पुरी ने उन दोनों को दीक्षित किया और उन्हें ही भगवान् की दैनिक सेवा का कार्यभार सौंप दिया। यह सेवा लगातार होती रही और अर्चाविग्रह की पूजा ने बृहद् रूप धारण कर लिया। इससे माधवेन्द्र पुरी का आनन्द बढ़ गया।

तात्पर्य

गोस्वामियों ने कई मन्दिरों का सूत्रपात किया—यथा गोविन्द-मन्दिर, गोपीनाथ, मदनमोहन, राधादामोदर, श्यामसुन्दर, राधारमण तथा गोकुलानन्द। इन गोस्वामियों के शिष्यों को इन मन्दिरों की *सेवापूजा* (अर्चाविग्रह-पूजा) का भार सौंपा गया। ऐसा नहीं था कि ये शिष्य गोस्वामियों के पारिवारिक सदस्य रहे हों। अधिकांश गोस्वामी संन्यासी थे और जीव गोस्वामी तो *ब्रह्मचारी* थे। इस समय अर्चाविग्रह की सेवा में लगे होने के कारण *सेवक* जन गोस्वामी की पदवी ग्रहण करते हैं। इन सेवकों में से कुछ तो मन्दिरों के मालिक बन गये हैं और वे अर्चाविग्रहों की सम्पत्ति को इस तरह बेच रहे हैं मानों उनकी निजी सम्पत्ति हो। किन्तु ये मन्दिर मूलत: इन सेवकों के नहीं हैं।

एइमत वत्सर दुइ करिल सेवन।
एकदिन पुरी-गोसाञि देखिल स्वपन॥१०५॥

अनुवाद

इस प्रकार दो वर्षों तक मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा बड़े ठाटबाट से चलती रही। तब एक दिन माधवेन्द्र पुरी ने सपना देखा।

गोपाल कहे, पुरी आमार ताप नाहि य़ाय।
मलयजचन्दन लेप', तबे से जुड़ाय॥१०६॥

अनुवाद

इस सपने में माधवेन्द्र पुरी ने देखा कि गोपाल कह रहे हैं "मेरे शरीर का ताप अभी भी कम नहीं हुआ। तुम मलय-प्रदेश से चन्दन लाओ और मुझे शीतल बनाने के लिए मेरे शरीर पर इसका लेप करो।"

तात्पर्य

गोपाल-विग्रह अनेक वर्षों तक जंगल में दबे पड़े रहे और अब यद्यपि उन्हें प्रतिष्ठित करके उन पर ऊपर से हजारों घड़े पानी डाला गया था, किन्तु फिर भी उन्हें गर्मी लग रही थी। इसीलिए उन्होंने माधवेन्द्र पुरी से मलय प्रान्त से चन्दन लाने के लिए कहा। मलय में उत्पन्न चन्दन अत्यन्त विख्यात है। यह प्रान्त पश्चिमी घाट में है और नीलगिरि पहाड़ियाँ कभी-कभी मलय पर्वत कहलाती हैं। मलयज शब्द मलय प्रान्त में उत्पन्न चन्दन का सूचक है। कभी-कभी मलय शब्द वर्तमान मलेशिया देश का सूचक होता है। पहले इस देश में भी चन्दन उत्पन्न होता था। किन्तु अब वहाँ रबड़ के वृक्ष उगाये जाते हैं। यद्यपि किसी समय मलेशिया में वैदिक संस्कृति प्रचलित थी, किन्तु अब वहाँ के निवासी मुसलमान हैं। अब मलेशिया, जावा तथा इण्डोनेशिया में वैदिक संस्कृति का ह्रास हो चुका है।

मलयज आन, य़ाञा नीलाचल हैते।
अन्ये हैते नहे, तुमि चलह त्वरिते॥१०७॥

अनुवाद

"तुम जगन्नाथ पुरी से चन्दन लाओ। जल्दी करो। चूँकि यह काम कोई और नहीं कर सकता, इसलिए तुम्हीं करो।"

स्वप्न देखि' पुरी-गोसाञिर हैल प्रेमावेश।
प्रभु-आज्ञा पालिबारे गेला पूर्वदेश॥१०८॥

अनुवाद

इस स्वप्न को देख कर माधवेन्द्र पुरी गोसाईं भगवत्प्रेम भाव के कारण अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् के आदेश का पालन करने के लिए वे बंगाल की ओर चल पड़े।

सेवार निर्बन्ध—लोक करिल स्थापन।
आज्ञा मागि' गौड़-देशे करिल गमन॥१०९॥

अनुवाद

चलने के पूर्व माधवेन्द्र पुरी ने नियमित सेवा-पूजा के लिए सारी व्यवस्था करा दी और विभिन्न लोगों को विविध कार्यों में लगा दिया। फिर गोपाल के आदेश को शिरोधार्य कर वे बंगाल के लिए रवाना हुए।

शान्तिपुर आइल अद्वैत आचार्येर घरे।
पुरीर प्रेम देखि' आचार्य आनन्द अन्तरे॥११०॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के घर पहुँचे तो उनमें भगवत्प्रेम-भाव को देख कर आचार्य अत्यन्त हर्षित हुए।

ताँर ठाञि मन्त्रे लैल य़तन करिञा।
चलिला दक्षिणे पुरी ताँरे दीक्षा दिञा॥१११॥

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा देने की प्रार्थना की। उन्हें दीक्षा देने के बाद माधवेन्द्र पुरी दक्षिण भारत के लिए रवाना हो गये।

तात्पर्य

इस सन्दर्भ में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि अद्वैत आचार्य ने मध्व-सम्प्रदाय की परम्परा के संन्यासी माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा ली। श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार—

किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय।
ग्रेइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता सेइ 'गुरु' हय॥

"कोई चाहे ब्राह्मण हो, संन्यासी हो, शूद्र हो या अन्य कुछ, किन्तु यदि वह कृष्ण-विज्ञान में दक्ष है तो वह गुरु बन सकता है" (चैतन्य-चरितामृत मध्य ८.१२८)। इस कथन की पुष्टि माधवेन्द्र पुरी द्वारा की गई है। *पञ्चरात्र* आदेश के अनुसार केवल गृहस्थ ब्राह्मण दीक्षा दे सकता है, अन्य कोई नहीं। जब कोई व्यक्ति दीक्षित हो लेता है तो यह माना जाता है कि वह ब्राह्मण बन गया। उपयुक्त ब्राह्मण द्वारा दीक्षा प्राप्त किये बिना अन्य किसी को ब्राह्मण नहीं बनाया जा सकता। वर्णाश्रम धर्म को मानने वाला गृहस्थ ब्राह्मण अपने श्रम से भगवान् विष्णु की पूजा की विविध सामग्री प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः लोग इन गृहस्थ ब्राह्मणों से दीक्षित होने की याचना करते थे जिससे वे वर्णाश्रम धर्म-संस्था में सफल हो सकें या सांसारिक इच्छाओं से मुक्त हो सकें। अतएव गृहस्थ-आश्रम व्यतीत करने वाले गुरु को निपट वैष्णव होना चाहिए। संन्यास आश्रम के गुरु को *अर्चना* करने के लिए बहुत कम समय मिल पाता है, किन्तु यदि कोई संन्यासी गुरु बनाता है तो अर्चना की उपेक्षा नहीं की जाती। इस निर्णय को लागू करने के लिए ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपना मत *किबाविप्र किबान्यासी* के रूप में दिया है। इससे सूचित होता है कि महाप्रभु को समाज की कमजोरी का पता चल चुका था कि केवल गृहस्थ ब्राह्मण ही गुरु हो सकता है। उन्होंने इंगित किया कि गुरु गृहस्थ, या संन्यासी या शूद्र हो सकता है। गुरु को शास्त्रों का सार जानना चाहिए, उसे भगवान् को भी जानना चाहिए। तभी कोई गुरु बन सकता है। *दीक्षा* का वास्तविक अर्थ है शिष्य को दिव्य ज्ञान प्रदान करना, जिससे वह सारे भौतिक कल्मष से मुक्त हो सके।

रेमुणाते कैल गोपीनाथ दरशन।
ताँर रूप देखिञा हैल विह्वल-मन॥११२॥

अनुवाद

दक्षिण भारत जाते समय माधवेन्द्र पुरी रेमुणा गये जहाँ गोपीनाथ स्थित हैं। विग्रह की सुन्दरता देख कर माधवेन्द्र पुरी भावविभोर हो गये।

'नृत्यगीत करि' जगमोहन वसिला।
'क्या क्या भोग लागे?' ब्राह्मणे बूझिला ॥११३॥

अनुवाद

मन्दिर की बारादरी में, जहाँ से लोग सामान्यतया अर्चाविग्रह का दर्शन करते थे, माधवेन्द्र पुरी ने कीर्तन और नृत्य किया। फिर वे बैठ गये और एक ब्राह्मण से पूछा कि अर्चाविग्रह पर कौन-कौन-सा भोजन अर्पित किया जाता है?

सेवार सौष्ठव देखि' आनन्दित मने।
उत्तम भोग लागे—एथा बुझि अनुमाने ॥११४॥

अनुवाद

प्रबन्ध की उत्कृष्टता से माधवेन्द्र पुरी ने अनुमान लगाया कि वहाँ केवल उत्तम भोजन ही अर्पित किया जाता होगा।

य़ैछे इहा भोग लागे, सकलेइ पूछिब
तैछे भियाने भोग गोपाले लागाइब ॥११५॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने सोचा "मैं पुजारी से पूछूँगा कि गोपीनाथ पर कौन कौन-से भोजन अर्पित किये जाते हैं, जिससे हम भी अपने रसोई-घर में उनकी व्यवस्था करके वैसा ही भोजन श्री गोपीनाथ को अर्पित कर सकें।"

एइ लागि' पुछिलेन ब्राह्मणेर स्थाने।
ब्राह्मण कहिल सब भोग-विवरणे ॥११६॥

अनुवाद

जब पुजारी से इस तरह पूछा गया तो उसने विस्तारपूर्वक बतलाया कि गोपीनाथ के अर्चाविग्रह पर कौन-कौन से भोजन अर्पित किये जाते है।

सन्ध्याय भोग लागे क्षीर—'अमृतकेलि'-नाम।
द्वादश मृत्पात्रे भरि' अमृत समान ॥११७॥

अनुवाद

पुजारी ने कहा, "संध्या-समय अर्चाविग्रह पर खीर के बारह मिट्टी के घड़े चढ़ाये जाते हैं। चूँकि इसका स्वाद अमृत जैसा होता है, अतएव यह अमृतकेलि कहलाता है।

'गोपीनाथेर क्षीर' बलि' प्रसिद्ध नाम ग्रार।
पृथिवीते ऐछे भोग काहाँ नाहि आर॥११८॥

अनुवाद

यह खीर सारे जगत में गोपीनाथ-क्षीर के नाम से जानी जाती है। यह दुनिया में अन्यत्र कहीं भी अर्पित नहीं की जाती।"

हेनकाले सेइ भोग ठाकुरे लागिल।
शुनि' पुरी-गोसाञि किछु मने विचारिल॥११९॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी पुजारी से बातें कर रहे थे तो वह खीर अर्चाविग्रह पर भोग के रूप में चढ़ाई गई। यह सुन कर माधवेन्द्र ने इस प्रकार विचार किया।

अग्राचित क्षीर प्रसाद अल्प ग्रदि पाइ।
स्वाद जानि' तैछे क्षीर गोपाले लागाइ॥१२०॥

अनुवाद

"यदि मुझे बिना माँगे थोड़ी-सी खीर मिल जाय तो मैं उसे चीख लूँ और ऐसी ही खीर अपने गोपाल के लिए तैयार करूँ।"

एइ इच्छाय लज्जा पाञा विष्णुस्मरण कैल।
हेनकाले भोग सरि' आरति बाजिल॥१२१॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी को खीर चखने की इच्छा हुई तो उन्हें लज्जा आ गई, अतएव वे तुरन्त ही विष्णु का चिन्तन करने लगे। जब वे इस प्रकार विष्णु-चिन्तन कर रहे थे तो भोग समाप्त हुआ और आरती उत्सव शुरू हुआ।

आरति देखिया पुरी कैल नमस्कार।
बाहिरे आइला, कारे किछु ना कहिल आर॥१२२॥

अनुवाद

आरती समाप्त होने के बाद माधवेन्द्र पुरी ने अर्चाविग्रह को नमस्कार किया और मन्दिर से बाहर आ गये। उन्होंने किसी से कुछ भी नहीं कहा।

अय़ाचित-वृत्ति पुरी—विरक्त, उदास।
अय़ाचित पाइल खा'न, नहे उपवास॥१२३॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी भीख माँगने से कतराते थे। वे पूर्णतया विरक्त और भौतिक वस्तुओं के प्रति अन्यमनस्क थे। यदि कोई खाने के लिए कुछ दे देता तो खा लेते थे, अन्यथा उपवासे रह जाते थे।

तात्पर्य

यह *परमहंस* अर्थात् संन्यासी की सर्वोच्च अवस्था है। संन्यासी द्वार द्वार भीख माँग कर भोजन एकत्र कर सकता है, किन्तु परमहंस, *अयाचित वृत्ति* या *अजगर-वृत्ति* धारण करने के कारण कोई भोजन नहीं ले सकता। यदि कोई स्वेच्छा से भोजन देता है तो वह खाता है। *अयाचित वृत्ति* का अर्थ है कि वह भीख माँगने से दूर रहता है। *अजगर-वृत्ति* उस व्यक्ति को सूचित करती है जो अजगर के समान है और भोजन प्राप्त करने के लिए कोई प्रयास नहीं करता, अपितु भोजन को स्वतः अपने मुख तक आने की प्रतीक्षा करता है। दूसरे शब्दो में, परमहंस बिना खाये या सोये एकमात्र भगवान् की सेवा में लगा रहता है। षड् गोस्वामियों के विषय में कहा गया है—*निद्राहार-विहारकादिविजितौ*। परमहंस अवस्था में मनुष्य नींद, भोजन तथा इन्द्रियतृप्ति की इच्छा पर विजय प्राप्त कर लेता है। वह अहर्निश भगवान् की सेवा में लगा रहने वाला दीनहीन भिखारी होता है। माधवेन्द्र पुरी ने यह अवस्था प्राप्त कर ली थी।

प्रेमामृते तृप्त, क्षुधातृष्णा नाहि बाधे।
क्षीर-इच्छा हैल, ताहे माने अपराधे॥१२४॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी जैसा परमहंस सदैव भगवान् की प्रेमाभक्ति से सन्तुष्ट रहता है। भूख तथा प्यास उसके कार्यकलापों में बाधक नहीं बन सकते। जब भी उन्हें अर्चाविग्रह पर अर्पित खीर खाने की इच्छा होती तो वे समझते कि मुझसे अपराध हो रहा है, क्योंकि मैं अर्चाविग्रह पर अर्पित वस्तु को खाना चाहता हूँ।

तात्पर्य

अच्छा हो कि जब अर्चाविग्रह पर चढ़ाया जाने वाला भोजन रसोईघर से अर्चाविग्रह के कमरे में ले जाया जा रहा हो तो उसे ढक दिया जाय; क्योंकि जो भक्ति के उच्च नियमों का पालन करने के अभ्यस्त नहीं हैं उन्हें यह भोजन खाने की इच्छा हो सकती है, जो कि अपराध है। अतएव किसी को इसे देखने का अवसर नहीं देना चाहिए। किन्तु अर्चाविग्रह के समक्ष ले जाते समय उसे खोल देना चाहिए। अर्चाविग्रह के समक्ष खुले भोजन को देख कर माधवेन्द्र पुरी के मन में उसे खाने की इच्छा हुई, जिससे वे अपने गोपाल के लिए ऐसा ही भोजन तैयार कर सकें। किन्तु माधवेन्द्र पुरी नियम के इतने पक्के थे कि वे इसे अपराध समझते थे। अतएव किसी से कुछ कहे बिना वे मन्दिर से बाहर चले गये। इसीलिए परमहंस को *विजित-षड्गुण* कहा जाता है। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर तथा क्षुधा-तृष्णा—इन छह भौतिक गुणों को जीत लेना चाहिए।

ग्रामेर शून्यहाटे वसि' करेन कीर्तन।
एथा पूजारी कराइल ठाकुर शयन॥१२५॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी मन्दिर से बाहर जाकर गाँव के बाजार में बैठ गये, जो निर्जन था। वे वहाँ बैठ कर कीर्तन करने लगे। इसी बीच मन्दिर के पुजारी ने अर्चाविग्रह को शयन करा दिया।

तात्पर्य

यद्यपि माधवेन्द्र पुरी की रुचि खाने तथा सोने में नहीं थी, किन्तु महामन्त्र का कीर्तन करने में उनकी रुचि इतनी तीव्र थी मानो वे परमहंस न होकर महत्त्वाकांक्षी अध्यात्मवादी हों। इसका अर्थ यह हुआ कि परमहंस-अवस्था

में भी कीर्तन करना नहीं छोड़ा जा सकता। हरिदास ठाकुर तथा अन्य गोस्वामी जपमाला की निश्चित संख्या का जप करने में लगे रहते थे, अतएव जपमाला में कीर्तन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है, भले ही वह परमहंस क्यों न हो। यह कीर्तन मन्दिर के भीतर या बाहर कहीं भी हो सकता है। माधवेन्द्र पुरी तो निर्जन बाजार में ही बैठ कर कीर्तन करने लगे। जैसा कि श्रीनिवास आचार्य ने षड् गोस्वामियों की स्तुति में कहा है—*नाम-गान-नतिभिः*। एक परमहंस कीर्तन करने तथा भगवत्सेवा करने में सदैव लगा रहता है। भगवान् का नाम-कीर्तन करना तथा उनकी सेवा में लगे रहना एक-सा है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (७.५.२३) कहा गया है, भक्ति नौ प्रकार की होती है—*श्रवणं, कीर्तनं, विष्णो-स्मरणम्, पादसेवनम्, अर्चनम्, सख्यम् तथा आत्म-निवेदनम्*। यद्यपि प्रत्येक विधि भिन्न प्रतीत होती है किन्तु परम पद पर स्थित हो जाने पर ये एकसमान दिखती हैं। उदाहरणार्थ, श्रवण करना कीर्तन के ही समान है और स्मरण कीर्तन या श्रवण के ही तुल्य है। इसी प्रकार अर्चाविग्रह की पूजा में लगना कीर्तन, श्रवण या स्मरण के ही तुल्य है। भक्त से उम्मीद की जाती है कि वह भक्ति की नवों विधियों को स्वीकार करे, किन्तु यदि इनमें से एक भी विधि पूरी हो ले तो उसे तब भी सर्वोच्च पद (*परमहंस*) मिल सकता है और वह स्वर्गधाम को जा सकता है।

निज कृत्य करि' पूजारी करिल शयन।
स्वपने ठाकुर आसि' बलिला वचन॥१२६॥

अनुवाद

पुजारी अपनी दैनिक ड्यूटी करके सोने चला गया। सपने में उसने देखा कि गोपीनाथ का अर्चाविग्रह आकर उससे बातें कर रहा है। वह उस प्रकार बोला।

उठह, पुजारी, कर द्वार विमोचन।
क्षीर एक राखियाछि संन्यास-कारण॥१२७॥

अनुवाद

"कृपया उठ कर मन्दिर का द्वार खोलिये। मैं खीर का पात्र माधवेन्द्र पुरी संन्यासी के लिए छोड़ आया हूँ।"

धड़ार अञ्चले ढाका एक क्षीर हय।
तोमरा ना जानिला ताहा आमार मायाय॥१२८॥

अनुवाद

"यह खीर का पात्र मेरे कपड़े के पर्दे के पीछे है। तुम मेरी माया के कारण उस पात्र को नहीं देख पाये।

माधवपुरीर संन्यासी आछे हाटेते वसिञा।
ताहाके ता एइ क्षीर शीघ्र देह लाञा॥१२९॥

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी निर्जन बाजार में बैठा है। तुम खीर के इस पात्र को मेरे पीछे से उठाकर ले जाकर उसे दे दो।"

स्वप्न देखि' पूजारी उठि' करिला विचार।
स्नान करि' कपाट खुलि, मुक्त कैल द्वार॥१३०॥

अनुवाद

स्वप्न भंग होने पर पुजारी तुरन्त बिस्तर से उठ खड़ा हुआ और उसने अर्चाविग्रह के कक्ष में प्रवेश करने के पूर्व स्नान करना उचित समझा। तत्पश्चात् उसने मन्दिर का द्वार खोला।

धड़ार आँचलतले पाइल सेइ क्षीर।
स्थान लेपि' क्षीर लञा हइल बाहिर॥१३१।

अनुवाद

अर्चाविग्रह के निर्देशानुसार पुजारी ने खीर का पात्र पर्दे के पीछे पाया। उसने वह पात्र हटाया और उस स्थान को साफ किया जहाँ वह रखा गया था। तत्पश्चात् वह मन्दिर से बाहर चला गया।

द्वार दिया ग्रामे गेला सेइ क्षीर लञा।
हाटे हाटे बुले माधवपुरीके चाहिञा॥१३२॥

अनुवाद

वह मन्दिर का द्वार बन्द करके खीर-पात्र लेकर गाँव में चला गया। उसने माधवेन्द्र पुरी की खोज में हाट-हाट में जाकर पुकारा।

क्षीर लह एइ, य़ार नाम 'माधवपुरी'।
तोमा लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि॥१३३॥

अनुवाद

वह पुजारी खीर-पात्र पकड़े पुकारने लगा, "जिसका नाम माधवेन्द्र पुरी हो वह आकर यह पात्र ले जाय! गोपीनाथ ने तुम्हारे लिए इस पात्र की चोरी की है।"

तात्पर्य

यहाँ पर परम सत्य तथा सापेक्ष साथ का अन्तर बतलाया गया है। भगवान् गोपीनाथ ने यहाँ स्पष्ट कहा है कि वे चोर हैं। उन्होंने खीर-पात्र चुराया था, किन्तु इस बात को छिपाया नहीं, क्योंकि यह चोरी का कृत्य परम दिव्य आनन्द का स्रोत है। भौतिक जगत में चोरी करना अपराध है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में यही दिव्य आनन्द का स्रोत है। संसारी धूर्त, जिन्हें भगवान् की परम प्रकृति का ज्ञान नहीं है, कभी-कभी कृष्ण को अनैतिक (भ्रष्ट) कह कर पुकारते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि ऊपर से अनैतिक लगने वाले कार्य, जिन्हें गुप्त नहीं रखा जाता, भक्तों को असीम आनन्द प्रदान करने वाले होते हैं। ये धूर्त भगवान् के दिव्य व्यवहार को न जानने के कारण उनके चरित्र पर लांछन लगाते हैं और तुरन्त ही दुष्टों (कुकर्मियों) या अधमों की कोटि को प्राप्त होते हैं। *भगवद्गीता* में (७.१५) कृष्ण बतलाते हैं—

न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिता:॥

"जो निपट मूर्ख हैं, मनुष्यों में अधम हैं, जिनके ज्ञान माया द्वारा हरे जा चुके हैं तथा जो असुरों की नास्तिक प्रकृति में भाग लेते हैं, वे कुकर्मी मेरी शरण में नहीं आते।"

संसारी धूर्तजन नहीं समझ सकते कि कृष्ण जो भी करते हैं वह सब अच्छा होता है। भगवान् के इस गुण की व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में (दशम स्कंध में) हुई है। कोई किसी अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति के कुछ कार्यों को संसारी गणनाओं द्वारा अनैतिक मान सकता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। उदाहरणार्थ, सूर्य पृथ्वी की सतह से जल सोखता है, किन्तु वह केवल

समुद्र का ही जल नहीं सोखता। वह गंदे नालों का भी जल सोखता है जिसमें मूत्र तथा अन्य अशुद्धियाँ मिली रहती हैं। किन्तु ऐसा जल सोखने से सूर्य अशुद्ध नहीं होता। प्रत्युत सूर्य गंदे स्थान को शुद्ध बनाता है। यदि कोई भक्त किसी अनैतिक या अनुचित कार्य के लिए भगवान् के पास जाता है, तब भी वह शुद्ध बन जाता है। इससे भगवान् दूषित नहीं होते। *श्रीमद्भागवत* में (१०.२९.१५) कहा गया है कि यदि कोई काम, क्रोध या भयवश भी (कामं, क्रोधं, भयम्) भगवान् के पास पहुँचता है तो वह शुद्ध हो जाता है। गोपियाँ तरुणी थीं। वे कृष्ण के पास पहुँची, क्योंकि कृष्ण सुन्दर तरुण थे। बाह्य दृष्टि से वे कामवासना से भगवान् के पास पहुँची और भगवान् ने उनके साथ अर्धरात्रि में नृत्य किया। सांसारिक दृष्टि से ये कार्य अनैतिक लग सकते हैं, क्योंकि कोई विवाहित या अविवाहित तरुणी अपना घर छोड़ कर किसी तरुण बालक से मिलने और उसके साथ नाचने नहीं जा सकती। यद्यपि सांसारिक दृष्टि से यह अनैतिक है, किन्तु गोपियों के इस कृत्य को पूजा का सर्वोच्च रूप माना जाता है, क्योंकि वे अर्धरात्रि में कामवश जिसके पास पहुँचीं, वह भगवान् कृष्ण थे।

किन्तु इन बातों को अभक्तगण नहीं समझेंगे। मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण को *तत्त्वत:* (सत्य) समझे। उसे अपने सामान्य ज्ञान का उपयोग करना चाहिए और विचार करना चाहिए कि यदि केवल कृष्ण-नाम का कीर्तन करने से शुद्ध बना जा सकता है, तो फिर साक्षात् कृष्ण किस तरह अनैतिक हो सकते हैं? दुर्भाग्य तो यह है कि संसारी मूर्खों को शैक्षिक नेता मान लिया जाता है और उन्हें ही जनता को अधार्मिक सिद्धान्त पढ़ाने के उच्च पद दे दिये जाते हैं। इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में (७.५.३१) हुई है: *अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना:*। अंधे लोग दूसरे अन्धे लोगों को मार्गदर्शन कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे धूर्तों के अधकचरे ज्ञान के कारण सामान्य लोगों को गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं की विवेचना नहीं करनी चाहिए। अभक्त को तो भगवान् द्वारा अपने भक्त के लिए खीर चुराने की भी विवेचना नहीं करनी चाहिए। यह आगाह किया जाता है कि इन बातों के विषय में कोई सोचे तक नहीं। यद्यपि कृष्ण शुद्धों में शुद्ध हैं किन्तु संसारी लोग कृष्ण की लीलाओं को अनैतिक मान कर स्वयं दूषित हो जाते हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु गोपियों के साथ कृष्ण के आचरणों की विवेचना कभी भी जनता के समक्ष नहीं करते थे। वे इनकी चर्चा केवल अपने तीन अन्तरंगी

मित्रों से करते थे। उन्होंने कभी भी *रासलीला* की व्याख्या जनता के समक्ष नहीं की, जैसा कि पेशेवर वाचक करते हैं, भले ही वे कृष्ण को या श्रोता की प्रकृति को न जानते हों। किन्तु वे पवित्र नाम के संकीर्तन को बड़े पैमाने पर घंटों तक चलने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

क्षीर लञा सुखे तुमि करइ भक्षणे।
तोमा-सम भाग्यवान् नाहि त्रिभुवन॥१३४॥

अनुवाद

पुजारी ने कहा, "क्या माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी आकर यह खीर-पात्र लेगा और परम सुखपूर्वक प्रसाद का भोग लगायेगा? तू तो तीनों लोकें में परम भाग्यशाली पुरुष है।"

तात्पर्य

यहाँ पर कृष्ण के अनैतिक कार्य द्वारा साक्षात् आशीर्वाद कां दृष्टान्त प्राप्त होता है। अपने भक्त के लिए गोपीनाथ द्वारा चोरी किये जाने से भक्त तीनों लोकों में सर्वाधिक भाग्यशाली बनता है। इस तरह भगवान् के अपराध-कार्यों तक से भक्त अत्यन्त भाग्यशाली व्यक्ति बन जाता है। एक संसारी कृष्ण की लीलाओं को भला कैसे समझ कर यह निर्णय कर सकता है कि कृष्ण नैतिक हैं या अनैतिक? चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं, अतएव उनके लिए नैतिक या अनैतिक में कोई अन्तर नहीं है। वे जो भी करते हैं वही मंगलमय है। "ईश्वर मंगलमय होता है" का यही अर्थ है। वे सभी परिस्थितियों में मंगलमय बने रहते हैं क्योंकि वे दिव्य हैं—इस भौतिक जगत की सीमा से परे। अतएव कृष्ण उन्हीं के द्वारा समझे जा सकते हैं जो पहले से आध्यात्मिक जगत में रह रहे हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से (१४.२६) होती है—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में च्युत नहीं होता, वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को पार करके ब्रह्म-पद को प्राप्त होता है।"

जो भगवान् की अनन्य भक्ति में लगा हुआ है वह पहले से आध्यात्मिक

जगत में स्थित है (*ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। कृष्ण के साथ उसके कार्य तथा आचरण प्रत्येक दशा में दिव्य होते हैं, अतएव संसारी नीतिविदों की समझ के परे हैं। अच्छा तो यही होगा कि उन्हें हरे-कृष्ण-महामन्त्र दिया जाय जिससे वे धीरे-धीरे शुद्ध बन कर कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों को समझने लगें।

एत शुनि' पुरी-गोसाञि परिचय दिल।
क्षीर दिया पूजारी ताँरे दण्डवत् हैल॥१३५॥

अनुवाद

यह निमन्त्रण सुन कर माधवेन्द्र पुरी बाहर आये और अपनी पहचान बताई। तब पुजारी ने वह खीर-पात्र दिया और उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

तात्पर्य

ब्राह्मण से यह नहीं आशा की जाती कि वह किसी को दण्डवत् प्रणाम करे, क्योंकि ब्राह्मण सर्वोच्च जाति से सम्बन्धित होता है। किन्तु ब्राह्मण जब किसी भक्त को देखता है तो वह दण्डवत् करता है। इस ब्राह्मण पुजारी ने माधवेन्द्र पुरी से यह नहीं पूछा कि वह ब्राह्मण है, बल्कि जब उसने देखा कि जिसके लिए कृष्ण तक चोरी कर सकते हैं, तो वह समझ गया कि वह अवश्य ही प्रामाणिक भक्त होगा। जैसा कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है।—*किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय / येइ कृष्णतत्त्वेत्ता सेइ 'गुरु' हय* (चैतन्य-चरितामृत मध्य ८.१२८)। यदि पुजारी सामान्य ब्राह्मण होता तो गोपीनाथ उससे स्वप्न में बातें न किये होते। चूँकि अर्चाविग्रह ने माधवेन्द्र पुरी तथा ब्राह्मण पुजारी दोनों ही से स्वप्न में बातें की थीं अतएव वे दोनों समान धरातल पर थे। किन्तु माधवेन्द्र पुरी वरिष्ठ संन्यासी वैष्णव अर्थात् परमहंस थे इसलिए पुजारी ने तुरन्त ही उनके चरणों पर गिर कर उन्हें नमस्कार किया।

क्षीरेर वृत्तान्त ताँरे कहिल पूजारी।
शुनि' प्रेमाविष्ट हैल श्रीमाधवपुरी॥१३६॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी से खीर-पात्र की कहानी बतलाई गई तो वे

कृष्ण-प्रेम-भाव में मग्न हो गये।

प्रेम देखि' सेवक कहे हइया विस्मित।
कृष्ण ये इँहार वश,—हय य़थोचित।।१३७।।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी में प्रेम-भाव के लक्षण देख कर पुजारी को आश्चर्य हुआ। उसकी समझ में आ गया कि कृष्ण उनके इतने कृतज्ञ क्यों है और उसने यह देखा कि कृष्ण का यह कार्य उपयुक्त ही है।

तात्पर्य

भक्त कृष्ण को अपने वश में कर सकता है। इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में (१०.१४.३) हुई है—*अजितजितोऽप्यसि त्रिलोक्याम्*। कृष्ण को कोई जीत नहीं सकता किन्तु एक भक्त अपनी भक्ति से उन्हें जीत लेता है। *ब्रह्म-संहिता* में (५.३३) कहा गया है—*वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ*। मात्र वैदिक साहित्य पढ़ कर कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। यद्यपि सारा वैदिक साहित्य कृष्ण को समझने के लिए है, किन्तु कृष्ण-प्रेमी हुए बिना कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। अतएव वैदिक साहित्य के अध्ययन (*स्वाध्याय*) के साथ साथ अर्चा-विग्रह की पूजा भी करनी चाहिए। इन दोनों को करने से भक्त की भक्ति विषयक जानकारी बढ़ेगी। *श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय* (चैतन्य मध्य २२.१०७)। हर एक के हृदय में भगवत्प्रेम सुप्त रहता है और यदि कोई भक्ति की मानक विधि का पालन करे तो वह जाग्रत हो उठता है। किन्तु मूर्ख संसारी लोग, जो केवल कृष्ण के विषय में पढ़ते हैं, वे ही भूल के कारण यह सोचते हैं कि कृष्ण नैतिक हैं या अनैतिक।

एत बलि' नमस्करि' करिला गमन।
आवेशे करिला पुरी से क्षीर भक्षण।।१३८।।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी को नमस्कार करके वह पुजारी अपने मन्दिर चला गया। तब भाववश माधवेन्द्र पुरी ने कृष्ण द्वारा प्रदत्त खीर खाई।

पात्र प्रक्षालन करि' खण्ड खण्ड कैल।
बहिर्वासे बान्धि' सेइ ठिकारि राखिल।।१३९।।

अनुवाद

इसके बाद माधवेन्द्र पुरी ने उस पात्र को धोया और तोड़ कर उसके खण्ड-खण्ड कर दिये। फिर उन्होंने उन खण्डों को अँचले में बाँध कर ठीक से रख लिया।

प्रतिदिन एकखानि करेन भक्षण।
खाइल प्रेमावेश हय,—अद्भुत कथन॥१४०॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी प्रतिदिन उस मिट्टी के पात्र का एक खण्ड खाते और खाने के तुरन्त बाद वे भावावेश में आ जाते। ये सब अद्भुत कहानियाँ हैं।

'ठाकुर मोरे क्षीर दिल—लोक सब शुनि'।
दिने लोक-भिड़ हबे मोर प्रतिष्ठा जानि'॥१४१॥

अनुवाद

उस पात्र को खण्ड-खण्ड करके अपने वस्त्र में बाँध लेने के बाद माधवेन्द्र पुरी सोचने लगे, "भगवान् ने मुझे खीर-पात्र दिया है और कल प्रात:काल जब लोग इसके बारे में सुनेंगे तो बहुत बड़ी भीड़ लग जायेगी।"

सेइ भये रात्रि-शेषे चलिला श्रीपुरी।
सेइखाने गोपीनाथे दण्डवत् करि'॥१४२॥

अनुवाद

यह सोच कर माधवेन्द्र पुरी ने उस स्थान पर गोपीनाथ को नमस्कार किया और प्रात: होने के पूर्व ही रेमुणा से चले गये।

चलि' चलि' आइल पुरी श्रीनीलाचल।
जगन्नाथ देखि' हैला प्रेमेते विह्वल॥१४३॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी चलते-चलते जगन्नाथ पुरी पहुँचे जो नीलाचल के नाम से भी विख्यात है। वहाँ उन्होंने जगन्नाथजी के दर्शन किये और प्रेम-भाववश विह्वल हो गये।

प्रेमावेशे उठे, पड़े, हासे, नाचे, गाय।
जगन्नाथ-दरशने महासुख पाय॥१४४॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी भगवत्प्रेम भाव से अभिभूत हो गये तो वे कभी खड़े होते और कभी जमीन पर गिर पड़ते। कभी वे हँसते, नाचते और गाते। इस प्रकार वे जगन्नाथ-विग्रह (देव) का दर्शन करके दिव्य आनन्द उठाते।

'माधवपुरी श्रीपाद आइल',—लोके हैल ख्याति।
सब लोक आसि' ताँरे करे बहु भक्ति॥१४५॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी आये तो लोग उनकी दिव्य ख्याति से परिचित थे। अतएव लोगों की भीड़ आने लगी और भक्तिवश उनका तरह-तरह से सम्मान करने लगी।

प्रतिष्ठार स्वभाव एइ जगते विदित।
ये ना वाञ्छे, तार हय विधाता-निर्मित॥१४६॥

अनुवाद

मनुष्य के न चाहते हुए भी विधाता द्वारा नियत प्रतिष्ठा उसे मिलती है और उसकी दिव्य प्रतिष्ठा सारे विश्व में फैल जाती है।

प्रतिष्ठार भये पुरी गेला पलाञा।
कृष्ण-प्रेमे प्रतिष्ठा चले सङ्गे गड़ाञा॥१४७॥

अनुवाद

अपनी प्रतिष्ठा से भयभीत होकर माधवेन्द्र पुरी रेमुणा से भगे थे। किन्तु भगवत्प्रेम द्वारा प्रदत्त प्रतिष्ठा की इतनी महिमा है कि वह भक्त के साथ-साथ जाती है, मानो उसका पीछा कर रही हो।

तात्पर्य

भौतिक जगत के प्राय: सारे बद्धजीव ईर्ष्यालु होते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति उसका विरोध करते हैं, जिन्हें स्वयमेव प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है। ईर्ष्यालु लोगों के लिए ऐसा स्वाभाविक है। फलस्वरूप जब कोई भक्त प्रतिष्ठा प्राप्त करने

योग्य बन जाता है, तो अनेक लोग उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। यह अत्यन्त स्वाभाविक है। जब कोई व्यक्ति विनयवश यश की कामना नहीं करता, तो लोग उसे विनीत समझ कर उसे सभी प्रकार की प्रसिद्धि देने लगते हैं। वस्तुतः वैष्णवजन में यश या प्रतिष्ठा की लालसा नहीं होती। वैष्णव-श्रेष्ठ माधवेन्द्र पुरी की प्रतिष्ठा थी, किन्तु वे अपने को जनसमुदाय से दूर रखना चाहते थे। वे महान भगवद्भक्त के रूप में अपनी पहचान को छिपा रखना चाहते थे, किन्तु जब लोगों ने उन्हें भगवत्प्रेम में भाव-विह्वल देखा तो स्वाभाविक है कि वे उनकी प्रतिष्ठा करने लगे। वस्तुतः माधवेन्द्र पुरी को उच्च कोटि की प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए, क्योंकि वे भगवान् के अत्यन्त विश्वस्त भक्त थे। कभी-कभी *सहजिया* लोग अपनी प्रतिष्ठा की कामना से रहित रूप में प्रस्तुत करके विनीत व्यक्ति बनना चाहते हैं। ऐसे लोगों को सुप्रसिद्ध वैष्णवों का पद प्राप्त नहीं हो सकता।

य़द्यपि उद्वेग हैल पलाइते मन।
ठाकुरेर चन्दन-साधन हइल बन्धन॥१४८॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी इसलिए छोड़ना चाह रहे थे क्योंकि लोग उन्हें महान भक्त के रूप में समादरित कर रहे थे, किन्तु इससे गोपाल-विग्रह के लिए चन्दन एकत्र करने में बाधा उत्पन्न हो रही थी।

जगन्नथेर सेवक य़त, य़तेक महान्त।
सबाके कहिल पुरी गोपाल-वृत्तान्त॥१४९॥

अनुवाद

श्री माधवेन्द्र पुरी ने वहाँ पर जगन्नाथजी के सारे नौकरों तथा समस्त महान भक्तों से श्री गोपाल के प्राकट्य की कहानी बतलाई।

गोपाल चन्दन मागे,—शुनि' भक्तगण।
आनन्दे चन्दन लागि' करिल य़तन॥१५०॥

अनुवाद

जब जगन्नाथ पुरी के सारे भक्तों ने सुना कि गोपाल-विग्रह चन्दन चाहते हैं तो सभी हर्षित होकर चन्दन एकत्र करने का प्रयास करने लगे।

राज-पात्र-सने य़ार य़ार परिचय।
तारे मागि' कर्पूर-चन्दन करिला सञ्चय॥१५१॥

अनुवाद

जो लोग सरकारी अफसरों से परिचित थे वे उनसे मिल कर कपूर तथा चन्दन माँग-माँग कर एकत्र करने लगे।

तात्पर्य

ऐसा लगता है कि जगन्नाथ-विग्रह के लिए मलयजचन्दन तथा कपूर इस्तेमाल होता था। कपूर का इस्तेमाल उनकी *आरात्रिक* में और चन्दन का उपयोग उनके शरीर पर लेप करने में होता था। ये दोनों वस्तुएँ सरकारी नियन्त्रण में थीं, इसीलिए भक्तों को सरकारी अफसरों से मिलना पड़ा। उन्हें सारी बातें बता कर चन्दन तथा कपूर को जगन्नाथ पुरी से बाहर ले जाने की अनुमति प्राप्त की गई।

एक विप्र एक सेवक, चन्दन वहिते।
पुरी-गोसाञिर सङ्गे दिल सम्बल-सहिते॥१५२॥

अनुवाद

इस चन्दन को ले जाने के लिए माधवेन्द्र पुरी को एक ब्राह्मण तथा एक नौकर दिया गया। उन्हें आवश्यक मार्ग-व्यय भी दिया गया।

घाटी-दानी छाड़ाइते राजपात्र द्वारे।
राजलेखा करि' दिल पुरी-गोसाञि करे॥१५३॥

अनुवाद

रास्ते के चुंगी वसूलने वालों से बचने के लिए माधवेन्द्र पुरी को सरकारी अफसरों से प्राप्त करके आवश्यक विमुक्ति-कागजात दिये गये। ये कागजात उनके हाथ में दिये गये।

चलिल माधवपुरी चन्दन लञा।
कतदिने रेमुणाते उत्तरिल गिया॥१५४॥

अनुवाद

इस तरह माधवेन्द्र पुरी चन्दन के गट्ठर समेत वृन्दावन के लिए रवाना हो गये और कुछ दिनों के बाद वे पुनः रेमुणा गाँव तथा वहाँ के

गोपीनाथ मन्दिर में पहुँचे।

गोपीनाथ-चरणे कैल बहु नमस्कार।
प्रेमावेशे नृत्य-गीत करिला अपार॥१५५॥

अनुवाद

जब माधवेन्द्र पुरी गोपीनाथ के मन्दिर पहुँचे तो उन्होंने भगवान् के चरण-कमलों पर अनेक बार नमस्कार किया। वे प्रेमभाव में सतत नृत्य और गान करने लगे।

पुरी देखि' सेवक सब सम्मान करिल।
क्षीरप्रसाद दिया ताँरे भिक्षा कराइल॥१५६॥

अनुवाद

जब गोपीनाथ के पुजारी ने माधवेन्द्र पुरी को फिर से आया देखा तो उसने उन्हें नमस्कार किया और उन्हें खाने को खीर दी।

सेइ रात्रे देवालये करिल शयन।
शेषरात्रि हैले पुरी देखिल स्वपन॥१५७॥

अनुवाद

उस रात माधवेन्द्र पुरी ने मन्दिर में विश्राम किया, किन्तु रात्रि के अन्त में उन्हें दूसरा स्वप्न दिखलाई पड़ा।

गोपाल आसिया कहे,—शुन हे माधव।
कर्पूर-चन्दन आमि पाइलाम सब॥१५८॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने सपना देखा कि गोपाल उनके सामने आकर कह रहे हैं, "अरे माधवेन्द्र पुरी! मुझे पहले ही सारा चन्दन तथा कपूर प्राप्त हो चुका है।"

कर्पूर-सहित घषि' एसब चन्दन।
गोपीनाथेर अङ्गे नित्य करह लेपन॥१५९॥

अनुवाद

"तुम सारे चन्दन को कपूर के साथ पीस कर तब तक गोपीनाथ

के शरीर पर इसका नित्य लेप करते रहो जब तक यह चुक न जाय।''

गोपीनाथ आमार से एकइ अङ्ग हय।
इँहाके चन्दन दिले हबे मोर ताप-क्षय॥१६०॥

अनुवाद

''मेरे शरीर तथा गोपीनाथ के शरीर में कोई अन्तर नहीं है। वे अभिन्न हैं। अतएव यदि तुम गोपीनाथ के शरीर में चन्दन-लेप करते हो तो वह मेरे शरीर पर लेप होता है। इस प्रकार मेरे शरीर का ताप कम हो जायेगा।''

तात्पर्य

गोपाल वृन्दावन में स्थित थे जो रेमुणा से बहुत दूर है। उन दिनों मुसलमानों द्वारा शासित प्रान्तों से होकर जाना होता था, जो कभी-कभी यात्रियों के आने-जाने पर व्यवधान डालते थे। अपने भक्त की तकलीफ को ध्यान में रखते हुए भक्तों के शुभैषी गोपाल ने माधवेन्द्र पुरी को आदेश दिया कि चन्दन का लेप गोपीनाथ के शरीर में कर दें जो गोपाल के शरीर से अभिन्न है। इस तरह भगवान् ने माधवेन्द्र पुरी को कष्ट तथा असुविधा से बचा लिया।

द्विधा ना भाविह, ना करिह किछु मने।
विश्वास करि' चन्दन देह आमार वचने॥१६१॥

अनुवाद

''तुम्हें मेरे आदेशानुसार कार्य करने में तनिक भी हिचक नहीं होनी चाहिए। मुझ पर विश्वास रख कर जो आवश्यक हो वह करें।''

एत बलि' गोपाल गेल, गोसाञि जागिला।
गोपीनाथेर सेवकगणे डाकिया आनिला॥१६२॥

अनुवाद

इतना आदेश देकर गोपाल अन्तर्धान हो गये और माधवेन्द्र पुरी जग गये। उन्होंने तुरन्त गोपीनाथ के नौकरों को बुलाया तो वे वहाँ उपस्थित हो गये।

प्रभुर आज्ञा हैल,—एइ कर्पूर-चन्दन।
गोपीनाथेर अङ्गे नित्य करह लेपन॥१६३॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "गोपीनाथ के शरीर पर यह कपूर तथा चन्दन मलो, जिसे मैं वृन्दावन के गोपाल के लिए लाया हूँ। इसे नियमित रूप से नित्य मलो।"

इँहाके चन्दन दिले, गोपाल हइबे शीतल।
स्वतन्त्र ईश्वर—ताँर आज्ञा से प्रबल॥१६४॥

अनुवाद

"यदि गोपीनाथ के शरीर पर चन्दन मला जाय तो गोपाल शीतल होंगे। आखिर भगवान् पूर्ण स्वतन्त्र हैं, उनका आदेश प्रबल है।"

ग्रीष्मकाले गोपीनाथ परिबे चन्दन।
शुनि' आनन्दित हैल सेवकेर मन॥१६५॥

अनुवाद

गोपीनाथ के नौकर यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि गर्मियों में यह सारा चन्दन गोपीनाथ के शरीर पर लेप करने के लिए इस्तेमाल होगा।

पुरी कहे,—एइ दुइ घषिबे चन्दन।
आर जना-दुइ देह, दिब ये वेतन॥१६६॥

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी ने कहा, "ये दो नौकर नियमित रूप से चन्दन घिसेंगे और तुम अपनी सहायता के लिए अन्य दो व्यक्ति ले लेना। उनका वेतन मैं दूँगा।"

एइ मत चन्दन देय प्रत्यह घषिया।
पराय सेवक सब आनन्द करिया॥१६७॥

अनुवाद

इस तरह प्रतिदिन गोपीनाथजी को घिसा चन्दन दिया जाता। इससे गोपीनाथ

के नौकर अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रत्यह चन्दन पराय, य़ावत् हैल अन्त।
तथाय रहिल पुरी तावत् पर्यन्त॥१६८॥

अनुवाद

इस तरह जब तक पूरा चन्दन चुक नहीं गया तब तक गोपीनाथ के शरीर पर चन्दन का लेप होता रहा और माधवेन्द्र पुरी तब तक वहीं रहे आये।

ग्रीष्मकाल-अन्ते पुनः नीलाचले गेला।
नीलाचले चातुर्मास्य आनन्दे रहिला॥१६९॥

अनुवाद

गर्मी के अन्त में माधवेन्द्र पुरी जगन्नाथ पुरी लौट आये, जहाँ उन्होंने बड़े ही आनन्द से चातुर्मास्य बिताया।

तात्पर्य

चातुर्मास्य काल अषाढ-मास (जून-जुलाई) के कृष्णपक्ष की शयना एकादशी से शुरू होता है। यह काल कार्तिक मास (अक्टूबर-नवम्बर) के शुक्लपक्ष की एकादशी को, जिसे उत्थान-एकादशी कहते हैं, समाप्त होता है। यह चार मास का काल *चातुर्मास्य* कहलाता है। कुछ वैष्णव इसे अषाढ़ पूर्णिमा से लेकर कार्तिक पूर्णिमा तक का काल मानते हैं। यह भी चार मास का काल है। यह काल चन्द्रमासों की गणना से चातुर्मास्य कहलाता है, किन्तु अन्य लोग भी सौर मास के अनुसार श्रावण से कार्तिक तक चार्तुमास्य मनाते हैं। यह सम्पूर्ण काल, चाहे चन्द्र हो या सौर, वर्षा ऋतु में ही आता है। सभी वर्ग के लोगों को चातुर्मास्य मनाना चाहिए चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी। इसे मनाना सारे आश्रमों के लिए लाजमी है। इन चार महीनों में किये गये व्रत के पीछे मुख्य प्रयोजन इन्द्रियतृप्ति की मात्रा को कम करना होता है। यह कोई कठिन काम नहीं है। श्रावण के महीने में पालक नहीं खाना चाहिए। भाद्र में दही नहीं खाना चाहिए तथा आश्विन मास में दूध नहीं पीना चाहिए। कार्तिक मास में मछली या अन्य आमिष आहार नहीं करना चाहिए। आमिष भोजन का अर्थ है मछली तथा मांस। इसी तरह मसूर तथा उड़द की दालें भी आमिषाहार मानी जाती हैं क्योंकि

इनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, जिसे आमिषाहार की विशिष्टता माना जाता है। कुल मिलाकर, चातुर्मास्य के चार महीनों में मनुष्य को चाहिए कि इन्द्रिय-भोग के निमित्तार्थ भोजन परित्याग करने का अभ्यास करे।

श्रीमुखे माधव-पुरीर अमृत-चरित।
भक्तगणे शुनाञा प्रभु करे आस्वादित॥१७०॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं माधवेन्द्र पुरी के अमृतमय लक्षणों की प्रसंशा की और जब वे यह सब भक्तों को सुना रहे थे तो उन्होंने स्वयं इसका आस्वादन किया।

प्रभु कहे,—नित्यानन्द, करह विचार।
पुरी-सम भाग्यवान् जगते नाहि आर॥१७१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानन्द से यह निर्णय करने के लिए कहा कि क्या इस जगत में माधवेन्द्र पुरी के समान भाग्यशाली कोई है!

दुग्धदान-छले कृष्ण य़ाँरे देखा दिल।
तिन बारे स्वप्ने आसि' याँरे आज्ञा कैल॥१७२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "माधवेन्द्र पुरी इतने भाग्यशाली हैं कि दूध देने के बहाने उनके समक्ष साक्षात् कृष्ण प्रकट हुए। भगवान् ने माधवेन्द्र पुरी को स्वप्न में तीन बार आदेश दिया।

य़ाँर प्रेमे वश हञा प्रकट हइला।
सेवा अङ्गीकार करि' जगत तारिला॥१७३॥

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी के प्रेम-व्यापार से अनुगृहीत होकर स्वयं भगवान् कृष्ण गोपाल विग्रह के रूप में प्रकट हुए और उनकी सेवा स्वीकार करके उन्होंने सारे जगत का उद्धार किया।

य़ार लागि' गोपीनाथ क्षीर कैल चुरि।
अतएव नाम हैल 'क्षीरचोरा' करि'॥१७४॥

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी के ही कारण गोपीनाथ ने खीर-पात्र चुराया। इस तरह वे क्षीर-चोरा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कर्पूर-चन्दन य़ाँर अङ्गे चड़ाइल।
आनन्दे पुरी-गोसाञिर प्रेम उथलिल॥१७५॥

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी ने गोपीनाथ के सारे शरीर पर चन्दन का लेप किया और इस प्रकार वे भगवत्प्रेम से विह्वल हो गये।

म्लेच्छदेशे कर्पूर-चन्दन आनिते जञ्जाल।
पुरी दुःख पाबे इहा जानिया गोपाल॥१७६॥

अनुवाद

"मुसलमानों द्वारा शासित भारत के प्रान्तों में चन्दन तथा कपूर लेकर यात्रा करना अत्यन्त असुविधाजनक था। इसी कारण से माधवेन्द्र पुरी कष्ट में पड़े होंगे। यह गोपाल-विग्रह को ज्ञात हो गया।

महा-दयामय-प्रभु—भकत-वत्सल ।
चन्दन परि' भक्तश्रम करिल सफल॥१७७॥

अनुवाद

"भगवान् अत्यधिक दयालु हैं और अपने भक्तों पर अनुरक्त होते हैं अतएव जब गोपीनाथ चन्दन से ढक गये तो माधवेन्द्र पुरी का श्रम सार्थक हो गया।"

पुरीर प्रेम-पराकाष्ठा करह विचार।
अलौकिक प्रेम चित्ते लागे चमत्कार॥१७८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने माधवेन्द्र पुरी के उत्कट प्रेम के आदर्श पर अपना निर्णय देने के लिए नित्यानन्द के समक्ष विचार रखा। चैतन्य महाप्रभु

ने कहा, "उनके सारे प्रेम-कार्यकलाप असाधारण हैं। निस्सन्देह उनके कार्यकलापों को सुन कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।"

तात्पर्य

जब जीव को *कृष्ण-विरह* का अनुभव होता है तो उसे जीवन की मूल सफलता प्राप्त होती है। जब उसे भौतिक वस्तुओं से अरुचि हो जाती है तो उसे उन वस्तुओं के आकर्षण के दूसरे पक्ष का अनुभव होता है। किन्तु कृष्ण-विरह का अनुभव करना तथा भगवान् के मिशन की पूर्ति के लिए उनकी सेवा में लगे रहना कृष्ण-प्रेम का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। श्री चैतन्य महाप्रभु माधवेन्द्र पुरी द्वारा प्रदर्शित उत्कट कृष्ण-प्रेम की ओर इशारा करना चाह रहे थे। बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों ने माधवेन्द्र पुरी के ही पदचिह्नों का अनुसरण किया। उन्होंने अपनी परवाह न करते हुए भगवान् की सेवा की।

परम विरक्त, मौनी, सर्वत्र उदासीन।
ग्राम्यवार्ता-भये द्वितीय-सङ्ग-हीन॥१७९॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने आगे बतलाया, "श्री माधवेन्द्र पुरी अकेले रहा करते थे। वे पूर्ण विरक्त थे और सदैव मौन रहते थे। वे किसी भी भौतिक वस्तु में रुचि नहीं रखते थे और संसारी बातें न करने के भय से बिना किसी संगी के रहते थे।

हेन-जन गोपालेर आज्ञामृत पाञा।
सहस्र कोश आसि' बुले चन्दन मागिञा॥१८०॥

अनुवाद

"गोपालजी का आदेश पाकर इस महापुरुष ने माँग-माँग कर चन्दन एकत्र करने के लिए हजारों मील की यात्रा की।

भोके रहे, तबु अन्न मागिञा ना खाय।
हेन-जन चन्दन-भार वहि' लञा याय॥१८१॥

अनुवाद

"माधवेन्द्र पुरी ने भूखे रहने पर भी किसी से भोजन नहीं माँगा। इस

सुप्रसिद्ध पुरुष ने श्री गोपाल के निमित्त चन्दन का बोझा अपने सिर पर रखा।''

'मणेक चन्दन, तोला-विशेक कर्पूर।
गोपाले पराइब'—एइ आनन्द प्रचुर॥१८२॥

अनुवाद

''अपनी निजी सुख-सुविधा की परवाह न करके माधवेन्द्र पुरी एक मन चन्दन (लगभग ८२ पौंड) तथा बीस तोला (लगभग ८ औंस) कपूर गोपाल के शरीर में लेपने के लिए ले आये। उनके लिए यही दिव्य आनन्द काफी था।

उत्कलेर दानी राखे चन्दन देखिञा।
ताहाँ एड़ाइल राजपत्र देखाञा॥१८३॥

अनुवाद

''चूँकि उड़ीसा प्रान्त से बाहर चन्दन ले जाने पर प्रतिबन्ध था, अतएव चुंगी अधिकारी पूरा स्टाक जब्त कर लेता था, किन्तु माधवेन्द्र पुरी ने उसे सरकार द्वारा दिया गया विमोचन-प्रपत्र दिखलाया जिससे वे कठिनाइयों से बच गये।

म्लेच्छदेश दूर पथ, जगाति अपार।
केमते चन्दन निब—नाहि ए विचार॥१८४॥

अनुवाद

''माधवेन्द्र पुरी मुसलमान-शासित प्रान्तों से होकर वृन्दावन की लम्बी यात्रा करते समय असंख्य संतरियों के होते हुए भी तनिक भी चिन्तित नहीं थे।

सङ्गे एक वट नाहि घाटीदान दिते।
तथापि उत्साह बड़ चन्दन लञा याइते॥१८५॥

अनुवाद

''यद्यपि माधवेन्द्र पुरी के पास एक छदाम नहीं था, किन्तु वे चुंगी अफसरों से तनिक भी भयभीत नहीं थे। उनका एकमात्र उत्साह गोपाल के लिए वृन्दावन तक चन्दन का बोझ ले चलने में था।

प्रगाढ़-प्रेमेर एइ स्वभाव-अचार।
निज-दुःख-विघ्नदिर ना करे विचार॥१८६॥

अनुवाद

"उत्कट भगवत्प्रेम का यही स्वाभाविक परिणाम होता है। भक्त निजी असुविधाओं या विघ्नों पर विचार नहीं करता। वह सभी परिस्थितियों में भगवान् की सेवा करना चाहता है।

तात्पर्य

जिन लोगों में कृष्ण के लिए उत्कट प्रेम है, वे अपनी असुविधाओं तथा विघ्नों की परवाह नहीं करते। ऐसे भक्तजन भगवान् या उनके प्रतिनिधि-रूप गुरु का आदेश पालन करने के लिए कृतसंकल्प होते हैं। यहाँ तक कि घोर संकट आ जाने पर भी वे परम संकल्प के साथ अविचलित भाव से आगे बढते हैं। इससे सेवक का उत्कट प्रेम सिद्ध होता है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है—*तत् तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणः*—जो भवबन्धन से छूटना चाहते हैं, जिन्होंने उत्कट कृष्ण-प्रेम उत्पन्न कर लिया है, वे भगवद्धाम वापस जाने के सुपात्र हैं। कृष्ण का उत्कट प्रेमी असुविधा, अभाव, बाधा या दुख की परवाह नहीं करता। कहा जाता है कि जब किसी को वैष्णव में दुख या शोक दिखे तो वह उसके लिए रंच-भर भी दुख या शोक नहीं होता—यह तो दिव्य आनन्द होता है। *शिक्षाष्टक* में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी उपदेश दिया है—*आश्लिष्य वा पादरताम्*। कृष्ण का उत्कट प्रेमी कभी भी अपनी सेवा से विचलित नहीं होता, भले ही उसके समक्ष कितनी ही कठिनाइयाँ तथा व्यवधान क्यों न आयें।

एइ भाव गाढ़ प्रेमा लोके देखाइते।
गोपाल ताँरे आज्ञा दिल चन्दन आनिते॥१८७॥

अनुवाद

"श्री गोपाल यह दिखलाना चाहते थे कि माधवेन्द्र पुरी कृष्ण से कितना प्रगाढ़ प्रेम करते हैं। अतएव उन्होंने नीलाचल से चन्दन तथा कपूर लाने के लिए उनसे कहा।

बहुपरिश्रमे चन्दन रेमुणा आनिल।
आनन्द बाड़िल मने, दुःख ना गनिल॥१८८॥

अनुवाद

"काफी काष्ठ उठा कर तथा अत्यधिक परिश्रम करके माधवेन्द्र पुरी चन्दन के बोझ को रेमुणा ले आये। फिर भी वे अत्यन्त प्रसन्न थे, उन्होंने सारी कठिनाइयों की परवाह नहीं की।

परीक्षा करिते गोपाल कैल आज्ञा दान।
परीक्षा करिया शेषे हैल दयावान्॥१८९॥

अनुवाद

"गोपाल भगवान् ने माधवेन्द्र पुरी के उत्कट प्रेम की परीक्षा करने के लिए उन्हें नीलाचल से चन्दन लाने का आदेश दिया और जब माधवेन्द्र पुरी इस परीक्षा में खरे उतरे तो भगवान् उन पर अत्यन्त कृपालु हुए।

एइ भक्ति, भक्तप्रिय-कृष्ण-व्यवहार।
बुझितेओ आमा-सबार नाहि अधिकार॥१९०॥

अनुवाद

"भक्त तथा भक्त की प्रिय वस्तु श्रीकृष्ण के मध्य प्रेमाभक्ति के ऐसे व्यवहार का प्रदर्शन दिव्य है। सामान्य व्यक्ति के लिए इसे समझ पाना कठिन है। सामान्य व्यक्तियों में इतनी क्षमता नहीं होती।"

एत बलि' पड़े प्रभु ताँर कृत श्लोक।
ग्रेइ श्लोक-चन्द्रे जगत् कर्याछे आलोक॥१९१॥

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने माधवेन्द्र पुरी का एक श्लोक पढ़ा। यह श्लोक चन्द्रमा के समान है। इसने सारे जगत पर अपनी ज्योति छिटकाई है।

घषिते घषिते ग्रैछे मलयज-सार।
गन्ध बाड़े, तैछे एइ श्लोकेर विचार॥१९२॥

अनुवाद

जिस प्रकार निरन्तर घिसने से मलय चन्दन की सुगन्ध बढ़ती है उसी तरह इस श्लोक पर विचार करने से इसकी महत्ता बढ़ती है।

रत्नगण-मध्ये ग्रैछे कौस्तुभमणि।
रसकाव्य-मध्ये तैछे एइ श्लोक गनि॥१९३॥

अनुवाद

जिस प्रकार रत्नों के मध्य कौस्तुभ-मणि को अत्यन्त मूल्यवान माना जाता है, उसी तरह रसकाव्य के बीच इस श्लोक को माना जाता है।

एइ श्लोक करियाछेन राधा-ठाकुराणी।
ताँर कृपाय स्फुरियाछे माधवेन्द्र-वाणी॥१९४॥

अनुवाद

वास्तव में इस श्लोक को श्रीमती राधारानी ने कहा था और उनकी कृपा से यह माधवेन्द्र पुरी के शब्दों में प्रकट हुआ।

किबा गौरचन्द्र इहा करे आस्वादन।
इहा आस्वादिते आर नाहि चौठजन॥१९५॥

अनुवाद

केवल श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक के काव्यत्व का आस्वादन किया है। कोई चौथा व्यक्ति इसे समझ पाने में समर्थ नहीं है।

तात्पर्य

इसका अर्थ यह हुआ कि इस श्लोक के तात्पर्य को केवल श्रीमती राधारानी, माधवेन्द्र पुरी तथा चैतन्य महाप्रभु ही समझने में समर्थ हैं।

शेषकाले एइ श्लोक पठिते पठिते।
सिद्धिप्राप्ति हैल पुरीर श्लोकेर सहिते॥१९६॥

अनुवाद

अपने जीवन के अन्तिम काल में माधवेन्द्र पुरी इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते रहते थे। इस प्रकार इस श्लोक का उच्चारण करते-करते उन्होंने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त किया।

अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किंकरोम्यहम्॥१९७॥

अनुवाद

"हे प्रभु! हे परम कृपालु स्वामी! हे मथुरापति! मुझे फिर आपके दर्शन कब होंगे? आपका दर्शन न कर पाने से मेरा क्षुब्ध हृदय अस्थिर हो चुका है। हे प्रिय! अब मैं क्या करूँ?"

तात्पर्य

वेदान्त-दर्शन पर आश्रित शुद्ध भक्त चार सम्प्रदायों में विभक्त हैं। इन चारों में श्री मध्वाचार्य सम्प्रदाय को माधवेन्द्र पुरी ने स्वीकार किया था। इस प्रकार उन्होंने परम्परानुसार संन्यास ग्रहण किया। मध्वाचार्य से लेकर माधवेन्द्र पुरी के गुरु आचार्य लक्ष्मीपति तक माधुर्य भक्ति की अनुभूति नहीं थी। श्री माधवेन्द्र पुरी ने ही मध्वाचार्य सम्प्रदाय में पहले-पहल माधुर्य रस की भावना का सूत्रपात किया और मध्वाचार्य का यह निर्णय श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा तब प्रकट किया गया जब वे दक्षिण भारत की यात्रा करते हुए उन तत्त्ववादियों से मिले थे जो मध्वाचार्य-सम्प्रदाय के थे।

जब श्रीकृष्ण ने वृन्दावन छोड़ कर मथुरा का राज्य स्वीकार कर लिया तो विरह-भाव में श्रीमती राधारानी ने यह अभिव्यक्त किया कि किस तरह विरह में कृष्ण से प्रेम किया जा सकता है। इस तरह इस श्लोक में विरह-भक्ति मुख्य है। गौड़ीय मध्व-सम्प्रदाय में विरह-पूजा को सर्वोच्च भक्ति माना जाता है। इस धारणा के अनुसार भक्त अपने को अत्यन्त दीन तथा भगवान् द्वारा उपेक्षित मानता है। वह भगवान् को *दीनदयार्द्र नाथ* कह कर पुकारता है जैसा कि माधवेन्द्र पुरी ने किया। ऐसी भावना भक्ति का सर्वोच्च रूप है। चूँकि कृष्ण मथुरा चले गये थे, अतएव श्रीमती राधारानी अत्यधिक प्रभावित थीं और उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये "हे प्रभु! आपके विरह के कारण मेरा मन अत्यधिक क्षुब्ध हो चुका है। अब आप ही बतायें कि मैं क्या करूँ? मैं गरीब हूँ और आप अत्यन्त दयावान हैं, अतएव आप मुझ पर कृपा करें और मुझे बतलायें कि मैं आपका दर्शन कब कर सकूँगी।" श्री चैतन्य महाप्रभु सदैव श्रीमती राधारानी के उन भावों को व्यक्त करते थे जिन्हें राधारानी ने वृन्दावन में उद्धव को देख कर प्रकट किये थे। माधवेन्द्र पुरी द्वारा अनुभव किये जाने वाले ऐसे भाव इस श्लोक में व्यक्त हुए हैं। इसीलिए गौड़ीय मध्व सम्प्रदाय के वैष्णवजन कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्राकट्य के समय जिन भावों का अनुभव किया

वे ईश्वरी पुरी से माधवेन्द्र पुरी होते हुए उन तक आये। गौड़यमध्व-सम्प्रदाय परम्परा के सारे भक्तजन भक्ति के इन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं।

एइ श्लोक पड़िते प्रभु हइला मूर्छिते।
प्रेमेते विवश हञा पड़िल भूमिते॥१९८॥

अनुवाद

यह श्लोक सुनाते ही श्री चैतन्य महाप्रभु अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। वे विह्वल थे और अपने वश के बाहर थे।

आस्ते-व्यस्ते कोले करि' निल नित्यानन्द।
क्रन्दन करिया तबे उठे गौरचन्द्र॥१९९॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु भाववश भूमि पर गिर पड़े तो नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया। तब श्री चैतन्य महाप्रभु चिल्लाते हुए फिर से उठ बैठे।

प्रेमोन्माद हैल, उठि' इति-उति धाय।
हुङ्कार करये, हासे, कान्दे, नाचे, गाय॥२००॥

अनुवाद

भावाभिव्यक्ति करते हुए महाप्रभु हुंकार करके इधर-उधर दौड़ने लगे। कभी वे हँसते, कभी रोते, कभी नाचते और कभी गाते थे।

'अयि दीन' 'अयि दीन' बले बार-बार।
कण्ठे ना निःसरे वाणी, नेत्रे अश्रुधार॥२०१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु पूरा श्लोक नहीं सुना पाये। उन्होंने बारम्बार इतना ही कहा, "अयि दीन, अयि दीन"। इस तरह वे बोल नहीं सके और उनकी आँखों से अश्रु की धारा बहने लगी।

कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, स्तम्भ, वैवर्ण्य।
निर्वेद, विषाद, जाड्य, गर्व, हर्ष, दैन्य॥२०२।

अनुवाद

कँपकँपी, पसीना, हर्ष के आँसू, स्तम्भ, शरीर का रंग फीका पड़ना, निराशा, खिन्नता, स्मृति-हानि, गर्व, हर्ष तथा दीनता—ये सारे लक्षण श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में दिख रहे थे।

तात्पर्य

भक्तिरसामृत-सिन्धु में *जाड्य* को स्मृति-ह्रास कहा गया है, जो प्रियतमा के विरह से उत्पन्न कठिन आघात से उत्पन्न होता है। इस मनोदशा में हानि-लाभ, सुनने तथा देखने एवं अन्य बातों से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। यह मोह के प्रारम्भिक प्राकट्य को बतलाने वाला है।

एइ श्लोके उघाड़िला प्रेमेर कपाट।
गोपीनाथ-सेवक देखे प्रभुर प्रेमनाट॥२०३॥

अनुवाद

इस श्लोक ने प्रेमभाव के कपाट खोल दिये और गोपीनाथ के सारे नौकरों ने महाप्रभु के भावनृत्य को देखा।

लोकेर संघट्ट देखि' प्रभुर बाह्य हैल।
ठाकुरेर भोग सरि' आरति बाजिल॥२०४॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु के चारों ओर लोगों की भीड़ लग गई तो उनकी बाहरी इन्द्रियाँ जाग्रत हुईं। उसी बीच अर्चाविग्रह का भोग समाप्त हुआ और ध्वनि के बीच आरती सम्पन्न हुई।

ठाकुरे शयन कराञा पुजारी हैल बाहिर।
प्रभुर आगे आनि' दिल प्रसाद बार क्षीर॥२०५॥

अनुवाद

जब अर्चाविग्रहों को शयन करा दिया गया तो पुजारी मन्दिर के बाहर आ गया और उसने खीर के सारे बारहों पात्र श्री चैतन्य महाप्रभु को दिये।

क्षीर देखि' महाप्रभुर आनन्द बाड़िल।।
भक्तगणे खाओयाइते पञ्च क्षीर लैल।।२०६।।

अनुवाद

जब गोपीनाथ के जूठन के सारे खीर-पात्र श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष रखे गये तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। भक्तों को खिलाने के लिए उन्होंने केवल पाँच पात्र स्वीकार किये।

सात क्षीर पूजारीके बाहुड़िया दिल।
पञ्चक्षीर पञ्चजने बाँटिया खाइल।।२०७।।

अनुवाद

शेष सात पात्र आगे बढ़ा दिये गये और पुजारी को दे दिये गये। फिर महाप्रभु द्वारा लिये गये पाँच पात्रों की खीर पाँच भक्तों में बाँटी गई। उन सबों ने प्रसाद खाया।

गोपीनाथ-रूपे य़दि करियाछेन भोजन।
भक्ति देखाइते कैल प्रसाद भक्षण।।२०८।।

अनुवाद

गोपीनाथ विग्रह से अभिन्न श्री चैतन्य महाप्रभु पहले ही खीर-पात्रों का आस्वाद कर चुके थे। फिर भी भक्ति प्रकट करने के लिए उन्होंने भक्त के रूप में पुनः खीर खाई।

नाम-संकीर्तने सेइ रात्रि गोङाइला।
मङ्गल-आरति देखि' प्रभाते चलिला।।२०९।।

अनुवाद

वह रात्रि महाप्रभु ने उस मन्दिर में संकीर्तन में लगे रह कर बिताई। प्रात:काल मंगल-आरती सम्पन्न होते देख कर वे वहाँ से चल पड़े।

गोपाल-गोपीनाथ-पुरीगोसाञिर गुण।
भक्त-सङ्गे श्रीमुखे प्रभु कैला आस्वादन।।२१०।।

अनुवाद

इस तरह स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने गोपालजी, गोपीनाथ तथा श्री माधवेन्द्र

पुरी के दिव्य गुणों का आस्वादन अपने मुख से किया।

एइ त' आख्याने कहिला दोँहार महिमा।
प्रभुर भक्तवात्सल्य, आर भक्तप्रेम-सीमा॥२११॥

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य की दिव्य महिमा तथा भगवत्प्रेम की पराकाष्ठा—दोनों का वर्णन किया है।

श्रद्धायुक्त हञा इहा शुने ग्रेइ जन।
श्रीकृष्ण-चरणे सेइ पाय प्रेमधन॥२१२॥

अनुवाद

जो कोई श्रद्धा तथा भक्ति से इस कथा को सुनता है उसे श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर भगवत्प्रेम का खजाना प्राप्त होता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥२१३॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की स्तुति करते हुए और उनकी कृपा की आकांक्षा करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलता हुआ श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत की मध्यलीला के चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें श्री माधवेन्द्र पुरी की भक्ति का वर्णन है।

अध्याय ५

साक्षीगोपाल के कार्यकलाप

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी पुस्तक *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में पाँचवे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है—याजपुर से होते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु कटक नगर पहुँचे, जहाँ वे साक्षीगोपाल का मन्दिर देखने गये। वहाँ पर उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु के मुख से साक्षीगोपाल की कथा सुनी।

एक बार दो ब्राह्मण थे, जिनमें से एक वृद्ध था और दूसरा नवयुवक। दोनों ही विद्यानगर के रहने वाले थे। दोनों ब्राह्मण अनेक तीर्थस्थलों का भ्रमण करते हुए अन्त में वृन्दावन पहुँचे। वृद्ध ब्राह्मण उस तरुण ब्राह्मण की सेवाओं से अत्यन्त प्रसन्न था, अतएव वह अपनी सबसे छोटी पुत्री का विवाह उसके साथ करना चाहता था। वृद्ध ब्राह्मण ने वृन्दावन के गोपाल-विग्रह के समक्ष तरुण ब्राह्मण को वचन दिया। इस तरह गोपाल-विग्रह साक्षी स्वरूप हुए। जब दोनों ब्राह्मण विद्यानगर लौटे तो तरुण ब्राह्मण ने इस विवाह की बात उठाई, किन्तु वृद्ध ब्राह्मण ने अपने मित्रों तथा पत्नी के फुसलावे में आकर यह कहा कि उसे अपना वचन याद नहीं है। फलत: तरुण ब्राह्मण वृन्दावन लौट आया और पूरी कथा गोपालजी से कह सुनाई। इस तरह गोपालजी उस युवक की भक्ति से वशीभूत होने के कारण उसके साथ दक्षिण भारत गये। गोपालजी तरुण ब्राह्मण के पीछे-पीछे जा रहे थे और वह तरुण ब्राह्मण उनके घुंघरुओं की रुनझुन आवाज सुनता जा रहा था। जब विद्यानगर के सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्र हो गये तो गोपालजी ने वृद्ध ब्राह्मण के वचन की पुष्टि की। इस तरह विवाह सम्पन्न हो गया। बाद में उस देश के राजा ने गोपाल के लिए मन्दिर बनवा दिया।

इसके बाद कटक के राजा ने उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम का अपमान किया क्योंकि उसने अपनी पुत्री का विवाह उससे न करके उसे भगवान् जगन्नाथ का झाड़ूदार कहा। फलत: राजा पुरुषोत्तम ने भगवान् जगन्नाथ की

सहायता से कटक के राजा से लड़ाई की और उसे हरा दिया। इस तरह उसे राजा की पुत्री तथा कटक का राज्य दोनों मिल गये। उस समय गोपालजी राजा पुरुषोत्तम की भक्ति के वशीभूत हुए तो उन्हें कटक नगर ले आया गया।

यह कथा सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु भगवत्प्रेम के भावावेश में गोपाल-मन्दिर गये। कटक से चल कर वे भुवनेश्वर गये और वहाँ शिवजी का मन्दिर देखा। धीरे-धीरे वे कमलपुर पहुँचे और भार्गी नदी के तट पर उन्हें शिवजी का मन्दिर मिला, जहाँ उन्होंने अपना संन्यास-दण्ड नित्यानन्द प्रभु को दे दिया। किन्तु नित्यानन्द ने उस दण्ड के तीन खण्ड करके उसे आठारनाला नामक स्थान में भार्गी नदी में फेंक दिया। अपना दण्ड वापस न पाने से क्रुद्ध होकर महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु का साथ छोड़ दिया और अकेले ही जगन्नाथ मन्दिर का दर्शन करने चले गये।

पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा-स्वरूपो
ब्रह्मण्य देवो हि शताहगम्यम्।
देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतेहं
तं साक्षिगोपालमहं नतोऽस्मि॥१॥

अनुवाद

मैं उन भगवान् (ब्रह्मण्यदेव) को सादर नमस्कार करता हूँ जो एक ब्राह्मण के लाभ के लिए साक्षीगोपाल के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने १०० दिनों तक देश की पैदल यात्रा की। इस तरह उनके कार्यकलाप आश्चर्यजनक हैं।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्याप्रभु की जय हो। श्री अद्वैत प्रभु की जय हो और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो।

चलिते चलिते आइला याजपुर-ग्राम।
वराह-ठाकुर देखि' करिला प्रणाम॥३॥

अनुवाद

चलते चलते श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी टोली सहित वैतरणी नदी पर स्थित याजपुर ग्राम आये जहाँ उन्होंने वराहदेव का मन्दिर देखा और उन्हें नमस्कार किया।

नृत्यगीत कैल प्रेमे बहुत स्तवन।
याजपुरे से रात्रि करिला ग्रापन॥४॥

अनुवाद

वराह मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन तथा नृत्य किया और प्रार्थना की। वह रात्रि उन्होंने मन्दिर में ही बिताई।

कटक आइला साक्षिगोपाल देखिते।
गोपाल-सौन्दर्य देखि' हैला आनन्दिते॥५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु कटक नामक नगर में साक्षीगोपाल का मन्दिर देखने गये। जब उन्होंने गोपाल के विग्रह को देखा तो उनके सौन्दर्य से वे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

प्रेमावेशे नृत्यगीत कैल कत-क्षण।
आविष्ट हञा कैल गोपाल स्तवन॥६॥

अनुवाद

कहाँ पर महाप्रभु कुछ समय तक कीर्तन तथा नृत्य करते रहे और भावाभिभूत होकर उन्होंने गोपाल की स्तुति की।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि' भक्तिगण-सङ्गे।
गोपालेर पूर्वकथा शुने बहु रङ्गे॥७॥

अनुवाद

उस रात्रि श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल के मन्दिर में रहे और अपने सारे भक्तों समेत उन्होंने साक्षीगोपाल की कथा बड़े चाव से सुनी।

नित्यानन्द-गोसाञि यबे तीर्थ भ्रमिला।
साक्षिगोपाल देखिबारे कटक आइला॥८॥

अनुवाद

इसके पूर्व जब नित्यानन्द प्रभु ने विभिन्न तीर्थस्थलों का दर्शन करने के लिए भारत-भर का भ्रमण किया था तो वे कटक स्थित साक्षीगोपाल को भी देखने आये थे।

साक्षिगोपालेर कथा शुनि, लोकमुखे।
सेइ कथा कहेन, प्रभु शुने महासुखे॥९॥

अनुवाद

उस समय नित्यानन्द प्रभु ने साक्षीगोपाल की कथा लोगों के मुँह से सुनी थी। अब उन्होंने वही कथा सुनाई और चैतन्य महाप्रभु ने उस कथा को बड़े ही चाव से सुना।

तात्पर्य

साक्षीगोपाल मन्दिर खुर्दा रोड जंक्शन तथा जगन्नाथ पुरी के बीच स्थित है। अर्चाविग्रह आजकल कटक में नहीं है, किन्तु जब नित्यानन्द प्रभु वहाँ गये थे तो तब वहीं था। कटक उड़ीसा में महानदी के किनारे स्थित है। जब साक्षीगोपाल को विद्यानगर से लाया गया था तो वे कुछ समय तक कटक में रखे गये थे। तत्पश्चात् कुछ काल तक उन्हें जगन्नाथ मन्दिर में रखा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जगन्नाथ-मन्दिर में जगन्नाथ तथा साक्षीगोपाल के मध्य *प्रेम-कलह*—प्रेम का मतभेद हुआ। इस प्रेम-कलह को सुलझाने के लिए उड़ीसा के राजा ने जगन्नाथ पुरी से छह मील दूरी पर एक गाँव बसाया। यह गाँव सत्यवादी कहलाया और यहीं पर गोपाल को प्रतिष्ठित कर दिया गया। तत्पश्चात् नया मन्दिर बनवाया गया। अब तो साक्षीगोपाल स्टेशन भी है और लोग साक्षी गोपाल को देखने जाते हैं।

पूर्वे विद्यानगरे दुइ त' ब्राह्मण।
तीर्थ करिबारे दुँहे करिला गमन॥१०॥

अनुवाद

प्राचीनकाल में दक्षिण भारत में विद्यानगर में दो ब्राह्मण थे, जिन्होंने

विभिन्न तीर्थस्थानों के दर्शनार्थ लम्बी यात्रा की।

गया, वाराणसी, प्रयाग—सकल करिया।
मथुराते आइला दुँहे आनन्दित हञा॥११॥

अनुवाद

सर्वप्रथम वे गया गये, फिर काशी और तब प्रयाग। अन्त में वे परम प्रसन्नतापूर्वक मथुरा आये।

वनयात्राय वन देखि' देखे गोवर्धन।
द्वादश-वन देखि' शेषे गेला वृन्दावन॥१२॥

अनुवाद

मथुरा पहुँच कर उन्होंने वृन्दावन के विभिन्न वनों को देखना शुरू किया। तब वे गोवर्धन पर्वत आये। उन्होंने बारहों वन देखे और अन्त में वृन्दावन नगरी पहुँचे।

तात्पर्य

यमुना नदी के पूर्व की ओर स्थित पाँच वनों के नाम हैं—भद्र, बिल्व, लोह, भाण्डीर तथा महावन। यमुना के पश्चिम की ओर स्थित सात वनों के नाम हैं—मधु, ताल, कुमुद, बहुला, काम्य, खदिर तथा वृन्दावन। इन सारे वनों को देख लेने के बाद वे दोनों यात्री पञ्चक्रोशी वृन्दावन पहुँचे। बारह वनों में से वृन्दावन नामक वन वृन्दावन से लेकर नन्द ग्राम तथा वर्षाना तक ३२ मील दूरी तक फैला है और इसी में पञ्चक्रोशी वृन्दावन स्थित है।

वृन्दावने गोविन्द-स्थाने महादेवालय।
से मन्दिरे गोपालेर महासेवा हय॥१३॥

अनुवाद

पञ्चक्रोशी वृन्दावन ग्राम में, जहाँ अब गोविन्द मन्दिर है पहले एक विशाल मन्दिर था जहाँ गोपाल की महासेवा की जाती थी।

केशीतीर्थ, कालीय-ह्रदादिके कैल स्नान।
श्रीगोपाल देखि ताहाँ करिल विश्राम॥१४॥

अनुवाद

यमुना नदी के किनारे स्थित विभिन्न घाटों में, यथा केशीघाट तथा कालिया घाट में, स्नान करने के बाद वे दोनों यात्री गोपाल-मन्दिर देखने गये। तत्पश्चात् उन्होंने उस मन्दिर में विश्राम किया।

गोपाल-सौन्दर्य दुँहार मन निल हरि'।
सुख पाञा रहे ताहाँ दिन दुइ-चारि॥१५॥

अनुवाद

गोपाल-विग्रह के सौन्दर्य ने उनके मनों को हर लिया और परम सुख का अनुभव करते हुए वे दोनों दो-चार दिन वहाँ रूके रहे।

दुइविप्र-मध्ये एक विप्र—वृद्धप्राय।
आर विप्र—युवा, ताँर करेन सहाय॥१६॥

अनुवाद

दोनों ब्राह्मणों में एक बूढ़ा था और दूसरा तरुण। यह तरुण व्यक्ति बूढ़े की सहायता कर रहा था।

छोटविप्र करे सदा ताँहार सेवन।
ताँहार सेवाय विप्रेर तुष्ट हैल मन॥१७॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण बूढ़े की सदा सेवा करता था और वह बूढ़ा ब्राह्मण उसकी सेवा से संतुष्ट होने के कारण उससे प्रसन्न रहता था।

विप्र बले,—तुमि मोर बहु सेवा कैल।
सहाय हञा मोरे तीर्थ कराइला॥१८॥

अनुवाद

बूढ़े व्यक्ति ने उस तरुण से कहा, "तुमने तरह-तरह से इन सारे तीर्थस्थानों की यात्रा करने में मेरी सहायता की है।

पुत्रेओ पितार ऐछे ना करे सेवन।
तोमार प्रसादे आमि ना पाइलाम श्रम॥१९॥

अनुवाद

"मेरा पुत्र भी ऐसी सेवा नहीं करता। तुम्हारी दया से मुझे यात्रा में कोई थकान नहीं हुई।"

कृतघ्नता हय तोमाय ना कैले सम्मान।
अतएव तोमाय आमि दिब कन्यादान॥२०॥

अनुवाद

"यदि मैं तुम्हारा आदर न करूँ तो मैं कृतघ्न माना जाऊँगा। अतएव मैं वादा करता हूँ कि तुम्हें अपनी कन्या दान दूँगा।"

छोटविप्र कहे,—"शुन, विप्र-महाशय।
असम्भव कह केने, येइ नाहि हय॥२१॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने कहा, "महोदय! मेरी बात सुनें। आप अत्यन्त असम्भव बात कर रहे हैं। ऐसा कभी होता नहीं।"

महाकुलीन तुमि—विद्या-धनादि-प्रवीण।
आमि अकुलीन, आर धन-विद्या-हीन॥२२॥

अनुवाद

"आप उच्च कुल वाले व्यक्ति हैं, सुशिक्षित हैं और अत्यन्त धनी हैं। और मैं न तो उच्च कुल का हूँ, न ही मेरे पास उत्तम शिक्षा है, न ही धन है।"

तात्पर्य

पुर्ण्यकर्मों से मनुष्य चार प्रकार के ऐश्वर्यों से समृद्ध हो सकता है—उसका जन्म उच्च कुल में हो सकता है, वह सुशिक्षित हो सकता है, वह अत्यन्त सुन्दर हो सकता है या धनवान हो सकता है। ये लक्षण हैं पूर्वजन्म में सम्पन्न पुण्यकर्मों के। आज भी भारत में उच्च कुल वाले कभी सामान्य कुल वाले से विवाह नहीं करते। भले ही जाति वही हो, किन्तु अपनी उच्चता बनाये रहने के लिए ऐसे विवाह नहीं किये जाते। कोई निर्धन व्यक्ति किसी धनी व्यक्ति की कन्या से विवाह नहीं करना चाहेगा। इसीलिए जब वृद्ध ब्राह्मण ने तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देने का प्रस्ताव रखा तो

तरुण ब्राह्मण को विश्वास नहीं हुआ कि ऐसा विवाह सम्भव होगा। इसीलिए उसने वृद्ध ब्राह्मण से कहा कि आप *असम्भव* बात का प्रस्ताव क्यों कर रहे हैं। ऐसा नहीं सुना जाता कि कोई कुलीन व्यक्ति अपनी कन्या किसी अशिक्षित तथा निर्धन व्यक्ति को दान दे।

कन्यादान-पात्र आमि ना हइ तोमार।
कृष्णप्रीत्ये करि तोमार सेवा-व्यवहार॥२३॥

अनुवाद

"महोदय! मैं आपकी कन्या के उपयुक्त वर नहीं हूँ। मैं तो कृष्ण की तुष्टि के लिए आपकी सेवा करता हूँ।"

तात्पर्य

दोनों ब्राह्मण शुद्ध वैष्णव थे। तरुण ब्राह्मण बूढ़े की विशेष देखरेख इसीलिए करता था जिससे कृष्ण तुष्ट हों। *श्रीमद्भागवत* में (११.१९.२१) भगवान् कृष्ण कहते हैं—*मद्भक्तपूजाभ्यधिका*—मेरे भक्त की सेवा करना श्रेयस्कर है। अतएव चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव दर्शन के अनुसार भगवान् के दास का दास होना श्रेयस्कर है। मनुष्य को चाहिए कि प्रत्यक्षत: कृष्ण की सेवा करने का प्रयास न करे। शुद्ध वैष्णव कृष्ण के दास की सेवा करता है और अपने को कृष्ण के दास का दास बतलाता है। इससे कृष्ण प्रसन्न होते हैं। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर इस दर्शन की पुष्टि करते हैं—*छाड़िया वैष्णवसेवा निस्तार पायेछे केबा*। मुक्त वैष्णव की सेवा किये बिना प्रत्यक्ष रीति से कृष्ण की सेवा करके मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। कृष्ण के दास की सेवा करनी ही होगी।

ब्राह्मण-सेवाय कृष्णेर प्रीति बड़ हय।
ताँहार सन्तोषे भक्ति-सम्पद बाड़य॥"२४॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ब्राह्मणों की सेवा करने से परम प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं तो भक्तिरूपी ऐश्वर्य बढ़ता है।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की टीका है कि तरुण ब्राह्मण

ने वृद्ध ब्राह्मण की सेवा कृष्ण को प्रसन्न करने के उद्देश्य से की। यह कोई सामान्य सांसारिक व्यापार नहीं है। वैष्णव की सेवा किये जाने से कृष्ण प्रसन्न होते हैं। चूँकि तरुण ब्राह्मण ने उस बूढ़े की सेवा की, इसलिए भगवान् गोपाल ने दोनों भक्तों का मान बनाये रखने के लिए विवाह-समझौते का साक्षी बनना मंजूर किया। श्री चैतन्य महाप्रभु कभी भी वैवाहिक सम्बन्धों की बात न सुनते, यदि यह दो वैष्णवों के बीच की बात न होती। वैवाहिक प्रबन्ध तथा उत्सव शास्त्रों के *कर्मकाण्ड*-विभाग से सम्बन्धित है। किन्तु वैष्णव किसी प्रकार के कर्मकाण्ड से अपना नाता नहीं जोड़ते। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड केवल विषेर भाण्ड*। वैष्णव के लिए वेदों के कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड प्रकरण बेकार होते हैं। असली वैष्णव इन प्रकारों को विष-पात्र (*विषेर भाण्ड*) मानता है। कभी-कभी हम अपने शिष्यों के विवाहों में भाग लेते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि *कर्मकाण्ड* के कार्यों में हमारी रुचि है। कभी-कभी वैष्णव दर्शन को न समझने के कारण बाह्य व्यक्ति ऐसे कार्य की आलोचना कर बैठता है। उसका कहना होता है कि संन्यासी को एक तरुण तथा तरुणी के विवाह में भाग नहीं लेना चाहिए। किन्तु यह *कर्मकाण्ड*-कार्य नहीं हैं, क्योंकि हमारा उद्देश्य कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का प्रसार करना है। हम सामान्य जनता को कृष्णभावनामृत ग्रहण करने की सारी सुविधाएँ प्रदान करते हैं और भगवान् की सेवा में भक्तों के चित्त को एकाग्र होने के लिए कभी-कभी विवाह की अनुमति दी जाती है। हमने अनुभव किया है कि ऐसे विवाहित दम्पति मिशन की महत्वपूर्ण सेवा करते हैं। अतएव यदि संन्यासी किसी विवाह में सम्मिलित हो तो इसका बुरा अर्थ नहीं लगाना चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को उस तरुण ब्राह्मण तथा उस बूढ़े ब्राह्मण की कन्या के विवाह के विषय में सुनते हुए काफी सुख मिला।

बड़विप्र कहे,—"तुमि ना कर संशय।
तोमाके कन्या दिब आमि करिल निश्चय॥२५॥

अनुवाद

उस बूढ़े ब्राह्मण ने कहा, "बेटे! तुम मुझ पर सन्देह मत करो। मैं तुम्हें कन्यादान दूँगा। मैंने पहले ही यह निश्चय कर लिया है।"

छोटविप्र बले,—"तोमार स्त्रीपुत्र सब।
बहु ज्ञाति-गोष्ठी तोमार बहुत बान्धव॥२६॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण बोला, "आपके पत्नी तथा पुत्र हैं तथा परिजनों और मित्रों का बहुत बड़ा दायरा है।

ता'-सबार सम्मति विना नहे कन्यादान।
रुक्मिणीर पिता भीष्मक ताहाते प्रमाण॥२७॥

अनुवाद

"अपने सारे मित्रों तथा परिजनों की सम्मति के बिना आप अपनी कन्या का दान मुझे नहीं दे सकते। जरा महारानी रुक्मिणी तथा उनके पिता भीष्मक की कथा पर विचार करें।

भीष्मकेर इच्छा,—कृष्णे कन्या समर्पित।
पुत्रेर विरोधे कन्या नारिल अर्पित॥२८॥

अनुवाद

"राजा भीष्म अपनी कन्या रुक्मिणी का दान कृष्ण को करना चाहते थे, किन्तु उनके बड़े पुत्र रुक्मी ने विरोध किया। अतएव वे अपना मन्तव्य पूरा नहीं कर पाये।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१०.५२.२१) कहा गया है कि

राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना॥

विदर्भराज भीष्म अपनी पुत्री रुक्मिणी का कन्यादान कृष्ण को करना चाहते थे लेकिन उनके पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी ने इसका विरोध किया। अतएव उन्होंने अपना निर्णय वापस ले लिया और रुक्मिणी को चेदिनरेश शिशुपाल को देने का निश्चय किया। शिशुपाल कृष्ण का चचेरा भाई था। किन्तु रुक्मिणी ने एक चाल सोची—उसने पत्र भेज कर कृष्ण से विनती की कि वे उसका हरण करें। अतएव अपनी परम भक्तिन रुक्मिणी को प्रसन्न

करने के लिए कृष्ण ने उसका हरण किया। इससे कृष्ण तथा विरोधी दल के बीच, जिसका अगुआ रुक्मिणी का भाई रुक्मी था, विकट युद्ध हुआ। रुक्मी पराजित हुआ और कृष्ण को कटु वचन कहने के कारण वह मारा जाने वाला ही था कि रुक्मिणी के अनुनय-विनय पर उसे छोड़ दिया गया। किन्तु कृष्ण ने अपनी तलवार से रुक्मी के सिर के बाल छील दिये। यह बलराम को अच्छा नहीं लगा इसलिए उन्होंने कृष्ण को फटकारा।

बड़विप्र कहे,—"कन्या मोर निज-धन।
निज-धन दिते निषेधिबे कोन् जन॥२९॥

अनुवाद

बूढ़े ब्राह्मण ने कहा, "मेरी पुत्री मेरी निजी सम्पत्ति है। यदि मैं किसी को अपनी सम्पत्ति देना चाहूँ तो किसमें शक्ति है कि मुझे रोक सके?"

तोमाके कन्या दिब, सबाके करि' तिरस्कार।
संशय ना कर तुमि, करह स्वीकार॥"३०॥

अनुवाद

"ऐ बालक! मैं तुम्हें अपनी कन्या दान करूँगा और मैं अन्यों की परवाह नहीं करूँगा। तुम इसमें सन्देह मत करो। तुम मेरा प्रस्ताव मान लो।"

छोटविप्र कहे,—"य़दि कन्या दिते मन।
गोपालेर आगे कह ए सत्यवचन॥"३१॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने जवाब दिया, "यदि आपने अपनी तरुणी कन्या मुझे देने का निश्चय कर लिया है तो गोपाल-विग्रह के सामने चल कर ऐसा कहें।"

गोपालेर आगे विप्र कहिते लागिल।
'तुमि जान, निज-कन्या इहारे आमि दिल॥'३२॥

अनुवाद

उस बूढ़े ब्राह्मण ने गोपाल के समक्ष आकर कहा, "हे प्रभु! आप साक्षी हैं कि मैंने अपनी कन्या इस लड़के को दे दी है।"

तात्पर्य

भारतवर्ष में अब भी मौखिक रूप से कन्यादान दिये जाने का रिवाज है। यह *वाग्दत्त* कहलाता है। इसका अर्थ यह है कि कन्या का पिता, भाई या अभिभावक यह वचन देता है इस कन्या का अमुक व्यक्ति के साथ विवाह होगा। फलस्वरूप कन्या अन्य किसी के साथ नहीं ब्याही जा सकती। वह अपने पिता या अभिभावक के सत्यवचन से किसी के लिए सुरक्षित हो जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जहाँ कन्याओं के माता-पिता दूसरे व्यक्ति के पुत्रों के साथ अपनी कन्याओं का विवाह करने का वचन देते हैं। दोनों पक्ष वाले कन्या तथा वर के बड़े हो जाने तक प्रतीक्षा करते हैं और तब विवाह सम्पन्न होता है। भारत में चली आ रही इसी पुरानी प्रथा का पालन करते हुए वृद्ध ब्राह्मण ने उस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देने का वचन दिया और यह वचन गोपाल-विग्रह के समक्ष दिया गया। भारत में यह प्रथा है कि विग्रह के सामने दिये गये वचन का पालन किया जाता है। ऐसे वचन से इनकार नहीं किया जा सकता। भारत के गाँवों में, जब भी दो पक्षों में कोई झगड़ा होता है तो उसके निपटारे के लिए वे मन्दिर जाते हैं। विग्रह के समक्ष किसी में झूठ बोलने का दुस्साहस नहीं होता। इसी सिद्धान्त का पालन कुरुक्षेत्र युद्ध में किया गया। इसीलिए *भगवद्गीता* के प्रारम्भ में *धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे* कहा गया है।

ईशभावनाभावित न होने के कारण ही मानव समाज पशु जीवन से भी अधम होता जा रहा है। सामान्य जनता में ईशभावनामृत जाग्रत करने के लिए यह कृष्णभावनामृत-आन्दोलन अत्यावश्यक है। यदि सारे लोग वास्तव में ईशभावनाभावित हो जायँ तो सारे झगड़े कचहरी गये बिना ही निपट जायँ, जैसा कि इन दो ब्राह्मणों के साथ हुआ, जिन्होंने गोपाल को साक्षी बनाकर अपना मतभेद दूर कर लिया।

छोटविप्र बले,—"ठाकुर, तुमि मोर साक्षी।
तोमा साक्षी बोलाइमु, य़दि अन्यथा देखि।।"३३।।

अनुवाद

तब तरुण ब्राह्मण ने विग्रह को सम्बोधित करते हुए कहा "हे प्रभु! आप मेरे साक्षी हैं। यदि बाद में आवश्यकता पड़ी तो मैं आपको बुलाऊँगा।"

एत बलि' दुइजने चलिला देशेरे।
गुरु-बुद्ध्ये छोट-विप्र बहु सेवा करे॥३४॥

अनुवाद

इन बातों के बाद दोनों ब्राह्मण घर के लिए रवाना हुए। पहले की ही तरह तरुण ब्राह्मण उस वृद्ध ब्राह्मण के साथ हो लिया, मानो वृद्ध ब्राह्मण उसका गुरु हो और वह उसकी तरह-तरह से सेवा करता रहा।

देशे आसि' दुइजने गेला निज-घरे।
कत दिन बड़-विप्र चिन्तित अन्तर॥३५॥

अनुवाद

विद्यानगर लौट कर दोनों ब्राह्मण अपने-अपने घर चले गये। कुछ काल बाद वृद्ध ब्राह्मण को चिन्ता हुई।

तीर्थ विप्र वाक्य दिलूँ,—केमते सत्य हय।
स्त्री, पुत्र, ज्ञाति बन्धु जानिबे निश्चय॥३६॥

अनुवाद

वह सोचने लगा, "मैंने तीर्थस्थान में एक ब्राह्मण को वचन दिया है और मैंने जो वचन दिया है वह अवश्य घटित होगा। अब मुझे अपनी स्त्री, पुत्रों, अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों को यह बात बता देनी चाहिए।"

एकदिन निज-लोक एकत्र करिल।
ता-सबार आगे सब वृत्तान्त कहिल॥३७॥

अनुवाद

फलतः उस वृद्ध ब्राह्मण ने एक दिन अपने सारे संबंधियों तथा मित्रों की पंचायत बुलाई और उसने उन सबों के सामने वह सब कह सुनाया जो गोपाल के समक्ष घट चुका था।

शुनि' सब गोष्ठी तार करे हाहाकार।
'ऐछे वात् मुखे तुमि ना आनिब आर॥३८॥

अनुवाद

जब परिवार वालों ने वृद्ध ब्राह्मण का वृत्तान्त सुना तो वे निराशा प्रकट करते हुए हाहाकार करने लगे। उन सबों ने यही अनुरोध किया कि अब वह फिर ऐसा प्रस्ताव न करे।

नीचे कन्या दिले कुल य़ाइबेक नाश।
शुनिञा सकल लोक करिबे उपहास॥'३९॥

अनुवाद

सबों ने एक स्वर से कहा, "यदि तुम अपनी कन्या निम्न परिवार में डालते हो तो तुम्हारी श्रेष्ठता जाती रहेगी। जब लोग सुनेंगे तो वे तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे।

विप्र बले,—"तीर्थ-वाक्य केमने करि आन।
य़ हउक्, से हउक्, आमि दिब कन्यादान॥"४०॥

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "तीर्थयात्रा के समय पवित्र स्थान में दिया गया वचन मैं कैसे मिटा सकता हूँ? चाहे जो भी हो, मुझे उसे ही कन्यादान करना चाहिए।"

ज्ञाति लोक कहे,—'मोरा तोमाके छाड़िब'।
स्त्री-पुत्र कहे—विष खाइया मरिब॥'४१॥

अनुवाद

सम्बन्धियों ने एकजुट होकर कहा, "यदि तुम अपनी कन्या उस लड़के को दोगे तो हम सभी तुमसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ देंगे।" उसकी स्त्री तथा पुत्रों ने कहा, "यदि ऐसा होता है तो हम सभी जहर खाकर मर जायेंगे।"

विप्र बले,—"साक्षी बोलाञा करिबेक न्याय।
जिति' कन्या लबे, मोर व्यर्थ धर्म हय"॥४२॥

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "यदि मैं अपनी कन्या उस तरुण ब्राह्मण को नहीं देता तो वह श्री गोपालजी को गवाह (साक्षी) के रूप में बुलायेगा। तब वह मेरी कन्या को बलपूर्वक ले जायेगा और उस दशा में मेरा धर्म चला जायेगा।"

पुत्र बले —"प्रतिमा साक्षी, सेइ दूर देशे।
के तोमार साक्षी दिबे, चिन्ता कर किसे॥४३॥

अनुवाद

पुत्र ने उत्तर दिया, "भले ही विग्रह साक्षी हो किन्तु वह दूर देश में है। भला वह आपके पास किस तरह गवाही देने आ सकता है? आप इसके विषय में इतने चिन्तित क्यों हैं?"

नाहि कहि—ना कहिओ ए मिथ्या-वचन।
सबे कहिबे—'मोर किछु नाहिक स्मरण॥'४४॥

अनुवाद

'आपको एकदम यह नहीं कहना है कि आपने ऐसी बात नहीं कही थी। ऐसी झूठी बात कहने की आवश्वयकता नहीं है। आप केवल इतना ही कहिये कि मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने क्या कहा था।'

तुमि यदि कह,—'आमि किछुइ न जानि'।
तबे आमि न्याय करि' ब्राह्मणेरे जिनि॥"४५॥

अनुवाद

"यदि आप केवल इतना ही कहें, "मुझे स्मरण नहीं है" तो बाकी मैं निपट लूँगा। मैं तर्क द्वारा उस तरुण ब्राह्मण को हरा दूँगा।"

तात्पर्य

वृद्ध ब्राह्मण का पुत्र नास्तिक था और रघुनाथ-स्मृति का अनुयायी था। वह रुपये-पैसे के मामले में दक्ष था, किन्तु था पहले दर्जे का बेवकूफ। फलतः वह विग्रह के आध्यात्मिक पद पर विश्वास नहीं करता था, न ही भगवान् में उसे कोई श्रद्धा थी। फलतः एक निपट मूर्तिपूजक की तरह वह भगवान् को पत्थर या लकड़ी का बना हुआ समझ रहा था। इस तरह उसने अपने

पिता को आश्वस्त किया कि गवाह मात्र पत्थर का विग्रह था जो बोलने में असमर्थ था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी विश्वास दिलाया कि विग्रह दूर देश में है, फलतः वह गवाही देने नहीं आ सकता। संक्षेप में वह कह रहा था, "चिन्ता न करें। आपको सीधे झूठ नहीं बोलना है, अपितु कूटनीतिज्ञ की भाँति कहना है, जैसा कि युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से कहा था—*अश्वत्थामा हत इति गजः*। इस सिद्धान्त का पालन करते हुए आप केवल इतना ही कहें कि मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है और इस तरुण ब्राह्मण ने क्या कहा था, इससे अनभिज्ञ हूँ। यदि आप इस तरह चलें तो फिर मैं जानता हूँ कि किस तरह तर्क करके शब्दाडम्बर से उसे हराया जाय। इस तरह आप कन्यादान करने से बच सकेंगे और हमारी श्रेष्ठता कायम रही जायगी। आपको कोई चिन्ता नहीं करनी है।"

एत शुनि' विप्रेर चिन्तित हैल मन।
एकान्त भावे चिन्ते विप्र गोपाल-चरण॥४६॥

अनुवाद

यह सुन कर उस वृद्ध ब्राह्मण का मन क्षुब्ध हो उठा। फलतः अपने को असहाय मान कर उसने अपना ध्यान गोपाल के चरणकमलों पर एकाग्र किया।

'मोर धर्म रक्षा पाय, ना मरे निज-जन।
दुइ रक्षा कर, गोपाल, लइनु शरण॥'४७॥

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने विनती की, "हे गोपाल! मैंने आप के चरणकमलों की शरण ली है अतएव मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि मेरे धर्म को बचाएँ और साथ ही मेरे आत्मीय जनों को मरने से बचायें।"

एइमत विप्र चित्ते चिन्तित लागिल।
आर दिन लघु विप्र ताँर घरे आइल॥४८॥

अनुवाद

अगले दिन जब वह ब्राह्मण इस बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा था तभी तरुण ब्राह्मण उसके घर आया।

आसिञा परम-भक्तये नमस्कार करि'।
विनय करिञा कहे कर दुइ ग्रडि'॥४९॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने उसके पास आकर उसे नमस्कार किया। फिर परम विनीत भाव से हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला।

'तुमि मोरे कन्या दिते कर्याछ अङ्गीकार।
एबे किछु नाहि कह, कि तोमार विचार॥'५०॥

अनुवाद

"आपने तो मुझे अपनी पुत्री देने का वचन दिया था। किन्तु अब आप कुछ नहीं बोल रहे। आपने क्या निर्णय लिया?"

एत शुनि' सेइ विप्र रहे मौन धरि'।
ताँर पुत्र मारिते आइल हाते ठेञा करि'॥५१॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर वृद्ध ब्राह्मण मौन रहा। इस अवसर का लाभ उठाकर, उस वृद्ध ब्राह्मण का पुत्र उस तरुण ब्राह्मण को मारने के लिए लाठी लेकर बाहर निकल आया।

आरे अधम! मोर भग्नी चाह विवाहिते।
वामन हञा चाँद ग्रेन चाह त' धरिते॥'५२॥

अनुवाद

पुत्र ने कहा, "अरे नीच! तू मेरी बहन के साथ विवाह करना चाहता है, जैसे कोई बौना व्यक्ति चाँद को पकड़ना चाहता हो।"

ठेञा देखि' सेइ विप्र पलाञा गेल।
आर दिन ग्रामेर लोक एकत्र करिल॥५३॥

अनुवाद

उसके हाथ में लाठी देख कर बेचारा तरुण ब्राह्मण भग गया। किन्तु अगले दिन उसने गाँव के सारे लोगों को एकत्र किया।

सब लोक बड़विप्र डाकिया आनिल।
तबे सेइ लघुविप्र कहिते लागिल॥५४॥

अनुवाद

तब गाँव के लोग वृद्ध ब्राह्मण को बुला कर सभा-स्थल पर ले आये। तत्पश्चात् तरुण ब्राह्मण ने कहना शुरू किया।

'इँह मोरे कन्या दिते कर्याछे अङ्गीकार।
एबे ये ना देन, पुछ इँहार व्यवहार॥'५५॥

अनुवाद

"इन महाशय ने अपनी कन्या मुझे देने का वचन दिया था किन्तु अब ये अपना वचन नहीं निभा रहे। कृपया इनसे इनके इस व्यवहार के विषय में पूछें।"

तबे सेइ विप्रेर पुछिल सर्वजन।
'कन्या केने ना देह, यदि दियाछ वचन॥'५६॥

अनुवाद

वहाँ पर एकत्रित सभी लोगों ने वृद्ध ब्राह्मण से पूछा, "यदि पहले से तुम कन्यादान का वचन दे चुके हो तो अपना वादा पूरा क्यों नहीं कर रहे? तुमने वचन दिये थे न!"

विप्र कहे,—'शुन, लोक, मोर निवेदन।
कबे कि बलियाछि, मोर नाहिक स्मरण॥'५७॥

अनुवाद

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "मित्रो! मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनें। मुझे ठीक से स्मरण नहीं है कि मैंने ऐसा कोई वचन दिया था।"

एत शुनि' ताँर पुत्र वाक्यच्छल पाञा।
प्रगल्भ हइया कहे सम्मुखे आसिञा॥५८॥

अनुवाद

जब वृद्ध ब्राह्मण के पुत्र ने यह सुना तो उसे बात बनाने का मौका मिल गया। वह अत्यन्त प्रगल्भ होकर सभा के सामने खड़ा हुआ और

इस प्रकार बोला।

"तीर्थयात्राय पितार सङ्गे छिल बहु धन।
धन देखि एइ दुष्टेर लैते हैल मन॥५९॥

अनुवाद

"तीर्थयात्रा करते समय मेरे पिता अपने साथ काफी धन ले गये थे। इस धूर्त ने उस धन को लेने की ठान ली।"

आर केह सङ्गे नाहि, एइ सङ्गे एकल।
धुतुरा खाओयाञा वापे करिल पागल॥६०॥

अनुवाद

"मेरे पिता के साथ इसके अलावा अन्य कोई नहीं था। इस धूर्त ने मेरे पिता को धतूरा खिला कर पागल बना दिया।

सब धन लञा कहे—'चोरे लइल धन।'
'कन्या दिते चाहियाछे'—उठाइल वचन॥६१॥

अनुवाद

"इस धूर्त ने मेरे पिता का सारा धन लेकर यह कह दिया कि उसे कोई चोर चुरा ले गया। अब यह कह रहा है कि मेरे पिता ने उसे अपनी कन्या दान करने को कहा है।

तोमरा सकल लोक करह विचारे।
'मोर पितर कन्या दिते य़ोग्य कि इहारे॥'६२॥

अनुवाद

"यहाँ पर एकत्र आप सभी लोग सज्जन हैं। कृपया यह विचार करें क्या इस दरिद्र ब्राह्मण को मेरे पिता की कन्या का दान उचित होगा?"

एत शुनि' लोकेर मने हइल संशय।
'सम्भवे,—धन लोभे लोक छाड़े धर्मभय॥'६३॥

अनुवाद

ये सारी बातें सुन कर वहाँ पर एकत्र सारे लोग कुछ कुछ शंकित हो गये। उन्होंने सोचा कि सम्भव है धन के लोभ से कोई अपना

धर्म छोड़ दे।

तबे छोटाविप्र कहे,—"शुन, महाजन।
न्याय जिनिबारे कहे असत्य-वचन॥६४॥

अनुवाद

उस समय तरुण ब्राह्मण ने कहा, "हे महाशयो! मेरी सुनें। तर्क में जीतने के लिए ही यह व्यक्ति झूठ बोल रहा है।

एइ विप्र मोर सेवाय तुष्ट यबे हैला।
'तोरे आमि कन्या दिबऽआपने कहिला॥६५॥

अनुवाद

"मेरी सेवा से अत्यधिक संतुष्ट होकर इस ब्राह्मण ने स्वेच्छा से मुझसे कहा कि मैं तुम्हें अपनी कन्या देने का वादा करता हूँ।"

तबे मुञि निषेधिनु,—शुन, द्विजवर।
तोमार कन्यार योग्य नहि मुञि वर॥६६॥

अनुवाद

"उस समय मैंने इससे यह कहते हुए ऐसा करने से मना किया हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! मैं आपकी पुत्री के योग्य नहीं हूँ।

काहाँ तुमि पण्डित, धनी, परम कुलीन।
काहाँ मुञि दरिद्र, मूर्ख, नीच, कुलहीन॥६७॥

अनुवाद

" 'कहाँ आप पंडित, धनी और उच्च कुलीन! कहाँ मैं एक गरीब, अशिक्षित तथा कुलहीन व्यक्ति।'

तबु एइ विप्र मोरे कहे बार बार।
तोरे कन्या दिलुँ, तुमि करह स्वीकार॥६८॥

अनुवाद

"फिर भी यह ब्राह्मण अड़ा रहा। उसने बारम्बार मुझसे यह प्रस्ताव स्वीकार करने को कहा। 'मैंने तुम्हें अपनी कन्या दे दी। तुम इसे स्वीकार करो।'

तबे आमि कहिलाङ—शुन, महामति।
तोमार स्त्री-पुत्र-ज्ञातिर ना हबे सम्मति॥६९॥

अनुवाद

"तब मैंने कहा, 'मेरी तो सुनें। आप विद्वान ब्राह्मण हैं। आपकी पत्नी, आपके मित्र तथा सम्बन्धी इस प्रस्ताव से कभी भी सहमत नहीं होंगे।

कन्या दिते नारिबे, हबे असत्य-वचन।
पुनरपि कहे विप्र करिया य़तन॥७०॥

अनुवाद

" 'मान्यवर! आप अपना वचन निभा नहीं पायेंगे। आपका वचन भंग होगा।' फिर भी यह ब्राह्मण अपने वचन पर बारम्बार बल देता रहा।

कन्या तोरे दिलुँ, द्विधा ना करिह चिते।
आत्मकन्या दिब, केबा पारे निषेधिते॥७१॥

अनुवाद

" 'मैंने तुम्हें कन्यादान दिया है। संकोच मत करो। वह मेरी पुत्री है और मैं उसे तुम्हें दूँगा। भला कौन मुझे मना कर सकता है?

तबे आमि कहिलाङ दृढ़ करि' मन।
गोपालेर आगे कह ए-सत्य वचन॥७२॥

अनुवाद

"उस समय मैंने अपना चित्त एकाग्र किया और ब्राह्मण से विनती की कि वह गोपाल-विग्रह के समक्ष वचन दें।

तबे इँहो गोपालेर आगेते कहिल।
तुमि जान, एइ विप्र कन्या आमि दिल॥७३॥

अनुवाद

"तब इन महाशय ने गोपाल-विग्रह के समक्ष कहा, 'हे प्रभु! आप साक्षी हैं। मैंने अपनी कन्या इस ब्राह्मण को दान दे दी है।'

तबे आमि गोपालेर साक्षी करिञा।
कहिलाङ ताँर पदे मिनति करिञा॥७४॥

अनुवाद

"तब मैंने गोपाल-विग्रह को अपना साक्षी बनाकर उनके चरणकमलों में इस प्रकार निवेदन किया।

यदि एइ विप्र मोरे ना दिबे कन्यादान।
साक्षी बोलाइमु तोमाय, हइओ सावधान॥७५॥

अनुवाद

" 'हे प्रभु! यदि बाद में यह ब्राह्मण अपनी कन्या मुझे देने से हिचकेगा तो मैं आपको साक्षी के रूप में बुलाऊँगा। कृपया इसे सावधान होकर सुनें।'

एइ वाक्ये साक्षी मोर आछे महाजन।
याँर वाक्य सत्य करि माने त्रिभुवन॥"७६॥

अनुवाद

"इस तरह इस लेनदेन में मैं एक महापुरुष के पास गया हूँ। मैंने भगवान् को अपना साक्षी बनने को कहा है। भगवान् के वचनों को सारा जगत मानता है।"

तात्पर्य

यद्यपि तरुण ब्राह्मण ने अपने को कुलहीन तथा अशिक्षित व्यक्ति बतलाया किन्तु फिर भी उसमें एक गुण था—वह यह कि वह भगवान् को सर्वोच्च अधिकारी समझता था, उसने भगवान् कृष्ण के शब्दों को बिना हिचक के स्वीकार कर लिया था और उसे भगवान् पर दृढ़ विश्वास था। अन्य महाभागवत प्रह्लाद महाराज के अनुसार ऐसे कट्टर तथा श्रद्धालु भगवद्भक्त को परम विद्वान मानना चाहिए—*तन्मयेऽधीतमुत्तमम्* (श्रीमद्भागवत ७.५.२४)। जिस शुद्ध भक्त को भगवान् के शब्दों में दृढ़ आस्था है उसे ही संसार का सबसे बड़ा विद्वान, कुलीन तथा धनी मानना चाहिए। ऐसे भक्त में सारे दैव-गुण स्वतः पाये जाते हैं। हम लोग कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रचार-कार्य में भगवान् के दासानुदास के रूप में भगवान् कृष्ण तथा उनकी शिष्य-परम्परा के शब्दों में पूर्ण विश्वास रखते हैं। इस तरह हम कृष्ण के शब्दों को सारे विश्व को भेंट करते है। हम न तो धनी हैं, न ही अधिक विद्वान और न कुलीन हैं, फिर भी इस आन्दोलन का स्वागत होता है और यह

सारे विश्व में बड़ी ही सुगमतापूर्वक फैल रहा है। यद्यपि हम अत्यन्त निर्धन हैं और हमारे पास आय का कोई साधन नहीं है, फिर भी जब भी हमें धन की आवश्यकता होती है, कृष्ण प्रदान करते हैं। जब हमें मनुष्यों की आवश्यकता होती है तो वे मनुष्य देते हैं। इसीलिए *भगवद्गीता* में (६.२२) कहा गया है—(*यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः*। वास्तव में यदि हमें भगवान् कृष्ण की कृपा प्राप्त हो जाय तो फिर हमें और कुछ भी नहीं चाहिए। हमें निश्चय ही उन वस्तुओं की चाह नहीं रह जाती जिन्हें संसारी व्यक्ति सम्पत्ति मानते हैं।

तबे बड़विप्र कहे,—"एइ सत्यकथा।
गोपाल यदि साक्षी देन, आपने आसि' एथा॥७७॥
तबे कन्या दिब आमि, जानिह निश्चय॥"
ताँर पुत्र कहे,—एइ भाल बात हय॥७८॥

अनुवाद

इस अवसर का लाभ उठाते हुए वृद्ध ब्राह्मण ने तुरन्त पुष्टि की कि यह वास्तव में सच है। उसने कहा, "यदि स्वयं गोपाल गवाह (साक्षी) के रूप में यहाँ तक चल कर आयें तो मैं इस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या दान दे दूँगा।" उन ब्राह्मण के पुत्र ने तुरन्त ही यह कह कर पुष्टि की, "हाँ, यह बहुत ही उत्तम समझौता है।"

तात्पर्य

सारे जीवों के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित भगवान् कृष्ण जन-जन की इच्छा, याचना तथा प्रार्थना को जानने वाले हैं। भले ही ये सारी बातें परस्पर विरोधमूलक लगें किन्तु भगवान् को ऐसी स्थिति लानी होती है कि हर कोई प्रसन्न रहे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है वृद्ध ब्राह्मण तथा तरुण ब्राह्मण के बीच हुआ विवाह का समझौता। वृद्ध ब्राह्मण सचमुच ही उस तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या देना चाहता था, किन्तु उसका पुत्र तथा उसके सम्बन्धी इसमें बाधक बन रहे थे। वृद्ध ब्राह्मण ने विचार किया कि इस स्थिति से उबर कर उसी तरुण ब्राह्मण को किस तरह कन्यादान किया जाय। किन्तु उसका पुत्र नास्तिक तथा अत्यन्त चालाक व्यक्ति था और वह इस विवाह को रोकना चाहता था। पिता तथा पुत्र परस्पर-विरोधी ढंग से सोच

रहे थे फिर भी कृष्ण ने ऐसी स्थिति ला दी कि दोनों इस पर राजी हो गये कि यदि गोपाल-विग्रह आकर साक्षी दे तो तरुण ब्राह्मण को कन्या दे दी जायेगी।

बड़विप्रेर मने,—'कृष्ण बड़ दयावान्।
अवश्य मोर वाक्य तेंहो करिबे प्रमान॥'७९॥

अनुवाद

उस वृद्ध ब्राह्मण ने सोचा, "चूँकि भगवान् कृष्ण अत्यन्त दयालु हैं, वे निश्चय ही मेरे कथन को प्रमाणित करेंगे।"

पुत्रेर मने,—'प्रतिमा ना आसिबे साक्षी दिते।'
एइ बुद्ध्ये दुइजन हइला सम्मते॥८०॥

अनुवाद

नास्तिक पुत्र ने सोचा, "गोपाल के लिए यह सम्भव नहीं कि आकर साक्षी दें।" यह सोच कर पिता तथा पुत्र दोनों राजी हो गये।

छोटविप्र बले,—'पत्र करह लिखन।
पुनः ग्रेन नाहि चले ए-सब वचन॥'८१॥

अनुवाद

तरुण विप्र ने अवसर पाकर कहा, "कृपया यह बात एक कागज पर लिख दें जिससे फिर आप अपने वचनों को बदल न सकें।"

तबे सब लोक मेलि' पत्र त' लिखिल।
दुँहार सम्मति लञा मध्यस्थ राखिल॥८२॥

अनुवाद

वहाँ पर एकत्र सारे लोगों ने यह बात कागज पर अंकित करा दी और उन दोनों के हस्ताक्षर कराकर वे मध्यस्थ बन गये।

तबे छोटविप्र कहे,—शुन, सर्वजन।
एइ विप्र—सत्य, वाक्य, धर्मपरायण॥८३॥

अनुवाद

तब तरुण ब्राह्मण ने कहा, "यहाँ पर एकत्र सारे लोगो! क्या मेरी

बात सुनियेगा? यह वृद्ध ब्राह्मण सचमुच सत्यवादी है और धर्म का पालन करने वाला है।"

स्ववाक्य छाड़िते इँहार नाहि कभु मन।
स्वजन-मृत्यु-भये कहे असत्य-वचन॥८४॥

अनुवाद

"वह अपना वचन भंग करना नहीं चाहता किन्तु इस भय से कि उसके सम्बन्धी आत्महत्या कर लेंगे, सत्य के पथ से विचलित हो रहा है।"

इँहार पुण्ये कृष्ण आनि' साक्षी बोलाइब।
तबे एइ विप्रेर सत्य-प्रतिज्ञा राखिब॥८५॥

अनुवाद

"मैं इस ब्राह्मण के पुण्य से भगवान् को साक्षी के रूप में बुलाऊँगा और उसके सत्य वचन को अक्षत रखूँगा।"

एत शुनि' नास्तिक लोक उपहास करे।
केह बले, ईश्वर,—दयालु, आसितेह पारे॥८६॥

अनुवाद

उस तरुण विप्र के ऐसे जोरदार वचन सुन कर उस सभा के कुछ नास्तिक उसका मजाक उड़ाने लगे। किन्तु किसी एक ने कहा, "आखिर, ईश्वर दयालु है और चाहे तो आ सकता है।"

तबे सेइ छोटविप्र गेला वृन्दावन।
दण्डवत् करि' कहे सब विवरण॥८७॥

अनुवाद

सभा के बाद वह तरुण ब्राह्मण वृन्दावन के लिए चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर सर्वप्रथम उसने विग्रह को नमस्कार किया और फिर विस्तार से सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

ब्रह्मण्यदेव तुमि बड़ दयामय।
दुइ विप्रेर धर्म राख हञा सदय॥८८॥

अनुवाद

उसने कहा, "हे प्रभु! आप ब्रह्मण्य संस्कृति के रक्षक हैं और आप अत्यन्त दयावान भी हैं। अतएव आप हम दोनों ब्राह्मणों की रक्षा करके अपनी परम दया दर्शायें।"

कन्या पाव,—मोर मने इहा नाहि सुख।
ब्राह्मणेर प्रतिज्ञा य़ाय—एइ बड़ दुःख॥८९॥

अनुवाद

"हे प्रभु! मैं उसकी कन्या को पत्नी रूप में पाकर सुखी बनने की बात नहीं सोच रहा। मैं तो यह सोच रहा हूँ कि उस ब्राह्मण ने अपना वचन तोड़ा है—यही बात मुझे अत्यधिक पीड़ा पहुँचा रही है।"

तात्पर्य

उस तरुण ब्राह्मण की मंशा विवाह द्वारा वृद्ध ब्राह्मण की कन्या प्राप्त करके भौतिक सुख-भोग और इन्द्रियतृप्ति नहीं थी। वह तरुण ब्राह्मण भगवान् से साक्षी बनने के लिए कहने के उद्देश्य से वृन्दावन नहीं गया था। उसकी एकमात्र चिन्ता यही थी कि उस ब्राह्मण ने किसी बात के लिए वचन दिया है और यदि इस मामले में गोपाल साक्षी नहीं बनते तो उस वृद्ध ब्राह्मण को आध्यात्मिक कलंक लगेगा। इसीलिए वह तरुण ब्राह्मण विग्रह का संरक्षण और साहाय्य चाह रहा था। इस तरह वह ब्राह्मण शुद्ध वैष्णव था और उसमें इन्द्रियतृप्ति की कोई इच्छा नहीं थी। वह तो भगवान् तथा उस वैष्णव भगवद्भक्त वृद्ध ब्राह्मण की सेवा करना चाहता था।

एत जानि' तुमि साक्षी देह, दयामय।
जानि' साक्षी नाहि देय, तार पाप हय॥९०॥

अनुवाद

वह तरुण ब्राह्मण कहता रहा, "महोदय! आप अत्यन्त कृपालु तथा सब कुछ जानने वाले हैं। अतएव इस मामले में साक्षी बनें। जो व्यक्ति सही बातें जानते हुए भी साक्षी नहीं बनता वह पापकर्म का भागी होता है।"

तात्पर्य

भक्त तथा भगवान् के आपसी बर्ताव अत्यन्त सरल होते हैं। तरुण ब्राह्मण ने भगवान् से कहा, "आप हर बात को जानने वाले हैं किन्तु यदि आप साक्षी नहीं बनेंगे तो आप को पाप लगेगा।" किन्तु ऐसे पापकर्मों में भगवान् के फँसने की कोई सम्भावना नहीं है। यद्यपि शुद्ध भक्त भगवान् के विषय में सब कुछ जानता रहता है, किन्तु वह उनसे उसी तरह बातें कर सकता है जैसे किसी सामान्य मनुष्य से बातें की जाती हैं। यद्यपि भगवान् तथा उनके भक्त के आपसी बर्ताव अत्यन्त स्पष्ट तथा सरल होते हैं किन्तु औपचारिकता तो रहती ही है। ये सारी बातें इसीलिए होती हैं क्योंकि भगवान् तथा भक्त के बीच सम्बन्ध रहता है।

कृष्ण कहे,—विप्र तुमि य़ाह स्व-भवने।
सभा करि' मोरे तुमि करिह स्मरणे॥९१॥

अनुवाद

कृष्ण ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण! तुम अपने घर वापस जाओ और वहाँ सारे लोगों को बुलाकर एक सभा करो। उस सभा में तुम मेरा स्मरण करना।"

आविर्भाव हञा आबि ताहाँ साक्षी दिब।
तबे दुइ विप्रेर सत्य प्रतिज्ञा राखिब॥९२॥

अनुवाद

"मैं वहाँ निश्चित रूप से प्रगट होऊँगा और उस समय मैं वचन का साक्षी बन कर तुम दोनों की रक्षा करूँगा।"

विप्र बले,—"य़दि हओ चतुर्भुज-मूर्ति।
तबु तोमार वाक्य कारु ना हबे प्रतीति॥९३॥

अनुवाद

तरुण ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "महोदय! भले ही आप चतुर्भुज रूप में क्यों न प्रकट हों तब भी उन लोगों में से कोई भी आपके शब्दों पर विश्वास नहीं करेगा।"

एइ मूर्ति गिया ग्रदि एइ श्रीवदने।
साक्षी देह ग्रदि—तबे सर्वलोक शुने॥९४॥

अनुवाद

"किन्तु यदि आप इसी गोपाल-रूप में वहाँ चलें और अपने श्रीमुख से कहें तो आपकी साक्षी सुनी जायेगी।"

कृष्ण कहे,—"प्रतिमा चले, कोथाइ ना शुनि।"
विप्र बले,—"प्रतिमा हञा कह केने वाणी॥९५॥

अनुवाद

भगवान् कृष्ण ने कहा, "मैंने आज तक किसी विग्रह को एक स्थान से दूसरे स्थान तक चल कर जाते नहीं सुना।" ब्राह्मण ने कहा, "यह सत्य है, किन्तु यह कैसे सम्भव हो रहा है कि आप विग्रह होकर भी मुझसे बातें कर रहे हैं।"

प्रतिमा नह तुमि,—साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
विप्र लागि' कर तुमि अकार्य-करण॥"९६॥

अनुवाद

"हे प्रभु! आप मूर्ति नहीं हैं, आप तो साक्षात महाराज नन्द के पुत्र हैं। अब आप उस वृद्ध ब्राह्मण के लिए ऐसा कुछ कर सकते हैं जो आपने अभी तक नहीं किया है।"

हासिञा गोपाल कहे,—"शुनइ, ब्राह्मण।
तोमार पाछे पाछे आमि करिब गमन॥९७॥

अनुवाद

श्री गोपाल ने हँसते हुए कहा, "हे ब्राह्मण! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा और इस तरह तुम्हारे साथ हो लूँगा।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण तथा इस ब्राह्मण के बीच हुई वार्ता इसका प्रमाण है कि भगवान् की *अर्चा-मूर्ति* भौतिक नहीं है, क्योंकि जिन तत्त्वों से मूर्ति बनी है वे भगवान् के पृथक होकर भी भगवान् की शक्ति के अंश हैं, जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है। चूँकि सारे तत्त्व भगवान् की अन्तरंगा

शक्ति हैं और चूँकि शक्ति तथा शक्तिमान में कोई अन्तर नहीं होता, अतएव भगवान् किसी भी तत्त्व में से प्रकट हो सकते हैं। जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश में से प्रकट होकर सर्वत्र प्रकाश तथा उष्मा वितरित करता है उसी प्रकार कृष्ण अपनी अचिन्त्य शक्ति से किसी भी भौतिक तत्त्व से—चाहे वह पत्थर हो या काष्ठ अथवा सोना, अपने आदि रूप में प्रकट हो सकते हैं क्योंकि सारे भौतिक तत्त्व उनके शक्ति-रूप होते हैं। शास्त्र आगाह करते हैं—*अर्च्ये विष्णौ शिला-धीः*—मन्दिर में स्थापित अर्चाविग्रह अर्थात् *अर्चामूर्ति* को कभी पत्थर, काष्ठ या अन्य भौतिक तत्त्व नहीं मानना चाहिए। यह तरुण ब्राह्मण भक्ति में बढ़ा-चढ़ा होने के कारण जानता था कि यद्यपि गोपाल-विग्रह पत्थर लगता है किन्तु वास्तव में वह पत्थर है नहीं। वह तो नन्द महाराज का पुत्र, साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन हैं।

फलस्वरूप, अर्चाविग्रह कृष्ण के आदिरूप की ही तरह कार्य कर सकता है। भगवान् कृष्ण उस तरुण ब्राह्मण के ज्ञान की परीक्षा करने के निमित्त *अर्चाविग्रह* के विषय में बातें कर रहे थे। दूसरे शब्दों में, जिन लोगों ने कृष्ण-विज्ञान—कृष्ण के नाम, रूप, गुण आदि को समझ लिया है वे भी विग्रह से बातें कर सकते हैं। किन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए अर्चाविग्रह पत्थर, काष्ठ या किसी अन्य पदार्थ से बना प्रतीत होगा। इसका उच्चतर अर्थ यह हुआ कि सारे भौतिक तत्त्व अन्ततोगत्वा परमात्मा से उद्भूत होते हैं, अतएव वास्तव में कुछ भी भौतिक नहीं है। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ होने के कारण कृष्ण अपने भक्तों से बिना किसी कठिनाई के विचार-विनिमय कर सकते हैं। भगवत्कृपा से भक्त भगवान् के व्यवहार से भलीभाँति परिचित होता है। वह साक्षात् भगवान् से बातें कर सकता है।

उलटिया आमा तुमि ना करिह दरशने।
आमाके देखिले, आमि रहिब सेइ स्थाने॥९८॥

अनुवाद

भगवान् ने कहा, "तुम मुड़ कर मुझे देखने का प्रयत्न मत करना। अन्यथा तुम ज्योंहीं मेरी ओर देखोगे मैं उसी स्थान पर स्थिर हो जाऊँगा।

नूपुरेर ध्वनिमात्र आमार शुनिबा।
सेइ शब्दे आमार गमन प्रतीति करिबा॥९९॥

अनुवाद

"तुम मेरे पायल की ध्वनि से जानोगे कि मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा हूँ।

एकसेर अन्न रान्धि' करिह समर्पण।
ताहा खाञा तोमार सङ्गे करिब गमन॥१००॥

अनुवाद

"नित्य एक सेर चावल पकाकर मुझे अर्पित करना। मैं उसी चावल को खाकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा।"

आर दिन आज्ञा मागि' चलिला ब्राह्मण।
तार पाछे-पाछे गोपाल करिला गमन॥१०१॥

अनुवाद

अगले दिन ब्राह्मण ने गोपाल से आज्ञा माँगी और वह अपने देश के लिए चल पड़ा। गोपाल भी उसके पीछे हो लिये।

नूपुरेर ध्वनि शुनि' आनन्दित मन।
उत्तमान पाक करि' पराय भोजन॥१०२॥

अनुवाद

जब गोपाल उस तरुण ब्राह्मण के पीछे हो लिये तो उनके घुंघरुओं की रुनधुन सुनाई पड़ने लगी। वह ब्राह्मण अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसने अच्छी किस्म का चावल गोपाल के भोग के लिए पकाया।

एइमत चलि' विप्र निज-देशे आइला।
ग्रामेर निकट आसि' मनेते चिन्तिला॥१०३॥

अनुवाद

इस प्रकार यह तरुण ब्राह्मण चलता रहा, जब तक कि उसका अपना देश निकट नहीं आ गया। जब वह अपने गाँव के निकट पहुँचा तो इस प्रकार सोचने लगा।

एबे मुञि ग्रामे आइनु, ग्राइमु भवन।
लोकेरे कहिब गिया साक्षीर आगमन॥१०४॥

अनुवाद

"अब मैं अपने गाँव पहुँच चुका हूँ और अपने घर जाकर सभी लोगों को बतलाऊँगा कि साक्षी आ गया है।"

साक्षाते ना देखिले मने प्रतीति ना हय।
इहाँ य़दि रहेन, तबु नाहि किछु भय॥१०५॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने सोचा कि यदि गाँव वाले गोपाल-विग्रह का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं करेंगे तो उन्हें विश्वास नहीं होगा कि गोपाल आये थे।" उसने सोचा "यदि गोपाल यहीं पर ही हैं तो भी डर की कोई बात नहीं है।"

एत भाविऽसेइ विप्र फिरिया चाहिल।
हासिञा गोपाल-देव तथाय रहिल॥१०६॥

अनुवाद

यह सोच कर वह देखने के लिए पीछे मुड़ा और उसने देखा कि भगवान् गोपाल मुसकाते हुए वहाँ खड़े हो गये।

ब्राह्मणेर कहे,—"तुमि य़ाह निज-घर।
एथाय रहिब आमि, ना य़ाब अतः पर॥"१०७॥

अनुवाद

भगवान् ने ब्राह्मण से कहा, "अब तुम घर जा सकते हो। मैं यहीं रुकूँगा और कहीं नहीं जाऊँगा।"

तबे सेइ विप्र य़ाइ नगरे कहिल।
शुनिञा सकल लोक चमत्कार हैल॥१०८॥

अनुवाद

तब वह ब्राह्मण अपने गाँव गया और वहाँ जाकर सबों को गोपाल के आगमन की सूचना दी। यह सुन कर सारे लोग आश्चर्यचकित हो उठे।

आइल सकल लोक साक्षी देखिबारे।
गोपाल देखिञा लोक दण्डवत् करे॥१०९॥

अनुवाद

गाँव के सारे वासी साक्षी-गोपाल को देखने गये और जब उन्होंने सचमुच भगवान् को खड़े देखा तो सबों ने उन्हें नमस्कार किया।

गोपाल-सौन्दर्य देखि' लोके आनन्दित।
प्रतिमा चलिञा आइला,—शुनिञा विस्मित॥११०॥

अनुवाद

लोग गोपाल की सुन्दरता देख कर अत्यधिक प्रसन्न थे और जब उन लोगों ने यह सुना कि वे सचमुच चल कर आये हैं तो उन सबों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

तबे सेइ बड़विप्र आनन्दित हञा।
गोपालेर आगे पड़े दण्डवत् हञा॥१११॥

अनुवाद

तब वह वृद्ध ब्राह्मण भी परम आनन्दित होकर गोपाल के सम्मुख आया और तुरन्त ही दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सकल लोकेर आगे गोपाल साक्षी दिल।
बड़विप्र छोटविप्र कन्यादान कैल॥११२॥

अनुवाद

इस तरह गाँव-भर के निवासियों के समक्ष गोपाल इसके साक्षी बने कि उस वृद्ध ब्राह्मण ने तरुण ब्राह्मण को अपनी कन्या दान में दी थी।

तबे सेइ दुइ विप्रे कहिल ईश्वर।
"तुमि-दुइ—जन्मे-जन्मे आमार किङ्कर॥११३॥

अनुवाद

विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद भगवान् ने उन दोनों को बतलाया, "तुम दोनों ब्राह्मण जन्म-जन्मान्तर मेरे नित्य दास बने रहोगे।"

तात्पर्य

विद्यानगर के इन दो ब्राह्मणों की तरह ही ऐसे अनेक भक्त हैं जो भगवान् के नित्य दास होते है। वे *नित्यसिद्ध* कहलाते हैं। यद्यपि ये नित्यसिद्ध भौतिक जगत में प्रकट होते हैं और सामान्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं, किन्तु वे किसी भी परिस्थिति में भगवान् को भूलते नहीं। *नित्यसिद्ध* का यही लक्षण है।

जीव दो प्रकार के होते हैं—*नित्यसिद्ध* तथा *नित्यबद्ध*। नित्यसिद्ध भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को कभी नहीं भूलता, जबकि *नित्यबद्ध* सृष्टि के भी पूर्व से सदैव बद्ध रहता है। वह भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को सदा भूलता रहता है। यहाँ पर भगवान् उन दोनों ब्राह्मणों को बतलाते हैं कि जन्म-जन्मान्तर उनके नित्य-दास बने रहेंगे। जन्म-जन्मान्तर द्योतक है भौतिक जगत का, क्योंकि आध्यात्मिक जगत में जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं होते। भगवान् के आदेश से नित्यसिद्ध इस भौतिक जगत में सामान्य व्यक्ति की तरह रहता है, किन्तु उसका एकमात्र कार्य होता है भगवान् की महिमा का प्रचार करना। यह घटना दो सामान्य व्यक्तियों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध की कहानी प्रतीत होती है। किन्तु कृष्ण ने इन दोनों ब्राह्मणों को अपने नित्य-दास के रूप में स्वीकार किया। दोनों ब्राह्मणों ने इस समझौते के लिए अनेक कष्ट उठाये, जैसा कि संसारी व्यक्ति उठाते हैं, फिर भी वे भगवान् के नित्य-दासों की तरह कर्म कर रहे थे। इस भौतिक जगत में सारे नित्यसिद्ध भले ही सामान्य व्यक्तियों की तरह श्रम करते प्रतीत हों किन्तु वे यह कभी नहीं भूलते कि वे भगवान् के नित्य-दास हैं।

दूसरी बात। वृद्ध ब्राह्मण कुलीन था और विद्वान तथा सम्पन्न था। तरुण ब्राह्मण सामान्य परिवार का था और अशिक्षित था। किन्तु भगवान् की सेवा में लगे *नित्यसिद्ध* के लिए इसका कोई महत्व नहीं होता। हमें यह तथ्य मानना ही पड़ेगा कि नित्यसिद्ध सामान्य मनुष्यों से, जो नित्यबद्ध कहलाते हैं, सर्वथा भिन्न होते हैं। इस कथन की पुष्टि श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने की है—

गोरांग संगि-गणे, नित्यसिद्ध करि' माने
स याय व्रजेन्द्रसुत पाश।
श्रीगौड़-मण्डल-भूमि, येबा जाने चिन्तामणि
तार हय व्रजभूमे वास।

जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु के पार्षदों को नित्यसिद्ध मानता है वह निश्चित रूप से वैकुण्ठ-लोक जाकर भगवान् का संगी बनता है। हमें यह भी जानना चाहिए कि बंगाल के वे स्थान जहाँ-जहाँ चैतन्य महाप्रभु रुके—अर्थात् गौड़-मण्डल-भूमि—वे व्रजभूमि या वृन्दावन के तुल्य हैं। वृन्दावन तथा गौड़-मण्डल-भूमि अथवा श्रीधाम मायापुर के निवासियों में किसी तरह का अन्तर नहीं है।

दुँहार सत्ये तुष्ट हइलाङ्, दुँहे माग' बर।''
दुइविप्र वर मागे आनन्द-अन्तर॥११४॥

अनुवाद

भगवान् ने कहा, ''मैं तुम दोनों की सचाई से अतीव प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम वर माँग सकते हो।'' इस तरह दोनों ब्राह्मणों ने परम प्रसन्नतापूर्वक वर माँगा।

''य़दि वर दिबे, तबे रह एइ स्थाने।
किङ्करेरे दया तव सर्वलोके जाने॥''११५॥

अनुवाद

उन ब्राह्मणों ने कहा, ''कृपा करके आप यहीं रहे जिससे सारे संसार के लोग जान सकें कि आप अपने दासों पर कितने कृपालु हैं।''

गोपाल रहिला, दुँहे करेन सेवन।
देखिते आइला सब देशेर लोक-जन॥११६॥

अनुवाद

गोपाल वहीं रहने लगे और दोनों ब्राह्मण उनकी सेवा में लग गये। यह घटना सुन कर विभिन्न देशों से लोग गोपाल का दर्शन करने के लिए आने लगे।

से देशेर राजा आइल आश्चर्य शुनिञा।
परम सन्तोष पाइल गोपाले देखिञा॥११७॥

अनुवाद

जब उस देश के राजा ने यह आश्चर्यजनक कहानी सुनी तो वह भी गोपाल का दर्शन करने आया और परम सन्तुष्ट हुआ।

मन्दिर करिया राजा सेवा चालाइल।
'साक्षिगोपाल' बलि' ताँर नाम ख्याति हैल॥११८॥

अनुवाद

उस राजा ने एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया और नियमित सेवा चालू हो गई। गोपाल साक्षीगोपाल के नाम से अत्यन्त विख्यात हो गये।

एइ मत विद्यानगरे साक्षिगोपाल।
सेवा अङ्गीकार करि' आछेन चिरकाल॥११९॥

अनुवाद

इस प्रकार साक्षीगोपाल विद्यानगर में रहे और दीर्घकाल तक सेवा स्वीकार करते रहे।

तात्पर्य

विद्यानगर दक्षिण भारत में तैलङ्ग देश में गोदावरी नदी के तट पर स्थित है। जिस स्थान पर गोदावरी नदी बंगाल की खाड़ी में गिरती है वह कोटदेश कहलाता है। उड़ीसा साम्राज्य अत्यन्त शक्तिशाली था और यह कोटदेश उड़ीसा की राजधानी था। तब यह विद्यानगर कहलाता था। पहले यह नगर गोदावरी नदी के दक्षिणी तट पर बसा था। उस समय राजा पुरुषोत्तम उड़ीसा में राज्य करता था। वर्तमान विद्यानगर शहर नदी के दक्षिण पूर्व है और राजमहेन्द्री से केवल २०-२५ मील दूर है। महाराज प्रतापरुद्र के काल में वहाँ के गवर्नर श्री रामानन्दराय थे। विजयनगर तथा विद्यानगर एक नहीं हैं।

उत्कलेर राजा पुरुषोत्तमदेव नाम।
सेइ देश जिनि' निल करिया संग्राम॥१२०॥

अनुवाद

बाद में युद्ध हुआ जिसमें उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम ने इस देश को जीत लिया।

सेइ राजा जिनि' निल ताँर सिंहासन।
'माणिक्य-सिंहासन' नाम अनेक रतन॥१२१॥

अनुवाद

राजा ने विद्यानगर के राजा को हरा दिया और उसके 'माणिक्य सिंहासन'

को अपने कब्जे में कर लिया जिसमें अनेक रत्न जड़े हुए थे।

पुरुषोत्तम-देव सेइ बड़ भक्त आर्य।
गोपाल-चरणे मागे,—'चल मोर राज्य॥'१२२॥

अनुवाद

उस राजा का नाम पुरुषोत्तम देव था। वह परम भक्त था और आर्य सभ्यता में अग्रसर था। उसने गोपाल के चरणकमलों पर याचना की, "कृपा करके मेरे राज्य चलें।"

ताँर भक्तिवशे गोपाल ताँरे आज्ञा दिल।
गोपाल लइया सेइ कटक आइल॥१२३॥

अनुवाद

जब राजा ने गोपाल से अपने राज्य में चलने के लिए प्रार्थना की तो गोपाल ने उसकी भक्ति के वश में होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस तरह गोपाल-विग्रह को वह राजा अपने साथ लेकर कटक वापस चला गया।

जगन्नाथे आनि' दिल माणिक्य-सिंहासन।
कटक गोपाल-सेवा करिल स्थापन॥१२४॥

अनुवाद

माणिक्य सिंहासन को जीत कर राजा पुरुषोत्तम उसे जगन्नाथ पुरी ले आया और उसने उसे जगन्नाथ भगवान् को समर्पित कर दिया। इस बीच उसने कटक में गोपाल की नियमित पूजा भी स्थापित की।

ताँहार महिषी आइला गोपाल-दर्शने।
भक्ति करि' बहु अलङ्कार कैल समर्पण॥१२५॥

अनुवाद

जब गोपाल-विग्रह की स्थापना कटक में हो गई तो पुरुषोत्तम देव की रानी उनका दर्शन करने गईं और उन्होंने अत्यन्त भक्ति के साथ अनेक प्रकार के आभूषण भेंट किये।

ताँहार नासाते बहुमूल्य मुक्ता हय।
ताहा दिते इच्छा हैल, मनेते चिन्तय॥१२६॥

अनुवाद

रानी ने अपनी नाक में अति मूल्यवान मोती पहन रखा था जिसे वह गोपाल को भेंट करना चाह रही थी। तब उसने इस प्रकार सोचा।

ठाकुरेर नासाते यदि छिद्र थाकित।
तबे एइ दासी मुक्ता नासाय पराइत॥१२७॥

अनुवाद

"यदि विग्रह की नाक में छेद होता तो मैं अपना मोती उसे दे सकती थी।"

एत चिन्ति' नमस्करि' गेला स्वभवने।
रात्रिशेषे गोपाल ताँरे कहेन स्वपने॥१२८॥

अनुवाद

यह विचार करके रानी ने गोपाल को नमस्कार किया और अपने महल लौट आई। उस रात में उसने सपना देखा कि गोपाल प्रकट हुए हैं और उससे कह रहे हैं।

"'बाल्यकाले माता मोर नासा छिद्र करि'।
मुक्ता पराआछिल बहु यत्न करि'॥१२९॥

अनुवाद

"बचपन में मेरी माता ने मेरी नाक में छेद करके उसमें बड़े यत्न से एक मोती पहनाया था।

सेइ छिद्र अद्यापि' याछये नासाते।
सेइ मुक्ता पराह, याहा चाहियाछ दिते॥"१३०॥

अनुवाद

"वह छेद अब भी है। चाहो तो तुम इस छेद का इस्तेमाल उस मोती को पहनाने के लिए कर सकती हो जिसे तुम मुझे देना चाहती थी।"

स्वप्ने देखि' सेइ रानी राजाके कहिल।
राजासह मुक्ता लञा मन्दिरे आइल॥१३१॥

अनुवाद

यह सपना देखने के बाद रानी ने अपने पति से इसकी चर्चा की। तब राजा तथा रानी दोनों ही वह मोती लेकर मन्दिर में गये।

पराइल मुक्ता नासाय छिद्र देखिञा।
महामहोत्सव कैल आनन्दित हञा॥१३२॥

अनुवाद

विग्रह की नाक में छेद देख कर उन्होंने वह मोती पहना दिया और अत्यधिक प्रसन्न होकर उन्होंने विशाल उत्सव का आयोजन किया।

सेइ हैते गोपालेर कटकेते स्थिति।
एइ लागि 'साक्षिगोपाल' नाम हैल ख्याति॥१३३॥

अनुवाद

तभी से गोपाल कटकनगर में स्थित हैं और तभी से वे साक्षीगोपाल नाम से विख्यात हैं।

नित्यानन्द मुखे शुनि' गोपाल चरित।
तुष्ट हैला महाप्रभु स्वभक्त—सहित॥१३४॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोपाल के कार्यकलापों को सुना। इससे वे तथा उनके भक्त अत्यन्त संतुष्ट हुए।

गोपालेर आगे य़बे प्रभुर हय स्थिति।
भक्तगणे देखे—य़ेन दुँहे एकमूर्ति॥१३५॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गोपाल-विग्रह के समक्ष बैठे हुए थे तो सारे भक्तों ने उन्हें तथा विग्रह को एकरूप देखा।

दुँहे—एक वर्ण, दुँहे—प्रकाण्ड-शरीर।
दुँहे—रक्ताम्बर, दुँहार स्वभाव—गम्भीर॥१३६॥

अनुवाद

दोनों एक ही रंग के तथा एक जैसे विराट शरीर वाले थे। दोनों ने केसरिया वस्त्र पहन रखा था और दोनों ही गम्भीर थे।

महातेजोमय　दुँहे　कमल-नयन।
दुँहार　भावावेश,　दुँहे—चन्द्रवदन॥१३७॥

अनुवाद

भक्तों ने देखा कि चैतन्य महाप्रभु तथा गोपाल दोनों ही दीप्तिमान तेज से युक्त थे और दोनों के नेत्र कमल जैसे थे। दोनों ही भाव में मग्न थे और उनके मुखमण्डल पूर्णचन्द्रमा सदृश थे।

दुँहा　देखि' नित्यानन्दप्रभु　महारङ्गे।
ठाराठारि　करि' हासे　भक्तगण-सङ्गे॥१३८॥

अनुवाद

जब श्री नित्यानन्द ने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा गोपाल-विग्रह दोनों को इस तरह देखा तो वे उन भक्तों से तानाकशी करने लगे जो मुसकरा रहे थे।

एइमत　महारङ्गे　से　रात्रि　वञ्चिया।
प्रभाते　चलिला　मङ्गल-आरति　देखिञा॥१३९॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने मन्दिर में वह रात बड़े ही आनन्द से बिताई। प्रात:कालीन मंगल आरती देखने के बाद वे अपनी यात्रा पर रवाना हो गये।

भुवनेश्वर-पथे　यैछे　कैल　दरशन।
विस्तारिऽवर्णियाछेन　दास-वृन्दावन॥१४०॥

अनुवाद

श्रील वृन्दावन दास ठाकुर ने (अपनी पुस्तक चैतन्य भागवत में) श्रील चैतन्य महाप्रभु द्वारा भुवनेश्वर जाते समय देखे गये स्थानों का विस्तार से वर्णन किया है।

तात्पर्य

श्रील वृन्दावनदास ठाकुर ने अपने ग्रंथ *चैतन्य-भागवत* के अन्त्य खण्ड में श्रील चैतन्य महाप्रभु की कटक यात्रा का बहुत ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। उस यात्रा में महाप्रभु बालिहस्ता या बालकाटीचटि नामक स्थान गये। तब वे भुवनेश्वर गये जहाँ शिवमन्दिर स्थापित है। भुवनेश्वर का मन्दिर बालकाटीचटि से लगभग पाँच-छः मील दूर पर है। *स्कन्द पुराण* में शिवमन्दिर का उल्लेख भगवान् के उपवन एवं एक आमवृक्ष विषयक कथा में हुआ है। काशिराज नामक एक राजा भगवान् कृष्ण से युद्ध करना चाह रहा था, अतएव उनसे लड़ने की शक्ति प्राप्त करने के लिए उसने भगवान् शिव की शरण ली। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर शिवजी ने कृष्ण से युद्ध करने में उसकी सहायता की। शिव का नाम आशुतोष है, जिसका अर्थ है कि जब कोई उनकी पूजा करता है तो वे बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं और भक्त जो भी वर माँगता है, वे उसे देते हैं। अतएव लोग शिव की पूजा करने के अतीव इच्छुक रहते हैं। अतएव शिवजी ने काशिराज की सहायता की, किन्तु युद्ध में न केवल वह पराजित हुआ अपितु मारा भी गया। इस तरह पाशुपत अस्त्र व्यर्थ हुआ और कृष्ण ने काशी नगरी में आग लगा दी। बाद में शिवजी को अपनी गलती महसूस हुई कि उन्होंने काशिराज की सहायता क्यों की, अतएव उन्होंने कृष्ण से क्षमा माँगी। उन्हें वरदान स्वरूप कृष्ण से एकाम्रकानन नामक स्थान प्राप्त हुआ। बाद में केशरी वंश के राजाओं ने यहाँ अपनी राजधानी स्थापित की और कई सौ वर्षों तक वे उड़ीसा राज्य में शासन चलाते रहे।

कमलपुरे आसि भार्गीनदी-स्नान कैल।
नित्यानन्द-हाते प्रभु दण्ड धरिल॥१४१॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कमलपुरा पहुँचे तो उन्होंने भार्गीनदी में स्नान किया। स्नानार्थ जाते समय वे अपना संन्यासी का डंडा नित्यानन्द प्रभु को देते गये।

तात्पर्य

चैतन्य-भागवत में (अन्त्य खण्ड, अध्याय २) यह कहा गया है कि श्री भुवनेश्वर पहुँच कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने गुप्तकाशी नामक शिव-मन्दिर का

दर्शन किया। शिवजी ने समस्त तीर्थों का जल लाकर तथा यहाँ बिन्दु सरोवर उत्पन्न करके इस तीर्थस्थान की स्थापना की। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिव के प्रति सम्मान होने के कारण इस सरोवर में स्नान किया। लोग अब भी आध्यात्मिक दृष्टि से इस सरोवर में स्नान करते हैं। वास्तव में यहाँ पर स्नान करने से भौतिक दृष्टि से भी मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। इस सरोवर में स्नान करने और इसका जल पीने से पेट के रोग दूर हो जाते हैं। नियमित स्नान से कुपच अवश्वमेव अच्छा हो जाता है। भार्गीनदी को डण्डभांगा नदी भी कहते हैं। यह जगन्नाथ पुरी से ६ मील उत्तर स्थित है। नामों में परिवर्तन का कारण अगले श्लोकों में मिलेगा।

कपोतेश्वर देखिते गेला भक्तगण सङ्गे।
एथा नित्यानन्द-प्रभु कैल दण्ड-भङ्गे।।१४२।।
तिन खण्ड करि' दण्ड दिल भासाञा।
भक्त-सङ्गे आइला प्रभु महेश देखिञा।।१४३।।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कपोतेश्वर नामक शिव-मन्दिर में गये तो नित्यानन्द प्रभु ने अपने पास रखे उनके उस डंडे के तीन खण्ड करके भार्गीनदी में फेंक दिया। इसीलिए बाद में यह नदी डण्ड-भांगा-नदी कहलाने लगी।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु के *संन्यास*-दण्ड का रहस्य बतलाया है। महाप्रभु ने एक मायावादी संन्यासी से संन्यास लिया था। सामान्यतया मायावादी संन्यासी एक *दण्ड* धारण करते हैं। श्री चैतन्य की अनुपस्थिति में श्री नित्यानन्द प्रभु ने उस दण्ड को तीन खण्डों में तोड़ डाला और डण्ड-भाँगा-नदी में फेंक दिया। संन्यास आश्रम में चार विभाग होते हैं—*कुटीचक, बहूदक, हंस* तथा *परमहंस*। संन्यासी केवल कुटीचक तथा बहूदक अवस्थाओं में ही दण्ड धारण कर सकता है। किन्तु जब वह भ्रमण करते तथा भक्ति का प्रचार करते हुए *हंस* या *परमहंस* अवस्था को प्राप्त हो लेता है तो उसे संन्यास-दण्ड का परित्याग कर देना चाहिए।

श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। इसीलिए कहा गया

है—*श्रीकृष्णचैतन्य, राधा-कृष्ण नहे अन्य*—श्रीमती राधारानी तथा श्रीकृष्ण—ये दो व्यक्ति मिल कर श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार हैं। इसीलिए श्री चैतन्य को असामान्य पुरुष मानते हुए नित्यानन्द ने उनकी *परमहंस* अवस्था की प्रतीक्षा करना ठीक नहीं समझा। उन्होंने तर्क किया कि भगवान् स्वयमेव परमहंस अवस्था को प्राप्त हैं, अतएव उन्हें *संन्यास-दण्ड* धारण करने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए उन्होंने उस दण्ड के तीन खण्ड करके उसे नदी में फेंक दिया।

जगन्नाथेर देउल देखि' आविष्ट हैला।
दण्डवत् करि प्रेमे नाचिते लागिल॥१४४॥

अनुवाद

दूर से ही जगन्नाथ के मन्दिर को देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त भावाविष्ट हो गये। मन्दिर को नमस्कार करने के बाद वे प्रेमवश नाचने लगे।

तात्पर्य

देउल शब्द भगवान् के मन्दिर का सूचक है। जगन्नाथ पुरी का वर्तमान मन्दिर राजा अनंगभीम ने बनवाया था। इतिहासकारों का कहना है कि यह कम-से-कम २००० वर्ष पूर्व बना होगा। श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में आदि मन्दिर के चारों ओर की इमारतें नहीं बनी थीं। न ही तब मन्दिर के सामने का चबूतरा ही बना था।

भक्तगण आविष्ट हञा, सबे नाचे गाय।
प्रेमावेशे प्रभु-सङ्गे राजमार्गे य़ाय॥१४५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ साथ सारे भक्त भी भावाविष्ट हो गये और इस तरह भगवत्प्रेम में लीन होकर वे मुख्य मार्ग पर जाते हुए नाचने तथा गाने लगे।

हासे, कान्दे, नाचे प्रभु हुङ्कार गर्जन।
तिनक्रोश पथ हैल—सहस्र य़ोजन॥१४६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु हँसते, चिल्लाते, नाचते तथा भाव में आकर हुँकार कर रहे थे। यद्यपि मन्दिर छह मील दूरी पर था, किन्तु उन्हें यह दूरी हजारों मील लगी।

तात्पर्य

जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में होते तो उन्हें एक एक क्षण १२ वर्ष के समान लगता। दूर से ही जगन्नाथ मन्दिर देख कर वे इतने भावाविष्ट हो गये कि छह मील का मार्ग उन्हें हजारों मील लम्बा लगा।

चलिते चलिते प्रभु आइला 'आठारनाला'।
ताहाँ आसि' प्रभु किछु बाह्य प्रकाशिला॥१४७॥

अनुवाद

इस तरह चलते-चलते महाप्रभु आठारनाला नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु से बातें करते हुए अपनी बाह्य चेतना व्यक्त की।

तात्पर्य

जगन्नाथ पुरी के प्रवेश-द्वार पर आठारनाला नामक एक पुल है जिसमें अठारह महराबें हैं। *आठार* का अर्थ है अठारह।

नित्यानन्द कहे प्रभु,—देह मोर दण्ड।
नित्यानन्द बले,—दण्ड हैल तीन खण्ड॥१४८॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु को बाह्य चेतना आई तो उन्होंने श्री नित्यानन्द प्रभु से कहा, "मेरा डंडा वापस करो।" तब नित्यानन्द ने उत्तर दिया, "उसके तो तीन खण्ड हो गये हैं।"

प्रेमावेशे पड़िला तुमि, तोमारे धरिनु।
तोमा-सह सेइ दण्ड-उपरे पड़िनु॥१४९॥

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "जब आप भावावेश में गिरे तो मैंने आपको

पकड़ा लेकिन हम दोनों ही उस डंडे पर गिर पड़े।

दुइजनार भरे दण्ड खण्ड हैल।
सेइ खण्ड काँहा पड़िल, किछु ना जानिल॥१५०॥

अनुवाद

"वह डण्डा हम लोगों के भार से टूट गया। यह मैं बता नहीं सकता कि उसके खण्ड कहाँ गये।"

मोर अपराधे तोमार दण्ड हइल खण्ड।
ये उचित हय, मोर कर तार दण्ड॥१५१॥

अनुवाद

"आपका डंडा तो मेरे अपराध के कारण टूटा है। अब आप जो उचित समझें, मुझे उसका दण्ड दें।"

शुनि' किछु महाप्रभु दुःख प्रकाशिला।
ईषत् क्रोध करि' किछु कहिते लागिला॥१५२॥

अनुवाद

जिस तरह से उनका डण्डा टूटा था उसकी कहानी सुन कर महाप्रभु ने थोड़ा दुख प्रकट किया और कुछ क्रोध में आकर वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्रील नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण किये जाने को व्यर्थ समझे थे। इसीलिए उन्होंने महाप्रभु के द्वारा दण्ड धारण करने की बला समाप्त कर दी। श्री चैतन्य महाप्रभु इसीलिए क्रुद्ध हुए क्योंकि वे अन्य संन्यासियों को शिक्षा देना चाहते थे कि परमहंस पद प्राप्त किये बिना दण्ड का परित्याग नहीं करना चाहिए। महाप्रभु ने यह देख कर कि ऐसे कार्य से विधानों में ढील आ सकती है, स्वयं दण्ड धारण किये रहना चाह रहे थे। किन्तु नित्यानन्द प्रभु ने उसे तोड़ डाला। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु कुछ क्रुद्ध हुए। *भगवद्गीता* में कहा गया है—*यद् यद् आचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवतरो जनः*—जो कुछ बड़े लोग करते हैं उसी का अनुकरण अन्य लोग करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु अनुभवहीन नवदीक्षितों की रक्षा करने के उद्देश्य से

जो परमहंस बनने का प्रयत्न करते हैं, वैदिक नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाह रहे थे।

नीलाचले आनि' मोर सबे हित कैला।
सबे दण्डधन छिल, ताहा ना राखिला॥१५३॥

अनुवाद

उन्होंने कहा, "तुम लोगों ने मुझे नीलाचल लाकर मुझ पर उपकार किया है। किन्तु वह दण्ड मेरा एकमात्र धन था जिसे तुम लोग नहीं रख पाये।"

तुमि-सब आगे य़ाह ईश्वर देखिते।
किबा आमि आगे य़ाइ, ना य़ाब सहिते॥१५४॥

अनुवाद

अतएव तुम सारे लोग या तो मुझसे पहले या मेरे बाद भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने जाओ। मैं तुम लोगों के साथ नहीं जाऊँगा।"

मुकुन्द दत्त कहे,—प्रभु, तुमि य़ाह आगे।
आमि-सब पाछे य़ाब, ना य़ाब तोमार सङ्गे॥१५५॥

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "हे प्रभु! आप आगे-आगे चलें और अन्यों को पीछे-पीछे चलने की अनुमति दें। हम आपके साथ-साथ नहीं जायेंगे।"

एत शुनि' प्रभु आगे चलिला शीघ्रगति।
बुझिते ना पारे, केह दुइ प्रभुर मति॥१५६॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु सभी भक्तों के आगे-आगे शीघ्रता से चलने लगे। कोई भी दोनों प्रभुओं—चैतन्य तथा नित्यानन्द—के असली उद्देश्य को नहीं समझ सका।

इँहो केने दण्ड भाङ्गे, तेँहो केने भाङ्गाय।
भाङ्गाञा क्रोधे तेँहो इँहाके दोषाय॥१५७॥

अनुवाद

भक्तगण यह नहीं समझ पाये कि नित्यानन्द प्रभु ने दण्ड क्यों तोड़ा, महाप्रभु ने उन्हें ऐसा क्यों करने दिया और अनुमति देने के बाद अब महाप्रभु नाराज क्यों हो गये।

दण्डभङ्ग-लीला एइ—परम गम्भीर।
सेइ बुझे, दुँहार पदे य़ाँर भक्ति धीर॥१५८॥

अनुवाद

दण्डभंग (डण्डा टूटने) की लीला अत्यन्त गम्भीर है। इसे वही समझ सकता है जिसकी दोनों प्रभुओं के चरणकमलों पर दृढ़ भक्ति होती है।

तात्पर्य

जो व्यक्ति श्री चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द प्रभु को वास्तव में समझता है, वही उनके स्वरूप तथा दण्डभंग को समझ सकता है। सारे पूर्ववर्ती आचार्यों ने भगवान् की सेवा में निरत होने के लिए प्रेरित होकर भौतिक जीवन की आसक्ति त्याग कर दण्ड धारण किया जो मनसावाचाकर्मणा भगवान् की सेवा में व्यस्तता का सूचक है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यास आश्रम के विधानों को स्वीकार किया था। यह स्पष्ट है। किन्तु *परमहंस* अवस्था में दण्ड धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस दृष्टि से महाप्रभु निश्चित रूप से परमहंस थे। किन्तु यह दिखलाने के लिए कि हर एक को जीवन के अन्तिम काल में भगवान् की सेवा में निरत होने के लिए संन्यास ग्रहण करना चाहिए श्री चैतन्य तथा उनके पार्षद जैसे परमहंस भी विधानों का पालन करते हैं। यही उनका लक्ष्य था। महाप्रभु के नित्य सेवक नित्यानन्द प्रभु का विश्वास था कि श्री चैतन्य को दण्ड धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है, इसीलिए संसार को यह बताने के लिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु समस्त विधानों के ऊपर हैं उन्होंने दण्ड के तीन खण्ड कर डाले। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने दण्ड-भंग-लीला का ऐसा वर्णन किया है।

ब्रह्मन्यदेव-गोपालेर महिमा एइ धन्य।
नित्यानन्द—वक्ता य़ार, श्रोता—श्रीचैतन्य॥१५९॥

अनुवाद

ब्राह्मणों पर कृपालु रहने वाले गोपाल की महिमा महान है। साक्षीगोपाल की यह कथा नित्यानन्द प्रभु द्वारा सुनाई गई और इसके श्रोता थे श्री चैतन्य महाप्रभु।

तात्पर्य

साक्षीगोपाल की कथा में चार शिक्षाओं पर विचार करना होगा। प्रथम—श्री गोपाल का अर्चाविग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप है। दूसरी—अर्चाविग्रह भौतिक विधि-विधानों से परे है। तीसरी—ब्राह्मण होने पर दिव्य पद मिल सकता है, किन्तु ब्राह्मण बन कर विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करना होता है। चौथी शिक्षा—ब्रह्मण्य देवता साक्षात् श्रीकृष्ण का सूचक है, जिसकी पूजा इस प्रकार की जाती है—*नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च / जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः*। इससे सूचित होता है कि जो कृष्ण के संरक्षण में रहता है, वह स्वतः ब्राह्मण-पद पर स्थित होता है और ऐसा ब्राह्मण कभी मोहग्रस्त नहीं होता। यह तथ्य है।

श्रद्धायुक्त हञा इहा शुने ग्रेइ जन
अचिरे मिलये तारे गोपाल-चरण॥१६०॥

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक गोपाल के इस आख्यान को सुनता है, उसे शीघ्र ही गोपाल के चरणकमल प्राप्त होते हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥१६१॥

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों की प्रार्थना करते हुए तथा उनकी कृपा की सदैव कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणकमलों का अनुसरण करते हुए चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के पंचम अध्याय का, जिसमें साक्षीगोपाल के कार्यकलापों का वर्णन है, भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय ६

सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में इस छठे अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है—"जब श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मन्दिर में प्रविष्ट हुए तो वे तुरन्त मूर्छित हो गये। तब सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें अपने घर ले गये। इस बीच सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त से मिले और उनसे श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संन्यास ग्रहण करने तथा जगन्नाथ पुरी की यात्रा करने की चर्चा की। महाप्रभु के मूर्छित होने तथा सार्वभौम भट्टाचार्य के घर ले जाये जाने का समाचार सुन कर लोग महाप्रभु का दर्शन करने के लिए भीड़ लगाने लगे। इसके बाद नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य भक्त जगन्नाथ मन्दिर गये और वे लोग जब सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे तो महाप्रभु को बाह्य चेतना लौट आई थी। सार्वभौम भट्टाचार्य ने हर एक का स्वागत किया और सतर्कतापूर्वक महाप्रसाद का वितरण किया। फिर वे महाप्रभु से परिचित हुए और उनके रहने का प्रबन्ध अपनी चाची के यहाँ कर दिया। उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य ने यह सिद्ध किया कि महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं किन्तु सार्वभौम तथा उनके अनेक शिष्यों ने इसे नहीं माना। फिर भी गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम को विश्वास दिलाया कि भगवान् की कृपा हुए बिना उन्हें कोई नहीं समझ सकता। उन्होंने शास्त्रों के उद्धरण देकर सिद्ध किया कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं। इतने पर भी सार्वभौम ने उनके कथन को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। ये सारे तर्क सुन कर चैतन्य महाप्रभु ने अपने भक्तों से कहा कि सार्वभौम मेरे गुरु हैं और वे स्नेहवश जो कुछ भी कह रहे हैं वह सबके लाभ का है।

जब सार्वभौम श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले तो उन्होंने कहा कि वे वेदान्त दर्शन सुनाना चाहते हैं। श्री चैतन्य ने यह प्रस्ताव मान लिया और सार्वभौम

उन्हें लगातार सात दिनों तक वेदान्त दर्शन की व्याख्या सुनाते रहे, किन्तु वे मौन बने रहे। उनको मौन देख कर सार्वभौम ने पूछा कि मेरी व्याख्या आपकी समझ में आ तो रही है? इस पर महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं वेदान्त-दर्शन को तो समझ सकता हूँ, लेकिन आपकी व्याख्याएँ नहीं समझ पा रहा। इस पर भट्टाचार्य तथा महाप्रभु के बीच उपनिषदों और वेदान्त सूत्र के प्रमाणों को लेकर शास्त्रार्थ हुआ। भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने सिद्ध किया कि निर्विशेष परम सत्य के विषय में मायावादी दार्शनिकों की जो धारणाएँ हैं, वे गलत हैं। परम सत्य न तो निर्विशेष है न शक्ति से रहित। मायावादी दार्शनिकों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे परम सत्य को निर्विशेष तथा शक्तिविहीन मानते हैं। समस्त वेदों में परम सत्य की असीम शक्तियों को स्वीकार किया गया है। यह भी स्वीकार किया गया है कि परम सत्य सच्चिदानन्द स्वरूप है। वेदों के अनुसार भगवान् तथा जीव दोनों ही गुणों में समान हैं लेकिन इन गुणों की मात्रा भिन्न-भिन्न है। परम सत्य का असली दर्शन बतलाता है कि भगवान् तथा उनकी सृष्टि में अचिन्त्य-भेदाभेद है। निष्कर्ष यह है कि मायावादी दार्शनिक वास्तव में नास्तिक हैं। इस विषय को लेकर दोनों में काफी बहस चली, किन्तु अन्त में भट्टाचार्य हार गये।

तब सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य ने *श्रीमद्भागवत* के *आत्माराम* श्लोक की १८ प्रकार से व्याख्या की। जब भट्टाचार्य को आत्म-ज्ञान हुआ तो महाप्रभु ने अपनी असली पहचान खोल दी। इस पर भट्टाचार्य ने महाप्रभु की प्रशंसा में १०० श्लोक सुनाये और उन्हें नमस्कार किया। गोपीनाथ आचार्य तथा अन्य लोग महाप्रभु की अद्भुत शक्ति देख कर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए।

इस घटना के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को एक दिन प्रात:काल जगन्नाथजी से प्रसाद आया जिसे उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को दे दिया। सार्वभौम ने यह *महाप्रसाद* बिना किसी औपचारिकता के ग्रहण कर लिया। अगले दिन जब सार्वभौम ने श्री चैतन्य से पूजा तथा ध्यान करने की सर्वोत्तम विधि पूछी तो महाप्रभु ने उन्हें हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने की सलाह दी। एक अन्य दिन सार्वभौम ने *तत्तेऽनुकम्पाम्* श्लोक के पाठ को इसलिए बदलना चाहा क्योंकि उन्हें इसका *मुक्तिपद* शब्द पसन्द न था। उसके स्थान पर वे *भक्तिपद* करना चाह रहे थे। किन्तु महाप्रभु ने मना किया कि *श्रीमद्भागवत*

के इस पाठ को न बदला जाय, क्योंकि *मुक्तिपद* भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का द्योतक है। शुद्ध भक्त बन जाने के बाद सार्वभौम ने कहा "चूँकि अर्थ अस्पष्ट है, अतएव अब भी मुझे भक्तिपद पसन्द है।" इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु तथा जगन्नाथ पुरी के अन्य निवासी अत्यधिक प्रसन्न हुए। इस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य शुद्ध वैष्णव बन गये और वहाँ के अन्य विद्वानों ने भी उनका अनुसरण किया।

नौमि तं गौरचन्द्रं यः कुतर्क-कर्कशाशयम्।
सार्वभौमं सर्वभूमा भक्तिभूमानमाचरत्॥१॥

अनुवाद

मैं भगवान् गौरचन्द्र को सादर नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने सारे कुतर्कों के आगार, कठोर-हृदय सार्वभौम भट्टाचार्य को महान भक्त में बदल दिया।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत आचार्य की जय हो। श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

आवेश चलिला प्रभु जगन्नाथ मन्दिरे।
जगन्नाथ देखिऽप्रेमे हइला अस्थिरे॥३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु भावावेश में आठारनाला से जगन्नाथ मन्दिर गये। वहाँ जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करके वे भगवत्प्रेमवश अत्यन्त बेचैन हो उठे।

जगन्नाथ आलिङ्गिते चलिला धाञा।
मन्दिरे पड़िला प्रेमे आविष्ट हञा॥४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तेजी से जगन्नाथजी का आलिंगन करने गये किन्तु

जब वे मन्दिर में घुसे तो भगवत्प्रेम में इतने विभोर हो गये कि फर्श पर मूर्छित होकर गिर पड़े।

दैवे सार्वभौम ताँहाके करे दरशन।
पड़िछा मारिते तेंहो कैल निवारण॥५॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु गिर पड़े तो दैववश सार्वभौम भट्टाचार्य ने देख लिया। जब सन्तरी ने महाप्रभु को पीटने के लिए धमकी दी तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने तुरन्त उसे मना कर दिया।

प्रभुर सौन्दर्य आर प्रेमेर विकार।
देखि' सार्वभौम हैला विस्मित अपार॥६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर की सुन्दरता तथा भगवत्प्रेम के कारण उनके शरीर में उत्पन्न दिव्य परिवर्तनों को देख कर सार्वभौम भट्टाचार्य को अत्यधिक आश्चर्य हुआ।

बहुक्षणे चैतन्य नहे भोगेर काल हैल।
सार्वभौम मने तबे उपाय चिन्तिल॥७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु काफी समय तक बेहोश रहे। तभी जगन्नाथजी पर प्रसाद चढ़ने का समय हो गया और भट्टाचार्य कुछ उपाय सोचने लगे।

शिष्य पड़िछा-द्वारा प्रभु निल वहाञा।
घरे आनि' पवित्र स्थाने राखिल शोयाञा॥८॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य सन्तरी तथा कुछ शिष्यों की सहायता से श्री चैतन्य महाप्रभु को अचेत अवस्था में ही अपने घर ले आये और उन्हें एक अत्यन्त पवित्र स्थान में लिटा दिया।

तात्पर्य

उस समय सार्वभौम भट्टाचार्य जगन्नाथ-मन्दिर की दक्षिणी दिशा में रहते थे।

उनका घर समुद्र-तट पर था जो मार्कण्डेय सरस्तट कहलाता था। सम्प्रति गंगामाता के मठ के रूप में इसका प्रयोग हो रहा है।

श्वास-प्रश्वास नाहि उदर-स्पन्दन।
देखिया चिन्तित हैल भट्टाचार्येर मन॥९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर की परीक्षा करने पर सार्वभौम ने देखा कि न तो उनका उदर गति कर रहा है न ही वे श्वास ले रहे हैं। उनकी यह दशा देख कर भट्टाचार्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे।

सूक्ष्म तुला आनि' नासा-अग्रेते धरिल।
ईषत् चलये तुला देखिऽधैर्य हैल॥१०॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने रुई का फाहा लिया और उसे महाप्रभु के नथनों के सामने रखा। जब उन्होंने देखा कि रुई कुछ-कुछ हिल रही है तो उन्हें कुछ आशा बँधी।

वसि' भट्टाचार्य मने करेन विचार।
एइ कृष्ण-महाप्रेमेर सात्त्विक विकार॥११॥

अनुवाद

श्री चैतन्य की बगल में बैठ कर उन्होंने सोचा, "यह दिव्य भाव-परिवर्तन (सात्त्विक भाव) कृष्ण-प्रेम के कारण हुआ है।"

'सद्दीप्त सात्त्विक' एइ नाम ये 'प्रलय'।
नित्यसिद्ध भक्ते से 'सूद्दीप्त भाव' हय॥१२॥

अनुवाद

सूद्दीप्त सात्विक के लक्षण देख कर सार्वभौम भट्टाचार्य को समझते देर न लगी कि महाप्रभु के शरीर में दिव्य भावावेश (सूद्दीप्त भाव) हुआ है। ऐसा लक्षण केवल नित्यसिद्ध भक्तों के शरीरों में ही दिखा करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने *सूद्दीप्त सात्विक* की विवेचना इस प्रकार की है "भक्तिरसामृत सिन्धु में उच्च भक्तों के शरीरों में आठ प्रकार के दिव्य विकारों का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी भक्तगण इन्हें रोक लेते हैं तो ऐसे रोकने की दो अवस्थाएँ होती हैं—*धूमायिता* तथा *ज्वलिता*। *धूमायिता* अवस्था वह है जिसमें एक या दो विकारों के होने पर उन्हें रोका (छिपाया) जा सकता है। जब दो या तीन विकार उपस्थित हों तो भी उन्हें छिपा सकना सम्भव है, किन्तु कठिनाई होती है। इसे *ज्वलिता* अवस्था कहा जाता है। जब चार या पाँच विकार एकसाथ उपस्थित हों तो उसे *दीप्त* अवस्था कहते हैं। पाँच, छः या आठों विकारों के एकसाथ उपस्थित होने पर *उद्दीप्त* अवस्था प्राप्त होती है। जब आठों विकार एकसाथ सैकडों गुना बढ़ कर दिखलाई पड़ें तो भक्त *सूद्दीप्त* अवस्था में होता है। *नित्यसिद्ध भक्त* सूचक है भगवान् के शाश्वत मुक्त पार्षदों का। ऐसे भक्त भगवान् की संगति का आनन्द चार सम्बन्धों में—दास, सखा, माता-पिता तथा प्रेमी के रूप में लूटते हैं।

'अधिरुढ़ भाव' य़ाँर, ताँर ए विकार।
मनुष्येर देहे देखि,—बड़ चमत्कार॥१३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने विचार किया, "श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में अधिरूढ़ भाव के असामान्य दिव्य लक्षण प्रकट हो रहे हैं। यह बड़ा आश्चर्यजनक है! भला मनुष्य के शरीर में ये किस तरह सम्भव है?"

तात्पर्य

श्रील रूप गोस्वामी ने *उज्ज्वल नीलमणि* में *अधिरूढ़ भाव* या अभिरूढ महाभाव की व्याख्या दी है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती रूप गोस्वामी का ही उद्धरण देते हैं, "आश्रय (भक्त) की प्रेमानुभूति विषय (भगवान्) के प्रति इतनी भावपूर्ण हो उठती है कि प्रेमिका का साहचर्य भोगने के बाद भी उसे यह आनन्द अपर्याप्त लगता है। ऐसी अवस्था में प्रेमी प्रेमिका को विभिन्न तरीकों से देखता है। जब *अनुराग* पराकाष्ठा को प्राप्त करके शरीर में दृष्टिगोचर होने लगता है तो यह *भाव* कहलाता है। जब शारीरिक लक्षण इतने स्पष्ट नहीं रहते तब भी यह भावदशा अनुराग ही कहलाती है, *भाव* नहीं। भावदशा

ही बढ़ कर महाभाव बनती है। महाभाव के लक्षण गोपियों जैसी नित्य संगिनियों के शरीरों में ही दृष्टिगोचर होते हैं।"

एत चिन्ति' भट्टाचार्य आछेन वसिया।
नित्यानन्दादि सिंहद्वारे मिलिल आसिया॥१४॥

अनुवाद

जब भट्टाचार्य अपने घर में इस प्रकार सोच रहे थे तो नित्यानन्द प्रभु समेत चैतन्य के सारे भक्त मन्दिर के सिंह-द्वार (प्रवेश-द्वार) के निकट पहुँचे।

ताँहा शुने लोके कहे अन्योन्ये बात्।
एक संन्यासी आसि' देखि' जगन्नाथ॥१५॥

अनुवाद

वहाँ पर इन भक्तों ने लोगों को एक संन्यासी के बारे में बातें करते सुना जो जगन्नाथ पुरी आया था और जिसने जगन्नाथ स्वामी के दर्शन किये थे।

मूर्छित हैल, चेतन ना हय शरीरे।
सार्वभौम लञा गेला आपनार घरे॥१६॥

अनुवाद

लोग कह रहे थे कि वह संन्यासी जगन्नाथ-विग्रह का दर्शन करने पर मूर्छित हो गया। चूँकि उसको होश नहीं आया, इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य उसे अपने घर लेते गये।

शुनि' सबे जानिला एइ महाप्रभुर कार्य
हेनकाले आइला ताँहा गोपीनाथाचार्य॥१७॥

अनुवाद

यह सुन कर भक्तगण समझ गये कि वे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के बारे में बातें कर रहे हैं। तभी श्री गोपीनाथ आचार्य वहाँ आये।

नदीया-निवासी, विशारदेर जामाता।
महाप्रभुर भक्त तेंहो प्रभुतत्त्वज्ञाता॥१८॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य नदिया के निवासी, विशारद के दामाद तथा चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। वे महाप्रभु के असली स्वरूप को जानते थे।

तात्पर्य

महेश्वर विशारद नीलाम्बर चक्रवर्ती के सहपाठी थे। वे नदिया जिले के विद्यानगर के रहने वाले थे और उनके दो पुत्र थे—मधुसूदन वाचस्पति तथा वासुदेव सार्वभौम। उनके दामाद का नाम गोपीनाथ आचार्य था।

मुकुन्द-सहित पूर्वे आछे परिचय।
मुकुन्द देखिया ताँर हइल विस्मय॥१९॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य पहले से मुकुन्द दत्त को जानते थे; अतएव जब उन्होंने उसे जगन्नाथ पुरी में देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मुकुन्द ताँहारे देखि' कैल नमस्कार।
तेंहो आलिङ्गिया पूछे प्रभुर समाचार॥२०॥

अनुवाद

जब मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य से मिला तो उसने उन्हें नमस्कार किया। उसका आलिंगन करने के बाद गोपीनाथ आचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के विषय में पूछा।

मुकुन्द कहे,—प्रभुर इहाँ हैल आगमने।
आमि-सब आसियाछि महाप्रभुर सने॥२१॥

अनुवाद

मुकुन्द ने उत्तर दिया, "महाप्रभु तो पहले ही यहाँ आ चुके हैं। हम उन्हीं के साथ आये हैं।"

नित्यानन्द-गोसाञिके आचार्य कैल नमस्कार।
सबे मेलि' पूछे प्रभुर वार्ता बार बार॥२२॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने श्री नित्यानन्द प्रभु को देखते ही उन्हें नसम्कार किया। इस तरह सभी भक्तों से मिल कर उन्होंने बारम्बार श्री चैतन्य महाप्रभु के समाचार पूछे।

मुकुन्द कहे,—महाप्रभुर संन्यास करिया।
नीलाचले आइला सङ्गे आमा-सबा लञा।।२३।।

अनुवाद

मुकुन्द दत्त ने कहा, "संन्यास लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी आये हैं और हम सबों को अपने साथ लाये हैं।"

आमा-सबा छाडि' आगे गेला दरशने।
आमि-सब पाछे आइलाङ् ताँर अन्वेषणे।।२४।।

अनुवाद

"महाप्रभु हमारा साथ छोड़ कर आगे-आगे जगन्नाथजी का दर्शन करने चले आये। हम सभी अभी आये हैं और अब उन्हीं की खोज में हैं।"

अन्यान्य लोकेर मुखे ये कथा शुनिल।
सार्वभौम-गृहे प्रभु,—अनुमान कैल।।२५।।

अनुवाद

"लोगों की बातों से हमने अनुमान लगाया है कि अब महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर में हैं।

ईश्वर-दर्शने प्रभु प्रेमे अचेतन।
सार्वभौम लञा गेला आपन-भवन।।२६।।

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी का दर्शन करके भावविभोर होकर अचेत हो गये और सार्वभौम भट्टाचार्य उन्हें उसी अवस्था में अपने घर ले गये हैं।

तोमार मिलने यबे आमार हैल मन।
दैवे सेइ क्षणे पाइलुँ तोमार दरशन॥२७॥

अनुवाद

"जैसे ही मैं आपसे मिलने की सोच रहा था कि अकस्मात् हमारी भेंट हो गई।

चल, सबे याइ सार्वभौमेर भवन।
प्रभु देखि' पाछे करिब ईश्वर दर्शन॥"२८॥

अनुवाद

"चलिये, पहिले सार्वभौम भट्टाचार्य के घर चल कर चैतन्य महाप्रभु को देखें। जगन्नाथजी को दर्शन तो हम बाद में करेंगे।"

एत शुनि गोपीनाथ सबारे लञा।
सार्वभौम घरे गेला हरषित हञा॥२९॥

अनुवाद

यह सुन कर हर्षित मन से गोपीनाथ तुरन्त सभी भक्तों को साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पहुँचे।

सार्वभौम-स्थाने गिया प्रभुके देखिल।
प्रभु देखि' आचार्येर दुःख-हर्ष हैल॥३०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के घर जाकर सबों ने देखा कि महाप्रभु तो अचेत पड़े हैं। उन्हें इस अवस्था में देख कर गोपीनाथ आचार्य अत्यन्त दुखी हुए, किन्तु साथ ही प्रसन्न थे कि उन्हें महाप्रभु का दर्शन मिल रहा है।

सार्वभौम जानाञा सबा निल अभ्यन्तरे।
नित्यानन्द-गोसाञिरे तेँहो कैल नमस्कारे॥३१॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने सभी भक्तों को घर के भीतर जाने दिया और नित्यानन्द प्रभु को देख कर भट्टाचार्य ने उन्हें नमस्कार किया।

सबा सहित यथायोग्य करिल मिलन।
प्रभु देखि' सबार हैल हरषित मन॥३२॥

अनुवाद

सार्वभौम सभी भक्तों से भी मिले और उनका समुचित स्वागत किया। वे सभी श्री चैतन्य महाप्रभु को देख कर प्रसन्न थे।

सार्वभौम पाठाइल सबा दर्शन करिते।
'चन्दनेश्वर' निजपुत्र दिल सबार साथे॥३३॥

अनुवाद

तब भट्टाचार्य ने उन सबों को जगन्नाथजी का दर्शन करने के लिए वापस भेज दिया और मार्गदर्शक के रूप में अपने पुत्र चन्दनेश्वर को उनके साथ कर दिया।

जगन्नाथ देखि' सबार हइल आनन्द।
भावेते आविष्ट हैला प्रभु नित्यानन्द॥३४॥

अनुवाद

तत्पश्चात् जगन्नाथजी के विग्रह को देख कर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। नित्यानन्द प्रभु विशेष रूप से भावविभोर हो गये।

सबे मेलि' धरि ताँरे सुस्थिर करिल।
ईश्वर-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल॥३५॥

अनुवाद

जब नित्यानन्द लगभग अचेत हो गये तो सारे भक्तों ने उन्हें पकड़ कर सुस्थिर किया। उस समय जगन्नाथजी का पुजारी विग्रह पर चढ़ाई हुई एक माला ले आया और उसे नित्यानन्द प्रभु को दिया।

प्रसाद पाञा सबे हैला आनन्दित मने।
पुनरपि आइला सबे महाप्रभुर स्थाने॥३६॥

अनुवाद

जगन्नाथजी द्वारा पहनी हुई इस माला को प्राप्त करके सारे लोग प्रसन्नचित्त थे। बाद में वे सभी उस स्थान को लौट आये जहाँ महाप्रभु रुके

थे।

उच्च करि' करे सबे नाम-संकीर्तन।
तृतीय प्रहरे हैल प्रभुर चेतन॥३७॥

अनुवाद

तत्पश्चात् सारे भक्तगण जोर-जोर से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करने लगे। महाप्रभु में दोपहर के पहले ही चेतना वापस आ गई।

हुङ्कार करिया उठे 'हरि' 'हरि' बलि'।
आनन्दे सार्वभौम ताँर लैल पदधूलि॥३८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उठ कर बैठ गये और तेजी से 'हरि' 'हरि' का उच्चारण करने लगे। सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को पुनः चेतना प्राप्त करते देख कर अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने महाप्रभु के चरणकमलों की धूलि ग्रहण की।

सार्वभौम कहे,—शीघ्र करह मध्याह्न।
मुञि भिक्षा दिमु आजि महा-प्रसादान्न॥३९॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने सबों से कहा, "कृपया तुरन्त ही दोपहर का स्नान कर लें। आज मैं आप लोगों को महा-प्रसाद अर्थात् जगन्नाथजी का जूठन दूँगा।"

समुद्रस्नान करि' महाप्रभु शीघ्र आइला।
चरण पाखालि' प्रभु आसने वसिला॥४०॥

अनुवाद

समुद्र में स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तजन जल्दी ही लौट आये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने अपने पाँव धोये और भोजन करने के लिए गलीचे पर बैठ गये।

बहुत प्रसाद सार्वभौम आनाइल।
तबे महाप्रभु सुखे भोजन करिल॥४१॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने जगन्नाथ मन्दिर से विविध प्रकार का महाप्रसाद लाये जाने की व्यवस्था की। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस भोजन को परम सुखपूर्वक ग्रहण किया।

सुवर्ण-थालीर अन्न उत्तम व्यञ्जन।
भक्तगण-सङ्गे प्रभु करेन भोजन॥४२॥

अनुवाद

महाप्रभु को सोने की थाली में विशेष चावल तथा सर्वोत्तम तरकारियाँ परोसी गईं। इस तरह महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ भोजन किया।

सार्वभौम परिवेशन करेन आपने।
प्रभु कहे,—मोरे देह लाफ्रा—व्यञ्जने॥४३॥

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य स्वयं ही प्रसाद का वितरण कर रहे थे तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे अनुरोध किया, "कृपया मुझे केवल उबली तरकारियाँ दें।

तात्पर्य

लाफ्रा व्यंजन मिलीजुली तरकारियों को उबाल कर तैयार किया जाता है और तब उसमें जीरा, काली मिर्च तथा सरसों के बीज का *छेंका* दिया जाता है।

पीठा-पाना देह तुमि इहाँ-सबाकारे।
तबे भट्टाचार्य कहे युड़ि' दुइ करे॥४४॥

अनुवाद

"आप सारे भक्तों को पीठा (केक) तथा पाना (रबड़ी) दे सकते हैं। यह सुन कर भट्टाचार्य दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोले।

जगन्नाथ कैछे करियाछेन भोजन।
आजि सब महाप्रसाद कर आस्वादन॥४५॥

अनुवाद

''आज आप दोपहर के भोजन का उसी प्रकार आस्वादन करें जिस प्रकार भगवान् जगन्नाथ ने इसे स्वीकार किया है।''

एत बलि' पीठा-पाना सब खाओयाइला।
भिक्षा कराञा आचमन कराइला॥४६॥

अनुवाद

यह कह कर उन्होंने सबों को पीठा तथा पाना खाने को दिया। खिला लेने के बाद उन्हें हाथ, मुँह तथा पाँव धोने के लिए जल दिया।

आज्ञा मागिऽगेला गोपीनाथ आचार्यके लञा।
प्रभुर निकट आइला भोजन करिञा।४७॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके भक्तों से आज्ञा लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य सहित भोजन करने गये। भोजन करने के बाद वे महाप्रभु के पास लौट आये।

'नमो नारायणाय' बलि' नमस्कार कैल।
'कृष्णे मतिरस्तु' बलि' गोसाञि कहिल॥४८॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने नमो नारायणाय कह कर (मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ) श्री चैतन्य महाप्रभु को नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने पलट कर 'कृष्णे मतिरस्तु' कहा (अपना ध्यान कृष्ण पर लगाओ)।

तात्पर्य

संन्यासियों में यह शिष्टाचार है कि एक-दूसरे से *ॐ नमो नारायणाय* कह कर सम्मान प्रदर्शित करते हैं। यह शुभ वचन विशेषतया मायावदी संन्यासियों में प्रयुक्त होता है। स्मृतियों के अनुसार संन्यासी को किसी से कोई आशा नहीं करनी चाहिए, न ही उसे अपने आप को भगवान् मानना चाहिए। वैष्णव संन्यासी कभी भी अपने को भगवान् से एकाकार नहीं मानते। वे तो अपने को कृष्ण का नित्य दास मानते हैं और चाहते हैं कि संसार का हर व्यक्ति कृष्ण-भक्त बने। इसीलिए वैष्णव संन्यासी सदैव हर एक को

यह आशीर्वाद देता है *कृष्णे मतिरस्तु* (आप कृष्णभावनाभावित बनें)।

शुनि' सार्वभौम मने विचार करिल।
वैष्णव-संन्यासी इँहो, वचने जानिल॥४९॥

अनुवाद

ये शब्द सुन कर सार्वभौम समझ गये कि श्री चैतन्य एक वैष्णव संन्यासी हैं।

गोपीनाथ आचार्येर कहे सार्वभौम।
गोसाञिर जानिते चाहि काहाँ पूर्वाश्रम॥५०॥

अनुवाद

तब सार्वभौम ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, "मैं श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व आश्रम (स्थिति) को जानना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

पूर्वाश्रम किसी के जीवन की पूर्व अवस्था का द्योतक है। कभी कोई व्यक्ति गृहस्थाश्रम के बाद संन्यास आश्रम स्वीकार करता है तो कभी विद्यार्थी जीवन (ब्रह्मचारी) से ही। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के गृहस्थाश्रम की पूर्व अवस्था जानना चाहते थे।

गोपीनाथाचार्य कहे,—नवद्वीपे घर।
'जगन्नाथ'—नाम, पदवी—'मिश्र पुरन्दर'॥५१॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "नवद्वीप में जगन्नाथ नाम का एक निवासी था जिसकी पदवी मिश्र पुरन्दर थी।"

'विश्वम्भर'—नाम इँहार, ताँर इँहो पुत्र।
नीलाम्बर चक्रवर्ती हयेन दौहित्र॥५२॥

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं और इनका पहले का नाम विश्वम्भर मिश्र था। ये नीलाम्बर चक्रवर्ती के नाती भी लगते हैं।"

सार्वभौम कहे,—नीलाम्बर चक्रवर्ती।
विशारदेर समाध्यायी,—एइ ताँर ख्याति॥५३॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "नीलाम्बर चक्रवर्ती तो मेरे पिता महेश्वर विशारद के सहपाठी थे। मैं उन्हें इसी रूप में जानता था।

'मिश्र पुरन्दर' ताँर मान्य, हेन जानि।
पितार सम्बन्धे दोंहाके पूज्य करि' मानि॥५४॥

अनुवाद

"मेरे पिता जगन्नाथ मिश्र पुरन्दर का आदर करते थे। इस तरह अपने पिता के साथ सम्बन्ध होने से मैं जगन्नाथ मिश्र तथा नीलाम्बर चक्रवर्ती दोनों का आदर करता हूँ।"

नदीया-सम्बन्धे सार्वभौम हृष्ट हैला।
प्रीत हञा गोसाञिरे कहिते लागिला॥५५॥

अनुवाद

यह सुन कर कि श्री चैतन्य महाप्रभु नदीया जिले के हैं, सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

'सहजेइ पूज्य तुमि आरे त' संन्यास।
अतएव हङ् तोमार आमि निज-दास॥५६॥

अनुवाद

"आप स्वाभाविक रूप से मेरे पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त आप संन्यासी हैं, अतएव मैं आपका निजी दास बनना चाहता हूँ।"

तात्पर्य

गृहस्थों को चाहिए कि संन्यासी की पूजा करें और उसे सभी प्रकार का आदर प्रदान करें। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु से उम्र में बड़े थे किन्तु उन्होंने संन्यासी के रूप में तथा आध्यात्मिक भाव के सर्वोच्च पद को प्राप्त व्यक्ति के रूप में उनका सम्मान किया। इस तरह उन्होंने महाप्रभु को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया।

शुनि' महाप्रभु कैल श्रीविष्णु स्मरण।
भट्टाचार्य कहे किछु विनय वचन॥५७॥

अनुवाद

भट्टाचार्य से यह सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त भगवान् विष्णु का स्मरण किया और अत्यन्त विनीत भाव से इस प्रकार बोले।

"तुमि जगद्गुरु—सर्वलोक-हितकर्ता।
वेदान्त पड़ाओ, संन्यासीर उपकर्ता॥५८॥

अनुवाद

"चूँकि आप वेदान्त-दर्शन के अध्यापक हैं, अतएव आप विश्व के समस्त लोगों के स्वामी तथा उनके हितचिन्तक भी हैं। आप सभी संन्यासियों का भी उपकार करने वाले हैं।

तात्पर्य

चूँकि मायावादी संन्यासी अपने शिष्यों को वेदान्त-दर्शन की शिक्षा देते हैं, अतएव प्रथानुसार वे *जगद्गुरु* कहलाते हैं। इससे सूचित होता है कि वे सारे लोगों का उपकार करने वाले हैं। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य संन्यासी नहीं थे, किन्तु गृहस्थ होने के कारण वे अपने घर में संन्यासियों को बुलाते थे और उन्हें प्रसाद देते थे। इस तरह वे समस्त लोगों के शुभचिन्तक तथा समस्त संन्यासियों के मित्र थे।

आमि बालक-संन्यासी—भान्द-मन्द नाहि जानि।
तोमार आश्रय निलुँ, गुरु करि' मानि॥५९॥

अनुवाद

"मैं तो अभी तरुण संन्यासी हूँ और मुझे अच्छे-बुरे का कोई ज्ञान नहीं है। अतएव मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ और आपको अपना गुरु मान रहा हूँ।

तोमार सङ्ग लागि' मोर इहाँ आगमन।
सर्वप्रकारे करिबे आमाय पालन॥६०॥

अनुवाद

"मैं यहाँ आपकी संगति करने आया हूँ और अब आपकी शरण ग्रहण

कर रहा हूँ। आप सभी प्रकार से मेरा पालन करेंगे न?

आजि ग्रे हैल आमार बड़इ विपत्ति।
ताहा हैते कैले तुमि आमार अव्याहति॥''६१॥

अनुवाद

''आज जो घटना घटी है वह मेरे लिए महान विपत्ति थी किन्तु आपने मुझे उससे उबार लिया है।''

भट्टाचार्य कहे,—एकले तुमि ना ग्राइह दर्शने।
आमार सङ्गे ग्राबे, किम्वा आमार लोक-सने॥६२॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, ''आप जगन्नाथ मन्दिर में विग्रह-दर्शन करने अकेले न जायँ। अच्छा होगा कि आप या तो मेरे साथ या मेरे आदमियों के साथ जायँ।''

प्रभु कहे,—'मन्दिर भितरे ना ग्राइब।
गरुड़ेर पाशे रहि' दर्शन करिब॥'६३॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, ''मैं अब कभी भी मन्दिर के भीतर नहीं जाऊँगा। मैं तो गरुड़-स्तम्भ के पास से भगवान् का दर्शन किया करूँगा।''

गोपीनाथाचार्यके कहे सार्वभौम।
'तुमि गोसाञिरे लञा कराइह दरशन॥६४॥

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य से कहा, ''गोस्वामीजी को ले जाओ और उन्हें जगन्नाथजी का दर्शन कराओ।''

आमार मातृस्वसा-गृह—निर्जन स्थान।
ताहाँ वासा देह, कर सर्व समाधान॥'६५॥

अनुवाद

''मेरी मौसी का घर अत्यन्त निर्जन स्थान में है। वहीं इनके रहने की सारी व्यवस्था कर देना।''

गोपीनाथ प्रभु लञा ताहाँ वासा दिल।
जल, जलपात्रादिक सर्व समाधान कैल॥६६॥

अनुवाद

इस तरह गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को उस घर तक ले गये और उन्हें पानी, पानी के बर्तन, नाँद आदि दिखला दिया। उन्होंने सब प्रकार की व्यवस्था कर दी।

तार दिन गोपीनाथ प्रभु स्थाने गिया।
शय्योत्थान दरशन कराइल लञा॥६७॥

अनुवाद

अगले दिन गोपीनाथ आचार्य महाप्रभु को जगन्नाथ भगवान् का शय्योत्थान (जगना) दिखाने ले गये।

मुकुन्ददत्त लञा आइला सार्वभौम स्थाने।
सार्वभौम किछु ताँरे बलिला वचने॥६८॥

अनुवाद

इसके बाद गोपीनाथ आचार्य मुकुन्द दत्त को अपने साथ लेकर सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये। वहाँ पहुँचने पर सार्वभौम ने मुकुन्द दत्त से इस प्रकार कहा।

'प्रकृति-विनीत, संन्यासी देखिते सुन्दर।
आमार बहुप्रीति बाड़े इँहार उपर॥६९॥

अनुवाद

"यह संन्यासी अत्यन्त विनीत स्वभाव का जान पड़ता है और इसका शरीर देखने में अत्यन्त सुन्दर है। फलतः इसके प्रति मेरा स्नेह बढ़ता जा रहा है।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को अत्यन्त विनीत मानते थे, क्योंकि संन्यासी होते हुए भी उन्होंने अपना ब्रह्मचारी नाम नहीं छोड़ा था। महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय के केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया था जिसमें ब्रह्मचारियों (संन्यासियों के सहायकों) को *चैतन्य* कहा जाता है। संन्यास लेने के बाद

भी महाप्रभु ने *चैतन्य* नाम नहीं छोड़ा। चैतन्य का अर्थ है सन्यासी का विनीत दास। सार्वभौम भट्टाचार्य को यह बात पसन्द थी।

कोन् सम्प्रदाय संन्यास कर्याछेन ग्रहण।
किबा नाम इँहार, शुनिते हय मन।।'७०।।

अनुवाद

"इन्होंने किस सम्प्रदाय से संन्यास प्राप्त किया है और इनका नाम क्या है? यह सुनने को मेरा मन चाह रहा है।"

गोपीनाथ कहे,—नाम श्रीकृष्णचैतन्य।
गुरु इँहार केशव-भारती महाधन्य।।७१।।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "महाप्रभु का नाम श्रीकृष्ण चैतन्य है और उन्हें संन्यास देने वाले गुरु महाभाग केशव भारती हैं।"

सार्वभौम कहे,—'इँहार नाम सर्वोत्तम।
भारती-सम्प्रदाय इँहो—हयेन मध्यम।।'७२।।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "श्रीकृष्ण नाम अत्युत्तम है, किन्तु ये भारती-सम्प्रदाय के हैं, अतएव ये द्वितीय श्रेणी के संन्यासी हैं।"

गोपीनाथ कहे,—इँहार नाहि ब्राह्योपेक्षा।
अतएव बड़ सम्प्रदायेर नाहिक अपेक्षा।।७३।।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु को न तो किसी बाहरी औपचारिकता की न ही किसी श्रेष्ठ सम्प्रदाय से संन्यास ग्रहण करने की आवश्यकता है।'

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भारती सम्प्रदाय से संन्यास लिया था जो शंकराचार्य की परम्परा से सम्बद्ध है। शंकराचार्य ने अपने संन्यासी-शिष्यों के लिए नामों का प्रचलन किया जिनकी संख्या दस है। इनमें से तीर्थ, आश्रम तथा सरस्वती

सर्वप्रमुख हैं। शृंगेरी मठ में सरस्वती प्रथम, भारती द्वितीय और पुरी तृतीय श्रेणी की उपाधियाँ मानी जाती हैं। जिस संन्यासी ने *तत्वमसि*—को ठीक से समझ लिया है और जिसने गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम में स्नान कर लिया है वह *तीर्थ* कहलाता है। जो व्यक्ति सांसारिक कार्यों से विरक्त रहता है और जिसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती वह जन्म-मरण के चक्र से बच जाता है अतएव वह *आश्रम* कहलाता है। जो संन्यासी सुन्दर एकान्त वन में *निवास* करता है और सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है *वन* कहलाता है। जो संन्यासी जंगल में रहता है और स्वर्ग में नन्दनकानन में रहने की इच्छा से सब कुछ त्याग देता है वह *अरण्य* कहलाता है। जो व्यक्ति *भगवद्गीता* का अध्ययन करते हुए पर्वत पर रहता है और जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है वह *गिरि* कहलाता है। जो व्यक्ति हिंस्र पशुओं की परवाह न करते हुए सर्वोच्च दार्शनिक चिन्तन प्राप्त करने के उद्देश्य से बड़े-बड़े पर्वतों में रहता है वह *पर्वत* कहलाता है। जो संन्यासी परम सत्य-रूपी सागर में गोते लगाकर ज्ञानरूपी कंकड़ एकत्र कर लेता है और संन्यासी के विधि-विधान से कभी च्युत नहीं होता वह *सागर* कहलाता है। जो व्यक्ति संगीत-कला में दक्ष होकर उसका अनुशीलन करता है और भौतिक आसक्ति से दूर रहता है वह *सरस्वती* कहलाता है। सरस्वती संगीत तथा विद्या की देवी हैं और वे एक हाथ में वीणा धारण किये रहती हैं। जो संन्यासी आध्यात्मिक उत्थान के लिए संगीत में लगा रहता है वह सरस्वती है। पूर्ण शिक्षित एवं सभी प्रकार के अज्ञान से मुक्त तथा दुख में भी दुखी न रहने वाला व्यक्ति *भारती* कहलाता है। जो परम ज्ञान में दक्ष होता है और परम सत्य की व्याख्या में लगा रहता है वह *पुरी* कहलाता है।

इन सारे संन्यासियों की सहायता के लिए ब्रह्मचारीगण रहते हैं जो निम्नवत् हैं—

जो अपने स्वरूप को पहचानता है और किसी विशेष कार्य में दृढ़ रहता है, जो आध्यात्मिक ज्ञान में सदैव सुखी रहता है वह *स्वरूप* ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मतेज का ज्ञाता तथा योगाभ्यास करने वाला *प्रकाश* ब्रह्मचारी कहलाता है। जो परम ज्ञान प्राप्त करके सदैव परम सत्य, ज्ञान, असीम तथा ब्रह्मतेज का ध्यान करता है और सदैव दिव्य आनन्द भोगता है वह *आनन्द* ब्रह्मचारी कहलाता है। जो पदार्थ तथा आत्मा का भेद जानता है,

जो भौतिक विकारों से घबड़ाता नहीं तथा जो असीम, अव्यय, कल्याणप्रद ब्रह्मतेज का ध्यान करता है वह प्रथम कोटि विद्वान ब्रह्मचारी होता है और *चैतन्य* कहलाता है।

जब सार्वभौम भट्टाचार्य गोपीनाथ आचार्य से श्री चैतन्य महाप्रभु के संन्यास सम्प्रदाय के बारे में बातें कर रहे थे तो उन्हें *श्रीकृष्ण* नाम तो अच्छा लगा, किन्तु *चैतन्य* उपाधि अच्छी नहीं लगी, क्योंकि यह भारती सम्प्रदाय के ब्रह्मचारी की उपाधि है। इसीलिए उन्होंने सुझाया कि महाप्रभु को सरस्वती सम्प्रदाय में प्रोन्नत कर दिया जाय। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने इंगित किया कि महाप्रभु को किसी बाह्य औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है। गोपीनाथ आचार्य को पूर्ण विश्वास था कि महाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, अतएव वे किसी बाह्य औपचारिकता या अनुष्ठान से स्वतन्त्र हैं। यदि कोई शुद्ध भक्ति करना चाहता है तो उसे भारती या सरस्वती जैसी उपाधियों की आवश्यकता नहीं रहती।

भट्टाचार्य कहे,—'इँहार प्रौढ़ य़ौवन।
केमते संन्यास-धर्म हइबे रक्षण॥७४॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने पूछा, "श्री चैतन्य महाप्रभु तो अपनी पूर्ण यौवनावस्था में हैं। वे संन्यास के नियमों को किस तरह रख पायेंगे?

निरन्तर इँहाके वेदान्त शुनाइब।
वैराग्य-अद्वैत-म्रार्गे प्रवेश कराइब॥७५॥

अनुवाद

"मैं इन्हें निरन्तर वेदान्त-दर्शन सुनाऊँगा जिससे वे अपने वैराग्य में अचल रहे हें और इस तरह अद्वैत-मार्ग में प्रवेश कर सकें।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुसार वेदान्त दर्शन के अनुशीलन से संन्यासियों को इन्द्रियतृप्ति से विरक्त रहने में सहायता मिलती है। इस तरह संन्यासी अपने *कौपीन* (लँगोटा) की मर्यादा-रक्षा कर सकता है। मनुष्य को इन्द्रिय-निग्रह के साथ मन-निग्रह करना होता है और वाणी, मन, क्रोध, जीभ, उदर तथा जननेन्द्रिय—इन छह की शक्तियों का दमन करना होता है। तभी वह

भगवद्भक्ति को समझ सकता है और पूर्ण संन्यासी बन सकता है। इसके लिए ज्ञान का अनुशीलन तथा वैराग्य आवश्यक है। इन्द्रियतृप्ति में लिप्त रह कर संन्यास आश्रम की रक्षा नहीं की जा सकती। सार्वभौम भट्टाचार्य ने सुझाया कि वैराग्य की शिक्षा से श्री चैतन्य महाप्रभु को प्रौढ़ तरुणावस्था की इच्छाओं के चंगुल से बचाया जा सकता है।

कहेन ग़्रदि, पुनरपि ग़्रोग-पट्ट दिया।
संस्कार करिये उत्तम-सम्प्रदाये आनिया॥'७६॥

अनुवाद

उन्होंने सुझाया, "यदि श्री चैतन्य महाप्रभु चाहेंगे तो मैं उन्हें केसरिया वस्त्र प्रदान करके एवं उनका पुनः संस्कार कराकर उच्च कोटि के सम्प्रदाय में ले आऊँगा।"

तात्पर्य

भट्टाचार्य को अच्छा नहीं लगा कि महाप्रभु भारती या पुरी सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहें, अतएव वे उन्हें सरस्वती सम्प्रदाय में पुनः प्रतिष्ठित करना चाह रहे थे। वस्तुतः वे महाप्रभु के पद से परिचित नहीं थे। भगवान् के रूप में महाप्रभु किसी उच्च या निम्न सम्प्रदाय पर अपने को आश्रित नहीं समझते थे। भगवान् तो सभी परिस्थितियों में सर्वोच्च पद पर बने रहते हैं।

शुनि' गोपीनाथ-मुकुन्द दुँहे दुःख हैला।
गोपीनाथाचार्य किछु कहिते लागिला॥७७॥

अनुवाद

जब गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त ने ऐसा सुना तो वे बहुत दुखी हुए। अतः गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को इस प्रकार सम्बोधित किया।

'भट्टाचार्य' तुमि इँहार ना जान महिमा।
भगवत्ता-लक्षणेर इँहातेइ सीमा॥७८॥

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य! आप महाप्रभु की महानता को नहीं जानते। इनमें भगवान् के सारे लक्षण अपनी चरम सीमा को प्राप्त हैं।"

तात्पर्य

चूँकि भट्टाचार्य निर्विशेषवादी थे, अतएव उन्हें निर्विशेष तेज के परे परम सत्य का कोई अनुमान नहीं था। किन्तु गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् हैं जो परम सत्य को जानते हैं; वे उनकी तीन अवस्थाओं से परिचित होते हैं जिनकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में (१.२.११) की गई है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

"जिन्हें अद्वैत परम सत्य का ज्ञान है वे स्पष्ट रूप से जानते हैं कि ब्रह्म क्या है, परमात्मा क्या है और भगवान् क्या है।" भगवान् छहों ऐश्वर्यो से पूर्ण होते हैं—*षड् ऐश्वर्यपूर्ण*। गोपीनाथ आचार्य ने बतलाया कि श्री चैतन्य महाप्रभु में ये छहों ऐश्वर्य विद्यमान हैं।

ताहाते विख्यात इँहो परम-ईश्वर।
अज्ञ-स्थाने किछु नहे विज्ञेर गोचर॥'७९॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् के रूप में विख्यात हैं। जो इस विषय से अनभिज्ञ हैं वे भिज्ञ जनों (जाननहारों) के निर्णय को मुश्किल से समझ पाते हैं।"

शिष्यगण कहे,—'ईश्वर कह कोन् प्रमाणे'।
आचार्य कहे,—'विज्ञमत ईश्वर-लक्षणे'॥८०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य से शिष्यों ने पलट कर पूछा, "आप किस साक्ष्य के आधार पर यह निर्णय कर रहे हैं कि चैतन्न्य महाप्रभु परमेश्वर हैं?" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "इसका प्रमाण भगवान् को समझने वाले भिज्ञ आचार्यों के कथन हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के बाद भारत में ऐसे अनेक छद्म अवतार हुए हैं जिनमें प्रामाणिक लक्षण नहीं पाये जाते। पाँच सौ वर्ष पूर्व सार्वभौम

भट्टाचार्य के शिष्यों ने जब गोपीनाथ आचार्य से साक्ष्य देने के लिए कहा था तो वे बिल्कुल ठीक कह रहे थे। यदि कोई व्यक्ति अपने को या किसी अन्य को ईश्वर या ईश्वर का अवतार बतलाता है तो उसे अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए शास्त्र से साक्ष्य देने चाहिए। अतएव भट्टाचार्य के शिष्यों का अनुरोध उचित है। दुर्भाग्यवश सम्प्रति ईश्वर के अवतार को शास्त्रों का सन्दर्भ दिये बिना प्रस्तुत करना एक फैशन बन चुका है। किन्तु बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि किसी व्यक्ति को ईश्वर का अवतार मानने के पहले उससे साक्ष्य माँगे। जब भट्टाचार्य के शिष्यों ने गोपीनाथ आचार्य को ललकारा तो गोपीनाथ ने तुरन्त उत्तर दिया "ईश्वर को समझने के लिए हमें महापुरुषों के वचन सुनने चाहिए।" ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव, अर्जुन, असित जैसे महापुरुषों के कथनों से ही कृष्ण भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसी तरह उन्हीं महापुरुषों के कथनों से श्री चैतन्य महाप्रभु भी भगवान् के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इसकी व्याख्या आगे की जायेगी।

शिष्य कहे,—'ईश्वर-तत्त्व साधि अनुमाने'।
आचार्य कहे,—'अनुमाने नहे ईश्वरज्ञाने॥८१॥

अनुवाद

भट्टाचार्य के शिष्य ने कहा, "हम तर्क (अनुमान) के द्वारा परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करते हैं।" गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "भगवान् विषयक असली ज्ञान इस प्रकार के अनुमान तथा तर्क से प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक परम सत्य के विषय में कुछ अनुमान लगाते हैं। उनका तर्क है कि हम इस जगत की हर वस्तु को सृजित (उत्पन्न) हुई अनुभव करते हैं। यदि हम किसी भी वस्तु का इतिहास खोजें तो उसका एक स्रष्टा मिलेगा। अतएव इस विराट जगत का कोई स्रष्टा होना चाहिए। ऐसे तर्क से वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस विराट जगत की सृष्टि किसी महान् शक्ति द्वारा की गई है। मायावादी उस महान् शक्ति को एक पुरुष के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनके दिमाग में यह बात नहीं समाती कि यह विराट जगत एक पुरुष की सृष्टि हो सकता है इसका कारण यह है कि जब वे किसी पुरुष के विषय में सोचते हैं तो तुरन्त वे भौतिक जगत

के ही भीतर के सीमित शक्ति वाले पुरुष को सोचते हैं। कभी कभी मायावादी दार्शनिक कृष्ण या राम को भगवान् मान लेते हैं, किन्तु वे भगवान् को ऐसा व्यक्ति मानते हैं जिसका शरीर भौतिक है। मायावादी यह समझ ही नहीं पाते कि भगवान् कृष्ण का शरीर आध्यात्मिक है। वे कृष्ण को ऐसा महापुरुष मानते हैं जिनके भीतर परम निर्विशेष शक्ति ब्रह्म है। इसलिए अन्तत: वे यह सोचते हैं कि निर्विशेष ब्रह्म ही सर्वोच्च है, कृष्ण नहीं। मायावादी दर्शन का यही आधार है। किन्तु शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्मतेज तो कृष्ण के शरीर की ही किरणें हैं।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि—
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्।
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की सेवा करता हूँ जिनके दिव्य शरीर का तेज ब्रह्मज्योति कहलाता है। वह ब्रह्मज्योति, जो असीम, अगाध तथा सर्वव्यापी है, अनन्त लोकों की सृष्टि का कारण है जिनमें तरह-तरह की जल-वायु है तथा जो जीवन की विशिष्ट दशाओं से युक्त है।" (ब्रह्म-संहिता ५.४०)

मायावादी दार्शनिक वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था में कृष्ण ही परम सत्य भगवान् हैं। वे यह तो स्वीकार करते है कि इस विराट जगत का स्रष्टा है किन्तु वह *अनुमान* है। मायावादियों का तर्क वैसा ही है जैसा कि पहाड़ी के ऊपर का धुआँ। जब किसी ऊँची पहाड़ी के ऊपर आग लगती है तो सबसे पहिले धुँआ ही दिखता है। यह धुँआ तब उत्पन्न होता है जब अग्नि रहती है। जिस प्रकार धुएँ से अग्नि का अनुमान लगाया जा सकता है, उसी तरह मायावादी दार्शनिक यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विराट जगत का कोई स्रष्टा होना चाहिए।

सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य यह दिखाने के लिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु ही इस जगत के वास्तविक स्रष्टा हैं प्रमाण चाहते थे। तभी वे उन्हें सृष्टि के आदि कारण भगवान् के रूप में स्वीकार कर सकेंगे। गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया कि केवल अनुमान से भगवान् को नहीं समझा जा सकता। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में (७.२५) कहते हैं—

नाहं प्रकाश: सर्वस्य योगमायासमावृत:।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

"मैं मूर्खों तथा बुद्धिहीनों को कभी नहीं दिखता। उनके लिए तो मैं अपनी नित्य सृजनात्मक शक्ति (योगमाया) से आवृत रहता हूँ, अतएव भ्रमित जगत मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाता।" भगवान् को अधिकार है कि वे अभक्तों के समक्ष प्रकट न हों। उन्हें केवल प्रामाणिक भक्त ही समझ सकते हैं। भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में अन्यत्र (१८.५५) कहते हैं—*भक्त्या मामभिजानाति*—मनुष्य मुझे केवल भक्ति द्वारा जान सकता है। *भगवद्गीता* के चतुर्थ अध्याय में कृष्ण कहते हैं—*भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्*। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वे उसे *भगवद्गीता* का रहस्य बतला रहे हैं क्योंकि वह उनका भक्त है। अर्जुन न तो संन्यासी था, न वेदान्ती, न ही ब्राह्मण। किन्तु वह कृष्ण का भक्त था। निष्कर्ष यह निकला कि हमें भक्तों से भगवान् को समझना होगा। स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं—*गुरुकृष्णप्रसादे पाय भक्तिलताबीज* (चैतन्य-चरितामृत, मध्य १९.१५१)।

यह दिखाने के लिए और साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते है कि भक्त या कृष्ण की कृपा के बिना मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि कृष्ण क्या है और भगवान् क्या है। इसकी पुष्टि अगले श्लोक में हुई है।

अनुमान प्रमाण नहे ईश्वरतत्त्वज्ञान।
कृपा विना ईश्वरेर केह नाहि जाने॥८२॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "भगवान् को केवल उनकी कृपा द्वारा ही जाना जा सकता है, अनुमान द्वारा नहीं।"

तात्पर्य

भगवान् को किसी जादूगरी से नहीं समझा जा सकता। मूर्ख लोग जादू का खेल देख कर मुग्ध हो जाते हैं और योगशक्ति से सम्पन्न कुछेक अद्भुत बातें देख कर ही वे जादूगर को भगवान् या अवतार मान बैठते हैं। किन्तु यह साक्षात्कार की विधि नहीं है। न ही ईश्वर के अवतार या भगवान् के विषय में अनुमान लगाना चाहिए। मनुष्य को प्रामाणिक व्यक्ति से या भगवान् से सीखना पड़ता है, जैसा कि अर्जुन ने किया। स्वयं कृष्ण भगवान्

के रूप में अपनी शक्तियों का संकेत भी करते जाते हैं। केवल शास्त्रों तथा महाजनों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण के आधार पर ही भगवान् को समझना चाहिए। भक्ति द्वारा भगवान् को समझने के लिए भगवत्कृपा होनी आवश्यक है।

ईश्वरेर कृपा-लेश हय त' याहारे।
सेइ त' ईश्वर-तत्त्व जानिबारे पारे॥८३॥

अनुवाद

"यदि किसी को भक्ति के द्वारा भगवान् की लेशमात्र भी कृपा प्राप्त होती है तो वह भगवान् की प्रकृति को समझ सकता है।"

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय
प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥८४॥

अनुवाद

"हे प्रभु! यदि आप के चरणकमलों की रंचमात्र भी कृपा किसी पर हो जाय तो वह आपकी महानता को समझ सकता है। किन्तु जो भगवान् को समझने के लिए चिन्तन करते हैं वे अनेक वर्षों तक वेदों का अध्ययन करते रहने पर भी आपको जानने में अक्षम रहते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का है (१०.१४.२९)। *ब्रह्म-संहिता* (५.३३) का कथन है—*वेदेषु दुर्लभम् अदुर्लभम् आत्मभक्तौ*।। यद्यपि भगवान् कृष्ण ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*) किन्तु जो शुद्ध भक्त नहीं है और भगवान् की सेवा में नहीं लगा है वह उन्हें समझ नहीं सकता। *वेदेषु दुर्लभम्*—स्वाध्याय द्वारा भगवान् को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। *अदुर्लभम् आत्मभक्तौ*—किन्तु भक्तों के लिए भगवान् को पकड़ना आसान है। भगवान् *अजित* कहलाते हैं अर्थात् वे जीते नहीं जा सकते। भगवान् को कोई जीत नहीं सकता, किन्तु वे भक्तों द्वारा पराजित किये जाने के लिए तैयार रहते हैं। यही उनका स्वभाव है। जैसा कि *पद्म पुराण* में कहा गया है—

अत: श्रीकृष्णनामामिद
न भवेद् ग्रह्यम् इन्द्रियै:।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ
स्वयमेव स्फुरत्यद:॥

भक्ति-कार्यों से प्रसन्न होकर भगवान् अपने भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं। यही विधि है उन्हें समझने की।

गोपीनाथ आचार्य ने *श्रीमद्भागवत* के जिस श्लोक को उद्धृत किया था वह भगवान् कृष्ण से पराजित होने पर ब्रह्मा ने कहा था। ब्रह्मा ने कृष्ण की शक्ति की परीक्षा करने के लिए सारे बछड़ों तथा ग्वालबालों को चुरा लिया था। ब्रह्मा ने यह स्वीकार किया कि इस ब्रह्माण्ड में उनकी अपनी असाधारण शक्ति कृष्ण की असीम शक्ति के समक्ष तुच्छ है। यदि कृष्ण को समझने की भूल ब्रह्मा कर सकता है तो साधारण व्यक्तियों के विषय में क्या कहा जाय, जो या तो कृष्ण को गलत समझते हैं या अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए स्वयं को कृष्ण का तथाकथित अवतार कह कर उपस्थित करते हैं।

यद्यपि जगद्गुरु तुमि—शास्त्र-ज्ञानवान्।
पृथिवीते नाहि पण्डित तोमार समान॥८५॥
ईश्वरेर कृपा-लेश नाहिक तोमाते।
अतएव ईश्वरतत्त्व ना पार जानिते॥८६॥

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम को सम्बोधित किया, "आप महान पंडित हैं और अनेक शिष्यों के शिक्षक हैं। निस्सन्देह आपके समान इस पृथ्वी पर अन्य कोई विद्वान् नहीं है। फिर भी आप भगवान् की रंचमात्र कृपा से भी वंचित हैं, अतएव आप उन्हें, अपने घर में पाकर भी, नहीं समझ सकते।

तोमार नाहिक दोष, शास्त्रे एइ कहे।
पाण्डित्याद्ये ईश्वरतत्त्व-ज्ञान कभु न हे॥'८७॥

अनुवाद

"यह आपका दोष नहीं है। यह तो शास्त्रों का निर्णय है। आप केवल पाण्डित्य से भगवान् को नहीं समझ सकते।"

तात्पर्य

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण श्लोक है। बड़े-बड़े पंडित तक कृष्ण को नहीं समझ सकते, फिर भी वे *भगवद्गीता* की टीका करने का दुस्साहस करते हैं। *भगवद्गीता* पढ़ने का अर्थ है कृष्ण को समझना, फिर भी हम देखते हैं कि अनेक पण्डित कृष्ण को समझने में भारी भूल करते हैं। *कठ उपनिषद* में (१.२.२३) कहा गया है

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

कठ उपनिषद में ही (१.२.९) यह भी कहा गया है—

नैषा तर्केण मतिरापनेया—
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्वतासि
त्वादृं नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा॥

तथ्य तो यह है कि भगवान् अर्थात् परमात्मा को केवल व्याख्या, तर्क तथा पाण्डित्य से प्राप्त नहीं किया जा सकता। कोई उन्हें अपने मस्तिष्क के बल से नहीं समझ सकता। यहाँ तक कि सारे वैदिक साहित्य के अध्ययन के द्वारा भी भगवान् को नहीं समझा जा सकता। किन्तु यदि भगवान् रंच-भर भी कृपा कर दें तो मनुष्य उन्हें समझ सकता है। किन्तु उनकी कृपा का पात्र है कौन? केवल भक्तगण। वे ही समझ सकते हैं कि भगवान् क्या है। जब भगवान् निष्ठावान भक्त की सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं तो स्वयं उसके समक्ष प्रकट होते हैं। *स्वयमेव स्फुरत्यदः*। न तो वेदों के कथन से भगवान् को समझने का प्रयास करना चाहिए, न ही तर्क द्वारा इन कथनों की निन्दा करनी चाहिए।

सार्वभौम कहे,—आचार्य, कह सावधाने।
तोमाते ईश्वर-कृपा इथे कि प्रमाणे॥८८॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "हे गोपीनाथ आचार्य! आप सावधानी से कहें। आपके पास इसका क्या प्रमाण है कि आपको भगवत्कृपा प्राप्त हुई है?"

आचार्य कहे,—"वस्तु-विषये हय वस्तु-ज्ञान।
वस्तुतत्त्व-ज्ञान हय कृपाते प्रमाण॥८९॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने उत्तर दिया, "वस्तु अर्थात् परम सत्य का ज्ञान ही परमेश्वर की कृपा का प्रमाण है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने बहनोई श्री गोपीनाथ आचार्य को बतलाया "भले ही भगवान् ने मुझ पर कृपा न की हो, किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि तुम पर कृपा की है?" इस प्रश्न के उत्तर में गोपीनाथ ने कहा कि परम सत्य तथा उनकी विभिन्न शक्तियाँ अभिन्न हैं। अतएव उनकी विभिन्न शक्तियों की अभिव्यक्ति से परम सत्य-रूपी वस्तु को समझा जा सकता है। परम सत्य में एक ही जगह सारी शक्तियाँ रहती हैं। विभिन्न गुणों से युक्त होकर परम सत्य आदि वस्तु है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*।

इस तरह वेदों का कथन है कि परम सत्य विभिन्न शक्तियों से युक्त है। जब कोई परम सत्य की शक्तियों के गुणों को समझता है तो वह परम सत्य से अवगत हो जाता है। भौतिक स्तर पर भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को उसके लक्षणों से ही जानता है। उदाहरणार्थ, जब उष्मा होती है तो यह समझा जाता है कि यह अग्नि के कारण है। अग्नि की उष्मा का अनुभव प्रत्यक्ष किया जाता है। भले ही अग्नि न दिखे, किन्तु उष्मा के अनुभव से अग्नि को खोजा जा सकता है। इसी तरह यदि परम सत्य के गुणों का किसी को अनुभव हो तो यह समझना चाहिए कि उसने परम सत्य रूपी वस्तु को समझ लिया है।

भगवद्गीता में (७.२५) कहा गया है—*नाहं प्रकाशः सर्वस्य*। यह तो

भगवान् के अधिकार में है कि जिसे चाहें दर्शन दें। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः*—जब भगवान् भक्त की सेवा से पूरी तरह प्रसन्न हो जाते हैं तो वे भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं। अतएव भगवान् की कृपा हुए बिना उन्हें समझा नहीं जा सकता। परम सत्य को चिन्तन द्वारा नहीं समझा जा सकता—यही *भगवद्गीता* का निर्णय है।

इँहार शरीर सब ईश्वर-लक्षण।
महाप्रेमावेश तुमि पाञाछ दर्शन॥९०॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "जब श्री चैतन्य महाप्रभु भावाविष्ट थे तो उनके शरीर में आपने भगवान् के लक्षण देखे हैं।

तबु त' ईश्वर-ज्ञान ना हय तोमार।
ईश्वरेर माया एइ—बलि व्यवहार॥९१॥

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भगवान् के लक्षणों को साक्षात् देखने के बावजूद आप उन्हें नहीं समझ सके। इसे ही सामान्यतया माया (भ्रम) कहा जाता है।

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य यह इंगित करते हैं कि सार्वभौम भट्टाचार्य तो पहले ही श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भाव के लक्षण देख चुके हैं। प्रेम-भाव के ये असामान्य लक्षण परम पुरुष को सूचित करने वाले थे, किन्तु भट्टाचार्य इन लक्षणों को देख चुकने के बाद भी भगवान् की दिव्य प्रकृति को नहीं समझ पाये। वे भगवान् की लीलाओं को संसारी मान रहे थे। ऐसा माया के कारण था।

देखिले ना देखे तोरे बहिर्मुख जन।"
शुनि' हासि' सार्वभौम बलिल वचन॥९२॥

अनुवाद

"बहिरंगा शक्ति से प्रभावित व्यक्ति बहिर्मुखजन अर्थात् संसारी व्यक्ति कहलाता है, क्योंकि अनुभूति के बावजूद वह असली वस्तु को नहीं

समझ पाता।" गोपीनाथ आचार्य को यह कहते सुन कर सार्वभौम मुसकाये और इस प्रकार कहने लगे।

तात्पर्य

जब तक मनुष्य का हृदय स्वच्छ नहीं रहता तब तक वह अपने में भक्ति की दिव्य प्रकृति को जाग्रत नहीं कर सकता। जैसा कि *भगवद्गीता* में (७.२८) पुष्ट हुआ है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

"जिन लोगों ने पूर्वजन्म में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके सारे पाप दूर हो चुके हैं और जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं, वे ही संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में अपने को लगाते हैं।"

जब कोई सचमुच शुद्ध भक्ति में लगा होता है तो यह समझा जाता है कि उसे अपने सारे पापकर्मों के फलों से मुक्ति मिल चुकी है। पापी व्यक्ति, (*दुष्कृति*) कभी भक्ति नहीं करता, न ही केवल पाण्डित्यपूर्ण चिन्तन से कोई भक्ति में लग सकता है। शुद्ध भक्ति करने के लिए भगवत्कृपा की प्रतीक्षा करनी होती है।

इष्टगोष्ठी विचार करि, ना करिह रोष।
शास्त्रदृष्ट्ये कहि,—किछु ना लइह दोष॥९३॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "हम तो मित्रों के बीच होने वाली व्याख्या कर रहे हैं और शास्त्रों में वर्णित बातों पर विचार कर रहे हैं। आप क्रुद्ध न हों। मैं तो शास्त्रों के आधार पर ही बोल रहा हूँ। आप इसे अपराध न मानें।

महाभागवत हय चैतन्य-गोसाञि।
एइ कलिकाले विष्णुर अवतार नाइ॥९४॥

अनुवाद

"श्री चैतन्य महाप्रभु अवश्य ही महान एवं असाधारण भक्त हैं, किन्तु हम उन्हें भगवान् विष्णु का अवतार नहीं मान सकते क्योंकि शास्त्रों

के हिसाब से इस कलियुग में कोई अवतार नहीं होता।

अतएव 'त्रियुग' करि' कहि विष्णु-नाम।
कलियुगे अवतार नाहि,—शास्त्रज्ञान॥९५॥

अनुवाद

"भगवान् विष्णु का अन्य नाम त्रियुग है, क्योंकि कलियुग में उनका अवतार नहीं होता। यह शास्त्रों का निर्णय है।"

तात्पर्य

भगवान् विष्णु *त्रियुग* कहलाते हैं जिसका अर्थ होता है कि वे तीन युगों में प्रकट होते हैं। किन्तु इसका अर्थ है कि कलियुग में भगवान् प्रत्यक्ष रूप से नहीं, अपितु वेश बदल कर प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में (७.९.३८) हुई है—

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सत्वम्॥

"हे प्रभु! आप मनुष्यों, पशुओं, देवताओं, ऋषियों, जलचरों के परिवारों में विविध अतवार धारण करके संसार-भर के अपने सारे शत्रुओं का वध करते हैं। इस तरह आप अपने दिव्य ज्ञान से लोकों को प्रकाशित करते हैं। हे महापुरुष! कलियुग में आप प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए आप त्रियुग कहलाते हैं।"

श्रील श्रीधर स्वामी ने भी पुष्टि की है कि कलियुग में भगवान् विष्णु प्रकट तो होते हैं, किन्तु अन्य युगों जैसा कर्म नहीं करते। भगवान् विष्णु दो उद्देश्यों से अवतार लेते हैं—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—अर्थात् वे अपने भक्तों के साथ लीलाएँ करने और असुरों का संहार करने आते हैं। ये उद्देश्य सत्य, त्रेता तथा द्वापर युगों में दिखाई पड़ते हैं किन्तु कलियुग में भगवान् वेश बदल कर प्रकट होते हैं। वे प्रत्यक्षतः असुरों को मार कर श्रद्धालुओं को संरक्षण प्रदान नहीं करते। चूँकि कलियुग में भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता जबकि अन्य तीन युगों में प्रत्यक्ष जाने जाते हैं, अतएव उनका नाम त्रियुग है।

शुनिया आचार्य कहे दुःखी हञा मने।
शास्त्रज्ञ करिञा तुमि कर अभिमाने॥९६॥

अनुवाद

यह सुन कर आचार्य गोपीनाथ अत्यन्त दुखी हुए। उन्होंने भट्टाचार्य से कहा, "आप अपने को समस्त वैदिक शास्त्रों का ज्ञाता (शास्त्रज्ञ) मानते हैं।

भागवत-भारत दुइ शास्त्रेर प्रधान।
सेइ दुइग्रन्थ-वाक्ये नाहि अवधान॥९७॥

अनुवाद

"श्रीमद्भागवत तथा महाभारत दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण वैदिक शास्त्र हैं किन्तु आपने इनके कथनों पर कोई ध्यान नहीं दिया।"

सेइ दुइ कहे कलिते साक्षात्-अवतार।
तुमि कह,—कलिते नाहि विष्णुर प्रचार॥९८॥

अनुवाद

"इन दो शास्त्रों में कहा गया है कि स्वयं भगवान् अवतार लेते हैं किन्तु आप कह रहे हैं कि इस युग में भगवान् विष्णु का प्राकट्य या अवतार ही नहीं होता।

कलियुग लीलावतार ना करे भगवान्।
अतएव 'त्रियुग' करि' कहि तार नाम॥९९॥

अनुवाद

"कलियुग में भगवान् का कोई लीलावतार नहीं होता, इसीलिए वे त्रियुग कहलाते हैं और यह उनके नामों में से एक है।"

तात्पर्य

लीलावतार का अर्थ है भगवान् का अवतार जो बिना किसी प्रयास के नाना प्रकार के कार्य करता है। वे एक के बाद एक लीलाएँ करते हैं, और वे सब दिव्य आनन्द से पूर्ण होती हैं तथा परम पुरुष द्वारा नियन्त्रित होती हैं। इन लीलाओं में परम पुरुष सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। सनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय (चैतन्य-चरितामृत मध्य २०.२९६-९८) श्रील चैतन्य

महाप्रभु ने इंगित किया कि लीलावतारों की गिनती नहीं की जा सकती—

लीलावतार कृष्णेर न ग्राय गणन।
प्रधान करिया कहि दिग्दरशन॥

महाप्रभु ने सनातन से कहा, "किन्तु मैं प्रमुख लीलावतारों की व्याख्या करूँगा"—

मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिंह, वामन।
वराहादि—लेखा ग्राँर ना ग्राय गणन॥

इस तरह उन्होंने भगवान् के अवतारों की गणना की जिनमें मत्स्य, कूर्म, भगवान् रामचन्द्र, नृसिंहदेव, वामनदेव तथा वराह सम्मिलित हैं। इस प्रकार असंख्य लीलावतार हैं और ये सभी अद्भुत लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरणार्थ, वराह ने गर्भोदक सागर के गर्त से पृथ्वी-लोक को ऊपर निकाला। कूर्म समुद्र-मंथन के समय कीली बने और नृसिंह देव आधा पुरुष तथा आधा सिंह के रूप में प्रकट हुए। लीलावतारों के ये कतिपय अद्भुत तथा असाधारण गुण हैं।

श्रील रूप गोस्वामी ने *लघु भागवतामृत* नामक ग्रंथ में पच्चीस लीलावतारों के नाम गिनाये हैं। ये हैं—चतुःसन, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष (हयग्रीव), हंस, पृश्निगर्भ, ऋषभ, पृथु, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि।

श्री चैतन्य महाप्रभु का उल्लेख लीलावतार के रूप में नहीं हुआ क्योंकि वे प्रच्छन्न अवतार (*छन्न अवतार*) हैं। इस कलियुग में लीलावतार नहीं हैं, अपितु श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर में भगवान् का अवतार प्रकट है। *श्रीमद्भागवत* में इसकी व्याख्या हुई है।

प्रतियुगे करेन कृष्ण युग-अवतार।
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार॥१००॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य कहते गये, "प्रत्येक युग में एक अवतार होता है और ऐसा अवतार युग-अवतार कहलाता है। किन्तु आपका हृदय तर्क

के कारण इतना कठोर हो चुका है कि आप इन तथ्यों पर विचार ही नहीं करते।''

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१०१॥

अनुवाद

"भूतकाल में युग के अनुसार तुम्हारे पुत्र को तीन विभिन्न रंगों वाले शरीर प्राप्त हुए थे। ये रंग हैं श्वेत, लाल तथा पीत। इस (द्वापर) युग में उसने कृष्ण (श्याम) शरीर धारण किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१०.८.१३) है जिसे गर्गमुनि ने कृष्ण के नामकरण-संस्कार करते हुए कहा था। वे कहते हैं कि अन्य युगों में भगवान् के अवतार श्वेत, लाल तथा पीत रंग के थे। यह पीत रंग श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाने वाला है, क्योंकि उनके शरीर का वर्ण पीत था। इससे पुष्टि होती है कि अतीत कलियुगों में भगवान् ने अवतार लिया था जिसमें उनका रंग पीत था। यह ज्ञात है कि भगवान् विभिन्न युगों में विभिन्न रंगों में अवतार ग्रहण करते हैं। पीत रंग तथा उसी के अन्य गुणों को धारण कर भगवान् ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतार लिया। यह सारे वैदिक प्रमाणों का निर्णय है।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि तथा शृणु ॥१०२॥

अनुवाद

"इस कलियुग में तथा द्वापर युग में भी लोग विभिन्न मन्त्रों से भगवान् की स्तुति करते हैं और पूरक वैदिक ग्रंथों के नियमों का पालन करते हैं। अब आप मुझसे इसके विषय में सुनें।"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* से (११.५.३१) है।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥१०३॥

अनुवाद

"इस कलियुग में बुद्धिमान लोग हरे-कृष्ण-महामन्त्र का संकीर्तन करते हैं और भगवान् की पूजा करते हैं जो इस युग में सदैव कृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए प्रकट होते हैं। यह अवतार पीत वर्ण का होता है और अपने अंशों (यथा नित्यानन्द प्रभु) तथा स्वांशों (यथा गदाधर) के अतिरिक्त भक्तों तथा संगियों (यथा स्वरूप दामोदर) को साथ लिए रहता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (११.५.३२) है जिसकी व्याख्या श्रील जीव गोस्वामी अपनी कृति *क्रम सन्दर्भ* में करते हैं जिसको श्रील भक्तिविनोद ने आदिलीला (तृतीय अध्याय श्लोक ५१) की व्याख्या करते हुए उद्धृत किया है।

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः॥१०४॥

अनुवाद

"[गौरसुन्दर अवतार में] भगवान् का रंग सुनहरा है। उनका अत्यन्त सुगठित सारा शरीर पिघले सोने जैसा है। उनके शरीर पर चन्दन का लेप है। वे चतुर्थ आश्रम (संन्यास) ग्रहण करेंगे और आत्मसंयमी होंगे। वे मायावादी संन्यासियों से इस कारण पृथक होंगे कि वे भक्ति में स्थिर होंगे और संकीर्तन आन्दोलन का विस्तार करेंगे।"

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने यह श्लोक *महाभारत* से उद्धृत किया।

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन।
ऊसर-भूमिते येन बीजेर रोपण॥१०५॥

अनुवाद

तब गोपीनाथ आचार्य ने कहा, "अब शास्त्रों से और अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम शुष्क चिन्तक हो। ऊसर (बंजर) भूमि में बीज डालने से कोई लाभ नहीं होने का।

तोमार उपरे ताँर कृपा यबे हबे।
एसब सिद्धान्त तबे तुमिह कहिबे॥१०६॥

अनुवाद

"जब आप पर भगवान् प्रसन्न होंगे तो आप इन सारे निर्णयों को समझ सकेंगे और शास्त्रों से उद्धरण दे सकेंगे।"

तोमार ये शिष्य कहे कुतर्क, नानावाद।
इहार कि दोष—एइ मायार प्रसाद॥१०७॥

अनुवाद

"आपके शिष्यों के झूठे तर्क तथा दार्शनिक शब्दाडम्बर उनके दोष नहीं हैं। उन्हें केवल मायावाद दर्शन का प्रसाद प्राप्त हुआ है।

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै, विवाद-संवाद भुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं, तस्मै नमोऽनन्त गुणाय भूम्ने॥१०८॥

अनुवाद

"मैं उन श्री भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो असीम गुणसम्पन्न हैं और जिनकी विभिन्न शक्तियाँ विवादियों के बीच ऐक्य तथा विरोध लाने वाली हैं। इस तरह विवादियों को माया पुनः पुनः आवृत करती रहती हैं।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* का (६.४.३१) है।

युक्तं सन्ति सर्वत्र भासन्ते ब्राह्मणा यथा।
मायां मदीयाम् उद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम्॥१०९॥

अनुवाद

"प्रायः सभी मामलों में विद्वान ब्राह्मण जो भी कहते हैं वह मान्य होता है। जो मेरी माया की शरण में आता है और उसके वशीभूत होकर बोलता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में (११.२२.४) भगवान् बतलाते हैं कि उनकी

माया असम्भव को भी सम्भव बना सकती है—ऐसी है माया की शक्ति। दार्शनिक चिन्तकों ने अनेक बार असली सत्य को आवृत करते हुए मिथ्या सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। प्राचीनकाल में कपिल, गौतम, जैमिनि, कणाद तथा अन्य ब्राह्मणों ने व्यर्थ के *दार्शनिक* सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और आजकल तथाकथित वैज्ञानिक सृष्टि-विषयक अनेक मिथ्या सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका समर्थन वे प्रत्यक्षत: तर्कों द्वारा करते हैं। यह सब भगवान् की माया के प्रभाव से है। कभी-कभी माया सही प्रतीत होती है, क्योंकि यह परम सत्य से उद्भूत है। मोहित करने वाली माया के प्रभाव से बचने के लिए ही भगवान् के वचनों को यथारूप में स्वीकार करना चाहिए। तभी माया के प्रभाव से बचा जा सकता है।

तबे भट्टाचार्य कहे, ग्राह गोसाञिर स्थने।
आमार नामे गण-सहित कर निमन्त्रणे॥११०॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य से यह सुन कर सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "पहले आप उस स्थान को जायँ जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु ठहरे हैं और उन्हें उनके संगियों समेत, मेरी ओर से आमंत्रित करके यहाँ बुलाएँ।

प्रसाद आनि' ताँरे कराह आगे भिक्षा।
पश्चात् आसि' आमारे कराइह शिक्षा॥१११॥

अनुवाद

"जगन्नाथजी का प्रसाद लीजिये और सर्वप्रथम इसे चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगियों को दीजिये। उसके बाद यहाँ लौट कर तब मुझे भलीभाँति शिक्षा दीजिये।"

आचार्य-भगिनीपति, श्यालक भट्टाचार्य।
निन्दा-स्तुति-हास्ये शिक्षा करा' न आचार्य॥११२॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य सार्वभौम भट्टाचार्य के बहनोई थे, अतएव उनका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर तथा घनिष्ठ था। ऐसी स्थिति में, गोपीनाथ आचार्य ने उन्हें कुछ तो उनकी निन्दा करके, कुछ उनकी प्रशंसा करके और कुछ

उनका मजाक उड़ा करके सिखलाया। कुछ समय तक ऐसा ही चलता रहा।

आचार्येर सिद्धान्ते मुकुन्देर हैल सन्तोष।
भट्टाचार्येर वाक्ये मने हैल दुःख-रोष॥११३॥

अनुवाद

श्री मुकुन्द दत्त गोपीनाथ आचार्य के सिद्धान्तों को सुन कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए; किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य के कथनों को सुन कर वे अत्यन्त दुखी तथा रुष्ट हुए।

गोसाञिर स्थाने आचार्य कैल आगमन।
भट्टाचार्येर नामे ताँरे कैल निमन्त्रण॥११४॥

अनुवाद

सार्वभौम के आदेशानुसार गोपीनाथ आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पास गये और उन्हें भट्टाचार्य की ओर से आमन्त्रित किया।

मुकुन्द-सहित कहे भट्टाचार्येर कथा।
भट्टाचार्येर निन्दा करे, मने पाञा व्यथा॥११५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के सामने भट्टाचार्य के कथनों की व्याख्या की गई। गोपीनाथ आचार्य तथा मुकुन्द दत्त दोनों ने ही भट्टाचार्य के कथनों को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि उनसे मानसिक दुख पहुँचा।

शुनि महाप्रभु कहे ऐछे मत् कह।
आमा प्रति भट्टाचार्येर हय अनुग्रह॥११६॥

अनुवाद

यह सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप इस तरह न बोलें। सार्वभौम भट्टाचार्य मेरे प्रति अत्यन्त वत्सल एवं कृपालु हैं।

आमार संन्यास-धर्म चाहेन राखिते।
वात्सल्य करुणा करेन, कि दोष इहाते॥११७॥

अनुवाद

"वे मेरे प्रति वात्सल्य के कारण मेरी रक्षा करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि मैं संन्यासी के नियमों का पालन करूँ। इसमें कौन-सा दोष है?"

आर दिन महाप्रभु भट्टाचार्य-सने।
आनन्दे करिला जगन्नाथ दरशने॥११८॥

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु भट्टाचार्य के साथ जगन्नाथजी के मन्दिर दर्शन करने गये। दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे।

भट्टाचार्य-सङ्गे ताँर मन्दिरे आइला।
प्रभुरे आसन दिया आपने वसिला॥११९॥

अनुवाद

जब वे मन्दिर में पहुँचे तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु को आसन प्रदान किया और संन्यासी के आदरार्थ स्वयं फर्श पर बैठ गये।

वेदान्त पड़ाइते तबे आरम्भ करिला।
स्नेह-भक्ति करि' किछु प्रभुरे कहिला॥१२०॥

अनुवाद

तब उन्होंने चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-दर्शन पढ़ाना शुरू किया और स्नेह तथा भक्ति के कारण महाप्रभु से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित *वेदान्त* या *ब्रह्मसूत्र* ऐसा ग्रंथ है जिसका अध्ययन सभी सम्प्रदायों के संन्यासी करते हैं। वैदिक ज्ञान विषयक अन्तिम निष्कर्षों की स्थापना करने के लिए संन्यासियों को *वेदान्त-सूत्र* का अध्ययन करना आवश्यक है। हाँ, यहाँ जिस वेदान्त का उल्लेख हुआ है वह शंकराचार्य की टीका है जिसे *शारीरक भाष्य* कहते हैं। सार्वभौम भट्टाचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु को वैष्णव संन्यासी से मायावादी संन्यासी में बदलना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने शंकराचार्य कृत शारीरक भाष्य के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु को वेदान्त-सूत्र की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था। शंकर-सम्प्रदाय के

सारे संन्यासी इसी भाष्य को पढ़ते हैं। कहा गया है—*वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तः*—मनुष्य को चाहिए कि वेदान्त-सूत्र के अध्ययन में आनन्द ले।

वेदान्त-श्रवण,—एइ संन्यासीर धर्म।
निरन्तर कर तुमि वेदान्त श्रवण॥१२१॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "वेदान्त दर्शन को सुनना ही संन्यासी का मुख्य कर्तव्य है। अतएव आपको चाहिए कि बिना हिचक के वेदान्त-दर्शन का अध्ययन करें और श्रेष्ठ व्यक्ति से इसका निरन्तर श्रवण करें।"

प्रभु कहे,—'मोरे तुमि कर अनुग्रह।
सेइ से कर्तव्य, तुमि ग्रेइ मोरे कह॥'१२२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप मुझ पर अत्यन्त कृपालु हैं। अतएव आपका आदेश-पालन करना मेरा कर्तव्य है।"

सात दिन पर्यन्त ऐछे करेन श्रवणे।
भाल-मन्द नाहि कहे, वसि' मात्र शुने॥१२३॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदान्त-दर्शन का सात दिनों तक लगातार श्रवण किया। किन्तु न तो वे कुछ बोले, न ही इसका संकेत दिया कि यह सही है या गलत। वे केवल बैठे बैठे भट्टाचार्य की बातें सुनते रहे।

अष्टम-दिवसे ताँरे पूछे सार्वभौम।
सात दिन कर तुमि वेदान्त श्रवण॥१२४॥

अनुवाद

आठवें दिन सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "आप लगातार सात दिनों से मुझसे वेदान्त दर्शन सुन रहे हैं।

भालमन्द नाहि कह, रह मौन धरि'।
बुझ, कि ना बुझ,—इहा बुझिते ना पारि॥१२५॥

अनुवाद

"आप मौन धारण किये हुए सुनते रहे हैं। चूँकि आप यह नहीं कह रहे कि यह सही है या गलत, अतएव मैं यह नहीं समझ पा रहा कि आप वेदान्त-दर्शन को वास्तव में समझ पा रहे हैं या नहीं।"

प्रभु कहे—"मूर्ख आमि, नाहि अध्ययन।
तोमार आज्ञाते मात्र करिये श्रवण॥१२६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर में कहा, "मैं मूर्ख हूँ, फलतः मैंने वेदान्त-सूत्र का अध्ययन नहीं किया। चूँकि आपने आदेश दिया है, अतएव मैं आपको सुनने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

संन्यासीर धर्म लागि' श्रवण मात्र करि।
तुमि एइ अर्थ कर, बुझिते ना पारि॥"१२७॥

अनुवाद

मैं तो संन्यासी धर्म की पूर्ति के लिए ही सुनता हूँ। दुर्भाग्यवश आप जो कह रहे हैं उसका मैं कुछ भी अर्थ नहीं समझ पा रहा।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने को इस तरह प्रस्तुत कर रहे थे मानो वे नाम के संन्यासी हों अर्थात् अव्वल दर्जे के मूर्ख हों। भारत में मायावादी संन्यासी अपने को जगद्गुरु घोषित करने के आदी हैं, यद्यपि उन्हें बाह्य जगत की कोई सूचना नहीं होती और उनका अनुभव किसी छोटे नगर या गाँव या यों कह लें कि भारत के गाँव तक सीमित होता है। न ही ऐसे संन्यासियों को पर्याप्त शिक्षा मिली रहती है। दुर्भाग्यवश, इस समय भारत में तथा अन्यत्र भी ऐसे अनेक मूर्ख संन्यासी हैं, जो वैदिक साहित्य का अर्थ जाने बिना मात्र उसका अध्ययन करते हैं। जब श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप के मुस्लिम शासक चन्दकाजी से बातें कर रहे थे तो उन्होंने एक श्लोक सुनाया जिसका मन्तव्य था कि इस कलियुग में संन्यास-आश्रम वर्जित है। केवल वे ही संन्यास ग्रहण कर सकते हैं जो गम्भीर हैं और अनुष्ठानों का पालन एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने संन्यासी द्वारा वेदान्त-सूत्र या ब्रह्मसूत्र के पढ़े जाने का अनुमोदन तो किया, किन्तु उन्होंने

शंकराचार्य के शारीरक भाष्य का अनुमोदन नहीं किया। अन्यत्र, उन्होंने यहाँ तक कहा है—*मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश*—यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को सुनता है तो उसका सर्वनाश हो जाता है। अतएव संन्यासी को नियमपूर्वक वेदान्त-सूत्र का तो अध्ययन करना चाहिए, किन्तु शारीरक भाष्य नहीं पढ़ना चाहिए। यह श्री चैतन्य महाप्रभु का सिद्धान्त है। वेदान्त-सूत्र का असली भाष्य तो श्रीमद्भागवत है। *अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणाम्*—श्रीमद्भागवत ही साक्षात् श्रील व्यासदेव द्वारा विरचित वेदान्त-सूत्र का मूल भाष्य है।

भट्टाचार्य कहे,—ना बुझि', हेन ज्ञान य़ार।
बुझिबार लागि' सेह पुछे पुनर्बार॥१२८॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "मैं माने ले रहा हूँ कि आप नहीं समझ रहे, किन्तु जिसकी समझ में नहीं आता वह भी विषयवस्तु के विषय में जिज्ञासा करता है।"

तुमि शुनि' रह मौन मात्र धरि'।
हृदये कि आछे तोमार, बुझिते ना पारि॥१२९॥

अनुवाद

"आप लगातार सुन रहे हैं लेकिन मौन धारण किये हुए हैं। मेरी समझ में नहीं आ रहा कि आपके मन में है क्या?"

प्रभु कहे,—"सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल।
तोमार व्याख्या शुनि' मन हय त' विकल॥१३०॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने यह कहते हुए अपने मन की बात प्रकट की "मैं प्रत्येक सूत्र का अर्थ बहुत अच्छी तरह समझ सकता हूँ, किन्तु आपकी व्याख्या ने मेरे मन को विचलित कर दिया है।

तात्पर्य

वेदान्त-सूत्र के श्लोकों का वास्तविक अर्थ तो सूर्य-प्रकाश के समान स्पष्ट है। लेकिन मायावादी दार्शनिक सूर्य-प्रकाश को शंकराचार्य तथा उनके अनुयायियों

द्वारा कल्पित व्याख्याओं के बादल से आच्छादित करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं।

सूत्रेर अर्थ भाष्य कहे प्रकाशिया।
तुमि, भाष्य कह—सूत्रेर अर्थ आच्छादिया।।१३१।।

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र के श्लोकों के अर्थ का स्पष्ट तात्पर्य उन्हीं में निहित है, किन्तु आपने जितने अन्य तात्पर्य प्रस्तुत किये हैं वे सूत्र के अर्थ को बादल की तरह ढकने वाले हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक की व्याख्या के लिए कृपया आदिलीला (अध्याय ७, श्लोक १०६-१४६) देखें।

सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान।
कल्पानार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन।।१३२।।

अनुवाद

"आप ब्रह्मसूत्र का सीधा-साधा अर्थ नहीं बतला रहे। ऐसा लगता है कि आपका कार्य असली अर्थ को छिपाना है।

तात्पर्य

उन सारे मायावादियों या नास्तिकों की यह विशेषता है जो वैदिक साहित्य का अर्थ अपनी कल्पना से करते हैं। ऐसे मूर्ख लोगों का असली प्रयोजन सारे वैदिक साहित्य पर निर्विशेषवादी सिद्धान्त आरोपित करना रहता है। ये मायावादी नास्तिक *भगवद्गीता* की भी व्याख्या करते हैं। *भगवद्गीता* के प्रत्येक श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि कृष्ण भगवान् हैं। प्रत्येक श्लोक में व्यासदेव कहते हैं—*श्री भगवान् उवाच*—अर्थात् "भगवान् ने कहा।" यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् परम पुरुष हैं, किन्तु मायावादी नास्तिक तब भी यह सिद्ध करने के फेर में रहते हैं कि परम सत्य निर्विशेष हैं। वे अपने झूठे काल्पनिक अर्थ प्रस्तुत करने के लिए इतने वाक्जाल तथा व्याकरणिक व्याख्या का सहारा लेते हैं कि अन्ततोगत्वा वे हास्यास्पद लगने लगते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि किसी भी वैदिक साहित्य

की मायावादी व्याख्या नहीं सुननी चाहिए।

उपनिषद्-शब्दे ग्रेइ मुख्य अर्थ हय।
सेइ अर्थ मुख्य,—व्याससूत्रे सब कय॥१३३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "वेदान्त-सूत्र समस्त उपनिषदों का सार है। इसलिए उपनिषदों में जो भी मुख्य अर्थ है, वह सब वेदान्त-सूत्र या व्यास-सूत्र में भी अंकित है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने अपने *अनुभाष्य* में *उपनिषद्* शब्द की व्याख्या की है। इसके लिए देखें आदिलीला, अध्याय २, श्लोक ५ तथा आदिलीला अध्याय ७ श्लोक १०६ तथा १०८।

मुख्यार्थ छाड़िया कर गौणार्थ कल्पना।
'अभिधा'-वृत्ति छाड़ि' कर शब्देर लक्षणा॥१३४॥

अनुवाद

"प्रत्येक श्लोक के मुख्य अर्थ को बिना किसी व्याख्या के स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु आप तो मुख्य अर्थ को छोड़ कर अपने कल्पनाप्रसूत अर्थ को लेकर बढ़ते हैं।

प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण—प्रधान।
श्रुति ग्रे मुख्यार्थ कहे, सेइ से प्रमाण॥१३५॥

अनुवाद

"यद्यपि अन्य प्रमाण भी हैं, किन्तु वैदिक प्रमाण को सर्वोपरि मानना चाहिए। यदि वैदिक प्रमाणों को सीधे समझ लिया जाय तो वे प्रथम श्रेणी के प्रमाण होते हैं।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में जिन ग्रंथों को देखना चाहिए वे हैं—श्रील जीव गोस्वामी कृत *तत्त्व-सन्दर्भ* (१०-११), उस पर श्रील बलदेव विद्याभूषण का भाष्य तथा *ब्रह्मसूत्र* के—*शास्त्र योनित्वात्* (१.१.३) *तर्काप्रतिष्ठानात्* (२.१.११) तथा

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् (२.१.२७) श्लोकों की श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य तथा श्रील बलदेव द्वारा की गई टीकाएँ। श्रील जीव गोस्वामी ने *सर्व-संवादिनी* नामक पुस्तक में दस प्रकार के प्रमाण दिये हैं—प्रत्यक्ष अनुभव, वैदिक, ऐतिहासिक सन्दर्भ, संकल्पना आदि और यद्यपि इन सबों को प्रमाण माना जाता है, किन्तु संकल्पना प्रस्तुत करने वाला, वैदिक प्रमाण पढ़ने वाला व्यक्ति अनुभव द्वारा चार प्रकार से अपूर्ण रह सकता है। यथा—वह त्रुटि कर सकता है, भ्रमित हो सकता है, धोखा दे सकता है और उसकी इन्द्रियाँ अपूर्ण हो सकती हैं। यद्यपि प्रमाण सही हो सकता है, किन्तु व्यक्ति अपने भौतिक दोषों के कारण गुमराह हो सकता है। प्रत्यक्ष प्रस्तुति के अलावा भी सम्भावना बनी रहती है कि व्याख्या पूर्ण न हो। इसीलिए निष्कर्ष यह है कि प्रत्यक्ष प्रस्तुति को ही प्रमाण माना जाता है। व्याख्या को प्रमाण नहीं माना जा सकता, उसे तो प्रमाण की उपपत्ति माना जा सकता है।

भगवद्गीता के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

धृतराष्ट्र उवाच
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्त सञ्जय॥

भगवद्गीता का कथन है कि कुरुक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में युद्ध के लिए कौरव तथा पाण्डव एकत्र हुए। एकत्र होने के बाद उन्होंने क्या किया? यही प्रश्न था धृतराष्ट्र का सञ्जय से। यद्यपि ये कथन अत्यन्त स्पष्ट हैं, किन्तु नास्तिक लोग *धर्मक्षेत्र* तथा *कुरुक्षेत्र* शब्दों का भिन्न अर्थ निकालने की चेष्टा करते हैं। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी ने किसी प्रकार की व्याख्या पर आश्रित न रहने की चेतावनी दी है। अच्छा तो यही होगा कि श्लोकों की व्याख्या किये बिना ही उन्हें उसी रूप में स्वीकार किया जाय।

जीवेर अस्थि-विष्ठा दुइ—शंख-गोमय।
श्रुति वाक्ये सेइ दुइ महा-पवित्र हय॥१३६॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "शंख तथा गोबर किन्हीं जीवों की अस्थियाँ या विष्ठा हैं, किन्तु श्रुतिवाक्य है कि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं।

तात्पर्य

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्थियाँ तथा विष्ठा अत्यन्त अशुद्ध माने जाते हैं। यदि कोई इन्हें छू भी ले तो उसे तुरन्त स्नान करना पड़ता है। यही वैदिक आदेश है। फिर भी वेदों का यह भी कथन है कि पशु की अस्थि होने पर भी शंख तथा पशु की विष्ठा होने पर भी गोबर अत्यन्त पवित्र हैं। यद्यपि ऐसे कथन विरोधी प्रतीत होते हैं फिर भी हम श्रुतिवाक्य मान कर शंख तथा गोबर को शुद्ध तथा पवित्र मानते हैं।

स्वत:प्रमाण वेद सत्य ग्रेइ कय।
'लक्षणा' करिले स्वत:प्रामाण्य-हानि हय॥१३७॥

अनुवाद

"वैदिक कथन स्वतः प्रमाण होते हैं। उनमें जो कुछ कहा रहता है उसे स्वीकार करना होता है। यदि हम अपनी कल्पना से उसकी व्याख्या करते हैं तो वैदिक प्रमाण की तुरन्त हानि हो जाती है।"

तात्पर्य

प्रधान प्रमाण चार प्रकार के हैं—प्रत्यक्ष अनुभव, कल्पना (अनुमान), ऐतिहासिक सन्दर्भ (ऐतिह्य) तथा वेद। इनमें से वैदिक प्रमाण सर्वोपरि है। यदि हम श्रुतिवाक्य (वैदिक वाणी) की व्याख्या करना चाहते हैं तो हमें अपनी इच्छा के अनुसार कल्पना करके व्याख्या करनी होगी। सर्वप्रथम हम ऐसी व्याख्या को प्रस्ताव या संकल्पना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। फलतः यह वास्तविक रूप में सत्य नहीं होती और स्वतः प्रमाण की हानि होती है।

श्रील मध्वाचार्य ने *दृष्यते तु* (वेदान्त सूत्र २.१.६) सूत्र की टीका करते हुए *भविष्य पुराण* का निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च भारतं पञ्चरात्रकम्।
मूलरामायणं चैव वेद इत्येव शब्दिताः॥

पुराणानि च यानीह वैष्णवानि विदो विदुः।
स्वतः प्रामाण्यमेतेषां नात्र किञ्चिद् विचार्यते॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, पञ्चरात्र तथा मूल रामायण वैदिक ग्रंथ माने जाते हैं। सारे पुराण (यथा ब्रह्मवैवर्त पुराण, नारायण पुराण,

विष्णु पुराण, भागवत पुराण आदि) वैष्णवों के निमित्त हैं, किन्तु वे भी वैदिक ग्रंथ हैं। अतएव, पुराणों, महाभारत तथा रामायण में जो भी कहा गया है वह स्वतः प्रमाण है। इनकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। चूँकि *भगवद्गीता* महाभारत के अन्तर्गत आया है, अतएव *भगवद्गीता* के सारे कथन स्वतः प्रमाण हैं। फलतः इनकी व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि हम ऐसा करते हैं तो वैदिक साहित्य का समस्त प्रमाण जाता रहता है।

व्यास-सूत्रेर अर्थ—य़ैछे सूर्येर किरण।
स्वकल्पित भाष्य-मेघे करे आच्छादन।।१३८।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "श्रील व्यासदेव द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र सूर्य के समान तेजस्वी है। जो कोई इसके अर्थ की व्याख्या करने की चेष्टा करता है वह सूर्य के प्रकाश को बादल से आच्छादित करता है।

वेद-पुराणे कहे ब्रह्म-निरूपण।
सेइ ब्रह्म—बृहद्वस्तु, ईश्वर-लक्षण।।१३९।।

अनुवाद

"सारे वैदिक साहित्य तथा वैदिक सिद्धान्तों का अनुगमन करने वाले अन्य साहित्य का निश्चित मत है कि परब्रह्म ही परम सत्य है और भगवान् का स्वरूप है।

तात्पर्य

श्रीकृष्ण सर्वोच्च हैं। *भगवद्गीता* में (१५.१५) भगवान् कृष्ण कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों के द्वारा मैं ही जाना जाने योग्य हूँ। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है कि परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान्, इन तीन अवस्थाओं में समझा जाता है (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*)। अतएव परम सत्य अर्थात् ब्रह्म को जानने के लिए भगवान् ही अन्तिम शब्द है।

सर्वैश्वर्यपरिपूर्ण स्वयं भगवान्।
ताँरे निराकार करि' करह व्याख्यान॥१४०॥

अनुवाद

"वास्तव में परम सत्य एक पुरुष है जो सभी ऐश्वर्यों से युक्त है। आप उसे ही निराकार तथा निर्विशेष के रूप में बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्म का अर्थ है *बृहत्त्व* अर्थात् सबों से बड़ा। भगवान् कृष्ण सबों से बड़े हैं। उनमें सारी शक्तियाँ तथा सारे ऐश्वर्य हैं। अतएव परम सत्य जो सबों से बड़ा है वही भगवान् है। कोई चाहे "ब्रह्म" कहे या "भगवान्"—बात एक ही है, क्योंकि ये अभिन्न हैं। *भगवद्गीता* में अर्जुन ने कृष्ण को *परं ब्रह्म परं धाम* के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि कभी-कभी जीवों को अथवा प्रकृति को भी ब्रह्म कहा जाता है, किन्तु फिर भी परंब्रह्म—सभी ब्रह्मों में श्रेष्ठ—श्रीकृष्ण ही हैं। वे सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, अतः उनके पास सारी सम्पत्ति, सारा बल, सारा यश, सारा ज्ञान, सारा सौन्दर्य तथा सारा त्याग रहता है। वे नित्य पुरुष हैं और नित्य परम हैं। यदि कोई निराकार कह कर उनकी व्याख्या करता है तो वह ब्रह्म के असली अर्थ को बिगाड़ता है।

'निर्विशेष' ताँरे कहे ग्रेइ श्रुतिगण।
'प्राकृत' निषेधि करे 'अप्राकृत' स्थापन॥१४१॥

अनुवाद

"वेदों में जहाँ कहीं भी निराकार वर्णन हुआ है, वहाँ वेदों का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि भगवान् से सम्बन्धित हर वस्तु दिव्य है और संसारी गुणों से सर्वथा स्वतन्त्र है।"

तात्पर्य

भगवान् के विषय में अनेक निर्विशेष कथन मिलते हैं। जैसा कि *श्वेताश्वतर उपनिषद* में (३.१९) कहा गया है—

अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

यद्यपि भगवान् को बिना हाथों और पैरों के बतलाया गया है, फिर भी वे यज्ञों की सारी आहुतियाँ स्वीकार करते हैं। यद्यपि उनके आँखें नहीं हैं, फिर भी वे हर वस्तु को देखते हैं। यद्यपि उनके कान नहीं हैं, किन्तु वे सब सुनते हैं। जब यह कहा जाता है कि भगवान् के हाथ, पैर नहीं है तो हमें यह नहीं सोचना चाहिए वे निराकार या निर्विशेष हैं। प्रत्युत यह कि हमारी तरह उनके संसारी हाथ या पाँव नहीं हैं। "उनके आँखें नहीं हैं फिर भी वे हर वस्तु देखते हैं"—इसका यह अर्थ है कि हमारी तरह उनकी संसारी सीमित आँखें नहीं हैं। प्रत्युत यह कि उनके ऐसी आँखें हैं जिनसे वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य को, ब्रह्माण्ड के कोने-कोने को और सारे जीवों के हृदय के कोने-कोने को झाँक सकते हैं। इस तरह वेदों के निर्विशेष वर्णनों का आशय भगवान् में संसारी गुणों का निषेध करना है। भगवान् को निर्विशेष रूप में स्थापित करने का तनिक भी इरादा नहीं होता उनका।

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां प्रायो बलीयः सविशेषमेव॥१४२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जो भी वैदिक मन्त्र परम सत्य को निराकार बतलाते हैं, वे अन्त में यही सिद्ध करते हैं कि परम सत्य एक पुरुष है। भगवान् निराकार तथा साकार इन दो रूपों में समझे जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति भगवान् को इन दोनों रूपों में मानता है तो वह सचमुच परम सत्य को समझ सकता है। वह जानता है कि साकार ज्ञान सशक्त है, क्योंकि हम देखते हैं कि हर वस्तु विविधता से पूर्ण है। कोई व्यक्ति ऐसी वस्तु नहीं देख सकता जो विविधता से पूर्ण न हो।"

ब्रह्म हैते जन्मे विश्व, ब्रह्मेते जीवय।
सेइ ब्रह्मे पुनरपि हये ग्राय लय॥१४३॥

अनुवाद

"इस विराट जगत की हर वस्तु परम सत्य से उत्पन्न होती है, उसी में रहती है और प्रलय के बाद पुनः परम सत्य में प्रवेश करती है।

तात्पर्य

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते*—परब्रह्म से सम्पूर्ण जगत उत्पन्न होता है। *ब्रह्मसूत्र* का भी श्रीगणेश इस श्लोक (१.१.२) से होता है—*जन्माद्यस्य यतः*—परम सत्य वह है जिससे प्रत्येक वस्तु उद्भूत होती है। यह परम सत्य कृष्ण है। *भगवद्गीता* में (१०.८) कृष्ण कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मैं सारे आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों का उद्गम हूँ। मुझी से हर वस्तु उत्पन्न होती है। अतएव कृष्ण ही आदि परम सत्य भगवान् हैं। *भगवद्गीता* में ही (९.४) कृष्ण कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—यह सारा जगत मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है। और जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में (५.३७) पुष्टि हुई है—*गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः*—यद्यपि भगवान् सदैव अपने धाम गोलोक वृन्दावन में निवास करते हैं, फिर भी वे सर्वव्यापक हैं। उनका सर्वव्यापक रूप निराकार माना जाता है, क्योंकि किसी को भगवान् का यह रूप उनकी सर्वव्यापकता में नहीं मिलता। वास्तव में हर वस्तु उनके शारीरिक तेज की किरणों पर आश्रित रहती है। *ब्रह्म-संहिता* में भी (५.४०) आया है—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि।
कोटिष्वशेषवसुधादिविभूति भिन्नम् ॥

"भगवान् के शारीरिक तेज की किरणों के कारण लाखों लोकों की सृष्टि होती है, जिस प्रकार सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति होती है।"

'अपादान,' 'करण' 'अधिकरण'-कारक तिन।
भगवानेर सविशेष एइ तिन चिह्न॥१४४॥

अनुवाद

"भगवान् के साकार स्वरूप की तीन श्रेणियाँ की जाती हैं—अपादान, करण तथा अधिकरण।

तात्पर्य

अपने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि उपनिषदों के आदेशानुसार सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्म अर्थात् परम सत्य से उत्पन्न हुआ है। इस सृष्टि का पालन परब्रह्म की शक्ति द्वारा होता है और प्रलय के बाद यह परब्रह्म में लीन हो जाती है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि परम सत्य की तीन श्रेणियाँ की जा सकती हैं—अपादान, करण तथा अधिकरण। तीन कारकों के अनुसार परम सत्य को साकार रूप दिया जाता है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती *ऐतरेय उपनिषद* से (१.१.१) उद्धरण देते हैं—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्
नान्यत् किञ्चनम् ईषत्
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥

इसी प्रकार *श्वेताश्वतर उपनिषद* में (४.९) कह गया है—

छंदांसि यज्ञा: क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति
यस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्ध:॥

तैत्तिरीय उपनिषद में भी (३.१.१)—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते
येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति,
तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म॥

जब वारुणी भृगु ने परम सत्य के विषय में अपने पिता वरुण से प्रश्न किया तो वरुण ने यही उत्तर दिया था। इस मन्त्र में *यत:* शब्द, जो परम सत्य का सूचक है और जिनसे यह विश्व उत्पन्न हुआ है, अपादान कारक में है। जिस ब्रह्म द्वारा (*येन*) इस विश्व का पालन होता है वह करण कारक है और वह ब्रह्म जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि विलीन होती है (*यत्* या *यस्मिन्*) वह अधिकरण कारक है। *श्रीमद्भागवत* में (१.५.२०) कहा गया है—

इदं हि विश्वं भगवान् इवेतरो
यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवा: ॥

"सम्पूर्ण जगत भगवान् के विराट रूप में समाया हुआ है। हर वस्तु उनसे उत्पन्न होती है, उनकी शक्ति पर टिकी है और संहार के बाद उन्हीं में फिर से लीन हो जाती है।"

भगवान् बहु हैते य़बे कैल मन।
प्राकृत-शक्तिते तबे कैल विलोकन॥१४५॥
से काले नाहि जन्मे 'प्राकृत' मनोनयन।
अतएव 'अप्राकृत' ब्रह्मेर नेत्र-मन॥१४६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जब भगवान् ने चाहा कि अनेक हो जायें तो उन्होंने भौतिक शक्ति पर दृष्टि डाली। सृष्टि के पूर्व भौतिक नेत्र या मन नहीं थे, अतएव परम सत्य के मन तथा नेत्रों की दिव्य प्रकृति पुष्ट होती है।

तात्पर्य

छान्दोग्य उपनिषद में (६.२.३) कहा गया है—*तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय*। इस श्लोक से इसकी पुष्टि होती है कि जब भगवान् अनेक बनना चाहते हैं तो भौतिक शक्ति के ऊपर दृष्टिपात मात्र से ही विश्व उत्पन्न हो जाता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इस विश्व की सृष्टि के पूर्व भगवान् ने भौतिक प्रकृति के ऊपर दृष्टिपात किया। सृष्टि के पूर्व न तो भौतिक मन था, न भौतिक नेत्र; अतएव भगवान् ने जिस मन से सृष्टि करनी चाही वह दिव्य है और जिन आँखों से उन्होंने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया वे भी दिव्य हैं। इस प्रकार भगवान् का मन, नेत्र तथा अन्य इन्द्रियाँ दिव्य हैं।

ब्रह्म-शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान्।
स्वयं भगवान् कृष्ण—शास्त्रेर प्रमाण॥१४७॥

अनुवाद

"ब्रह्म शब्द पूर्ण भगवान् का द्योतक है जो स्वयं श्रीकृष्ण हैं। यही

समस्त वैदिक साहित्य का निर्णय है।"

तात्पर्य

इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी (१५.१५) हुई है जहाँ भगवान् कहते हैं—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*। समस्त वैदिक साहित्य का चरम ध्येय कृष्ण हैं। हर कोई उन्हें ही खोजता है। इसकी भी पुष्टि *भगवद्गीता* में (७.१९) हुई है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

"जो वास्तव में ज्ञानवान है, वह अनेकानेक जन्म-जन्मान्तरों के बाद मुझे ही समस्त कारणों का कारण जान कर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ होता है।"

जब कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का अध्ययन करके सचमुच ज्ञानवान बन जाता है तो वह वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में चला जाता है। इसकी भी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में (१.२.७-८) हुई है—

वासुदेव भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नात्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

वासुदेव को जान लेना ही असली ज्ञान है। वासुदेव कृष्ण की भक्ति में लग कर मनुष्य पूर्ण ज्ञान तथा वैदिक जानकारी प्राप्त करता है। इस तरह वह भौतिक जगत से विरक्त हो जाता है। यही मानव जीवन की पूर्णता है। यदि यह पूर्णता प्राप्त नहीं हो पाती तो मनुष्य चाहे जो भी धार्मिक अनुष्ठान करे तथा उत्सव मनाये, यह सब समय का अपव्यय मात्र है (*श्रम एव हि केवलम्*)।

विश्व के सृजन के पूर्व भगवान् के दिव्य मन तथा नेत्र थे। वह भगवान् कृष्ण हैं। कोई व्यक्ति यह सोच सकता है कि उपनिषदों में कृष्ण का सीधा उल्लेख नहीं है, किन्तु असलियत यह है कि वैदिक मन्त्रों को संसारी इन्द्रिओं से नहीं समझा जा सकता। जैसा कि *पद्म-पुराण* का कथन है—*अतः श्रीकृष्ण नामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियैः*—संसारी इन्द्रियों वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण के

गुणों, रूप और लीलाओं को पूरी तरह नहीं समझ सकता। इसलिए सारे पुराण वैदिक ज्ञान की व्याख्या करने और उसके पूरक बनने के निमित्त हैं। बड़े-बड़े ऋषियों-मुनियों ने जनसामान्य के लिए (*स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनाम*) वैदिक मन्त्र सुलभ बनाने के लिए पुराणों की रचना की। यह विचार कर कि स्त्रियाँ, शूद्र तथा द्विज बन्धु (द्विजों के अयोग्य पुत्र) वैदिक स्तोत्रों को ठीक से नहीं समझ सकते, श्रील व्यासदेव ने *महाभारत* की रचना की। वास्तव में भगवान् *वेदेषु दुर्लभम्* (वेदों में अप्राप्य) हैं किन्तु जब वेदों को ठीक से समझ लिया जाता है अथवा भक्तों से वैदिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है तो मनुष्य यह समझ पाता है कि सारे वैदिक ज्ञान का अन्त श्रीकृष्ण में होता है।

ब्रह्मसूत्र (१.१.३) से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है—*शास्त्र योनित्वात्*। इस सूत्र की टीका करते हुए श्री मध्वाचार्य कहते हैं—"ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, महाभारत, पञ्चरात्र तथा मूल वाल्मीकि रामायण—ये सभी वैदिक साहित्य हैं। जो भी साहित्य इस वैदिक साहित्य के निष्कर्षों का अनुसरण करता है, वह भी वैदिक साहित्य माना जाता है। और जो साहित्य वैदिक साहित्य के अनुरूप नहीं है, वह भ्रामक है।" अतएव वैदिक साहित्य का अध्ययन करते समय हमें महान् आचार्यों द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करना चाहिए—*महाजनो येन गत: स पन्था:*। ऐसा किये बिना वेदों के असली तात्पर्य को नहीं समझा जा सकता।

वेदेर निगूढ़ अर्थ बुझन ना हय।
पुराण-वाक्ये सेइ अर्थ करय निश्चय॥१४८॥

अनुवाद

"सामान्य जन आसानी से वेदों के गूढ़ अर्थ को नहीं समझ पाते, इसलिए उसकी पूर्ति पुराणों के वाक्यों द्वारा की जाती है।"

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजोकसाम्।
यन्मित्रः परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥१४९॥

अनुवाद

"नन्द महाराज, गोप तथा व्रजभूमि के सारे निवासी कितने भाग्यशाली हैं। उनके भाग्य का कोई अन्त नहीं है, क्योंकि दिव्य आनन्द के स्रोत

परब्रह्म परम सत्य उनके मित्र बन चुके हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१०.१४.३२) है जिसे ब्रह्माजी ने कहा था।

'अपाणि-पाद'-श्रुति वर्जे 'प्राकृत' पाणि-चरण।
पुनः कहे, शीघ्र चले, करे सर्व ग्रहण।।१५०।।

अनुवाद

" *अपाणिपाद*—यह वैदिक मन्त्र भौतिक हाथों तथा पाँवों का निषेध करता है, किन्तु फिर भी यह बतलाता है कि भगवान् शीघ्र चलते हैं और अर्पित की जाने वाली हर वस्तु को ग्रहण करते हैं।"

अतएव श्रुति कहे, ब्रह्म—सविशेष।
'मुख्य' छाड़ि' 'लक्षणा' ते माने निर्विशेष।।१५१।।

अनुवाद

"ये सारे मन्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि परम सत्य साकार है, किन्तु मायावादीजन शब्दार्थ को त्याग कर परम सत्य की व्याख्या निराकार या निर्विशेष के रूप में करते हैं।

तात्पर्य

श्वेताश्वतर उपनिषद के अनुसार (३.१९)

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।

यह वैदिक मन्त्र स्पष्ट कहता है—*पुरुषं महान्तम्*। इस पुरुष की पुष्टि *भगवद्गीता* में (१०.१२) अर्जुन द्वारा की जाती है, जब वे कृष्ण को *पुरुषं शाश्वतम्* (आप आदि पुरुष हैं) कह कर सम्बोधित करते हैं। यह *पुरुषं महान्तम्* श्रीकृष्ण हैं। उनेक हाथ-पाँव संसारी नहीं हैं, अपितु पूर्णतया दिव्य हैं। किन्तु जब वे आते हैं तो मूर्ख लोग उन्हें सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (*अवजानन्ति मां मूढा: मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। जिसे वैदिक ज्ञान नहीं है, जिसने प्रामाणिक गुरु से वेदों का अध्ययन नहीं किया वह कृष्ण को नहीं जान पाता। अतएव

वह *मूढ़* है। ऐसे मूर्ख लोग कृष्ण को सामान्य व्यक्ति मान बैठते हैं (*परं भावमजानन्तः*)। वे वास्तविक रूप में जान ही नहीं पाते कि कृष्ण क्या हैं। *मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये*। केवल वेदों का सम्यक् अध्ययन करने से कृष्ण को नहीं समझा जा सकता। किसी भक्त (*यत्पादम्*) की कृपा प्राप्त होना आवश्यक है। भक्त की कृपा हुए बिना भगवान् को नहीं समझा जा सकता। *भगवद्गीता* में अर्जुन भी इसकी पुष्टि करते हैं, "हे प्रभु! आपको समझ पाना अत्यन्त कठिन है।" अल्पज्ञानी व्यक्ति भगवान् के भक्त की कृपा के बिना भगवान् को नहीं समझ सकते। इसीलिए *भगवद्गीता* में (४.३४) एक अन्य आदेश है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

मनुष्य को प्रामाणिक गुरु के पास जाकर उसकी शरण लेनी होती है। तभी वह भगवान् को पुरुष रूप में समझ सकता है।

षड़ैश्वर्य पूर्णानन्द-विग्रह य़ाँहार।
हेन-भगवाने तुमि कह निराकार?१५२॥

अनुवाद

"जिस भगवान् का दिव्य स्वरूप छह ऐश्वर्यों से युक्त है, उसे निराकार कह रहे हैं?"

तात्पर्य

यदि भगवान् निराकार है तो फिर वह तेजी से चलता और अर्पित की गई वस्तुओं को स्वीकार करता कैसे कहा जाता है? मायावादी दार्शनिक वैदिक मन्त्रों के शब्दार्थ का निषेध करके उनकी व्याख्या करते हैं और परम सत्य को निराकार बतलाने की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः भगवान् नित्य, साकार तथा ऐश्वर्यों से युक्त हैं। मायावादी दार्शनिक परम सत्य की व्याख्या शक्तिरहित कह कर करते हैं। किन्तु *श्वेताश्वतर उपनिषद* में (६.८) स्पष्ट कहा गया है—*परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते*—परम सत्य की शक्तियाँ अनेक हैं।

स्वाभाविक तिन शक्ति य़ेइ ब्रह्मे हय।
'निःशक्तिक' करि' ताँरे करह निश्चय?१५३॥

अनुवाद

"भगवान् के तीन मूल शक्तियाँ होती हैं। तो क्या आप यह निश्चय करना चाहते हैं कि उनके शक्तियाँ नहीं होतीं?"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु भगवान् की विभिन्न शक्तियाँ बतलाने के लिए *विष्णु पुराण* के चार श्लोक (६.७.६१-६३ तथा १.१२.६९) उद्धृत कर रहे हैं।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥१५४॥

अनुवाद

"भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति आध्यात्मिक है, जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है। एक अन्य आध्यात्मिक शक्ति क्षेत्रज्ञ या जीव कहलाती है। तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है, जो जीव को ईश्वरविहीन (निरीश्वर) बनाती है और उसे सकाम कर्म से पूरित करती है।

तात्पर्य

भगवद्गीता में *क्षेत्र* तथा *क्षेत्रज्ञ* के विषय में कृष्ण की वार्ता के दौरान यह कहा गया है कि जीव *क्षेत्रज्ञ* है जो अपने कर्म के क्षेत्र को जानता है। भौतिक जगत में सारे जीव भगवान् के प्रति अपने सम्बन्ध को भूले रहते हैं। यह विस्मृति *अविद्या* कहलाती है। यह अविद्या शक्ति सकाम कर्म के लिए प्रोत्साहित करती है। यद्यपि यह अविद्या शक्ति भी भगवान् की शक्ति है, किन्तु यह जीवों द्वारा भगवान् के प्रति विद्रोह का कारण है। इस प्रकार सारे जीव वैधानिक रूप से आध्यात्मिक होते हुए अविद्या शक्ति के प्रभाव में आ जाते हैं। यह जिस प्रकार होता है उसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्ठिता नृप सर्वगा।
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यत्र सन्ततान्॥१५५॥

अनुवाद

"हे राजन्! क्षेत्रज्ञ शक्ति जीव है। यद्यपि उसे भौतिक अथवा आध्यात्मिक जगत में रहने की सुविधा प्राप्त है, किन्तु वह अविद्या शक्ति के वशीभूत

होकर भौतिक जगत के तीन प्रकार के कष्टों को भोगता है क्योंकि यह शक्ति उसकी वैधानिक स्थिति को आच्छादित कर लेती है।

तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता।
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन वर्तते॥१५६॥

अनुवाद

"अविद्या के प्रभाव में आया हुआ यह जीव अनेक रूपों में विद्यमान रहता है। हे राजन्! इस तरह वह कम या अधिक मात्रा में भौतिक शक्ति के प्रभाव से मुक्त रहता है।"

तात्पर्य

भौतिक शक्ति जीव पर विभिन्न मात्राओं में प्रभाव दिखलाती है। यह प्रभाव जीव द्वारा भौतिक प्रकृति के तीन गुणों का सान्निध्य प्राप्त करने पर निर्भर करता है। कुल ८४ लाख योनियाँ हैं जिनमें से कुछ निम्न हैं, कुछ उच्च और कुछ मध्यम। शरीरों का श्रेणीकरण भौतिक शक्ति के आच्छादन के अनुसार परिगणित होता है। निम्न श्रेणियों में—यथा जलचर, वृक्ष, कीड़े, पक्षी आदि में आध्यात्मिक चेतना का प्राय: अभाव रहता है। मध्य श्रेणी में—जिसमें मनुष्य आता है, आध्यात्मिक चेतना अपेक्षतया अधिक जाग्रत रहती है। तब जीव अपनी असली स्थिति को समझता है और कृष्णभावनामृत उत्पन्न करके भौतिक शक्ति के प्रभाव से बचने की चेष्टा करता है।

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुण-वर्जिते॥१५७॥

अनुवाद

"भगवान् सच्चिदानन्द विग्रह हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें मूलत: तीन शक्तियाँ हैं—ह्लादिनी (आनन्द), सन्धिनी (नित्यता) तथा सम्वित् (ज्ञान-शक्ति)। ये सभी मिल कर चित् शक्ति कहलाती हैं और भगवान् में पूरी तरह पाई जाती हैं। भगवान् के अंशरूप जीवों में ह्लादिनी शक्ति कभी अरुचिकर होती है और कभी मिश्रित होती है। किन्तु भगवान् के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि वे भौतिक शक्ति या उसके गुणों के प्रभाव में नहीं होते।"

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु पुराण* का (१.१२.६९) है।

सच्चिदानन्दमय हय ईश्वर-स्वरूप।
तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप॥१५८॥

अनुवाद

"अपने आदि रूप में भगवान् सत्, ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण हैं। इन तीनों अंशों (सत्, चित्, आनन्द) में आध्यात्मिक शक्ति तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है।

तात्पर्य

समस्त वैदिक साहित्य के अनुसार भगवान्, जीव तथा माया (यह भौतिक जगत) ज्ञान के विषय हैं। हर व्यक्ति को इनके मध्य जो सम्बन्ध है, उसे समझने की चेष्टा करनी चाहिए। सर्वप्रथम उसे भगवान् का स्वभाव जानने की चेष्टा करनी चाहिए। शास्त्रों से पता चलता है कि भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं। जैसा कि श्लोक १५४ में कहा गया है (*विष्णु शक्तिः पराप्रोक्ता*) भगवान् समस्त शक्तियों के आगार हैं और ये सारी शक्तियाँ आध्यात्मिक हैं।

आनन्दांशे 'ह्लादिनी' सदंशे 'सन्धिनी'।
चिदंशे 'सम्वित्', य़ारे ज्ञान करि मानि॥१५९॥

अनुवाद

"आध्यात्मिक शक्ति के तीन अंश ह्लादिनी (आनन्द अंश), सन्धिनी (सत् अंश) तथा सम्वित् (चित् या ज्ञान अंश) हैं। हम इन तीनों के ज्ञान को भगवान् का पूर्ण ज्ञान स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य

भगवान् का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी सम्वित् शक्ति का सहारा लेना चाहिए।

अन्तरङ्गा—चिच्छक्ति, तटस्था—जीवशक्ति।
बहिरङ्गा—माया—तिन करे प्रेमभक्ति॥१६०॥

अनुवाद

"भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति तीन अवस्थाओं में भी प्रकट होती है—अन्तरंगा, तटस्था तथा बहिरंगा। ये सभी उनकी प्रेमाभक्ति में निरत रहती हैं।

तात्पर्य

भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति तीन अवस्थाओं में प्रकट होती है—अन्तरंगा, तटस्था तथा बहिरंगा अर्थात् मायाशक्ति। हमें यह समझना चाहिए इन तीन अवस्थाओं में सत्, चित तथा आनन्द की मूल आध्यात्मिक शक्तियाँ अछूती रहती हैं। जब आनन्द तथा ज्ञान की शक्तियाँ एकसाथ बद्धजीवों को प्रदान की जाती हैं, तो वे बहिरंगा शक्ति माया के चंगुल से छूट सकते हैं। मुक्त होकर जीव कृष्णभावनामृत को प्राप्त होता है और प्रेम तथा स्नेह के साथ भक्ति में लग जाता है।

षड्-विध ऐश्वर्य—प्रभुर चिच्छक्ति-विलास।
हेन शक्ति नाहि मान,—परम साहस॥१६१॥

अनुवाद

"भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्ति में छह प्रकार के ऐश्वर्यों का भोग करते हैं। आप इस आध्यात्मिक शक्ति को स्वीकार नहीं करते। यह तो आपके परम अविवेक के कारण है।

तात्पर्य

भगवान् छह ऐश्वर्यों से युक्त है। ये सारी शक्तियाँ दिव्य स्तर पर होती हैं। भगवान् को निराकार और शक्तिरहित समझना वैदिक सूचना के विरुद्ध काम करना है।

'मायाधीश' 'मायावश'—ईश्वरे-जीवे भेद।
हेन-जीवे ईश्वर-सह कह त'अभेद॥१६२॥

अनुवाद

'भगवान् शक्तियों के अधीश्वर हैं और जीव उनका दास है। भगवान् तथा जीव का यही अन्तर है। किन्तु आप यह कह रहे हैं कि भगवान् तथा जीव एक ही हैं।

तात्पर्य

भगवान् स्वभाव से सभी शक्तियों के स्वामी हैं। जीव सूक्ष्म होने के कारण सदैव भगवान् की शक्ति के वश में रहते हैं। *मुण्डक उपनिषद* (३.१.१-२) के अनुसार—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नेऽनीषया शोचति गुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यतन्यमीशमस्य महिमानमेति वीतशोकः॥

मुण्डक उपनिषद् भगवान् तथा जीव में पूर्णतः अन्तर करती है। जीव को कर्म-फल भोगना होता है, जबकि भगवान् ऐसे कर्म का साक्षी बना रहता है और फल प्रदान करता है। जीव अपनी इच्छानुसार किन्तु परमात्मा के निर्देशन में एक शरीर से दूसरे में और एक लोक से दूसरे में घूमता रहता है। किन्तु जब भगवत्कृपा से जीव को चेत होता है तो उसे भक्ति प्राप्त होती है। इस तरह वह माया के पाश से बच जाता है। ऐसे अवसर पर वह अपने नित्य मित्र भगवान् को देख सकता है और सारे शोक तथा लालसा से मुक्त हो सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (१८.५४) हुई है, जहाँ भगवान् कहते हैं—*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति*—दिव्य पद पर स्थित मनुष्य को तुरन्त परब्रह्म की अनुभूति होती है। वह न कभी शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है। इस तरह यह सिद्ध होता है कि भगवान् समस्त शक्तियों के स्वामी हैं और जीव इन शक्तियों के अधीन होते हैं। यही *मायाधीश* तथा *मायावश* में अन्तर है।

गीताशास्त्रे जीवरूप 'शक्ति' करि' माने।
हेन जीवे 'भेद' कर ईश्वरेर सने॥१६३॥

अनुवाद

"भगवद्गीता में जीव को भगवान् की तटस्था शक्ति बतलाया गया है। फिर भी आप कहे जा रहे हैं कि जीव भगवान् से पूर्णतया भिन्न है।

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र बतलाता है कि *शक्तिशक्तिमतोरभेद:* सिद्धान्त के अनुसार जीव भगवान् से अभिन्न है। गुणात्मक रूप में जीव तथा भगवान् एक हैं, किन्तु परिमाण में वे भिन्न हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन (*अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व*) के अनुसार ज़ीव तथा भगवान् को एकसाथ अभिन्न तथा भिन्न माना जाता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥१६४॥

अनुवाद

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये मेरी आठ पृथक-पृथक शक्तियाँ हैं।

अपरे यमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥१६५॥

अनुवाद

"इन भौतिक अपर शक्तियों के अतिरिक्त भी मेरी अन्य शक्ति है जो कि अध्यात्मिक शक्ति है और हे महाबाहु! यही जीव है। सारा भौतिक जगत जीवों के द्वारा धारण किया जाता है।

तात्पर्य

श्लोक १६४ तथा १६५ *भगवद्गीता* से (७.४-५) लिए गये हैं।

ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
से-विग्रहे कह सत्त्वगुणेर विकार॥१६६॥

अनुवाद

"भगवान् का दिव्य स्वरूप सच्चिदानन्दमय है किन्तु आप इसे भौतिक सत्व की उपज के रूप में बतला रहे हैं।

श्रीविग्रह ये ना माने, सेइ त' पाषण्डी।
अदृश्य अस्पृश्य, सेइ हय यमदण्डी॥१६७॥

अनुवाद

"जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य रूप को नहीं मानता वह पाखण्डी है।

ऐसे व्यक्ति को न तो देखना चाहिए, न उसका स्पर्श करना चाहिए। निस्सन्देह वह यमराज द्वारा दण्ड पाता है।

तात्पर्य

वैदिक सूचनाओं के अनुसार भगवान् का एक नित्य शाश्वत रूप होता है जो सदैव आनन्द तथा ज्ञान से युक्त होता है। निर्विशेषवादियों के अनुसार *भौतिक* का अर्थ है, हमारे द्वारा अनुभव होने वाला स्वरूप और *आध्यात्मिक* का अर्थ है, स्वरूप से रहित। किन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि इस भौतिक प्रकृति के परे भी एक आध्यात्मिक प्रकृति है। जिस प्रकार इस भौतिक जगत में भौतिक स्वरूप मिलते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत में आध्यात्मिक स्वरूप रहते हैं। इसकी पुष्टि वैदिक साहित्य करता है। दिव्य जगत के आध्यात्मिक स्वरूपों को निराकार की निषेध-भावना से कुछ लेना-देना नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति भगवान् के दिव्य स्वरूप की पूजा करने के लिए तैयार नहीं होता, वह पाषण्डी है।

वास्तव में इस समय सारे धर्म भगवान् के दिव्य रूप को न जानने के कारण उसकी पूजा करने से इनकार करते हैं। उच्च श्रेणी के भौतिकतावादी (मायावादी) भगवान् के पाँच विशिष्ट रूपों की कल्पना करते हैं, किन्तु जब वे इन काल्पनिक रूपों की पूजा की तुलना भक्ति से करने चलते हैं तो तिरस्कृत होते हैं। श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* में (७.१५) यह कह कर इसकी पुष्टि की है *न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:*। पाषण्डवश असली ज्ञान से रहित होने के कारण मायावादी दार्शनिक न तो भगवद्भक्तों द्वारा देखे जाने या स्पर्श करने के योग्य रहते हैं क्योंकि ये दार्शनिक यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। ये मायावादी पाषण्डी अपने अभक्तिपूर्ण कार्यों के फलस्वरूप इस जगत में विभिन्न योनियों में घूमते रहते हैं। ऐसे जीव यमराज द्वारा दण्डनीय हैं। केवल भक्तगण, जो कि सदैव भगवान् की भक्ति में लीन रहते हैं, यमराज के दण्ड से बरी रहते हैं।

वेद ना मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।
वेदाश्रय नास्तिक्य-वाद बौद्धके अधिक॥१६८॥

अनुवाद

"चूँकि बौद्धगण वेदों को नहीं मानते; अतएव वे पाषण्डी माने जाते हैं। किन्तु जो लोग वैदिक शास्त्रों की शरण लेकर भी मायावादी दर्शन

के अनुसार पाषण्डवाद का प्रचार करते हैं वे बौद्धों से भी अधिक घातक हैं।

तात्पर्य

यद्यपि बौद्धगण वैष्णव-दर्शन के विरोधी हैं, किन्तु यह सरलता से समझ में आने की बात है कि शंकरमतावलम्बी अधिक घातक होते हैं, क्योंकि वे वेदों के प्रमाण को मानते हुए भी वैदिक आदेश के विरुद्ध कार्य करते हैं। *वेदाश्रयनास्तिक्यवाद* का अर्थ है "वैदिक संस्कृति के आश्रय के अन्तर्गत नास्तिकवाद" और यह मायावादियों के अद्वैतवाद दर्शन का सूचक है। भगवान् बुद्ध ने वैदिक साहित्य के प्रमाण का त्याग किया, अतएव उन्होंने वेद-संस्तुत अनुष्ठानों का निषेध किया है। उनका *निर्वाण*-दर्शन समस्त भौतिक कार्यकलापों को बन्द करने का सूचक है। उन्होंने भौतिक जगत के परे दिव्य रूपों तथा आध्यात्मिक कार्यों की उपस्थिति को मान्यता नहीं दी। उन्होंने इस भौतिक जगत के परे एकमात्र शून्यवाद का वर्णन किया है। मायावादी दार्शनिक वैदिक प्रमाण की बातें ऊपर-ऊपर करते हैं किन्तु वैदिक अनुष्ठानों से कतराते रहते हैं। वे दिव्य पद की कपोल कल्पना करके अपने को नारायण या ईश्वर कहलवाते हैं। किन्तु ईश्वर का पद उनकी कल्पना से सर्वथा भिन्न होता है। ऐसे मायावादी अपने को कर्मकाण्ड के प्रभाव से पृथक रखते हैं। उनके लिए आध्यात्मिक जगत और बौद्ध शून्यवाद एक हैं। निर्विशेषवाद तथा शून्यवाद में बहुत ही कम अन्तर है। शून्यवाद को तो समझा जा सकता है, किन्तु मायावादियों द्वारा बतलाया गया निर्विशेषवाद आसानी से समझ में नहीं आता। मायावादी दार्शनिक आध्यात्मिक जगत को स्वीकार करते हैं, किन्तु उसके विषय में तथा आध्यात्मिक जीवों के विषय में कुछ नहीं जानते। *श्रीमद्भागवत*के अनुसार (१०.२.३२)—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन
स्त्वय्यस्तभावाद् अविशुद्ध बुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रियः ॥

मायावादियों की बुद्धि शुद्ध नहीं होती; इसलिए वे आत्म-साक्षात्कार के लिए तपस्या करते हुए भी निर्विशेष *ब्रह्मज्योति* में नहीं बने रह सकते। फलतः

उन्हें इस भौतिक जगत में पुन: गिरना होता है।

आध्यात्मिक जगत विषयक मायावादियों की धारणा इस भौतिक जगत के निषेध जैसी ही है। मायावादियों का विश्वास है कि आध्यात्मिक जीवन में कुछ भी सकारात्मक नहीं है। फलत: वे न तो भक्ति को, न ही सच्चिदानन्द विग्रह की पूजा को ही समझ पाते हैं। भक्ति में जो अर्चाविग्रह पूजा की जाती है उसे मायावादी दार्शनिक *प्रतिबिम्बवाद* मानते हैं, अर्थात् ऐसे स्वरूप की पूजा जो मिथ्या भौतिक रूप का प्रतिबिम्ब है। इस तरह मायावादियों को भगवान् का सच्चिदानन्द रूप अज्ञात रहता है। यद्यपि *श्रीमद्भागवत* में भगवान् शब्द का स्पष्ट वर्णन है, किन्तु वे इसे नहीं समझ सकते। *ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*—परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहा जाता है (भागवत १.२.११)। मायावादी केवल ब्रह्म को, और बहुत हुआ तो परमात्मा को समझने की चेष्टा करते हैं; किन्तु वे भगवान् को नहीं ही समझ पाते। इसीलिए भगवान् कृष्ण कहते हैं—*माययापहृत ज्ञाना:*। मायावादियों के स्वभाव के कारण ही उनसे असली ज्ञान हर लिया जाता है। चूँकि उन पर भगवान् की कृपा नहीं हो पाती, अतएव वे उनके दिव्य रूप द्वारा सदैव मोहग्रस्त होते रहते हैं। निर्विशेष दर्शन *ज्ञान, ज्ञेय* तथा *ज्ञाता*—इन ज्ञान की तीन अवस्थाओं को विनष्ट करता है। जब भी कोई ज्ञान की बात कहता है तो उसी के साथ ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो उसे जानने वाला (ज्ञाता) हो, ज्ञान हो और ज्ञान का लक्ष्य (ज्ञेय) हो। मायावादी दर्शन इन तीनों को मिला देता है, इसलिए मायावादी यह नहीं समझ पाते कि भगवान् की आध्यात्मिक शक्तियाँ किस तरह कार्य करती हैं। इतना अल्पज्ञान होने के कारण ही वे आध्यात्मिक जगत में ज्ञान, ज्ञाता तथा ज्ञेय के अन्तर को नहीं समझ पाते। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु मायावादी दार्शनिकों को बौद्धों से अधिक घातक मानते हैं।

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास।
मायावादि-भाष्य शुनिले हय सर्वनाश॥१६९॥

अनुवाद

"श्रील व्यासदेव ने बद्धजीवों के उद्धार हेतु वेदान्त-दर्शन प्रस्तुत किया किन्तु यदि कोई व्यक्ति शंकराचार्य-भाष्य सुनता है तो सारा काम बिगड़ जाता है।

तात्पर्य

वस्तुतः *वेदान्त-सूत्र* में भगवान् की भक्ति का वर्णन हुआ है, किन्तु मायावादी दार्शनिकों अर्थात् शंकर के अनुयायियों ने *शारीरक भाष्य* नाम से टीका तैयार की है, जिसमें भगवान् के दिव्य रूप का निषेध हुआ है। मायावादी दार्शनिक सोचते हैं कि जीव परमात्मा अर्थात् ब्रह्म से अभिन्न है। *वेदान्त-सूत्र* पर लिखे गये उनके भाष्य भक्ति के सिद्धान्त के पूर्ण विरोधी हैं। इसलिए चैतन्य महाप्रभु हमें सचेत करते हैं कि हम इन भाष्यों से बचें। यदि किसी को शंकरवादी *शारीरक भाष्य* सुनने की लत पड़ जाती है तो उसका सारा असली ज्ञान जाता रहता है।

महत्वकांक्षी मायावादी दार्शनिक भगवान् में लीन होना चाहते हैं, जिसे *सायुज्य मुक्ति* के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु ऐसी मुक्ति का अर्थ है अपने अस्तित्व का निषेध करना। दूसरे शब्दों में, यह आध्यात्मिक आत्महत्या है। यह *भक्तियोग* के सर्वथा विरोध में है। भक्तियोग तो प्रत्येक बद्धजीव को अमरत्व प्रदान करता है। जो व्यक्ति मायावादी दर्शन का पालन करता है वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद अमर बनने के सुअवसर से वंचित हो जाता है। जबकि व्यक्ति का अमरत्व जीव के लिए प्राप्त होने वाला सर्वोच्च पूर्णता का पद है।

'परिणाम-वाद'—व्यास-सूत्रेर सम्मत।
अचिन्त्यशक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत॥१७०॥

अनुवाद

"वेदान्त-सूत्र का लक्ष्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के रूपान्तर (विकार) से उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य

परिणामवाद की अधिक व्याख्या के लिए आदिलीला (७.१२१-१३३) देखें।

मणि यैछे अविकृत प्रसबे हेमभार।
जगद्रूप हय ईश्वर, तबु अविकार॥१७१॥

अनुवाद

"पारस-पत्थर (मणि) लोहे का स्पर्श करके सोने की राशि उत्पन्न कर देता है, किन्तु स्वयं अपरिवर्तित बना रहता है। इसी तरह भगवान् अपनी

अचिन्त्य शक्ति से अपने को विराट जगत के रूप में प्रकट करता है, किन्तु उसका नित्य दिव्य रूप अपरिवर्तित रहता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका के अनुसार *वेदान्त-सूत्र* के *जन्माद्यस्य* श्लोक का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि विराट जगत की अभिव्यक्ति भगवान् की शक्तियों के रूपान्तर के कारण है। भगवान् असंख्य शक्तियों के स्वामी हैं और ये शक्तियाँ असीम हैं। ये शक्तियाँ कभी प्रकट होती हैं, और कभी नहीं होतीं। किन्तु प्रत्येक दशा में सारी शक्तियाँ उन्हीं के अधीन होती हैं, इसीलिए वे आदि शक्तिमान हैं अर्थात् समस्त शक्तियों के धाम हैं। एक सामान्य कल्पनाशील मस्तिष्क यह सोच ही नहीं पाता कि इतनी अचिन्त्य शक्तियाँ भगवान् में कैसे स्थित रहती हैं, और वे किस तरह असंख्य रूपों वाली भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के स्वामी हैं, किस तरह वे व्यक्त तथा अव्यक्त शक्तियों के स्वामी हैं और किस तरह विरोधी शक्तियाँ उनमें वास कर सकती हैं। जब तक जीव इस भौतिक जगत में मोहावस्था में रहता है, वह भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों के कार्यकलापों को नहीं समझ सकता। इस तरह भगवान् की शक्तियाँ तथ्य होते हुए भी सामान्य मस्तिष्क की समझ से परे रहती हैं।

जब नास्तिक दार्शनिक या मायावादी लोग भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों को न समझ पाने के कारण निर्विशेष शून्य की कल्पना करते हैं तब उनकी यह कल्पना भौतिकतावादी चिन्तन का एक अंग ही होती है। इस जगत में कुछ भी अचिन्त्य नहीं है। उच्च विचारक तथा विज्ञानीजन भौतिक शक्ति को तो वश में कर सकते हैं, किन्तु वे जड़ अवस्था की—यथा निर्विशेष ब्रह्म की ही कल्पना कर सकते हैं। यह तो भौतिक जीवन का केवल निषेधात्मक पक्ष है। ऐसे अपूर्ण ज्ञान से मायावादी दार्शनिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विराट जगत ब्रह्म का रूपान्तर है। अत: वे ब्रह्म के विवर्तवाद सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए बाध्य होते हैं। किन्तु यदि हम भगवान् की अचिन्त्य शक्तियाँ को स्वीकार करें, तो यह समझ सकेंगे कि किस तरह भगवान् प्रकृति के तीन गुणों से दूषित हुए बिना या उनका स्पर्श किये बिना इस भौतिक जगत में प्रकट हो सकते हैं।

शास्त्रों से विदित होता है कि पारस-पत्थर नामक एक मणि होता है,

जो लोहे को सोने में बदल सकता है। यह मणि लोहे को अनेक बार सोने में बदलने पर भी अपनी पूर्व स्थिति में रहता है। यदि ऐसा मणि प्रचुर सोना उत्पन्न करने पर भी अपनी अचिन्त्य शक्ति बनाये रख सकता है तो भगवान् निश्चय ही विराट जगत की सृष्टि करने के बाद भी अपना आदि सच्चिदानन्द रूप बनाये रख सकते हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* में (९.१०) पुष्टि हुई है, वे अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा ही कार्य करते हैं और वह शक्ति इस भौतिक जगत में कार्य करती है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* में (५.४४) भी हुई है—

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टये सा
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

दुर्गा शक्ति (भौतिक शक्ति) भगवान् के निर्देशन में कार्य करती है और वह ब्रह्माण्ड की सृष्टि, उसके भरण तथा संहार का कार्य करती है। कृष्ण पृष्ठभूमि से निर्देशन करते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् अपनी शक्ति का निर्देशन करते हुए भी यथारूप रहते हैं और वह शक्ति अद्‌भुत कार्य करती है।

व्यास—भ्रान्त बलि' सेइ सूत्रे दोष दिया।
'विवर्तवाद' स्थापियाछे कल्पना करिया॥१७२॥

अनुवाद

"शंकराचार्य का सिद्धान्त कहता है कि परम सत्य रूपान्तरित होता है। इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए मायावादी दार्शनिक श्रील वेदव्यास में दोष दिखलाकर उन्हें नीचा दिखाते हैं। इस तरह वे वेदान्त-सूत्र में त्रुटि निकालते हैं और इसकी विवेचना करते हुए विवर्तवाद की स्थापना करना चाहते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मसूत्र का पहला श्लोक है—*अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*—अब हम परम सत्य के विषय में पूछताछ करेंगे। दूसरे ही श्लोक में इसका उत्तर है—*जन्माद्यस्य यत:*—परम सत्य ही हर वस्तु का आदि स्रोत है। इस श्लोक का यह

अर्थ नहीं होता कि आदि पुरुष रूपान्तरित हुआ है; प्रत्युत यह स्पष्ट इंगित करता है कि वह पुरुष अपनी अचिन्त्य शक्ति से इस विराट जगत को उत्पन्न करता है। *भगवद्गीता* में (१०.८) इसकी व्याख्या पहले ही हो चुकी है, जहाँ कृष्ण कहते हैं—*मत्तः सर्वं प्रवर्तते*—मुझी से सारी वस्तुएँ उद्भूत हैं। *तैत्तिरीय उपनिषद* से भी (३.१.१) इसकी पुष्टि होती है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते*। इसी प्रकार *मुण्डक उपनिषद* में (१.१.७) कहा गया है—*यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च*—भगवान् (इस जगत को) मकड़ी की तरह जाले को बुनते और अपने भीतर समेट लेते हैं। ये सारे सूत्र भगवान् की शक्ति के रूपान्तर के सूचक हैं। ऐसा नहीं है कि भगवान् में सीधा रूपान्तर होता है जो *परिणामवाद* कहलाता है। किन्तु श्रील व्यासदेव को आलोचना से बचाने के लिए शंकराचार्य ने छद्म भद्रपुरुष बन कर *विवर्तवाद* प्रस्तुत किया। शंकराचार्य ने *परिणामवाद* का यह अर्थ गढ़ा और शब्दजाल के द्वारा परिणामवाद को विवर्तवाद के रूप में स्थापित करने का भरसक प्रयत्न किया है।

जीवेर देहे आत्मबुद्धि—सेइ मिथ्या हय।
जगत् ये मिथ्या नहे, नश्वरमात्र हय॥१७३॥

अनुवाद

"विवर्तवाद को तभी लागू किया जा सकता है जब जीव अपनी पहचान शरीर के रूप में करे। किन्तु जहाँ तक विराट जगत का सम्बन्ध है, इसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता। हाँ यह नश्वर अवश्य है।

तात्पर्य

जीव कृष्ण का नित्य दास है। भगवान् का अंश होने के कारण वह वैधानिकतः शुद्ध है, किन्तु भौतिक शक्ति के सम्पर्क में आकर वह अपनी पहचान स्थूल या सूक्ष्म शरीर के रूप में करता है। ऐसी पहचान निश्चय ही मिथ्या है और विवर्तवाद के लिए वास्तविक मंच तैयार करती है। जीव नित्य है, उस पर काल-सीमा का असर नहीं होता, किन्तु उसके स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों पर होता है। विराट जगत कभी मिथ्या नहीं होता, किन्तु इस पर काल का प्रभाव पड़ता है। इस जगत को अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए क्षेत्र के रूप में स्वीकर करना निश्चित रूप से मोह (भ्रम) है। यह जगत भगवान् की भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है। *भगवद्गीता* में (७.४) कृष्ण ने इसकी

व्याख्या की है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

भौतिक जगत भगवान् की कनिष्ठा शक्ति है, किन्तु यह सही नहीं है कि भगवान् इस भौतिक जगत में रूपान्तरित हो गये हैं। मायावादी दार्शनिकों ने वास्तविक ज्ञान से रहित होकर वाक्जाल से विवर्तवाद एवं परिणामवाद को गड्डमगड्ड कर दिया है। विवर्तवाद उस व्यक्ति पर लागू होता है जो अपनी पहचान शरीर के रूप में करता है। जीव भगवान् की श्रेष्ठ शक्ति है, भौतिक जगत उसकी अवर रूप है, किन्तु दोनों *प्रकृति* ही हैं। यद्यपि सारी शक्तियाँ भगवान् से अभिन्न होते हुए भी भिन्न हैं, किन्तु भगवान् अपनी विभिन्न शक्तियों के रूपान्तरित होने से कभी भी अपना साकार स्वरूप नहीं त्यागते।

'प्रणव' ये महावाक्य—ईश्वरेर मूर्ति।
प्रणव हैते सर्ववेद, जगत् उत्पत्ति॥१७४॥

अनुवाद

"ॐकार की दिव्य ध्वनि भगवान् का शब्दस्वरूप है। सारा वैदिक ज्ञान तथा यह विराट जगत भगवान् के इस शब्दस्वरूप से उत्पन्न है।

तात्पर्य

ॐकार भगवान् का शब्दस्वरूप है। उनके पवित्र नाम का यह रूप दिव्य ध्वनि (महावाक्य) है जिसके कारण नश्वर जगत उत्पन्न हुआ है। यदि मनुष्य भगवान् के शब्दस्वरूप (*ॐकार*) की शरण ग्रहण करता है तो वह अपनी वैधानिक पहचान को समझ सकता है और बद्धजीवन में रहते हुए भी भक्ति में लगा रह सकता है।

'तत्त्वमसि'—जीव-हेतु प्रादेशिक वाक्य।
प्रणव ना मानि' तारे कहे महावाक्य॥१७५॥

अनुवाद

'तत्त्वमसि' (तुम वही हो) गौण ध्वनि (प्रादेशिक वाक्य) जीवन को जानने के लिए है, लेकिन मुख्य ध्वनि तो ॐकार है। शंकराचार्य ने

ॐकार की परवाह न करते हुए तत्त्वमसि ध्वनि पर बल दिया।"

तात्पर्य

भगवान् के नाम के ध्वनि-अवतार *प्रणव* को वैदिक साहित्य के रूप में न मानने वाला व्यक्ति *तत्त्वमसि* को मूल ध्वनि मानता है। शंकराचार्य ने शब्दाडम्बर द्वारा जीव तथा जगत के साथ भगवान् का भ्रामक स्वरूप उत्पन्न करने का प्रयास किया। *तत्त्वमसि* जीव के लिए चेतावनी है कि आत्मा को अवरारूप मानने की भूल न करे। अतएव तत्त्वमसि विशेष रूप से बद्ध आत्मा के लिए है। ॐकार या हरे कृष्ण मन्त्र का जाप मुक्त आत्मा के लिए है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—*अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानम्* (नामाष्टक १)। भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन मुक्त आत्माएँ करती हैं। इसी प्रकार परीक्षित महाराज कहते हैं—*निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्* (भागवत १०.१.४) भगवन्नाम का कीर्तन वे ही कर सकते हैं जिनकी भौतिक इच्छाएँ पूरी हो चूकी हैं या जो दिव्य पद को प्राप्त हैं और भौतिक इच्छा से रहित हैं। भगवन्नाम का कीर्तन वही कर सकता है जो भौतिक कल्मष से पूर्णतया मुक्त है। (*अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम*)। शंकराचार्य ने गौण ध्वनि (*तत्त्वमसि*) को सबसे महत्वपूर्ण वैदिक मन्त्र स्वीकार करके मुख्य वैदिक मन्त्र (*ॐकार*) के मूल्य को घटाया है।

एइमते कल्पित भाष्ये शत दोष दिल।
भट्टाचार्य पूर्वपक्ष अपार करिल॥१७६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने शंकराचार्य के शारीरक भाष्य को काल्पनिक कह कर आलोचना की और उसमें सैकडों दोष दिखलाये, किन्तु सार्वभौम भट्टाचार्य ने शंकराचार्य की वकालत करते हुए उनका अत्यधिक विरोध किया।

वितण्डा, छल, निग्रहादि अनेक उठाइल।
सब खण्डि' प्रभु निज-मत से स्थापिल॥१७७॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने छद्म तर्क समेत विविध प्रकार के मिथ्या तर्क प्रस्तुत किये और अपने प्रतिपक्षी को हराने के लिए अनेक प्रकार से प्रयास किये।

किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन सारे तर्कों को खण्डित करते हुए अपना मत स्थापित किया।

तात्पर्य

वितण्डा शब्द सूचित करता है कि शास्त्रार्थ करने वाला व्यक्ति अपनी बात की स्थापना न करके दूसरे व्यक्ति के तर्कों को काटने का प्रयास करता है। जब कोई व्यक्ति मुख्य बात न कह कर भ्रान्त विवेचना द्वारा ध्यानाकर्षण करना चाहता है तो वह *छल* करता है। *निग्रह* शब्द का भी अर्थ है विपक्षी के तर्कों का खण्डन।

भगवान्—'सम्बन्ध', भक्ति—'अभिधेय' हय।
प्रेमा—'प्रयोजन,' वेदे तिनवस्तु कय॥१७८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "सारे सम्बन्धों के केन्द्र भगवान् हैं, उनकी भक्ति करना मनुष्य का असली कर्म है, और भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। वैदिक साहित्य में इन तीनों विषयों का वर्णन हुआ है।

तात्पर्य

भगवद्गीता से (१५.१५) इस कथन की पुष्टि होती है। *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—वेदों का अध्ययन करने का वास्तविक प्रयोजन यह जानना है कि किस तरह भगवद्भक्त बना जाय। स्वयं भगवान् का उपदेश है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु* (भगवद्गीता ९.३४)। अतएव वेदों का अध्ययन करने के बाद मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के विषय में सदैव चिन्तन करते हुए (*मन्मना*), उनका भक्त बन कर, उनकी पूजा करके और उन्हें सदैव नमस्कार करके भक्ति करे। इसे *विष्णु-आराधना* कहते हैं और यह सभी मनुष्यों का परम कर्त्तव्य है। *वर्णाश्रम धर्म* प्रणाली में इसे ढंग से पूरा किया जाता है। वैदिक सभ्यता की यह पूर्ण योजना है। लेकिन इस युग में इस प्रणाली की स्थापना कर पाना अत्यन्त कठिन है, इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु सलाह देते हैं कि हम वर्णाश्रम धर्म की वैदिक प्रणाली की चिन्ता न करें। प्रत्युत हमें चाहिए कि हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करें और शुद्ध भक्तों से भगवान् के विषय में श्रवण करें। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसी

विधि की संस्तुति की है और वेदों के अध्ययन का यही प्रयोजन है।

आर ये ये—किछु कहे, सकलइ कल्पना।
स्वतःप्रमाण वेद-वाक्ये कल्पेन लक्षणा॥१७९॥

अनुवाद

"यदि कोई व्यक्ति भिन्न तरीके से वैदिक साहित्य की विवेचना करने की चेष्टा करता है तो उसे कल्पना में डूबा समझिये। स्वतःप्रमाण वेद वाक्य की विवेचना को कोरी कल्पना ही समझना चाहिए।

तात्पर्य

जब बद्धजीव शुद्ध हो जाता है तो भक्त कहलाने लगता है। भक्त का एकमात्र सम्बन्ध भगवान् के साथ रहता है और उसका एकमात्र धर्म भगवान् को तुष्ट करने के लिए भक्ति करना है। यह सेवा भगवान् के प्रतिनिधि रूप गुरु द्वारा की जाती है—*यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ*। उचित रीति से भक्ति करने पर भक्त को जीवन की सर्वोच्च सिद्धि—भगवत्प्रेम—प्राप्त होती है—*स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे*। वेदों को समझने का चरम उद्देश्य भगवद्भक्ति के पद तक ऊपर उठना है। किन्तु मायावादी दार्शनिक सम्बन्ध के केन्द्रबिन्दु को निर्विशेष ब्रह्म मानते हैं, जीव के कार्य को ब्रह्म की प्राप्ति तथा मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। किन्तु यह सब बद्धजीव की कल्पना का फल है। इससे वह भौतिक कार्यों का केवल विरोध करता है। मनुष्य को स्मरण रखना चाहिए कि सारा वैदिक साहित्य स्वतः स्पष्ट है। वैदिक श्लोकों की व्याख्या करने की किसी को अनुमति नहीं दी जाती। यदि कोई ऐसा करता है तो इसे उसकी कल्पना माना जायेगा, जिसका कोई महत्व नहीं है।

आचार्येर दोष नाहि, ईश्वर-आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि' नास्तिक-शास्त्र कैल॥१८०॥

अनुवाद

"वास्तव में इसमें शंकराचार्य का कोई दोष नहीं है। उन्होंने भगवान् के आदेश का केवल पालन किया है। उन्हें कोई न कोई व्याख्या कल्पित करनी थी, अतएव उन्होंने इस तरह से वैदिक साहित्य को प्रस्तुत किया जो नास्तिकता से पूर्ण है।

स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान् मद्विमूढान् कुरु।
मां च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥१८१॥

अनुवाद

"शिवजी को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा, 'तुम सामान्य जनों को वेदों की अपनी कल्पित व्याख्या द्वारा मुझसे विमुख कर देना। तुम मुझे इस प्रकार प्रच्छन्न कर देना कि लोग आध्यात्मिक ज्ञान से रहित होकर भौतिक सभ्यता की प्रगति करने में अधिक रुचि लेने लगें।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *पद्म-पुराण* (उत्तर खण्ड ६२.३१) से लिया गया है।

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मणमूर्तिना॥१८२॥

अनुवाद

"शिवजी ने जगन्नियन्त्री देवी दुर्गा को बतलाया, 'कलियुग में मैं एक ब्राह्मण का रूप धारण करके मिथ्या शास्त्रों के माध्यम से वेदों की व्याख्या नास्तिक ढंग से करूँगा, जो बौद्ध दर्शन जैसी होगी।'

तात्पर्य

ब्राह्मणमूर्तिना शब्द मायावाद दर्शन के संस्थापक शंकराचार्य को बतलाने वाला है, जिनका जन्म दक्षिण भारत के मालाबार जिले में हुआ था। मायावाद दर्शन के अनुसार भगवान्, जीव तथा जगत माया के ही विकार हैं। इस नास्तिकवाद के समर्थन में मायावादीगण मिथ्या शास्त्रों का उद्धरण देते हैं जिससे लोग दिव्य ज्ञान से वंचित होकर कर्म तथा मानसिक तर्कवितर्क में लिप्त होते हैं।

यह श्लोक *पद्म-पुराण* से (उत्तर खण्ड २५.७) उद्धृत किया गया है।

शुनि' भट्टाचार्य हैल परम विस्मित।
मुखे ना निःसरे वाणी, हइला स्तम्भित॥१८३॥

अनुवाद

यह सुन कर सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त अचम्भित हुए। वे स्तम्भित हो गए और कुछ भी बोल न सके।

प्रभु कहे,—भट्टाचार्य, ना कर विस्मय।
भगवाने भक्ति—परम-पुरुषार्थ हय॥१८४॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप विस्मित न हों। वास्तव में भगवान् की भक्ति मानव-कर्म की सर्वोच्च सिद्धि है।

'आत्माराम' पर्यन्त करे ईश्वर भजन।
ऐछे अचिन्त्य भगवानेर गुणगण॥१८५॥

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य गुण ऐसे हैं कि आत्मतुष्ट (आत्माराम) सन्त भी भगवान् की पूजा करते हैं। उनके गुण अचिन्त्य आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण हैं।

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥१८६॥

अनुवाद

"जो आत्मतुष्ट (आत्माराम) हैं और बाह्य भौतिक इच्छाओं से विरक्त हैं, वे भी भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति के प्रति आकृष्ट होते हैं, क्योंकि कृष्ण के गुण दिव्य और कार्यकलाप अद्भुत हैं। भगवान् हरि इसीलिए कृष्ण कहलाते हैं क्योंकि उनका दिव्य स्वरूप अत्यन्त आकर्षक है।"

तात्पर्य

यह सुप्रसिद्ध आत्माराम श्लोक है (भागवत् १.७.१०)

शुनि' भट्टाचार्य कहे,—'शुन, महाशय।
एइ श्लोकेर अर्थ शुनिते वाञ्छा हय॥१८७॥

अनुवाद

आत्माराम श्लोक सुनने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु से कहा, "महोदय! इस श्लोक की व्याख्या कीजिये। मैं इस पर आपकी व्याख्या सुनने के लिए परम इच्छुक हूँ।"

प्रभु कहे,—'तुमि कि अर्थ कर, ताहा आगे शुनि'।
पाछे आमि करिब अर्थ, ग्रेबा किछु जानि' ॥१८८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "पहले मुझे अपनी व्याख्या सुनायें। तब मैं जो थोड़ा-बहुत जानता हूँ बताने की चेष्टा करूँगा।"

शुनि' भट्टाचार्य श्लोक करिल व्याख्यान।
तर्कशास्त्र-मत उठाय विविध विधान॥१८९॥

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने आत्माराम श्लोक की व्याख्या करनी शुरू की और तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार उन्होंने अनेक विधान उठाये।

नवविध अर्थ कैल शास्त्रमत लञा।
शुनि' प्रभु कहे किछु ईषत हासिया॥१९०॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने शास्त्रों के आधार पर आत्माराम श्लोक की व्याख्या नौ प्रकार से की। उनकी व्याख्या सुन कर महाप्रभु कुछ-कुछ हँसते हुए बोले।

तात्पर्य

नैमिषारण्य की एक सभा में शौनक आदि ऋषियों द्वारा आत्माराम श्लोक की व्याक्या की गई थी। इस सभा की अध्यक्षता करने वाले श्रील सूत गोस्वामी से इन ऋषियों ने प्रश्न किया कि परमहंस पद पर स्थित होते हुए भी श्रील शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के गुणानुवाद के प्रति क्यों आकृष्ट हैं? दूसरे शब्दों में, वे यह जानना चाह रहे थे कि श्रील शुकदेव गोस्वामी *श्रीमद्भागवत* के अध्ययन में क्यों लगे थे।

'भट्टाचार्य', जानि—तुमि साक्षात् बृहस्पति।
शास्त्रव्याख्या करिते ऐछे कारो नाहि शक्ति॥१९१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे भट्टाचार्य! आप तो स्वर्गलोक के पुरोहित, बृहस्पति, के समान हैं। इस जगत में शास्त्रों की ऐसी व्याख्या

करने की शक्ति अन्य किसी में नहीं है।

किन्तु तुमि अर्थ कैले पाण्डित्य-प्रतिभाय।
इहा वइ श्लोकेर आछे आरो अभिप्राय॥१९२॥

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य! आपने इस श्लोक की व्याख्या अपने विस्तृत पाण्डित्य के आधार पर की है, किन्तु आपको ज्ञात हो कि इस पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या के अतिरिक्त भी इस श्लोक का अन्य तात्पर्य है।"

भट्टाचार्य प्रार्थनाते प्रभु व्याख्या कैल।
ताँर नव अर्थ-मध्ये एक ना छुँइल॥१९३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य के अनुरोध पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य के नवों अर्थों को छुये बिना श्लोक की व्याख्या शुरू की।

आत्मारामाश्च-श्लोके 'एकादश' पद हय।
पृथक् पृथक् कैले पदेर अर्थ निश्चय॥१९४॥

अनुवाद

आत्माराम श्लोक में ग्यारह शब्द हैं। महाप्रभु ने एक-एक करके इनकी व्याख्या की।

तात्पर्य

आत्माराम श्लोक के शब्द हैं—आत्मारामा, च, मुनयः, निर्ग्रन्थाः, अपि, उरुक्रमे, कुर्वन्ति, अहैतुकीं, भक्तिं, इत्थम्-भूतगुणः तथा हरिः।

तत्तत्पद-प्राधान्ये 'आत्माराम' मिलाञा।
अष्टादश अर्थ कैल अभिप्राय लञा॥१९५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्येक शब्द को लेकर उसके साथ आत्माराम शब्द जोड़ा। इस तरह उन्होंने "आत्माराम" शब्द की व्याख्या अठारह प्रकार से की।

भगवान्, ताँर शक्ति, ताँर गुणगण।
अचिन्त्य प्रभाव तिनेर ना ग्राय कथन॥१९६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भगवान्, उनकी विभिन्न शक्तियाँ तथा उनके दिव्य गुण—ये सभी अचिन्त्य शक्ति से युक्त हैं। उनकी पूर्ण व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है।

अन्य ग्रत साध्य-साधन करि' आच्छादन।
एइ तिने हरे सिद्ध-साधकेर मन॥१९७॥

अनुवाद

"जो जिज्ञासु आध्यात्मिक कार्यों में लगे हैं और जिन्होंने आध्यात्मिक कर्म की अन्य सारी विधियों पर विजय प्राप्त कर ली है वे इन तीनों बातों की ओर आकृष्ट होते हैं।"

तात्पर्य

भक्तियोग के अतिरिक्त जितने आध्यात्मिक कार्य हैं उनकी तीन श्रेणियाँ बनाई जाती हैं—ज्ञान सम्प्रदाय (पंडितों) द्वारा संचालित चिन्तन-कार्य, सामान्य जनता द्वारा वैदिक विधानों के अनुसार संचालित सकाम कर्म तथा भक्ति से पृथक अध्यात्मवादियों के कार्य। इन श्रेणियों की भी कई-कई शाखाएँ हैं, किन्तु भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्तियों द्वारा दिव्य गुणों के कारण कर्म, ज्ञान तथा योग में लगे व्यक्तियों के ध्यान को आकृष्ट करते हैं। भगवान् अचिन्त्य शक्तियों से पूर्ण हैं, जो उनके व्यक्तित्व, उनकी शक्तियों तथा उनके दिव्य गुणों से सम्बन्धित हैं। जिज्ञासुओं के लिए ये अत्यन्त आकर्षक हैं। फलस्वरूप भगवान् कृष्ण कहलाते हैं।

सनकादि—शुकदेव ताहाते प्रमाण।
एइमत नाना अर्थ करेन व्याख्यान॥१९८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक की व्याख्या शुकदेव गोस्वामी तथा सनक, सनत्कुमार, सनातन और सनन्दन नामक ऋषियों से सम्बन्धित प्रमाण प्रस्तुत करते हुए की। इस तरह महाप्रभु ने विविध अर्थ तथा

व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

तात्पर्य

कृष्ण के सर्व आकर्षक होने की पुष्टि चारों ऋषियों तथा शुकदेव गोस्वामी के कार्यों से होती है। यद्यपि ये सभी मुक्त पुरुष (आत्माराम) थे, किन्तु फिर भी भगवान् के गुणों एवं लीलाओं के प्रति आकृष्ट थे। इसीलिए कहा गया है—*मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते* (चैतन्य-चरितामृत मध्य २४.११२)। मुक्त पुरुष भी भगवान् कृष्ण की लीलाओं के प्रति आकृष्ट होकर उनकी भक्ति करते हैं। शुकदेव गोस्वामी तथा *चतुःसन* नाम से विख्यात चारों कुमार मुक्त थे तथा ब्रह्मपद को प्राप्त थे, फिर भी भगवान् कृष्ण के प्रति आकृष्ट होकर उनकी सेवा में लगे रहते थे। चारों कुमार भगवान् कृष्ण के चरणकमलों पर चढ़े हुए फूलों की सुगन्ध से आकर्षित होकर उनके भक्त बने थे। शुकदेव गोस्वामी ने अपने पिता व्यासदेव की कृपा से *श्रीमद्भागवत* सुनी, जिससे वे कृष्ण के प्रति आकृष्ट हुए और महान भक्त बन गये। निष्कर्ष यह है कि भगवान् की सेवा से अनुभव किया गया आनन्द *ब्रह्मानन्द* से श्रेष्ठ है।

शुनि' भट्टाचार्येर मने हैल चमत्कार।
प्रभुके कृष्ण जानि' करे आपना धिक्कार॥१९९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से आत्माराम श्लोक की व्याख्या सुन कर सार्वभौम भट्टाचार्य चकित रह गये। तब जाकर उन्होंने समझा कि श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण हैं और उन्होंने स्वयं को निम्नलिखित शब्दों से धिक्कारा।

'इँहो त' साक्षात् कृष्ण,—मुञि ना जानिया।
महा-अपराध कैनु गर्वित हइया॥२००॥

अनुवाद

"चैतन्य महाप्रभु निश्चय ही साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। चूँकि मैं उन्हें नहीं समझ पाया और अपने पाण्डित्य पर अत्यन्त गर्वित था, इसलिए मैंने बहुत अपराध किया है।"

आत्मनिन्दा करि' लैल प्रभुर शरण।
कृपा करिबारे तबे प्रभुर हैल मन॥२०१॥

अनुवाद

जब सार्वभौम ने अपने को अपराधी कह कर धिक्कारा और भगवान् की शरण ग्रहण कर ली तो भगवान् ने उन पर कृपा की।

निज-रूप प्रभु ताँरे कराइल दर्शन।
चतुर्भुज-रूप प्रभु हइला तखन॥२०२॥

अनुवाद

उन पर कृपा जताने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने विष्णु रूप का दर्शन कराया। उन्होंने तुरन्त चतुर्भुज रूप धारण कर लिया।

देखाइल ताँरे आगे चतुर्भुज-रूप।
पाछे श्याम-वंशीमुख स्वकीय स्वरूप॥२०३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वप्रथम अपना चतुर्भुज रूप दिखलाया और फिर वे उनके समक्ष अपने आदि रूप में श्याम वर्ण तथा अधर पर वंशी धारण किये प्रकट हुए।

देखि' सार्वभौम दण्डवत् करि' पड़ि'।
पुनः उठि' स्तुति करे दुइ कर युड़ि'॥२०४॥

अनुवाद

जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु में भगवान् कृष्ण का स्वरूप देखा तो उन्होंने तुरन्त उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर वे खड़े हुए और दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे।

प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल सब तत्त्व।
नाम-प्रेम-दान-आदि वर्णेर महत्त्व॥२०५॥

अनुवाद

भगवान् की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य को सारे तत्त्व प्रकट हो गये और वे भगवन्नाम का कीर्तन करने तथा भगवत्प्रेम का सर्वत्र वितरण

करने के महत्व को समझ सके।

शत श्लोक कैल एक दण्ड ना य़ाइते।
बृहस्पति तैछे श्लोक ना पारे करिते॥२०६॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अल्प समय में सौ श्लोक रच डाले। यहाँ तक कि स्वर्गलोक के पुरोहित बृहस्पति भी इतनी जल्दी श्लोकों की रचना नहीं कर सकते हैं।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित सौ सुन्दर श्लोकों वाली पुस्तक *सुश्लोक-शतक* है।

शुनि' सुखे प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
भट्टाचार्य प्रेमावेशे हैल अचेतन॥२०७॥

अनुवाद

एक सौ श्लोक सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन कर लिया। वे भगवत्प्रेम से अभिभूत होने के कारण तुरन्त अचेत हो गये।

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि।
नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि'॥२०८॥

अनुवाद

भगवत्प्रेम के कारण भट्टाचार्य की आँखो से आँसू झर रहे थे और उनका शरीर स्तम्भित था। उन्होंने पुलक प्रदर्शित किया और उनके पसीना आ गया, वे काँपने और थरथराने लगे। वे कभी नाचते, कभी गाते, कभी रोते और कभी भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए नीचे गिर पड़ते।

देखि' गोपीनाथाचार्य हरषित-मन।
भट्टाचार्येर नृत्ये देखि' हासे प्रभुर गण॥२०९॥

करने के महत्व को समझ सके।

शत श्लोक कैल एक दण्ड ना य़ाइते।
बृहस्पति तैछे श्लोक ना पारे करिते॥२०६॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अल्प समय में सौ श्लोक रच डाले। यहाँ तक कि स्वर्गलोक के पुरोहित बृहस्पति भी इतनी जल्दी श्लोकों की रचना नहीं कर सकते हैं।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित सौ सुन्दर श्लोकों वाली पुस्तक *सुश्लोक-शतक* है।

शुनि' सुखे प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
भट्टाचार्य प्रेमावेशे हैल अचेतन॥२०७॥

अनुवाद

एक सौ श्लोक सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन कर लिया। वे भगवत्प्रेम से अभिभूत होने के कारण तुरन्त अचेत हो गये।

अश्रु, स्तम्भ, पुलक, स्वेद, कम्प थरहरि।
नाचे, गाय, कान्दे, पड़े प्रभु-पद धरि'॥२०८॥

अनुवाद

भगवत्प्रेम के कारण भट्टाचार्य की आँखो से आँसू झर रहे थे और उनका शरीर स्तम्भित था। उन्होंने पुलक प्रदर्शित किया और उनके पसीना आ गया, वे काँपने और थरथराने लगे। वे कभी नाचते, कभी गाते, कभी रोते और कभी भगवान् के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए नीचे गिर पड़ते।

देखि' गोपीनाथाचार्य हरषित-मन।
भट्टाचार्येर नृत्ये देखि' हासे प्रभुर गण॥२०९॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को इस भाव में देख कर गोपीनाथ अत्यधिक हर्षित थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी भट्टाचार्य को इस तरह नाचते देख कर हँस पड़े।

गोपीनाथाचार्य कहे महाप्रभुर प्रति।
'सेइ भट्टाचार्येर प्रभु कैले एइ गति॥'२१०॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से कहा, "महाशय! आपने सार्वभौम भट्टाचार्य की यह गति बना दी है।"

प्रभु कहे,—'तुमि भक्त, तोमार सङ्ग हैते।
जगन्नाथ इँहारे कृपा कैले भालमते॥२११॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप भक्त हैं। आपकी संगति के कारण ही जगन्नाथ भगवान् ने इन पर यह कृपा की है।"

तबे भट्टाचार्ये प्रभु सुस्थिर करिल।
स्थिर हञा भट्टाचार्ये बहु स्तुति कैल॥२१२॥

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य को शान्त किया। उन्होंने शान्त होने पर महाप्रभु की अनेक प्रकार से प्रार्थनाएँ कीं।

"जगत् निस्तारिले तुमि,—सेइ अल्प-कार्य।
आमा उद्धारिले तुमि,—ए शक्ति आश्चर्य॥२१३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "महाशय! आपने सारे जगत का उद्धार किया है लेकिन यह कोई बड़ा काम नहीं है। किन्तु आपने मेरा भी उद्धार कर दिया जो निश्चित रूप से अद्भुत शक्ति का काम है।

तर्कशास्त्र जड़ आमि, यैछे लौहपिण्ड।
आमा द्रवाइले तुमि, प्रताप प्रचण्ड"॥२१४॥

अनुवाद

"मैं तर्कशास्त्र सम्बन्धी अनेक पुस्तकें पढ़ने के कारण कुन्दबुद्धि होने से लोहे की छड़ के समान बन गया था। लेकिन इतने पर भी आपने मुझे द्रवित कर दिया, अतएव आपका प्रभाव प्रचण्ड है।"

स्तुति शुनि' महाप्रभु निज वासा आइला।
भट्टाचार्य आचार्य-द्वारे भिक्षा कराइला॥२१५॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा की गई स्तुति सुन कर महाप्रभु अपने वास स्थान लौट आये और भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य के माध्यम से वहीं पर भोजन स्वीकार करने के लिए उन्हें प्रेरित किया।

आर दिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने।
दर्शन करिला जगन्नाथ-शय्योत्थाने॥२१६॥

अनुवाद

अगले दिन प्रातःकाल श्री चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजी का दर्शन करने मन्दिर गये और देखा कि भगवान् अपनी शय्या से उठ रहे हैं।

पुजारी आनिया-माला-प्रसादान्न दिला।
प्रसादान्न-माला पाञा प्रभु हर्ष हैला॥२१७॥

अनुवाद

पुजारी ने उन्हें जगन्नाथजी पर चढ़ाई गई फूल-मालाएँ तथा प्रसाद लाकर दिये। इससे महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सेइ प्रसादान्न-माला अञ्चले बाँधिया।
भट्टाचार्येर घरे आइला त्वरायुक्त हञा॥२१८॥

अनुवाद

इस प्रसाद तथा माला को सावधानी से कपड़े में बाँध कर श्री चैतन्य महाप्रभु सार्वभौम भट्टाचार्य के घर की ओर तेजी से बढ़े।

अरुणोदय-काले हैल प्रभुर आगमन।
सेइकाले भट्टाचार्येर हैल जागरण॥२१९॥

अनुवाद

वे सूर्योदय होने से थोड़ा पहले भट्टाचार्य के घर आ पधारे। ठीक उसी समय भट्टाचार्य सोकर जगे थे।

'कृष्ण' 'कृष्ण' स्फुट कहि' भट्टाचार्य जागिला।
कृष्णनाम शुनि' प्रभुर आनन्द बाड़िला॥२२०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने जगते ही स्पष्ट रूप से 'कृष्ण' 'कृष्ण' का उच्चारण किया। श्री चैतन्य महाप्रभु उन्हें कृष्ण-नाम का उच्चारण करते सुन कर अत्यन्त हर्षित हुए।

बाहिरे प्रभुर तेँहो पाइल दरशन।
आस्ते-व्यस्ते आसि' कैल चरण वन्दन॥२२१॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बाहर देखा तो तेजी से वे उनके पास गये और उनके चरणकमलों की वन्दना की।

वसिते आसन दिया दुँहेते वसिला।
प्रसादान्न खुलि' प्रभु ताँर हाते दिला॥२२२॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने महाप्रभु को बैठने के लिए गलीचा दिया और फिर दोनों वहाँ बैठ गये। तत्पश्चात् महाप्रभु ने प्रसाद खोला और उसे भट्टाचार्य के हाथों पर रख दिया।

प्रसादान्न पाञा भट्टाचार्येर आनन्द हैल।
स्नान, सन्ध्या, दन्तधावन यद्यपि ना कैल॥२२३॥

अनुवाद

तब तक भट्टाचार्य ने न तो मुँह धोया था, न स्नान किया था, न ही सन्ध्या की थी। फिर भी वे जगन्नाथजी का प्रसाद पाकर अत्यन्त आनन्दित थे।

चैतन्य-प्रसादे मनेर सब जाड्य गैल।
एइ श्लोक पड़ि' अन्न भक्षण करिल॥२२४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सार्वभौम भट्टाचार्य के मन की सारी जड़ता दूर हो गई। उन्होंने निम्नलिखित दो श्लोक पढ़ कर उस प्रसाद को ग्रहण किया।

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूरदेशतः।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा॥२२५॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "मनुष्य को चाहिए कि भगवान् का महाप्रसाद पाते ही उसे खा लिया जाय, भले ही वह सूखा, बासी या दूर देश से लाया हुआ क्यों न हो। इसमें देश, काल का विचार नहीं करना चाहिए।

न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टैर्भोक्तव्यं हरिरब्रवीत॥२२६॥

अनुवाद

"शिष्ट लोगों को चाहिए कि ज्योंही भगवान् कृष्ण का प्रसाद प्राप्त हो, उसे खा लिया जाय, इसमें किसी प्रकार का मीन-मेष नहीं करना चाहिए। काल तथा देश के विषय में कोई नियम नहीं है। यह भगवान् का आदेश है।

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक *पद्म-पुराण* के हैं।

देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कैल आलिङ्गन॥२२७॥

अनुवाद

यह देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे भगवत्प्रेम में भावाविष्ट हो गये और उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य का आलिंगन कर लिया।

दुइजने धरि' दुँहे करेन नर्तन।
प्रभु-भृत्य दुँहा स्पर्शे, दोँहार फुले मन॥२२८॥

अनुवाद

प्रभु तथा दास ने एक-दूसरे का आलिंगन किया और दोनों नाचने लगे। वे एक-दूसरे के स्पर्श मात्र से भावाविष्ट हो गये।

स्वेद-कम्प-अश्रु दुँहे आनन्दे भासिला।
प्रेमाविष्ट हञा प्रभु कहिते लागिला॥२२९॥

अनुवाद

जब वे नाचने और आलिंगन करने लगे तो उनके शरीरों में आध्यात्मिक लक्षण प्रकट होने लगे। उनके पसीना आ गया, वे काँपने तथा रोने लगे और महाप्रभु भावावेश में बोलने लगे।

"आजि मुञि अनायासे जिनिनु त्रिभुवन।
आजि मुञि करिनु वैकुण्ठ आरोहण॥२३०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आज मैंने आसानी से तीनों लोकों को जीत लिया है। आज मैं वैकुण्ठ-लोक में चढ़ गया हूँ।"

तात्पर्य

यहाँ पर मानव-जीवन के लक्ष्य का संक्षेप में वर्णन किया गया है। मनुष्य को ब्रह्माण्ड के सारे लोकों को पार करके ब्रह्माण्ड के आवरण को भेद कर वैकुण्ठ-लोक पहुँचना होता है। ये वैकुण्ठ-लोक विभिन्न आध्यात्मिक लोक हैं जो भगवान् के निविर्शेष शारीरिक तेज—*ब्रह्मज्योति*—में स्थित होते हैं। मनुष्य इस जगत के भीतर स्वर्गलोक—चाँद या सूर्य-लोक जाने की कामना कर सकता है, किन्तु यदि वह कृष्णभावनामृत में बढ़ा-चढ़ा है तो वह इस भौतिक ब्रह्माण्ड में यहाँ तक कि स्वर्गलोक में भी नहीं रहना चाहता। प्रत्युत वह ब्रह्माण्ड के आवरण को भेद कर वैकुण्ठ-लोक जाना श्रेयस्कर समझता है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के निर्देशन में भक्तगण सर्वोच्च वैकुण्ठ-लोक में, गोलोक वृन्दावन में पहुँचना चाहता है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके नित्य पार्षदों का निवास है।

आज मोर पूर्ण हैल सर्व अभिलाष।
सार्वभौमेर हैल महाप्रसादे विश्वास॥२३१॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरी समझ में आज मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गईं, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि सार्वभौम भट्टाचार्य को जगन्नाथजी के महाप्रसाद में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है।

आजि तुमि निष्कपटे हैला कृष्णाश्रय।
कृष्ण आजि निष्कपटे तोमा हैल सदय॥२३२॥

अनुवाद

"निस्सन्देह आज आपने कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण की है और कृष्ण बिना भेदभाव के आपके प्रति अत्यन्त दयालु हो गये हैं।

आजि से खण्डिल तोमार देहादि-बन्धन।
आजि तुमि छिन्न कैले मायार बन्धन॥२३३॥

अनुवाद

"हे भट्टाचार्य! आज आप देहात्म-बुद्धि के भौतिक बन्धन से मुक्त हो गये। आपने माया के बन्धन को खण्ड-खण्ड कर दिया है।

आज कृष्णप्राप्ति-योग्य हैल तोमार मन।
वेद-धर्म लङ्घि' कैले प्रसाद भक्षण॥२३४॥

अनुवाद

"आज आपका मन कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने के योग्य हुआ है, क्योंकि आपने वैदिक नियमों का उल्लंघन करके भगवान् के प्रसाद का भक्षण किया है।

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नेषां ममाहमितिधीः श्वशृगालभक्ष्ये॥२३५॥

अनुवाद

"जब मनुष्य निष्कपट भाव से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो असीम दयालु भगवान् उस पर अपनी अहैतुकी कृपा दिखलाते हैं। इस तरह वह अज्ञान के दुर्लंघ्य सागर को पार कर सकता है। जिसकी बुद्धि देहात्म-बोध में लगी रहती है और जो यह सोचता है कि "मैं यह शरीर हूँ" वह कुत्तों तथा सियारों का उपयुक्त भोजन है। भगवान् ऐसे व्यक्ति पर कभी कृपा नहीं करते।"

तात्पर्य

भगवान् कभी भी ऐसे लोगों को वर नहीं देते जो देहात्म-बुद्धि-परायण हैं। *भगवद्गीता* में (१८.६६) स्पष्ट कहा गया है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"विविध प्रकार के धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम डरो नहीं।"

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (२.७.४२) उद्धृत किया है जिसमें श्रीकृष्ण के कथन की व्याख्या की गई है। कृष्ण ने अर्जुन को अपनी अहैतुकी कृपा इसीलिए प्रदान की जिससे वह देहात्म-बुद्धि से उबर सके। *भगवद्गीता* के द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में ही (२.१३) ऐसा किया गया जहाँ कृष्ण कहते हैं—*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा*। इस शरीर का एक स्वामी होता है और इस शरीर को आत्मा नहीं मानना चाहिए। यह पहला उपदेश है जो किसी भी भक्त को आत्मसात् करना चाहिए। यदि वह देहात्म-बोध के वश में है तो अपने वास्तविक स्वरूप को समझ पाने और भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगने में असमर्थ रहता है। दिव्य पद प्राप्त किये बिना न तो भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा की जानी चाहिए, न ही वह अज्ञान के विस्तृत सागर को पार कर सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (७.१४) इस प्रकार हुई है—*मामेवये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते*। कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना माया के पाश से मुक्त होने की आशा व्यर्थ है। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार माया के बन्धन से अपने को मुक्त समझने वाले मायावादी संन्यासी *विमुक्तमानिनः* कहलाते

हैं। वास्तव में वे मुक्त नहीं होते अपितु वे अपने को मुक्त हुआ तथा अपने को नारायण समझते हैं। यद्यपि उन्हें अनुभूति हुई रहती है कि वे भौतिक शरीर न होकर *आत्मा* हैं, फिर भी वे आत्मा के कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हैं। कर्तव्य है कि परमात्मा की सेवा की जाय। इसलिए उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। जब तक बुद्धि विमल नहीं हो जाती, उसका उपयोग भक्ति समझने में नहीं किया जा सकता। भक्ति का शुभारम्भ तो तब होता है जब मन, बुद्धि तथा अहंकार पूर्णतया शुद्ध हो जाते हैं। चूँकि मायावादी संन्यासी अपनी बुद्धि, मन तथा अहंकार शुद्ध नहीं बनाते, फलस्वरूप वे न तो भगवान् की भक्ति में लग सकते हैं, न ही भगवान् की अहैतुकी कृपा की आशा करते हैं॥ यद्यपि वे कठिन तपस्या करके अत्युच्च पद को प्राप्त होते हैं, फिर भी वे इसी भौतिक जगत में मँडराते रहते हैं, क्योंकि उन्हें भगवान् के चरणकमलों का वर नहीं मिल पाता। कभी-कभी वे ब्रह्मतेज तक पहुँच जाते हैं, किन्तु उन्हें अपना मन शुद्ध न होने के कारण, भौतिक जगत में लौटना पड़ता है।

कर्मीजन पूर्णतया देहात्म-बुद्धि के वशीभूत होते हैं और ज्ञानियों को इसका ज्ञान तो रहता है कि वे शरीर नहीं हैं, किन्तु उन्हें भी भगवान् के चरणकमलों के विषय में कोई सूचना नहीं रहती, क्योंकि वे निर्विशेषवाद पर अधिक बल देते हैं। फलत: कर्मी तथा ज्ञानी दोनों ही भगवत्कृपा प्राप्त करने और भक्त बनने के लिए अयोग्य होते हैं। इसलिए नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्ड, केवल विषेर भाण्ड—जो लोग ज्ञानकाण्ड तथा कर्मकाण्ड की विधि अपनाते हैं, उन्हें समझो कि विषैले बर्तन में भोजन करते हैं। उन्हें जन्म-जन्मान्तर भौतिक जगत में रहने दिया जाता है, जब तक कि वे कृष्ण के चरणकमलों की शरण में नहीं जाते। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से (७.१९) होती है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ:॥

"जो व्यक्ति वास्तव में ज्ञानी है वह अनेक जन्मों के बाद मुझे समस्त कारणों का कारण समझ कर मेरी शरण में आता है।"

एत कहि' महाप्रभु आइला निज-स्थाने।
सेइ हैते भट्टाचार्येर खण्डिल अभिमाने॥२३६॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य से इस तरह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु अपने वास-स्थान लौट आये। उस दिन से भट्टाचार्य मुक्त हो गये क्योंकि उनका मिथ्या अभिमान खण्डित हो चुका था।

चैतन्य-चरण विने नाहि जाने आन।
भक्ति विनु शास्त्रेर आर ना करे व्याख्यान॥२३७॥

अनुवाद

उस दिन से सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों को छोड़ कर और कुछ नहीं जाना। उस दिन से वे केवल भक्तियोग के अनुसार शास्त्रों की व्याख्या करने लगे।

गोपीनाथाचार्य ताँर वैष्णवता देखिया।
'हरि' 'हरि' बलि' नाचे हाते तालि दिया॥२३८॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य को वैष्णव सम्प्रदाय में दृढ़ देख कर उनके बहनोई गोपीनाथ आचार्य नाचने, ताली बजाने और 'हरि' 'हरि' का उच्चारण करने लगे।

आर दिन भट्टाचार्य आइला दर्शने।
जगन्नाथ ना देखि' आइला प्रभुस्थाने॥२३९॥

अनुवाद

अगले दिन भट्टचार्य जगन्नाथ मन्दिर गये, किन्तु मन्दिर पहुँचने के पूर्व वे चैतन्य महाप्रभु को देखने चले गये।

दण्डवत् करि' कैल बहुविध स्तुति।
दैन्य करि' कहे निज पूर्वदुर्मति॥२४०॥

अनुवाद

महाप्रभु से मिलने पर भट्टाचार्य ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। विविध

प्रकार से उनकी स्तुति करने के बाद उन्होंने अत्यन्त दीन भाव से अपनी पूर्व दुर्मति का वर्णन किया।

भक्तिसाधन-श्रेष्ठ शुनिते हैल मन।
प्रभु उपदेश कैल नाम-संकीर्तन॥२४१॥

अनुवाद

तत्पश्चात् भट्टाचार्य ने चैतन्य महाप्रभु से पूछा, "भक्ति-साधना में कौन-सा कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है?" महाप्रभु ने उत्तर दिया कि सबसे महत्वपूर्ण कार्य भगवन्नाम का कीर्तन है।

तात्पर्य

भक्ति में नौ कार्य सम्पन्न करने होते हैं। *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक में (७.५.३२) इनके नाम गिनाये गये हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भगवान् की महिमा का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भगवान् के चरणकमलों की सेवा, मन्दिर में पूजा करना, स्तुति करना, भगवान् का दास बनना, भगवान् का सखा बनना तथा भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया आत्मसमर्पण—*सर्वात्म-निवेदन*—ये नौ भक्ति की विधियाँ हैं। *भक्तिरसामृत सिन्धु* में इनका विस्तार करके ६४ कर दिया गया है। जब सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु से पूछा कि इनमें से कौन-सी विधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है तो महाप्रभु ने झट से कहा कि भगवन्नाम कीर्तन—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे—ही सबसे महत्वपूर्ण है। तत्पश्चात् उन्होंने *बृहन्नारदीय पुराण* के (३८.१२६) निम्नलिखित श्लोक से अपने कथन की पुष्टि की।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥२४२॥

अनुवाद

"कलह और दिखावे के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवन्नाम का कीतर्न है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है, नहीं है,

नहीं है।"

तात्पर्य

चूँकि इस युग के लोग इतने पतित हैं इसलिए वे केवल हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन कर सकते हैं। इस तरह वे देहात्म-बुद्धि से अपने को छुटकारा दिला सकते हैं और भगवान् की सेवा में लगने के योग्य बन सकते हैं। जब तक सारे कल्मष से निर्मल न हो लिया जाय तब तक भगवान् की भक्ति में नहीं लगा जा सकता। इसकी पुष्टि *भगवद्‌गीता* में (७.२८) हुई है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः॥

जिन लोगों ने पिछले जन्मों में तथा इस जन्म में पुण्यकर्म किये हैं, जिनके पापकर्म पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं और जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं वे दृढ़तापूर्वक मेरी सेवा में लगते हैं। कभी-कभी लोग तरुणों तथा स्त्रियों को कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में गम्भीरतापूर्वक कार्य करते देख कर विस्मित हो जाते हैं। पापकर्म—अवैध यौन, मांसाहार, नशा तथा जुआ—छोड़ कर गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करने से वे सारे कल्मष से शुद्ध हो चुके हैं। इसलिए वे भगवान् की भक्ति में पूरी तरह लग सकते हैं।

इस कलियुग में *हरि-कीर्तन* अत्यधिक महत्वपूर्ण है। *श्रीमद्‌भागवत* में (१२.३.५१-५२) भगवन्नाम कीर्तन करने का महत्व बतलाया गया है

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्॥

"दोषों के सागर इस कलियुग में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य केवल हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करके कल्मषरहित हो सकता है और भगवद्धाम में पहुँचने का पात्र बन सकता है। जो आत्म-साक्षात्कार सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता में विभिन्न यज्ञ करने से तथा द्वापर में भगवान् कृष्ण की पूजा करने से प्राप्त किया जाता था, उसे कलियुग में हरे-कृष्ण का कीर्तन करने

से प्राप्त किया जा सकता है।"

एइ श्लोकेर अर्थ शुनाइल करिया विस्तार ।
शुनि' भट्टाचार्य-मन हैल चमत्कार।।२४३।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने बृहन्नारदीय-पुराण के हरेर्नाम श्लोक की विस्तार से व्याख्या की और सार्वभौम भट्टाचार्य उनकी व्याख्या सुन कर चकित रह गये।

गोपीनाथाचार्य बले,—'आमि पूर्वे ये कहिल।
शुन, भट्टाचार्य, तोमार सेइ त' हइल।।'२४४।।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य को स्मरण कराया, "हे भट्टाचार्य! मैंने आपसे जो कुछ कहा था, अब वह घटित हो गया।"

तात्पर्य

गोपीनाथ आचार्य ने इसके पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया था कि जब महाप्रभु उन्हें आशीर्वाद देंगे तो वे भक्तियोग को भलीभाँति समझ सकेंगे। अब यह भविष्यवाणी पूरी हो चुकी थी। भट्टाचार्य पूरी तरह से वैष्णव बन चुके थे और बिना किसी दबाव के स्वयं ही सारे नियमों का पालन कर रहे थे। इसीलिए *भगवद्गीता* में (२.४०) कहा गया है—*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*—केवल थोड़ी-सी भक्ति करके महान् से महान् संकट से बचा जा सकता है। सार्वभौम भट्टाचार्य सबसे बड़े संकट में थे, क्योंकि वे मायावादी दर्शन के कट्टर अनुयायी थे। किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्पर्क में आकर पूर्ण भक्त बन गये। इस तरह से वे निर्विशेषवाद के महान गर्त में गिरने से बचा लिये गये।

भट्टाचार्य कहे ताँरे करि' नमस्कार।
तोमार सम्बन्धे प्रभु कृपा कैल मोरे।।२४५।।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य को नमस्कार करते हुए भट्टाचार्य ने कहा, "चूँकि मै आपका सम्बन्धी हूँ और आप भक्त हैं, अतएव आपकी कृपा से

भगवान् ने मुझ पर कृपा की है।

तुमि—महाभागवत, आमि—तर्क-अन्धे।
प्रभु कृपा कैल मोरे तोमार सम्बन्धे॥२४६॥

अनुवाद

कहाँ आप महाभागवत (उच्च कोटि के भक्त) और कहाँ मैं तर्कशास्त्र के अन्धकार में पड़ा हुआ व्यक्ति। किन्तु भगवान् के साथ आपका सम्बन्ध होने से भगवान् ने मुझे अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।"

विनय शुनि' तुष्ट्ये प्रभु कैल आलिङ्गन।
कहिल,—याञा करह ईश्वर दरशन॥२४७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस विनीत कथन से अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने भट्टाचार्य का आलिंगन करते हुए कहा, "अब आप मन्दिर में जगन्नाथ का दर्शन करने जायँ।"

जगदानन्द दामोदर,—दुइ सङ्गे लञा।
घरे आइल भट्टाचार्य जगन्नाथ देखिया॥२४८॥

अनुवाद

जगन्नाथ मन्दिर देखने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य जगदानन्द तथा दामोदर के साथ घर लौट आये।

उत्तम उत्तम प्रसाद बहुत आनिला।
निजविप्र-हाते दुइ जना सङ्गे दिला॥२४९॥

अनुवाद

भट्टाचार्य अपने साथ भगवान् जगन्नाथ पर चढ़ाया हुआ बहुत-सा प्रसाद ले आये थे। उन्होंने यह सारा प्रसाद अपने ब्राह्मण नौकर तथा जगदानन्द और दामोदर को दिया।

निजकृत दुइ श्लोक लिखिया तालपाते।
'प्रभुके दिह' बलि' दिल जगदानन्द-हाते॥२५०॥

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य ने ताड़पत्र पर अपने बनाये दो श्लोक लिखे और वह ताड़पत्र जगदानन्द प्रभु को देते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उसे श्री चैतन्य महाप्रभु को दे देंगे।

प्रभु-स्थाने आइला दुँहे प्रसाद-पत्री लञा।
मुकुन्द दत्त पत्री निल तार हाते पाञा।।२५१।।

अनुवाद

जगदानन्द तथा दामोदर प्रसाद श्लोक लिखा ताड़पत्र लेकर श्री चैतन्य महाप्रभु के पास लौट आये। लेकिन मुकुन्द दत्त ने जगदानन्द के हाथ से वह ताड़पत्र महाप्रभु को दिये जाने के पूर्व ही ले लिया।

एइ लोक बाहिर-भिते लिखिया राखिल।
तबे जगदानन्द पत्री प्रभुके लञा दिल।।२५२।।

अनुवाद

तब मुकुन्द दत्त ने कमरे की बाहरी दीवाल पर दोनों श्लोक उतार दिये। इसके बाद जगदानन्द ने मुकुन्द दत्त से ताड़पत्र ले लिया और उसे लाकर श्री चैतन्य महाप्रभु को दे दिया।

प्रभु श्लोक पड़ि' पत्र छिण्डिया फेलिल।
भित्त्ये देखि' भक्त सब श्लोक कण्ठे कैल।।२५३।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दोनों श्लोकों को पढ़ते ही ताड़पत्र को फाड़ डाला। किन्तु सारे भक्तों ने बाहरी दीवाल पर इन श्लोकों को पढ़ा और उन्हें कण्ठाग्र कर लिया। ये श्लोक इस प्रकार थे।

वैराग्य-विद्या-निज-भक्तियोग-शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।
श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।२५४।।

अनुवाद

"मैं उन भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता हूँ जो हमें असली ज्ञान, अपनी भक्ति तथा कृष्णभावनामृत के सम्वर्धन में बाधाओं से विरक्ति सिखलाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित

हुए हैं। वे दिव्य कृपा के सिन्धु होने के कारण अवतरित हुए हैं। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।"

तात्पर्य

यह श्लोक तथा अगला श्लोक श्री कविकर्णपुर-कृत *चैतन्य-चन्द्रोदय नाटक* (६,७४)में पाये जाते हैं।

कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढं गाढं लीयतं चित्तभृङ्गः।।२५५।।

अनुवाद

"भौंरे जैसी मेरी चेतना उन भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करती है जो अभी ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अपने आपको प्राचीन भक्तियोग की शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए हैं। यह भक्तियोग समय के प्रभाव से लुप्तप्राय हो चुका था।"

तात्पर्य

भगवद्गीता में (४.७) कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

"जब जब धार्मिक प्रथा का ह्रास और अधर्म का प्राधान्य होता है, तब तक हे भरतवंशी! मैं अवतार लेता हूँ।"

यही बात चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव पर भी लागू होती है। वे इस जगत में कृष्ण के प्रच्छन्न अवतार के रूप में प्रगट हुए, किन्तु उनके आविर्भाव की पुष्टि *श्रीमद्भागवत, महाभारत* तथा अन्य वैदिक शास्त्रों से होती है। वे इस जगत की पतितात्माओं को शिक्षा देने के लिए प्रकट हुए, क्योंकि इस कलियुग में प्रायः हर व्यक्ति सकाम तथा अनुष्ठान-कर्मों एवं मानसिक चिन्तन में लिप्त रहता है। अतएव भक्तियोग को पुनरुज्जीवित करने की नितान्त आवश्यकता है। इसीलिए भगवान् भक्त के वेश में अवतरित हुए जिससे पतित जनसमूह भगवान् के दृष्टान्त से लाभ उठा सके।

श्रीमद्भागवत के अन्त में भगवान् कृष्ण ने अपने भक्त को पूर्ण आत्मसमर्पण की सलाह देते हुए उसे संरक्षण देने का वचन दिया। दुर्भाग्यवश लोग इतने

पतित हो गये हैं कि वे भगवान् कृष्ण के आदेशों को नहीं मानते। अतएव उसी उद्देश्य को लेकर कृष्ण फिर से आये, किन्तु उन्होंने भिन्न प्रकार से यह कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में हमें आदेश दिया कि उनकी शरण ग्रहण करें, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में उन्होंने यह शिक्षा दी कि किस तरह कृष्ण की शरण ली जाय। इसीलिए गोस्वामियों ने उनकी प्रशंसा इस प्रकार की है—*नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते*। श्रीकृष्ण निश्चय ही भगवान् हैं, किन्तु वे श्री चैतन्य महाप्रभु के समान वदान्य नहीं हैं। भगवान् कृष्ण ने मनुष्य को केवल यही आदेश दिया कि मेरे भक्त बनो (*मन्मना भव मद्भक्तो*) किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्णभावनामृत की विधि सिखलाई। यदि कोई कृष्ण का भक्त बनना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी होगी, जैसा कि सार्वभौम भट्टाचार्य तथा अन्य भक्तों ने किया।

एइ दुइ श्लोक—भक्तकण्ठे रत्नहार।
सार्वभौमेर कीर्ति घोषे ढक्कावाद्याकार॥२५६॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य द्वारा रचित ये दोनों श्लोक उनके नाम तथा यश की घोषणा ढोल की थाप के समान उच्च स्वर से सदैव करते रहेंगे क्योंकि ये श्लोक सारे भक्तों के गले की मोतीमाला बन चुके हैं।

सार्वभौम हैला प्रभुर भक्त एकतान।
महाप्रभुर सेवा-विना नाहि जाने आन॥२५७॥

अनुवाद

निस्सन्देह सार्वभौम भट्टाचार्य चैतन्य महाप्रभु के अनन्य भक्त बन गये। उन्होंने महाप्रभु की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जाना।

'श्रीकृष्ण चैतन्य शचीसूत गुणधाम'।
एइ ध्यान, एइ जप, लय एइ नाम॥२५८॥

अनुवाद

भट्टाचार्य सदैव माता शची के पुत्र एवं समस्त सद्गुणों के आगार श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम का कीर्तन करते थे। नाम-कीर्तन ही उनका ध्यान बन

गया।

एकदिन सार्वभौम प्रभु-आगे आइला।
नमस्कार करि' श्लोक पड़िते लागिला॥२५९॥

अनुवाद

एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु के सामने आये और नमस्कार करने के बाद एक श्लोक सुनाने लगे।

भागवतेर 'ब्रह्मस्तवे'र श्लोक पड़िला।
श्लोक-शेष दुइ अक्षर-पाठ फिराइला॥२६०॥

अनुवाद

वे श्रीमद्भागवत में से ब्रह्माजी की एक स्तुति सुनाने लगे किन्तु श्लोक के अन्तिम दो अक्षरों को बदल दिया।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो भक्तिपदे स दायभाक्॥२६१॥

अनुवाद

[यह श्लोक था] "जो आपकी अनुकम्पा चाहता है और अपने विगत कर्मों से उत्पन्न विपरीत परिस्थितियों को सहता है, जो तन, मन तथा वचन से सदैव आपकी सेवा में संलग्न रहता है और जो सदैव आपको नमस्कार करता है, वह निश्चय ही आपका अनन्य भक्त बनने का पात्र है।"

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक (१०.१४.८) को पढ़ते समय *मुक्तिपदे* को बदल कर *भक्तिपदे* कर दिया था। शुद्ध भक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण भट्टाचार्य को *मुक्तिपदे* शब्द नहीं भाया क्योंकि यह भगवान् के निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप का द्योतक है। किन्तु उन्हें *श्रीमद्भागवत* के एक भी शब्द बदलने का अधिकार नहीं था, जैसा कि महाप्रभु बतलायेंगे। यद्यपि सार्वभौम ने भक्ति के आवेश में शब्द बदल दिया था, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु को यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा।

प्रभु कहे, 'मुक्तिपदे'—इहा पाठ हय।
'भक्तिपदे' केने पड़, कि तोमार आशय॥२६२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तुरन्त संकेत किया, "उस श्लोक में 'मुक्तिपदे' शब्द आया है, किन्तु आपने इसे बदल कर 'भक्तिपदे' कर दिया है। आखिर आपकी क्या मंशा है?

भट्टाचार्य कहे,—'भक्ति'-सम नहे मुक्ति-फल।
भगवद्भक्ति विमुखेर हय दण्ड केवल॥२६३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "शुद्ध भगवत्प्रेम का उदय भक्ति का फल है और भवबन्धन से मुक्ति से कहीं बढ़ कर है। जो भक्ति से विमुख हैं उनके लिए ब्रह्मतेज में विलीन होना एक प्रकार का दण्ड है।"

तात्पर्य

ब्रह्माण्ड-पुराण में कहा गया है—

सिद्धलोकस्तु तमसः पारे यत्र वसन्ति हि।
सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः॥

"सिद्धलोक (ब्रह्मलोक) में दो प्रकार के जीव रहते हैं—वे जो पूर्वजन्म में असुर होने के कारण भगवान् द्वारा मारे गये थे, तथा वे जो भगवान् के निर्विशेष तेज का भोग करना चाहते हैं।" *तमसः* शब्द का अर्थ है "ब्रह्माण्ड के आवरण"। तत्वों की परतें ब्रह्माण्ड को आच्छादित करती हैं और निर्विशेष ब्रह्मतेज इन परतों के बाहर होता है। यदि मनुष्य को भगवान् के निर्विशेष तेज में ही रहना पड़ता है तो वह भगवान् की सेवा करने के अवसर से वंचित रहता है। इसीलिए भक्तगण निर्विशेष ब्रह्मतेज को एक प्रकार का दण्ड ही मानते हैं। कभी-कभी भक्तगण ब्रह्मतेज में लीन होना चाहते हैं; अतएव वे सिद्धलोक को प्राप्त होते हैं। अपने निर्विशेष ज्ञान के कारण उन्हें सचमुच दण्ड मिलता है। सार्वभौम भट्टाचार्य अगले श्लोकों में *मुक्तिपद* तथा *भक्तिपद* का अन्तर बताते हैं।

कृष्णेर विग्रह ग्रेइ सत्य नाहि माने।
ग्रेइ निन्दा-ग्रुद्धादिक करे ताँर सने।।२६४।।
सेइ दुइर दण्ड हय—'ब्रह्मसायुज्य-मुक्त'।
तार मुक्ति फल नहे, ग्रेइ करे भक्ति।।२६५।।

अनुवाद

भट्टाचार्य ने आगे कहा, "भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप को न मानने वाले निर्विशेषवादी तथा भगवान् की निन्दा करने और उनसे लड़ने में सदैव व्यस्त रहने वाले असुरगण ब्रह्मज्योति में लीन किये जाकर दण्डित किये जाते हैं। किन्तु जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में लगा रहता है उसके साथ ऐसा नहीं होता।

ग्रद्यपि से मुक्ति हय पञ्च-परकार।
सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य-सार्ष्टि-सायुज्य आर।।२६६।।

अनुवाद

"मुक्ति पाँच प्रकार की है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि तथा सायुज्य।

तात्पर्य

सालोक्य का अर्थ है मुक्ति के बाद उस लोक को जाना जहाँ भगवान् निवास करते हैं। *सामीप्य* का अर्थ है भगवान् का संगी बने रहना। *सारूप्य* का अर्थ है भगवान् जैसा चतुर्भुज स्वरूप प्राप्त करना। *सार्ष्टि* का अर्थ है भगवान् जैसा ऐश्वर्य प्राप्त करना। *सायुज्य* का अर्थ है भगवान् के ब्रह्मतेज में लीन होना। ये मुक्ति के पाँच प्रकार हैं।

'सालोक्यादि' चारि ग्रदि हय सेवा-द्वार।
तबु कदाचित् भक्त करे अङ्गीकार।।२६७।।

अनुवाद

"यदि शुद्ध भक्त को भगवान् की सेवा करने का अवसर मिलता है तो वह भक्ति के सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य या सार्ष्टि स्वरूप को तो स्वीकार करता है, किन्तु सायुज्य को कभी नहीं करता।

'सायुज्य' शुनिते भक्तेर हय घृणा-भय।
नरक वाञ्छये, तबु सायुज्य ना लय॥२६८॥

अनुवाद

"शुद्ध भक्त तो सायुक्त मुक्ति का नाम भी सुनना नहीं चाहता, क्योंकि उससे उसे भय तथा घृणा उत्पन्न होती है। शुद्ध भक्त भगवान् के तेज में लीन होने के बजाय नरक जाना पसन्द करेगा।"

तात्पर्य

श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती का गीत है—*कैवल्यं नरकायते*। निर्विशेषवादियों की भगवान् के तेज के साथ तादात्म्य की धारणा नरक तुल्य है। अतएव पाँच प्रकार की मुक्तियों में से प्रथम चार (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सार्ष्टि) उतनी अवांछनीय नहीं हैं, क्योंकि इनमें भगवद्भक्ति हो सकती है। किन्तु कृष्ण का शुद्ध भक्त इनका भी तिरस्कार कर देता है, वह तो जन्म-जन्मान्तर कृष्ण की ही सेवा करना चाहता है। वह जन्म के चक्र को रोकने का इच्छुक नहीं, क्योंकि वह नरक में भी भगवान् की सेवा करने का इच्छुक बना रहता है। इसीलिए शुद्ध भक्त *सायुज्य* मुक्ति से घृणा करता है और उससे भय खाता है। यह सायुज्य एक अपराध है जो भगवान् की प्रेमाभक्ति के प्रति किया जाता है, इसीलिए शुद्ध भक्त के लिए वांछनीय नहीं है।

ब्रह्मे, ईश्वरे सायुज्य दुइ त' प्रकार।
ब्रह्म-सायुज्य हैते ईश्वर-सायुज्य धिक्कार॥२६९॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, "सायुज्य मुक्ति दो प्रकार की है—ब्रह्मतेज में लीन होना और भगवान् के शरीर में लीन होना। भगवान् के शरीर में लीन होना तो उनके तेज में लीन होने से भी अधिक निन्दनीय है।

तात्पर्य

मायावादी वेदान्तियों के अनुसार, जीव की चरम सफलता निर्विशेष ब्रह्म में लीन होना है। निर्विशेष ब्रह्म ब्रह्मलोक या सिद्धलोक के नाम से विख्यात है। *ब्रह्म-संहिता* के अनुसार (५.४०)—*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि*—सारे ब्रह्माण्ड भगवान् के शरीर की किरणों से उत्पन्न होते हैं। पतञ्जलि के नियमों

का पालन करने वाले योगी परम सत्य के व्यक्तित्व को तो मानते हैं, किन्तु वे भगवान् के दिव्य शरीर में लीन होना चाहते हैं। उनकी यही मनोकामना रहती है। भगवान् सबसे महान अधिकारी होने के कारण लाखों जीवों को अपने शरीर में लीन होने दे सकते हैं। भगवान् ही सारी वस्तुओं के उद्गम हैं और उनका शारीरिक तेज *ब्रह्मज्योति* ब्रह्मलोक या सिद्धलोक कहलाता है। इस तरह ब्रह्मलोक या सिद्धलोक ऐसा स्थान है जहाँ स्फुलिंगतुल्य जीव, जो भगवान् के अंश हैं, एकत्र होते हैं। चूँकि ये जीव अपना अपना अस्तित्व बनाये रखना नहीं चाहते, अतएव उन सबों को मिलाकर ब्रह्मलोक में रहने दिया जाता है, जिस प्रकार सूर्य से निलकने वाली किरणों में चमकीले कण रहते हैं।

सिद्ध शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सिद्ध उसका सूचक है जिसे ब्रह्मतेज का साक्षात्कार हो चुका है और जिसे इसका पूर्ण ज्ञान होता है कि जीव भौतिक परमाणु नहीं, अपितु आध्यात्मिक स्फुलिंग है। *भगवद्गीता* में इसे *ब्रह्मभूत* कहा गया है। बद्ध अवस्था में जीव *जीवभूत* कहलाता है अर्थात् "पदार्थ के भीतर प्राण"। ब्रह्मभूत जीवों को ब्रह्मलोक में रहने दिया जाता है, किन्तु कभी-कभी वे भौतिक जगत में पुन: आ गिरते हैं, क्योंकि वे भक्ति नहीं करते। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* द्वारा (१०.२.३२) की गई है—*येऽन्येऽरविन्दाक्ष। ये अर्धमुक्त जीव झूठे ही मुक्त होने का दम भरते है, क्योंकि जब तक भगवान् की भक्ति नहीं की जाती तब तक जीव दूषित बना रहता है। इसीलिए ये जीव विमुक्तमानिन:* कहे गये हैं, जिसका अर्थ है कि वे अपने को भ्रान्तिवश मुक्त मानते हैं, यद्यपि उनकी बुद्धि अभी भी निर्मल नहीं हुई है। यद्यपि ये जीव सिद्धलोक तक पहुँचने के लिए कठिन तपस्या करते हैं, किन्तु वे यहाँ स्थायी रूप से नहीं रह सकते, क्योंकि वे *आनन्द* से विहीन होते हैं। ये जीव *ब्रह्मभूत* होने पर भी तथा भगवान् शारीरिक तेज को पार करके भगवान् का साक्षात्कार करने पर भी भगवान् विषयक अपने ज्ञान का ठीक से इस्तेमाल नहीं करते। आनन्द से वञ्चित रह कर वे भौतिक जगत का भोग करने के लिए नीचे आ जाते हैं। यह मुक्त लोगों का वास्तविक रूप में पतन है। भक्तगण ऐसे पतन को नरक जाने के समान मानते हैं।

पतञ्जलि योग के अनुयायी भगवान् के शरीर में लीन होना चाहते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि वे जान कर भी भगवान् की सेवा नहीं करना

चाहते। अतएव इनकी स्थिति तो उनसे भी बदतर है जो ब्रह्मतेज में लीन होना चाहते हैं। पतञ्जलि-पद्धति में भगवान् के स्वरूप को—*क्लेशकर्मविपाकाशयैरपराभृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः* कहा गया है, अर्थात् भगवान् ऐसा व्यक्ति है जो कष्टमय जीवन का भागी नहीं होता। योगीजन अपने मन्त्र—*स पूर्वेषामपि गुरुः कालानवच्छेदात्*—ऐसा व्यक्ति सर्वोच्च होता है और काल के द्वारा प्रभावित नहीं होता—में परमपुरुष की नित्यता को स्वीकार करते हैं। इस तरह पतञ्जलि-पद्धति के अनुयायी भगवान् की नित्यता को स्वीकार करते हुए भी कहते हैं—*पुरुषार्थशून्यानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति*। वे सिद्ध अवस्था में विश्वास रखते हैं, जिसमें *पुरुष* की धारणा का लोप हो जाता है। उनके वर्णन के अनुसार *चितिशक्तिरित*। उनका विश्वास है कि पूर्ण बन जाने पर कोई पुरुष नहीं बना रह सकता। यह योग-पद्धति इसीलिए निन्दनीय है, क्योंकि अन्तिम धारणा निर्विशेष है। ये योगी प्रारम्भ में भगवान् को मानते हैं, किन्तु अन्त में निर्विशेष बनने के लिए वे इस विचार को त्याग देते हैं। ये सबसे बड़े अभागे हैं क्योंकि परम सत्य की साकार धारणा से अवगत होते हुए भी वे भगवान् की भक्ति की उपेक्षा करते हैं, और पुनः इस भौतिक जगत में आ गिरते हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* द्वारा (१०.२.३२) होती है—*आरुह्यकृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदन्घ्रयः*— भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करने के कारण ये योगीजन पुनः भौतिक जगत में आ गिरते हैं (*पतन्त्यधः*)। अतएव योग का यह मार्ग निर्विशेषवादियों के मार्ग से भी बदतर है। इसकी पुष्टि कपिलदेव के कथन से होती है जो *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक (३.२९.१३) में व्यक्त हुआ है।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥२७०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा—"समस्त प्रकार की मुक्तियाँ प्रदान किये जाने पर भी शुद्ध भक्त उन्हें स्वीकार नहीं करता। वह भगवान् की सेवा में संलग्न रहने में ही सन्तुष्ट रहता है।"

प्रभु कहे,—'मुक्तिपदे'र आर अर्थ हय।
मुक्तिपद-शब्दे 'साक्षात् ईश्वर' कहय॥२७१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुक्ति पदे" शब्द का अन्य अर्थ भी है। मुक्तिपद प्रत्यक्ष रूप से भगवान् का द्योतक है।"

मुक्ति पदे य़ार, सेइ 'मुक्तिपद' हय।
किम्वा नवम पदार्थ 'मुक्तिर' समाश्रय॥२७२॥

अनुवाद

"चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ भगवान् के चरणकमलों पर विद्यमान रहती हैं, अतएव वे मुक्तिपद कहे जाते हैं। एक अन्य अर्थ के अनुसार मुक्ति नौवाँ पदार्थ है और भगवान् मुक्ति के आश्रय हैं।"

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण मुकुन्द भी कहलाते हैं जिसका अर्थ है समस्त मुक्ति प्रदान करके दिव्य आनन्द प्रदान करने वाले। *श्रीमद्भागवत* में बारह स्कन्ध हैं, जिनमें से नवें स्कन्ध में सभी प्रकार की मुक्तियों का वर्णन है। दसवाँ स्कन्ध मुक्ति की व्याख्याओं का केन्द्र है, क्योंकि भगवान् कृष्ण वह दसवें पदार्थ हैं जिसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* में हुई है। चूँकि सभी प्रकार की मुक्तियाँ श्रीकृष्ण के चरणकमलों में वास करती हैं अतएव उन्हें *मुक्तिपद* कहा जा सकता है।

दुइ अर्थे 'कृष्ण' कहि, केने पाठ फिरि।
सार्वभौम कहे,—ओ-पाठ कहिते ना पारि॥२७३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "चूँकि मैं इन दोनों अर्थों से श्रीकृष्ण को समझ सकता हूँ तो फिर श्लोक को बदलने से क्या लाभ?" सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "मैं इस श्लोक का वह पाठ नहीं कर पा रहा हूँ।"

यद्यपि तोमार अर्थ एइ शब्दे कय।
तथापि 'आश्लिष्ट-दोषे' कहन ना य़ाय॥२७४॥

अनुवाद

"यद्यपि आपकी व्याख्या सही है, किन्तु *मुक्तिपद* में श्लेष होने के कारण इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।"

यद्यपि 'मुक्ति'-शब्देर हय पञ्चवृत्ति।
रूढिवृत्त्ये कहे तबु 'सायुज्ये' प्रतीति॥२७५॥

अनुवाद

'मुक्ति' शब्द पाँच प्रकार की मुक्तियों का द्योतक है। सामान्यतया इसका सीधा अर्थ सायुज्य की प्रतीति है।

मुक्ति-शब्द कहिते मन हय घृणा-त्रास।
भक्ति-शब्द कहिते मने हय त' उल्लास॥२७६॥

अनुवाद

"मुक्ति शब्द की ध्वनि मात्र से मन में घृणा तथा भय का भाव उत्पन्न होता है, किन्तु जब हम 'भक्ति' शब्द कहते हैं तो हमारे मन में दिव्य आनन्द की सहज अनुभूति होती है।"

शुनिया हासेन प्रभु आनन्दित-मने।
भट्टाचार्य कैल प्रभु दृढ़ आलिङ्गने॥२७७॥

अनुवाद

यह व्याख्या सुन कर महाप्रभु हँसने लगे और तुरन्त ही उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भट्टाचार्य का गाढ़ालिंगन किया।

ये़इ भट्टाचार्य पड़े पड़ाय मायावादे।
ताँर ऐछे वाक्य स्फुरे चैतन्य-प्रसादे॥२७८॥

अनुवाद

जो व्यक्ति मायावाद-दर्शन पढ़ने और पढ़ाने का अभ्यस्त था, वही अब मुक्ति शब्द से घृणा कर रहा है। यह सब श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से ही सम्भव है।"

लोहाके यावत् स्पर्शि' हेम नाहि करे।
तावत् स्पर्शमणि केह चिनिते ना पारे॥२७९॥

अनुवाद

जब तक स्पर्शमणि लोहे को अपने स्पर्श से सोना न बना दे, तब तक कोई भी व्यक्ति अज्ञात पत्थर को स्पर्शमणि नहीं मान सकता।

भट्टाचार्येर वैष्णवता देखि' सर्वजन।
प्रभुके जानिल—'साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन'॥२८०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की वैष्णवता देख कर हर व्यक्ति यह जान सका कि चैतन्य महाप्रभु नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के अलावा अन्य कोई नहीं हैं।

काशीमिश्र-आदि यत नीलाचलवासी।
शरण लइल सबे प्रभु-पदे आसि'॥२८१॥

अनुवाद

इस घटना के बाद काशीमिश्र आदि जगन्नाथ पुरी के सारे वासी महाप्रभु के चरणकमलों की शरण में आ गये।

सेइ सब कथा आगे करिब वर्णन।
सार्वभौम करे यैछे प्रभुर सेवन॥२८२॥

अनुवाद

मैं इसका वर्णन बाद में करूँगा कि सार्वभौम भट्टाचार्य किस प्रकार महाप्रभु की सेवा में सदा लगे रहे।

यैछे परिपाटी करे भिक्षा-निर्वाहन।
विस्तारिया आगे ताहा करिब वर्णन॥२८३॥

अनुवाद

मैं इसका भी विस्तार से वर्णन करूँगा कि किस तरह सार्वभौम भट्टाचार्य ने भिक्षा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु की सम्यक् सेवा की।

एइ महाप्रभुर लीला—सार्वभौम मिलन।
इहा येइ श्रद्धा करि' करये श्रवण॥२८४॥
ज्ञान-कर्मपाश हैते हय विमोचन।

अचिरे मिलये ताँरे चैतन्यचरण ॥२८५॥

अनुवाद

यदि कोई व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक सार्वभौम भट्टाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु के मिलने से सम्बद्ध इन लीलाओं को सुनता है तो वह तुरन्त ही ज्ञान तथा कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की शरण प्राप्त करता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥२८६॥

अनुवाद

मैं कृष्णदास श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों की वन्दना करते हुए तथा सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें सार्वभौम भट्टाचार्य की मुक्ति का वर्णन हुआ है।

अध्याय ७

महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत की यात्रा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में सातवें अध्याय का सारांश इस प्रकार दिया है—श्री चैतन्य महाप्रभु ने माघ मास (जनवरी-फरवरी) में संन्यास ग्रहण किया और फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) में वे जगन्नाथ पुरी गये। फाल्गुन मास में दोलयात्रा देखी और चैत्र मास में सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार किया। वैशाख मास में उन्होंने दक्षिण भारत की यात्रा प्रारम्भ की। जब उन्होंने अकेले ही यह यात्रा करने का प्रस्ताव रखा तो नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण को सहायक के रूप में लगा दिया। जब महाप्रभु चलने लगे तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें चार जोड़ी कपड़े दिये और प्रार्थना की कि वे गोदावरी तट पर निवास कर रहे रामानन्द राय से अवश्य मिलें। नित्यानन्द प्रभु अन्य भक्तों के साथ-साथ आलालनाथ तक महाप्रभु के संग गये। किन्तु वहाँ पर उन सबों को छोड़ कर महाप्रभु कृष्णदास नामक ब्राह्मण सहित आगे बढ़ गये। महाप्रभु *कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे* मन्त्र का कीर्तन करने लगे। उन्होंने जिस भी गाँव में रात बिताई और जो भी व्यक्ति उनसे मिलने आया उससे उन्होंने कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रचार करने की प्रार्थना की। भक्तों की संख्या बढ़ाने के लिए वे एक गाँव के लोगों को शिक्षा देने के बाद दूसरे गाँव बढ़ते गये। इस तरह वे अन्त में कूर्मस्थान पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने कूर्म नामक ब्राह्मण को अपनी अहैतुकी कृपा प्रदान की और कुष्ठ रोग से पीड़ित वासुदेव नामक एक अन्य ब्राह्मण को नीरोग बनाया। कुष्ठ रोग अच्छा करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु को वासुदेवामृतप्रत उपाधि मिली जिसका अर्थ होता है "जिसने वासुदेव कोढ़ी को अमृत प्रदान किया।"

धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेवं दयार्द्रःधी।
नष्टकुष्ठं रूपपुष्टं भक्तितुष्टं चकार यः॥१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव नामक ब्राह्मण पर अत्यन्त कृपालु होकर उसका कुष्ठ रोग ठीक कर दिया। उन्होंने उसे सुन्दर पुरुष का स्वरूप दिया, जो भक्ति से तुष्ट हो गया। मैं उन कीर्तिवान् श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर प्रणाम करता हूँ।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत आचार्य की जय हो एवं श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

एइमते सार्वभौमेर निस्तार करिल।
दक्षिण-गमने प्रभुर इच्छा उपजिल॥३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार करने के बाद महाप्रभु को दक्षिण भारत में प्रचार करने की इच्छा हुई।

माघशुक्लपक्षे प्रभु करिल संन्यास।
फाल्गुने आसिया कैल नीलाचले वास॥४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने माघ मास के शुक्लपक्ष में संन्यास ग्रहण किया। उसके अगले मास (फाल्गुन) में वे जगन्नाथ पुरी गये और वहाँ रहे।

फाल्गुनेर शेषे दोलयात्रा से देखिल।
प्रेमावेशे ताँहा बहु नृत्यगीत कैल॥५॥

अनुवाद

फाल्गुन मास के अन्त में उन्होंने दोलयात्रा देखी और अपने स्वाभाविक भगवत्प्रेमवश उन्होंने उस अवसर पर कीर्तन तथा विविध प्रकार से नृत्य किया।

चैत्रे रहि' कैल सार्वभौम-विमोचन।
वैशाखेर प्रथमे दक्षिण ग्राइते हैल मन॥६॥

अनुवाद

चैत्र मास में जगन्नाथ पुरी में रहते हुए उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य का उद्धार किया और वैशाख मास के लगते ही उन्होंने दक्षिण भारत जाने का निश्चय किया।

निजगण आनि' कहे विनय करिया।
आलिङ्गन करि' सबाय श्रीहस्ते धरिया॥७॥
तोमा-सबा जानि आमि प्राणाधिक करि'।
प्राण छाड़ा ग्राय, तोमा-सबा छाड़िते ना पारि॥८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को बुलाकर और उनके हाथ पकड़ कर विनयपूर्वक उनसे इस प्रकार कहा, "तुम सभी लोग मुझे अपने प्राणों से भी प्यारे हो। मैं अपना प्राण छोड़ सकता हूँ किन्तु तुम लोगों को छोड़ पाना मेरे लिए कठिन है।

तुमि-सब बन्धु मोर बन्धुकृत्य कैले।
इँहा आनि' मोरे जगन्नाथ देखाइले॥९॥

अनुवाद

"तुम सब मेरे मित्र हो और तुम लोगों ने मुझे जगन्नाथ पुरी लाकर तथा मन्दिर में भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने का अवसर प्रदान करके अपना मित्र-कर्तव्य निभाया है।

एबे सबा-स्थाने मुञि मागोँ एक दाने।
सबे मेलि' आज्ञा देह, ग्राइब दक्षिणे॥१०॥

अनुवाद

"अब मैं तुम लोगों से एक छोटा-सा दान माँग रहा हूँ। कृपा करके मुझे दक्षिण भारत की यात्रा पर प्रस्थान करने की अनुमति प्रदान करें।

विश्वरूप-उद्देशे अवश्य आमि य़ाब।
एकाकी य़ाइब, काहो सङ्गे ना लइब॥११॥

अनुवाद

"मैं विश्वरूप की तलाश करने जा रहा हूँ। तुम लोग मुझे क्षमा करना क्योंकि मैं अकेले जाना चाहता हूँ। मैं किसी को अपने साथ नहीं ले जाना चाहता।

सेतुबन्ध हैते आमि ना आसि य़ावत्।
नीलाचले तुमि सब रहिबे तावत्॥१२॥

अनुवाद

"मेरे मित्रो! जब तक मैं सेतुबन्ध से लौट ना आऊँ, तब तक तुम सब जगन्नाथ पुरी में ही रहना।"

विश्वरूप-सिद्धि-प्राप्ति जानेन सकल।
दक्षिण-देश उद्धारिते करेन एइ छल॥१३॥

अनुवाद

सर्वज्ञ होते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु भलीभाँति अवगत थे कि विश्वरूप पहले ही चल बसे हैं, किन्तु अज्ञान का बहाना आवश्यक था जिससे वे दक्षिण भारत जाकर वहाँ लोगों का उद्धार कर सकें।

शुनिया सबार मने हैल महादुःख।
निःशब्द हइला, सबार शुकाइल मुख॥१४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के मुख से यह समाचार सुन कर सारे भक्त अत्यन्त दुखी हुए और उनके मुख सूख गये, किन्तु वे मौन रहे आये।

नित्यानन्द प्रभु कहे,—'ऐछे कैछे हय।
एकाकी य़ाइबे तुमि, के इहा सहय॥१५॥

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "यह कैसे हो सकता है कि आप अकेले जायँ? इसे कौन सहन कर सकेगा?"

दुइ-एक सङ्गे चलुक, ना पड़ हठ-रङ्गे।
ग्नारे कह सेइ दुइ चलुक् तोमार सङ्गे॥१६॥

अनुवाद

"हममें से एक या दो को अपने साथ चलने दें अन्यथा आप रास्ते में ठगों तथा धूर्तों के चंगुल में पड़ सकते हैं। हममें से आप जिन्हें चाहें ले लें, क्योंकि हर हालत में दो व्यक्तियों को आपके साथ जाना है।

दक्षिणेर तीर्थपथ आमि सब जानि।
आमि सङ्गे ग्नाइ, प्रभु, आज्ञा देह तुमि॥"१७॥

अनुवाद

"मैं दक्षिण भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों के सारे मार्ग जानता हूँ। बस, आप आज्ञा दें तो मैं आपके साथ चला चलूँ।"

प्रभु कहे,—"आमि—नर्तक, तुमि—सूत्रधार।
तुमि ग्नैछे नाचाओ, तैछे नर्तन आमार॥१८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं तो मात्र नर्तक हूँ। तुम डोर खींचने वाले (सूत्रधार) हो। तुम जिस तरह नचाओगे, मैं उसी तरह नाचूँगा।"

संन्यास करिया आमि चलिलाङ् वृन्दावन।
तुमि आमा लञा आइले अद्वैत-भवन॥१९॥

अनुवाद

"संन्यास ग्रहण करने के बाद मैंने वृन्दावन जाने का निश्चय किया, किन्तु तुम मुझे वहाँ न ले जाकर अद्वैत प्रभु के घर ले आये।

नीलाचले आसिते पथे भाङ्गिला मोर दण्ड।
तोमा सबार गाढ़-स्नेह आमार कार्य-भङ्ग॥२०॥

अनुवाद

"जगन्नाथ पुरी जाते समय तुमने मेरा संन्यास-दण्ड तोड़ डाला। मैं जानता हूँ कि तुम्हारा मुझ पर अतीव स्नेह है, किन्तु इससे मेरे कार्य में बाधा

पहुँचती है।''

जगदानन्द चाहे आमा विषय भुञ्जाइते।
येइ कहे सेइ भये चाहिये करिते॥२१॥

अनुवाद

''जगदानन्द चाहता है कि मैं शरीर से इन्द्रिय-भोग करूँ, और वह मुझसे जो-जो कहे वह भयवश मैं करता चलूँ।

कभु यदि इँहार वाक्य करिये अन्यथा।
क्रोधे तिन दिन मोरे नाहि कहे कथा॥२२॥

अनुवाद

''यदि कभी मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करता हूँ तो वह क्रोधवश तीन दिनों तक मुझसे बातें नहीं करता।

मुकुन्द हयेन दुःखी देखि' संन्यास-धर्म।
तिनबारे शीते स्नान, भूमिते शयन॥२३॥

अनुवाद

''संन्यासी होने के कारण मेरा धर्म है कि जमीन पर सोऊँ और जाड़े में भी प्रतिदिन तीन बार स्नान करूँ। किन्तु मुकुन्द बेचारा मेरी कठोर तपस्या को देख कर अत्यन्त दुखी होता है।

अन्तरे दुःखी मुकुन्द, नाहि कहे मुखे।
इहार दुःख देखि' मोर द्विगुण हये दुःखे॥२४॥

अनुवाद

''हाँ, मुकुन्द कुछ कहता नहीं। किन्तु मैं जानता हूँ कि वह अन्दर से अत्यन्त दुखी है अतएव उसे दुखी देख कर मैं उससे दुगना दुखी हो जाता हूँ।

आमि त'—संन्यासी, दामोदर—ब्रह्मचारी।
सदा रहे आमार उपर शिक्षा-दण्ड धरि'॥२५॥

अनुवाद

''यद्यपि मैं संन्यासी हूँ और दामोदर एक ब्रह्मचारी है, फिर भी वह

मुझे शिक्षा देने के लिए अपने हाथ में दण्ड लिये रहता है।''

इँहार आगे आमि ना जानि व्यवहार।
इँहारे ना भाय स्वतन्त्र चरित्र आमार।।२६।।

अनुवाद

''दामोदर के अनुसार सामाजिक व्यवहार में मैं अब भी नौसिखिया हूँ, अतएव उसे मेरी स्वतन्त्र प्रकृति नहीं भाती।

लोकापेक्षा नाहि इँहार कृष्णकृपा हैते।
आमि लोकापेक्षा कभु ना पारि छाड़िते।।२७।।

अनुवाद

''दामोदर पण्डित तथा अन्य लोगों को भगवान् कृष्ण की अधिक कृपा प्राप्त है, अतएव वे लोग लोक-मत से स्वतन्त्र हैं। इसलिए वे चाहते हैं कि मैं इन्द्रियतृप्ति करूँ, भले ही यह अनैतिक क्यों न हो। किन्तु मैं एक बेचारा संन्यासी हूँ। मैं संन्यास के कर्तव्यों को नहीं त्याग सकता, अतएव मैं उनका कठोरता से पालन करता हूँ।

तात्पर्य

ब्रह्मचारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह संन्यासी को मदद पहुँचाये। अतएव ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह संन्यासी पर हुक्म न चलाये। यही व्यवहार (शिष्टाचार) है। अतएव दामोदर को चाहिए था कि वह चैतन्य महाप्रभु को उनके कर्तव्य के विषय में उपदेश न देता।

अतएव तुमि सब रह नीलाचले।
दिन कत आमि तीर्थ भ्रमिब एकले।।२८।।

अनुवाद

''अतएव तुम सभी लोग कुछ दिनों तक नीलाचल में रहो जिससे मैं अकेले ही तीर्थस्थानों की यात्रा कर आऊँ।''

इहाँ-सबार वश प्रभु हये ये ये गुणे।
दोषारोपच्छले करे गुण · आस्वादने।।२९।।

अनुवाद

वास्तव में महाप्रभु अपने सारे भक्तों के सद्गुणों से नियन्त्रित होते हैं। उन्होंने दोषारोपण करने के बहाने उन सारे गुणों का आस्वादन किया।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रिय भक्तों पर जिन दोषों का आरोप किया वास्तव में वे उनके उत्कट प्रेम की अत्यन्त प्रशंसा कर रहे थे। फिर भी उन्होंने एक-एक करके सारे दोषों का उल्लेख इस तरह से किया मानो वे उनके उत्कट स्नेह से दुखी हुए हों। कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगी महाप्रभु के उत्कट प्रेमवश नियमविरुद्ध आचरण करते थे और कभी-कभी उनके प्रेमवश महाप्रभु स्वयं भी संन्यासी के नियमों का उल्लंघन कर देते थे। लोक-दृष्टि में ऐसे उल्लंघन अच्छे नहीं माने जाते, किन्तु महाप्रभु अपने भक्तों के स्नेह से इस प्रकार वशीभूत थे कि वे कुछ नियमों को भंग करने के लिए बाध्य थे। यद्यपि वे उन पर दोषारोपण करते थे, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वे यह इंगित कर रहे थे कि वे उनके भगवत्प्रेम युक्त व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हैं। इसीलिए श्लोक २७ में वे उल्लेख करते हैं कि उनके भक्त सामाजिक व्यवहार की अपेक्षा कृष्ण-प्रेम को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। पूर्ववर्ती आचार्यों के ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जब उन्होंने कृष्ण-प्रेम से अभिभूत होकर सामाजिक व्यवहार की तनिक भी परवाह नहीं की। दुर्भाग्यवश इस भौतिक जगत में रहते हुए हमें लोक द्वारा आलोचना किये जाने से बचने के लिए सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन करना होता है। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा है।

चैतन्येर भक्त-वात्सल्य—अकथ्य कथन।
आपने वैराग्य-दुःख करेन सहन॥३०॥

अनुवाद

अपने भक्तों के प्रति श्री चैतन्य महाप्रभु में जो वात्सल्य है उसका सही-सही वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। उन्होंने संन्यास ग्रहण करने से उत्पन्न सभी प्रकार के निजी दुखों को सदैव सहा।

सेइ दुःख देखि' येइ भक्त दुःख पाय।
सेइ दुःख ताँर शक्त्ये सहन ना य़ाय॥३१॥

अनुवाद

कभी-कभी श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पालन किये जाने वाले नियम असह्य होते और सारे भक्त उनसे अत्यधिक प्रभावित होते। यद्यपि महाप्रभु नियमों का कठोरता से पालन करते, किन्तु वे अपने भक्तों के दुखों को सहन नहीं कर पाते थे।

गुणे दोषोद्गार-च्छले सबा निषेधिया।
एकाकी भ्रमिबेन तीर्थ वैराग्य करिया॥३२॥

अनुवाद

अतएव उन्हें अपने साथ चलने और दुखी होने से रोकने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके गुणों को दोष कह कर घोषित किया। महाप्रभु सारे तीर्थस्थानों का अकेले अकेले भ्रमण करना चाहते थे और संन्यास-धर्म का दृढ़ता से पालन करना चाहते थे।

तबे चारिजन बहु मिनति करिल।
स्वतन्त्र ईश्वर प्रभु कभु ना मानिल॥३३॥

अनुवाद

तब चार भक्तों ने बहुत अनुनय-विनय की कि वे महाप्रभु के साथ चलें, किन्तु स्वतन्त्र भगवान् महाप्रभु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

तबे नित्यानन्द कहे,—ये आज्ञा तोमार।
दुःख सुख ये हउक् कर्तव्य आमार॥३४॥

अनुवाद

तब नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "आपकी आज्ञा मेरा कर्तव्य है चाहे उससे हमें सुख मिले या दुख।"

किन्तु एक निवेदन करों आर बार।
विचार करिया ताहा कर अङ्गीकार॥३५॥

अनुवाद

"फिर भी मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। कृपया इस पर विचार करें और यदि उचित समझें तो स्वीकार कर लें।

कौपीन, बहिर्वास आर जलपात्र।
आर किछु नाहि य़ाबे, सबे एइ मात्र॥३६॥

अनुवाद

"आप अपने साथ लँगोटा, बाह्य वस्त्र तथा जलपात्र लें। आप इससे अधिक कुछ भी न लें।"

तोमार दुइ हस्त बद्ध नाम-गणने।
जलपात्र-बहिर्वास वहिबे केमने॥३७॥

अनुवाद

"जब आपके दोनों हाथ सदैव कीर्तन तथा पवित्र नाम गिनने में लगे रहेंगे तो आप जलपात्र तथा बाह्य वस्त्रों को किस प्रकार ले जायेंगे?

तात्पर्य

इस श्लोक से स्पष्ट है कि चैतन्य महाप्रभु नित्यप्रति नामों की निश्चित संख्या का जप किया करते थे। षड् गोस्वामी भी श्री चैतन्य महाप्रभु के पदचिह्नों पर चलते थे, और हरिदास ठाकुर भी इस सिद्धान्त का पालन करते थे। श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रील जीव गोस्वामी, श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रील रघुनाथदास गोस्वामी—इन षड् गोस्वामियों के विषय में श्रीनिवास आचार्य ने पुष्टि की है—*संख्यापूर्वकनामगाननतिभिः* (षड् गोस्वामी अष्ट ६)। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कर्तव्यों के अतिरिक्त नित्य निश्चित संख्या में पवित्र नाम-जप की पद्धति का सूत्रपात किया, जैसा कि इस श्लोक (*तोमार दुइ हस्त बद्ध नामगणने*) से पुष्टि होती है। चैतन्य महाप्रभु अपनी अँगुलियों पर नाम गिनते थे। एक हाथ जप में लगा रहता था, तो दूसरा हाथ जप की संख्या बताता था। इसका समर्थन *चैतन्य-चन्द्रामृत* से तथा श्रील रूप गोस्वामी-कृत *स्तवमाला* से होता है—

बध्नन् प्रेमभरप्रकमितकरो ग्रन्थीन् कटीडोरकैः।
संख्यातुं निज-लोकमंगलहरेकृष्णेति नाम्नां जपन्॥
(*चैतन्य चन्दामृत* ९)

हरे कृष्णेत्युच्चैः स्फुरितरसनो नामगणना-
कृतग्रन्थिश्रेणिसुभगकटिसूत्रोज्ज्वलकरः ।
(चैतन्य अष्टक ३)

अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी भक्तों को नित्य कम-से-कम सोलह माला जप करना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ ने भी इसी संख्या की संस्तुति की है। हरिदास ठाकुर नित्य ३ लाख नाम का जाप करते थे। १६ माला का अर्थ है लगभग २८००० नाम। हरिदास ठाकुर या अन्य गोस्वामियों की नकल करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु प्रत्येक भक्त के लिए निश्चित संख्या में नाम-जप करना अनिवार्य है।

प्रेमावेशे पथे तुमि हबे अचेतन।
ए-सब सामग्री तोमार के करे रक्षण॥३८॥

अनुवाद

"जब आप रास्ते में भगवत्प्रेम के आवेश में अचेत हो जायेंगे तो आपके सामान की—जलपात्र, वस्त्र आदि की रक्षा कौन करेगा?"

'कृष्णदास'-नामे एइ सरल ब्राह्मण।
इँहो सङ्गे करि' लह, धर निवेदन॥३९॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने कहा, "यह कृष्णदास नामक एक सीधासादा ब्राह्मण है। आप इसे अपने साथ ले जायँ। यही मेरी विनती है।"

तात्पर्य

यह कृष्णदास काला कृष्णदास के नाम से विख्यात है, किन्तु यह वह व्यक्ति नहीं है जिसका उल्लेख आदिलीला (अध्याय ११, श्लोक ३७) में हुआ है। आदिलीला में उल्लिखित काला कृष्णदास बारह गोपालों में से एक है जो श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को रूपायित करता था। वह नित्यानन्द प्रभु का परम भक्त था। काला कृष्णदास नामक ब्राह्मण का जो महाप्रभु के साथ दक्षिण भारत और बाद में बंगाल भी गया, उल्लेख मध्यलीला में (अध्याय १२, श्लोक ६२-७४) हुआ है। इन दोनों को एक नहीं समझना चाहिए।

जलपात्र-वस्त्र बहि' तोमा-सङ्गे याबे।
ये तोमार इच्छा, कर, किछु ना बलिबे॥४०॥

अनुवाद

"वह आपका जलपात्र तथा वस्त्र लिये रहेगा। आप चाहे जो भी करेंगे, वह एक शब्द भी नहीं बोलेगा।"

तबे ताँर वाक्य प्रभु करि' अङ्गीकारे।
ताहा-सब लञा गेला सार्वभौम-घरे॥४१॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु के अनुरोध को मान कर महाप्रभु ने अपने सारे भक्तों को अपने साथ लिया और वे सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये।

नमस्करि' सार्वभौम आसन निवेदिल।
सबाकारे मिलि' तबे आसने वसिल॥४२॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य ने अपने महाप्रभु के प्रविष्ट होते ही उन्हें नमस्कार किया और उन्हें बैठने को आसन दिया। फिर अन्य भक्तों को बैठाने के बाद भट्टाचार्य स्वयं बैठे।

नाना कृष्णवार्ता कहि' कहिल ताँहारे।
'तोमार ठाञि आइलाङ् आज्ञा मागिबारे॥४३॥

अनुवाद

भगवान् कृष्ण विषयक वार्ताएँ करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को बतलाया, "मैं तो आपके यहाँ आपका आदेश प्राप्त करने आया हूँ।

संन्यास करि' विश्वरूप गियाछे दक्षिणे।
अवश्य करिब आमि ताँर अन्वेषणे॥४४॥

अनुवाद

"मेरा बड़ा भाई विश्वरूप संन्यास लेकर दक्षिण भारत चला गया है। अब मुझे उसकी खोज करने जाना है।"

आज्ञा देह, अवश्य आमि दक्षिणे चलिब।
तोमार आज्ञाते सुखे लेउटि' आसिब॥''४५॥

अनुवाद

''कृपया मुझे जाने की अनुमति दें क्योंकि मुझे दक्षिण भारत की यात्रा करनी है। आपकी आज्ञा से मैं शीघ्र ही सुखपूर्वक वापस लौट आऊँगा।''

शुनि' सार्वभौम हैला अत्यन्त कातर।
चरणे धरिया कहे विषाद-उत्तर॥४६॥

अनुवाद

यह सुन कर सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिए और विषाद से पूर्ण यह उत्तर दिया।

'बहुजन्मेर पुण्यफले पाइनु तोमार सङ्ग।
हेन-सङ्ग विधि मोर करिलेक भङ्ग॥४७॥

अनुवाद

''मुझे कुछ पुण्यकर्मों के कारण अनेक जन्मों के बाद आपका संग मिला था। अब विधाता इस अमूल्य संग का विच्छेद कर रहा है।

शिरे वज्र पड़े यदि, पुत्र मरि' याय।
ताहा सहि, तोमार विच्छेद सहन ना याय॥४८॥

अनुवाद

''यदि मेरे सिर पर वज्रपात हो ले अथवा मेरा पुत्र मर जाय तो मैं उसे सहन कर सकता हूँ, किन्तु मैं आपके वियोग के दुख को नहीं सह सकता।

स्वतन्त्र-ईश्वर तुमि करिबे गमन।
दिन कथो रह, देखि तोमार चरण'॥४९॥

अनुवाद

''महाप्रभु! आप स्वतन्त्र भगवान् हैं। आपका जाना निश्चित है, यह मैं जानता हूँ। फिर भी मैं आपसे कुछ दिन और रुकने के लिए निवेदन कर रहा हूँ जिससे आपके चरणकमलों का दर्शन करता रहूँ।''

ताहार विनये प्रभुर शिथिल हैल मन।
रहिल दिवस कथो, ना कैल गमन॥५०॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य की विनती सुन कर, चैतन्य महाप्रभु दयार्द्र हो गए। वे कुछ दिन और रहे और प्रस्थान नहीं किया।

भट्टाचार्य आग्रह करि' करेन निमन्त्रण।
गृहे पाक करि' प्रभुके करा'न भोजन॥५१॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने बड़े ही आग्रहपूर्वक चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया और उन्हें उत्तम भोजन कराया।

ताँहार ब्राह्मणी, ताँर नाम—'षाठीर माता'।
रान्धि' भिक्षा देन तेँहो, आश्चर्य ताँर कथा॥५२॥

अनुवाद

भट्टाचार्य की पत्नी का नाम षाठीमाता (षाठी की माता) था। उन्होंने ही भोजन पकाया। इन लीलाओं का वर्णन अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

आगे ते' कहिब ताहा करिया विस्तार।
एबे कहि प्रभुर दक्षिण-यात्रा-समाचार॥५३॥

अनुवाद

बाद में इसका विस्तार से वर्णन करूँगा, किन्तु इस समय मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत यात्रा का वर्णन करना चाहता हूँ।

दिन पाँच रहि' प्रभु भट्टाचार्य-स्थाने।
चलिबार लागि' आज्ञा मागिला आपने॥५४॥

अनुवाद

भट्टाचार्य के घर पर पाँच दिन रुक कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत के लिए प्रस्थान करने हेतु अनुमति माँगी।

प्रभुर आग्रहे भट्टाचार्य सम्मत हइला।
प्रभु ताँरे लञा जगन्नाथ-मन्दिरे गेला॥५५॥

अनुवाद

भट्टाचार्य की अनुमति पाकर महाप्रभु जगन्नाथजी के मन्दिर में दर्शन करने गये। वे अपने साथ भट्टाचार्य को लेते गये।

दर्शन करि' ठाकुर-पाश आज्ञा मागिला।
पुजारी प्रभुरे माला-प्रसाद आनि' दिला॥५६॥

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे आज्ञा माँगी। तब पुजारी ने महाप्रभु को तुरन्त प्रसाद और माला लाकर दी।

आज्ञा-माला पाञा हर्षे नमस्कार करि'।
आनन्दे दक्षिण-देशे चले गौरहरि॥५७॥

अनुवाद

माला के रूप में जगन्नाथजी की आज्ञा पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नमस्कार किया और हँसी-खुशी दक्षिण भारत जाने की तैयारी की।

भट्टाचार्य-सङ्गे य़ार य़त निजगण।
जगन्नाथ प्रदक्षिण करि' करिला गमन॥५८॥

अनुवाद

अपने निजी संगियों तथा सार्वभौम के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु ने जगन्नाथजी की वेदी की प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् वे अपनी दक्षिण भारत की यात्रा पर रवाना हो गये।

समुद्र-तीरे तीरे आलालनाथ-पथे।
सार्वभौम कहिलेन आचार्य-गोपीनाथे॥५९॥

अनुवाद

जब महाप्रभु समुद्र-तट पर स्थित आलालनाथ के मार्ग पर जा रहे थे, तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने गोपीनाथ आचार्य को निम्नलिखित आदेश दिया।

चारि कोपीन-बहिर्वास राखियाछि घरे।
ताहा, प्रसादान्न, लञा आइस विप्रद्वारे॥६०॥

अनुवाद

"मैंने घर पर कोपीन तथा बाहरी वस्त्रों के जो चार जोड़े रख छोड़े हैं, उन्हें लाओ और साथ में कुछ जगन्नाथजी का प्रसाद भी लेते आओ। तुम कुछ ब्राह्मणों की सहायता से ये चीजें लेते जाओ।"

तबे सार्वभौम कहे प्रभुर चरणे।
अवश्य पालिबे, प्रभु, मोर निवेदने॥६१॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु विदा हो रहे थे तो सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनके चरणकमलों पर यह निवेदन किया, "हे प्रभु! मेरी एक अन्तिम प्रार्थना है और मुझे आशा है कि आप उसे अवश्य पूरा करेंगे।"

'रामानन्द राय' आछे गोदावरी-तीरे।
अधिकारी हयेन तेँहो विद्यानगरे॥६२॥

अनुवाद

"गोदावरी नदी के किनारे स्थित विद्यानगर नामक नगरी में रामानन्द राय नामक एक जिम्मेदार सरकारी अफसर (अधिकारी) है।

तात्पर्य

भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में लिखा है कि विद्यानगर आजकल पोरबन्दर के नाम से विख्यात है। गुजरात प्रान्त में भी एक अन्य पोरबन्दर है।

शूद्र विषयि-ज्ञाने उपेक्षा ना करिबे।
आमार वचने ताँरे अवश्य मिलिबे॥६३॥

अनुवाद

"आप उसे भौतिक कार्यकलापों में व्यस्त रहने वाला शूद्र समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे। मेरी विनती है कि आप उससे अवश्य मिलेंगे।"

तात्पर्य

वर्णाश्रम धर्म में शूद्र चौथा विभाग है। *परिचयात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्* (भगवद्गीता १८.४४)। शूद्रों का कार्य है कि वे तीन उच्च वर्णों—ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों—की सेवा करें। श्री रामानन्द राय *करण* जाति के थे, जो बंगाल में कायस्थ जाति के बराबर है। यह जाति सारे भारत में शूद्र तुल्य मानी जाती है। कहा जाता है कि उत्तर भारत से जितने कायस्थ बंगाल आते थे, उन्हें ब्राह्मण अपने यहाँ नौकर रख लेते थे। अब कायस्थों में अनेक जातियाँ हो गई हैं। बंगाल में कभी-कभी कहा जाता है कि जो लोग किसी विशिष्ट जाति के नहीं हैं, वे सब कायस्थ होते हैं। यद्यपि कायस्थों या करणों को शूद्र माना जाता है, किन्तु ये लोग अत्यन्त बुद्धिमान तथा उच्च शिक्षित होते हैं। इनमें से अधिकांश वकील या राजनीतिज्ञ होते हैं। इस तरह कभी-कभी बंगाल में कायस्थों को क्षत्रिय माना जाता है। किन्तु उड़ीसा में करण समेत कायस्थ जाति को शूद्र वर्ग माना जाता है। श्री रामानन्द राय इसी करण जाति के थे, अतएव वे शूद्र माने जाते थे। वे उड़ीसा के राजा महाराज प्रतापरुद्र के राज्य के अन्तर्गत दक्षिण भारत के गवर्नर थे। दूसरे शब्दों में, सार्वभौम भट्टाचार्य ने श्री चैतन्य महाप्रभु को यह बतलाया कि यद्यपि रामानन्द राय शूद्र वर्ग का है किन्तु है अत्यन्त जिम्मेदार सरकारी अफसर। जहाँ तक आध्यात्मिक उन्नति की बात है, चाहे भौतिकतावादी हों, या राजनीतिज्ञ अथवा शूद्र, सभी सामान्यतया अयोग्य होते हैं, इसलिए सार्वभौम भट्टाचार्य ने महाप्रभु से विनती की कि वे रामानन्द राय की उपेक्षा नहीं करेंगे, क्योंकि वह शूद्र कुल में उत्पन्न होकर और भौतिकतावादी होने पर भी आध्यात्मिक दृष्टि से उच्च है।

विषयी वह है जो गृहस्थ जीवन में लिप्त रह कर केवल बीबी-बच्चों तथा सांसारिक विषय-वासना में रुचि रखता है। इन्द्रियों को या तो भौतिक भोग में या फिर भगवान् की सेवा में लगाया जा सकता है। जो लोग भगवान् की सेवा में नहीं लगे हैं और भौतिक इन्द्रियतृप्ति में ही रुचि रखते हैं, वे *विषयी* हैं। श्री रामानन्द राय सरकारी नौकरी करते थे और करण जाति के थे। वे निश्चित रूप से गेरुवा वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी नहीं थे, किन्तु वे *परमहंस* गृहस्थ पद को प्राप्त थे। सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु का शिष्य बनने के पूर्व रामानन्द राय को विषयी समझते थे, क्योंकि वे सरकारी नौकरी में लगे हुए गृहस्थ थे। किन्तु जब भट्टाचार्य को वैष्णव

दर्शन का वास्तविक ज्ञान हुआ तो वे रामानन्द राय के उच्च पद को समझ सके, इसीलिए उन्होंने उन्हें *अधिकारी* कहा। *अधिकारी* वह है जो कृष्ण के विज्ञान को जानता है और उनकी सेवा में लगा रहता है। इसीलिए सारे गृहस्थ भक्त *दास अधिकारी* कहलाते हैं।

तोमार सङ्गेर ग़ोग्य तेँहो एक जन।
पृथिवीते रसिक भक्त नाहि ताँर सम॥६४॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य कहते गये, "रामानन्द राय आपकी संगति के लिए उपयुक्त व्यक्ति है। रसों के ज्ञान में अन्य भक्त उसकी बराबरी नहीं कर सकता।

पाण्डित्य आर भक्तिरस,—दुँहेर तेँहो सीमा।
सम्भाषिले जानिबे तुमि ताँहार महिमा॥६५॥

अनुवाद

"वह अत्यन्त विद्वान एवं भक्ति-रस में दक्ष है। वह वास्तव में महान् है और जब आप उससे बात करेंगे तो देखेंगे कि वह कितना महिमावान् है।

अलौकिक वाक्य चेष्टा ताँर ना बुझिया।
परिहास करियाछि ताँरे 'वैष्णव' बलिया॥६६॥

अनुवाद

"जब पहले पहल मैंने रामानन्द राय से बात की थी तो मुझे इसका अनुभव नहीं हो पाया था कि उसकी बातचीत तथा चेष्टाएँ असामान्य हैं। मैंने उसका मजाक इसीलिए उड़ाया था क्योंकि वह वैष्णव है।"

तात्पर्य

जो भी वैष्णव या भगवान् का शुद्ध भक्त नहीं होता, वह भौतिकतावादी है। जो वैष्णव श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों के अनुसार जीवन बिताता है, वह भौतिकतावादी स्तर पर नहीं ही होता। चैतन्य का अर्थ है "आध्यात्मिक बल"। श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे कार्य आध्यात्मिक ज्ञान के स्तर पर होते थे; अतएव जो आध्यात्मिक स्तर पर हैं, वे ही उनके कार्यकलापों

को समझ सकते हैं। जो भौतिकतावादी व्यक्ति इस तरह के नहीं हैं, वे *कर्मी* या *ज्ञानी* कहलाते हैं। *ज्ञानी* वे हैं, जो केवल यही जानने में लगे रहते हैं कि आत्मा क्या है। वे *नेतिनेति* कहते हैं—यह आत्मा नहीं है, यह भगवान् नहीं है। *ज्ञानी* मन्दबुद्धि कर्मियों से कुछ बढ़े-चढ़े होते हैं, क्योंकि कर्मी केवल इन्द्रियतृप्ति में रुचि लेते हैं। वैष्णव बनने के पूर्व सार्वभौम भट्टाचार्य एक *ज्ञानी* थे, इसीलिए वे हमेशा वैष्णवों से मजाक किया करते थे। वैष्णव कभी भी ज्ञानियों की पद्धति को नहीं मानता। ज्ञानी तथा कर्मी दोनों अपने अपूर्ण ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष इन्द्रिय-अनुभूति पर निर्भर रहते हैं। कर्मी प्रत्यक्ष अनुभूति किये बिना किसी बात को नहीं मानते और ज्ञानी केवल संकल्पनाएँ प्रस्तुत करते रहते हैं। किन्तु वैष्णव या शुद्ध भगवद्भक्त न तो प्रत्यक्ष इन्द्रिय अनुभूति की विधि का, न ही मानसिक चिन्तन की विधि का पालन करते हैं। भगवान् के दास होने के कारण वे सीधे भगवान् से ज्ञान प्राप्त करते हैं, जैसा कि *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं या कभी-कभी भीतर से चैत्य-गुरु के रूप में ज्ञान प्रदान करते हैं। जैसा कि भगवद्गीता में (१०.१०) कहा गया है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, उन्हें मैं ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।"

यह माना जाता है कि वेद भगवान् द्वारा कहे गये हैं। उनकी पहली अनुभूति ब्रह्मा को हुई, जो इस ब्रह्माण्ड के प्रथम उत्पन्न प्राणी हैं (*तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये*)। ज्ञान प्राप्त करने की हमारी विधि *परम्परा*-विधि है, जिसमें कृष्ण से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद, व्यास, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा षड् गोस्वामियों को ज्ञान प्राप्त होता है। परम्परा से ब्रह्मा को आदि पुरुष कृष्ण ने भीतर से ज्ञान प्रदान किया। हमारा ज्ञान इसीलिए पूर्ण है, क्योंकि यह गुरु से शिष्य को हस्तान्तरित होता है। वैष्णव सदैव भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगा रहता है, अतएव ज्ञानी या कर्मीजन में से कोई भी उसके कार्यों को नहीं समझ सकता। कहा भी गया है—*वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञे ना बुझय*—ज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभवी भी वैष्णव के कार्यों को नहीं समझ सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा वैष्णव-मत में दीक्षित होने के बाद

ही सार्वभौम भट्टाचार्य को यह एहसास हुआ कि उन्होंने रामानन्द राय को समझने में भूल की है, क्योंकि वे अत्यन्त विद्वान् थे और उनके सारे प्रयत्न भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति सम्पन्न करने की दिशा में उन्मुख थे।

तोमार प्रसादे एबे जानिनु ताँर तत्त्व।
सम्भाषिले जानिबे ताँर ग्रेमन महत्त्व॥६७॥

अनुवाद

भट्टाचार्य ने कहा, "आपकी कृपा से मैंने अब जाकर रामानन्द राय की असलियत समझी है। आप उनसे बातें करेंगे तो आपको भी उनकी महानता की दाद देनी पड़ेगी।"

अङ्गीकार करि' प्रभु ताँहार वचन।
ताँरे विदाय दिते ताँरे कैल आलिङ्गन॥६८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य के इस अनुरोध को मान लिया कि वे रामानन्द राय से अवश्य मिलें। महाप्रभु ने उनसे विदा लेते हुए आलिंगन किया।

'घरे कृष्ण भजि' मोरे करिह आशीर्वादे।
नीलाचले आसि' ग्रेन तोमार प्रसादे॥"६९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य से कहा "जब आप अपने घर में भगवान् कृष्ण की भक्ति में लगे हों तब आप मुझे आशीर्वाद देते रहें।" महाप्रभु ने कामना व्यक्त की कि उनकी कृपा होने से वे पुनः जगन्नाथ पुरी वापस आ जायेंगे।

तात्पर्य

करिह आशीर्वादे का अर्थ है "आप मुझे आशीर्वाद देते रहें।" संन्यासी होने के कारण चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त सम्मानित तथा पूज्य थे, जबकि गृहस्थ होने के कारण सार्वभौम भट्टाचार्य द्वितीय पद पर थे। अतएव उम्मीद तो यह की जाती है कि संन्यासी गृहस्थ को आशीर्वाद दे। किन्तु महाप्रभु ने अपने व्यावहारिक आचरण के कारण एक गृहस्थ से आशीर्वाद देने की प्रार्थना

की। श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश की यह विशिष्टता है। उन्होंने भौतिक सांसारिक नियमों की परवाह न करते हुए हर व्यक्ति को समान पद प्रदान किया। यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य कहने को गृहस्थ थे, किन्तु वे इन्द्रियतृप्ति में रुचि रखने वाले तथाकथित कर्मियों से भिन्न थे। श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षित हो जाने के बाद भट्टाचार्य आध्यात्मिक आश्रम को पूर्णतया प्राप्त थे। अतएव वे संन्यासी को भी आशीर्वाद देने में सक्षम थे। वे घर पर भी सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहते थे। हमारी परम्परा में पूर्ण गृहस्थ-परमहंस का उदाहरण प्राप्त है—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के रूप में उन्होंने अपनी पुस्तक *शरणागति* में (३१.६) कहा है—*ये दिन गृहे, भजन देखि', गृहेते गोलोक भाय*। जब भी कोई गृहस्थ अपने घर पर भगवान् की महिमा का गायन करता है तो उसके सारे कार्य गोलोक वृन्दावन के कार्यों में परिणत हो जाते हैं। भौम वृन्दावन में कृष्ण जो भी कार्यकलाप प्रदर्शित करते हैं वे गोलोक वृन्दावन में सम्पन्न किये जाने वाले उनके कार्यों से भिन्न नहीं होते। कहीं पर भी वृन्दावन की यही सही अनुभूति है। हमने अपने कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में नव-वृन्दावन में कार्यकलापों का सूत्रपात किया है, जहाँ भक्तगण सदैव कृष्ण-भक्ति में लगे रहते हैं और यह गोलोक वृन्दावन से भिन्न नहीं है। निष्कर्ष यह निकला कि जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की परम्परा के अनुसार कार्य करता है, वह संन्यासी को भी आशीर्वाद देने में सक्षम है, भले ही वह स्वयं गृहस्थ क्यों न हो। अपने वास्तविक आचरण के कारण चैतन्य महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से आशीर्वाद माँगा। उन्होंने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि वैष्णव के सामाजिक पद की परवाह न करते हुए किस तरह उसके आशीर्वाद की आशा की जानी चाहिए।

एत बलि' महाप्रभु करिला गमन।
मूर्छित हञा ताहाँ पड़िला सार्वभौम॥७०॥

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी यात्रा पर निकल पड़े और उधर सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

ताँरे उपेक्षिया कैल शीघ्र गमन।
के बुझिते पारे महाप्रभुर चित्त-मन॥७१॥

अनुवाद

यद्यपि सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्छित हो गये, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस पर ध्यान नहीं दिया, प्रत्युत वे तुरन्त वहाँ से चलते बने। भला श्री चैतन्य महाप्रभु के मन तथा मनोभाव को कौन समझ सकता है?

तात्पर्य

यह आशा की जाती थी कि जब सार्वभौम भट्टाचार्य मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े, तो चैतन्य महाप्रभु को उनकी देखभाल करनी चाहिए थी और चेतना वापस होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए थी; किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। प्रत्युत श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त अपनी यात्रा पर चल पड़े। अतएव दिव्य पुरुष के कार्यों को समझ पाना दुष्कर है। कभी-कभी ऐसे पुरुष भले ही अजीब लगें, किन्तु दिव्य व्यक्ति अपने पद पर बने रहते हैं।

महानुभावेर चित्तेर स्वभाव एइ हय।
पुष्प-सम कोमल, कठिन वज्रमय॥७२॥

अनुवाद

एक असामान्य व्यक्ति के मन का स्वभाव ऐसा ही है। कभी वह फूल के समान कोमल हो जाता है, तो कभी वज्र के समान कठोर।

तात्पर्य

महापुरुष के व्यवहार में फूल की कोमलता तथा वज्र की कठोरता का सम्मिलन होता है। *उत्तर रामचरित* का निम्नलिखित उद्धरण (२.७) इस व्यवहार की व्याख्या करता है। मध्यलीला के तृतीय अध्याय के श्लोक २१२ को भी देखा जा सकता है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमीश्वरः॥७३॥

अनुवाद

सामान्य से ऊँचे व्यवहार वालों के हृदय कभी वज्र से भी अधिक कठोर होते हैं तो कभी फूल से भी कोमल होते हैं। महापुरुषों में ऐसे विरोधाभासों को समझने में कौन समर्थ हो सकता है?

नित्यानन्द प्रभु भट्टाचार्ये उठाइल।
ताँर लोकसङ्गे ताँरे घरे पाठाइल॥७४॥

अनुवाद

श्री नित्यानन्द प्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य को उठाया और उनके लोगों की सहायता से उनके घर भेज दिया।

भक्तगण शीघ्र आसि' लैल प्रभुर साथ।
वस्त्र-प्रसाद लञा तबे आइला गोपीनाथ॥७५॥

अनुवाद

तुरन्त सारे भक्त आ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ हो लिये। इसके बाद गोपीनाथ आचार्य वस्त्र तथा प्रसाद लेकर आये।

सबा-सङ्गे प्रभु तबे आलालनाथ आइला।
नमस्कार करि' तारे बुहुस्तुति कैला॥७६॥

अनुवाद

सारे भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ आलालनाथ तक गये। वहाँ उन सबों ने नमस्कार किया और विविध प्रार्थनाएँ कीं।

प्रेमावेशे नृत्यगीत कैल कतक्षण।
देखिते आइला ताहाँ वैसे ग़त जन॥७७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कुछ समय तक अत्यधिक भावावेश में नाचा और कीर्तन किया। पड़ोस के सारे लोग उन्हें देखने आये।

चौदिकेते सब लोक बले 'हरि' 'हरि'।
प्रेमावेशे मध्येनृत्य करे गौरहरि॥७८॥

अनुवाद

गौरहरि श्री चैतन्य महाप्रभु के चारों ओर लोग जोर-जोर से हरि नाम का उच्चारण करने लगे। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने पूर्ववत् प्रेमावेश में मग्न होकर उन सबों के बीच नाचते रहे।

काञ्चन-सदृश देह, अरुण वसन।
पुलकाश्रु-कम्प-स्वेद ताहाते भूषण॥७९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर प्राकृतिक रूप से अत्यन्त सुन्दर था। यह पिघले सोने के समान था और केसरिया वस्त्र से सज्जित था। वे भाव-लक्षणों—यथा रोमांच, अश्रु, कम्प तथा शरीर-भर में पसीने से अलंकृत होकर अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

देखिया लोकेर मने हैल चमत्कार।
य़त लोक आइसे, केह नाहि य़ाय घर॥८०॥

अनुवाद

वहाँ पर उपस्थित सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के नृत्य तथा उनके शारीरिक विकारों को देख कर चकित थे। जो भी वहाँ आया वह घर जाने का नाम नहीं ले रहा था।

केह नाचे, केह गाय, 'श्रीकृष्ण' 'गोपाल'।
प्रेमेते भासिल लोक,—स्त्री-वृद्ध-आबाल॥८१॥

अनुवाद

बच्चे, बूढ़े तथा स्त्रियाँ—हर कोई 'श्रीकृष्ण' तथा 'गोपाल' नाम ले-लेकर नाचने-गाने लगा। इस तरह वे सब भगवत्प्रेम के समुद्र में तैर रहे थे।

देखि' नित्यानन्द प्रभु कहे भक्तगणे।
एइरूपे नृत्य आगे हबे ग्रामे-ग्रामे॥८२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन तथा नृत्य को देख कर श्री नित्यानन्द प्रभु ने भविष्यवाणी की कि आगे चल कर गाँव-गाँव में नृत्य तथा कीर्तन होगा।

तात्पर्य

श्री नित्यानन्द प्रभु की यह भविष्यवाणी न केवल भारत पर अपितु सारे विश्व पर लागू होती है। उनकी कृपा से आज ऐसा ही हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय

कृष्णभावनामृत संघ के सदस्य पाश्चात्य देशों में गाँव-गाँव में यात्रा कर रहे हैं, और अपने साथ अर्चा-विग्रह भी लिए रहते हैं। ये भक्तगण सारे विश्व में विविध पुस्तकें वितरित करते हैं। हमें आशा है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के सन्देश का प्रचार करने वाले ये भक्तगण गम्भीरतापूर्वक एवं दृढ़ता के साथ उनका अनुसरण करेंगे। यदि वे नियमों का पालन करें और नित्य सोलह माला जाप करें, तो श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार करने का उनका प्रयत्न अवश्य ही सफल होगा।

अतिकाल हैल, लोक छाडिया ना ग्राय।
तबे नित्यानन्द-गोसाञि सृजिला उपाय॥८३॥

अनुवाद

यह देख कर कि काफी विलम्ब हो रहा है, नित्यानन्द गोसाईं ने भीड़ छटने का उपाय ढूँढ निकाला।

मध्याह्न करिते गेला प्रभुके लञा।
ताहा देखि' लोक आइस चौदिके धाञा॥८४॥

अनुवाद

जब नित्यानन्द प्रभु श्री चैतन्य महाप्रभु को दोपहर का भोजन कराने ले गये, तो सारे लोग उनके चारों ओर दौड़ते हुए आये।

मध्याह्न करिया आइला देवता-मन्दिरे।
निजगण प्रवेशि' कपाट दिल बहिद्वारे॥८५॥

अनुवाद

स्नान करने के बाद वे दोपहर के समय मन्दिर लौट आये। नित्यानन्द ने अपने आदमियों को भीतर करके बाहरी दरवाजे को बन्द कर लिया।

तबे गोपीनाथ दुइ प्रभुरे भिक्षा कराइल।
प्रभुर शेष प्रसादान्न सबे बाँटि' खाइल॥८६॥

अनुवाद

तत्पश्चात् गोपीनाथ आचार्य दोनों प्रभुओं के खाने के लिए प्रसाद ले आये, और जब वे खा चुके, तो जूठे भोजन को सभी भक्तों में बाँट दिया गया।

शुनि' शुनि' लोक-सब आसि' बहिद्वारे।
'हरि' 'हरि' बलि' लोक कोलाहल करे॥८७॥

अनुवाद

यह सुन कर सारे लोग बाहरी दरवाजे पर आ गये और 'हरि' 'हरि' कह कर कीर्तन करने लगे। इस तरह वहाँ पर कोलाहल मच गया।

तबे महाप्रभु द्वार कराइल मोचन।
आनन्दे आसिया लोक पाइल दरशन॥८८॥

अनुवाद

दोपहर के भोजन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने दरवाजा खोलवा दिया। इस तरह हर एक ने बड़े ही आनन्द से उनका दर्शन प्राप्त किया।

एइमत सन्ध्या पर्यन्त लोक आसे, याय।
'वैष्णव' हइल लोक, सबे नाचे, गाय॥८९॥

अनुवाद

लोग संध्या-समय तक आते और जाते रहे। वे सभी वैष्णव-भक्त बन कर कीर्तन करने और नाचने लगे।

एइरूपे सेइ ठाञि भक्तगण-सङ्गे।
सेइ रात्रि गोङाइला कृष्णकथा-रङ्गे॥९०॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने वहीं रात बिताई, और भक्तों के साथ बड़े ही आनन्द से भगवान् कृष्ण की लीलाओं की व्याख्या की।

प्रातःकाले स्नान करि' करिला गमन।
भक्तगणे विदाय दिला करि' आलिङ्गन॥९१॥

अनुवाद

प्रातःकाल स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी दक्षिण भारत यात्रा पर चल पड़े। उन्होंने भक्तों का आलिंगन करके उनसे विदा ली।

मूर्च्छित हञा सबे भूमिते पड़िला।
ताँहा-सबा पाने प्रभु फिरि' ना चाहिला॥९२॥

अनुवाद

यद्यपि वे सब बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े थे, किन्तु महाप्रभु ने फिर कर उनकी ओर नहीं देखा—वे आगे ही बढ़ गये।

विच्छेदे व्याकुल प्रभु चलिला दुःखी हञा।
पाछे कृष्णदास य़ाय जलपात्र लञा॥९३॥

अनुवाद

वियोग के कारण महाप्रभु अत्यन्त व्याकुल हो उठे, और दुखी मन से चलते रहे। उनका नौकर कृष्णदास उनका जलपात्र लिए उनके पीछे पीछे चल रहा था।

भक्तगण उपवासी ताहाँइ रहिला।
आर दिने दुःखी हञा नीलाचले आइला॥९४॥

अनुवाद

सारे भक्तगण वहीं बिना खाये बने रहे, किन्तु अगले दिन सभी दुःखपूर्वक जगन्नाथ पुरी लौट गये।

मत्तसिंह-प्राय प्रभु करिला गमन।
प्रेमावेशे य़ाय करि' नाम-संकीर्तन॥९५॥

अनुवाद

प्रायः उन्मत्त सिंह की भाँति श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी यात्रा पर निकल पड़े। वे प्रेमभाव से पूर्ण थे और कृष्ण-नाम का निम्नवत् उच्चारण करते हुए संकीर्तन करते जा रहे थे।

कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे।
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! हे॥
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! रक्ष माम्।
कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण! पाहि माम्॥
राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! रक्ष माम्।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! पाहि माम्॥

अनुवाद

महाप्रभु कीर्तन कर रहे थे—

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्

अर्थात् हे कृष्ण! मेरी रक्षा कीजिये और मेरा पालन कीजिये। उन्होंने यह भी उच्चारण किया—

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! रक्ष माम्।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! पाहि माम्।

अर्थात् हे राजा रघु के वंशज! भगवान् राम! मेरी रक्षा करें। हे कृष्ण, हे केशी असुर के संहारक केशव मेरा पालन करें।

एइ श्लोक पड़ि' पथे चलिला गौरहरि।
लोक देखि' पथे कहे,—बल 'हरि' 'हरि'॥९७॥

अनुवाद

इस श्लोक का कीर्तन करते हुए गौरहरि श्री चैतन्य महाप्रभु अपने मार्ग पर चले जा रहे थे। जब वे किसी को देखते तो उससे अनुरोध करते कि 'हरि' 'हरि' कीर्तन करो।

सेइ लोक प्रेममत्त हञा बले 'हरि' 'कृष्ण'।
प्रभुरपाछे सङ्गे ग्राय दर्शन-सतृष्णा॥९८॥

अनुवाद

जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु को 'हरि' 'हरि' कीर्तन करते सुनता, वही हरि तथा कृष्ण के नामों का उच्चारण करने लगता। इस तरह वे सब महाप्रभु का दर्शन पाने की उत्सुकता से उनके पीछे-पीछे चलने लगते।

कतक्षणे रहि' प्रभु तारे आलिङ्गिया।
विदाय करिल तारे शक्ति सञ्चारिया॥९९॥

अनुवाद

कुछ समय बाद महाप्रभु उन लोगों का आलिंगन करते और उन्हें आध्यात्मिक शक्ति से ओतप्रोत करने के बाद घर वापस जाने के लिए कहते।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में बतलाया है कि यह आध्यात्मिक शक्ति ह्लादिनी शक्ति तथा शाश्वत शक्ति का सार है। इन दोनों शक्तियों से मनुष्य भक्ति से समन्वित होता है। स्वयं भगवान् कृष्ण या उनका प्रतिनिधि कोई शुद्ध भक्त इन सम्मिलित शक्तियों को किसी भी व्यक्ति को दे सकते हैं। इन शक्तियों से युक्त होकर कोई भी व्यक्ति भगवान् का शुद्ध भक्त बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस पर भी कृपा की उसे यह *भक्ति-शक्ति* प्रदान की। इस तरह महाप्रभु के सारे अनुयायी कृष्णभावनामृत का प्रचार करने में समर्थ हो सके।

सेइजन निज-ग्रामे करिया गमन।
'कृष्ण' बलि' हासे, कान्दे, नाचे अनुक्षण॥१००॥

अनुवाद

इस प्रकार बल पाकर वे कृष्ण-नाम का कीर्तन करते और कभी हँसते, चिल्लाते और नाचते हुए अपने-अपने घरों को लौटते।

य़ारे देखे, तारे कहे,—कह कृष्णनाम।
एइमत 'वैष्णव' कैल सब निज-ग्राम॥१०१॥

अनुवाद

ये लोग जिस किसी को देखते उसी से प्रार्थना करते कि वे कृष्ण-नाम का कीर्तन करें। इस तरह सारे गाँव वाले भी भगवान् के भक्त बन जाते।

तात्पर्य

बल-प्राप्त प्रचारक बनने के लिए आवश्यक है कि उसे चैतन्य महाप्रभु या उनके भक्त की कृपा प्राप्त हो। यही नहीं, मनुष्य को चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति से महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए अनुरोध करे। इस तरह ऐसा व्यक्ति अन्यों को भगवान् का शुद्ध भक्त बनने का मार्ग दिखलाकर उन्हें

व्यक्ति अन्यों को भगवान् का शुद्ध भक्त बनने का मार्ग दिखलाकर उन्हें वैष्णव बना सकता है।

ग्रामान्तर हैते देखिते आइल य़त जन।
ताँर दर्शन-कृपाय हय ताँर सम॥१०२॥

अनुवाद

ऐसे बलप्राप्त लोगों का दर्शन करने से ही विभिन्न गाँवों के लोग उनकी कृपा-चितवन से ही उन्हीं के समान बन जाते।

सेइ याइ' ग्रामेर लोक वैष्णव करय।
अन्यग्रामी आसि' ताँरे देखि' वैष्णव हय॥१०३॥

अनुवाद

जब ये लोग अपने अपने गाँवों लौटे तो इन्होंने भी अन्यों को भक्त बना लिया। जब और लोग इन्हें देखने आये तो वे भी भक्त बन गये।

सेइ य़ाइ' आर ग्रामे करे उपदेश।
एइमत 'वैष्णव' हैल सब दक्षिण-देश॥१०४॥

अनुवाद

इस प्रकार वे सारे लोग एक गाँव से दूसरे गाँव गये और दक्षिण भारत के सारे लोग भक्त बन गये।

एइमत पथे य़ाइते शतशत जन।
'वैष्णव' करेन ताँरे करि' आलिङ्गन॥१०५॥

अनुवाद

इस तरह कई सौ लोग, जो महाप्रभु को रास्ते में मिले और जिन्हें उन्होंने गले लगाया, वैष्णव बन गये।

येइ ग्रामे रहि' भिक्षा करेन य़ाँर घरे।
सेइ ग्रामेर य़त लोक आइसे देखिबारे॥१०६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस-जिस ग्राम में भिक्षा ग्रहण करने के लिए

रुके, वहीं अनेक लोग उनका दर्शन करने आये।

प्रभुर कृपाय हय महाभागवत।
सेइ सब आचार्य हञा तारिल जगत्॥१०७॥

अनुवाद

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से सारे व्यक्ति उच्च कोटि के भक्त (महाभागवत) बन गये। बाद में वे शिक्षक या गुरु बने और उन्होंने सम्पूर्ण जगत का उद्धार किया।

एइमत कैला य़ावत् गेला सेतुबन्धे।
सर्वदेश 'वैष्णव' हैल प्रभुर सम्बन्धे॥१०८॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु भारत के धुर दक्षिण तक गये और उन्होंने सारे प्रान्तों को वैष्णव बना डाला।

नवद्वीपे य़ेइ शक्ति ना कैला प्रकाशे।
से शक्ति प्रकाशि' निस्तारिल दक्षिणदेशे॥१०९॥

अनुवाद

जो श्री चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप में अपनी आध्यात्मिक शक्ति प्रकट नहीं कर पाये, उन्हीं ने दक्षिण भारत में उसे प्रकट किया और वहाँ के सारे लोगों का उद्धार कर दिया।

तात्पर्य

उस समय नवद्वीप में, जो कि श्री चैतन्य महाप्रभु की भी जन्मस्थली है अनेक *स्मार्त* (वैदिक कर्मकाण्डी किन्तु अभक्त) थे। स्मृति-शास्त्र के अनुयायी *स्मार्त* कहलाते हैं। उनमें से अधिकांश अभक्त होते हैं और उनका मुख्य कार्य है ब्राह्मण-सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन करना। किन्तु इन्हें भक्ति का ज्ञान नहीं होता। नवद्वीप में सारे पंडित स्मृति-शास्त्र के अनुयायी (स्मार्त) हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बदलने का प्रयास नहीं किया। इसीलिए लेखक ने यह विशेष रूप से उल्लेख किया है कि महाप्रभु की जो आध्यात्मिक शक्ति नवद्वीप में प्रकट नहीं हो पाई थी, वह दक्षिण भारत में प्रकट हुई। इस तरह वहाँ का हर व्यक्ति वैष्णव बन गया। इससे यह समझना चाहिए

कि अनुकूल परिस्थिति होने पर लोग प्रचार-कार्य में रुचि लेते हैं। यदि जिन लोगों को बदला जाना है वे उत्पात करते हैं तो प्रचारक को चाहिए कि उनके बीच कृष्णभावनामृत का प्रचार न करे। श्रेयस्कर यही होगा कि जहाँ परिस्थिति उपयुक्त हो, वहाँ जाकर प्रचार-कार्य किया जाय। कृष्णभावनामृत आन्दोलन का पहला प्रयास भारत में ही किया गया, किन्तु भारत के लोग राजनीतिक विचारों में मग्न रहने के कारण इसे ग्रहण नहीं कर सके। उन्हें राजनीतिक नेताओं ने लुभा रखा था। इसीलिए हमने अपने गुरु का आदेश मान कर पश्चिम में आना श्रेयस्कर समझा और श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से यह आन्दोलन सफल हो रहा है।

प्रभुके ग़े भजे, तार ताँर कृपा हय।
सेइ से ए-सब लीला सत्य करि' लय॥११०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अन्यों को किस तरह शक्ति प्रदान करते हैं उसे केवल वही समझ सकता है जो वास्तव में भगवद्भक्त होता है और जिसे उनकी कृपा प्राप्त हुई रहती है।

अलौकिक-लीलाय ग़ार ना हय विश्वास।
इहलोक, परलोक तार हय नाश॥१११॥

अनुवाद

जो व्यक्ति महाप्रभु की असामान्य दिव्य लीलाओं में विश्वास नहीं करता, उसका विनाश इस लोक तथा परलोक दोनों में हो जाता है।

प्रथमेइ कहिल प्रभुर ग़ेरूपे गमन।
एइमत जानिह ग़ावत् दक्षिण-भ्रमण॥११२॥

अनुवाद

मैंने पुर्व में महाप्रभु के गमन के विषय में जो कुछ कहा है, उसे महाप्रभु की दक्षिण भारत की पूरी यात्रा पर लागू समझना चाहिए।

एइमत ग़ाइते ग़ाइते गेला कूर्मस्थाने।
कूर्म देखि' कैल ताँरे स्तवन-प्रणामे॥११३॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कूर्मक्षेत्र नामक तीर्थस्थान में पहुँचे, तो उन्होंने अर्चा-विग्रह का दर्शन किया, स्तुति की तथा प्रणाम किया।

तात्पर्य

कूर्मस्थान सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल है। यहाँ पर कूर्मदेव का मन्दिर है। *प्रपन्नामृत* में कहा गया है कि भगवान् जगन्नाथ ने एक रात श्री रामानुजाचार्य को उठाकर कूर्मक्षेत्र में फेंक दिया। यह कूर्मक्षेत्र दक्षिणी रेलवे लाइन पर स्थित है। इसके लिए चिका कोल रोड नामक रेलवे स्टेशन जाना होता है। तेलुगुभाषी इस तीर्थस्थल को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। *गंजाम मैनुअल* नामक सरकारी गजट में इसका उल्लेख है। वहाँ पर कूर्मदेव हैं और श्री रामानुजाचार्य को जगन्नाथ पुरी से फेंका गया तो वे यहीं आकर गिरे। उस समय उन्होंने सोचा कि कूर्मदेव का विग्रह भगवान् शिव का अर्चा-विग्रह है, इसलिए उन्होंने वहाँ उपवास किया। किन्तु जब उन्हें बाद में पता लगा कि कूर्मविग्रह भगवान् विष्णु का ही अन्य रूप है, तो उन्होंने कूर्मदेव की भव्य पूजा का प्रबन्ध करा दिया। यह कथन *प्रपन्नामृत* (अध्याय ३६) में पाया जाता है। कूर्मक्षेत्र या कूर्मस्थान का यह पवित्र स्थल जगन्नाथजी के प्रभाव से श्रीपाद रामानुजाचार्य द्वारा पुनः स्थापित किया गया। बाद में यह मन्दिर विद्यानगर के राजा के प्रबन्ध में चला गया। इस मन्दिर में कुछ लेख उत्कीर्ण हैं, जो श्री नरहरि तीर्थ द्वारा लिखे गये बताये जाते हैं। ये मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा में हुए हैं। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इन लेखों का विवरण इस प्रकार दिया है १) श्री पुरुषोत्तम यति अनेक विद्वान पुरुषों के शिक्षक रूप में हुए। वे विष्णु के प्रिय भक्त थे। २) उनके उपदेशों का सारे जगत में सम्मान होता था और वे अपनी शक्ति से अनेक अभक्तों का उद्धार करते थे। ३) उन्होंने आनन्दतीर्थ का शुभारम्भ किया और अनेक मूर्खों को संन्यास दिलाया तथा उन्हें अपने डण्डे से पीटा ४) उनकी सारी कृतियाँ तथा उनके वचन अत्यन्त सशक्त हैं। उन्होंने अनेक लोगों को विष्णु-भक्ति और वैकुण्ठ-लोक जाने के लिए मुक्ति दिलाई ५) उनके भक्ति-विषयक उपदेश किसी भी व्यक्ति को भगवान् के चरणकमलों को प्राप्त कराने वाले हैं। ६) उन्होंने नरहरि तीर्थ का भी श्रीगणेश कराया और वे कलिंग प्रान्त के शासक भी बने ७) नरहरि तीर्थ ने शवरों से, जो कि चण्डाल या शिकारी थे,

युद्ध किया और कूर्म मन्दिर को बचाया ८) नरहरि तीर्थ अत्यन्त धर्मात्मा तथा शक्तिशाली राजा थे ९) उनका देहान्त वैशाख सुदी ११, सम्बत् १२०३ में हुआ। इसके पूर्व मन्दिर का निर्माण हो चुका था और योगानन्द नृसिंहदेव को समर्पित हो चुका था। इस शिलालेख की तिथि २९ मार्च १२८१ शनिवार है।

प्रेमावेशे हासि' कान्दि' नृत्य-गीत कैल।
देखि' सर्व लोकेर चित्त चमत्कार हैल॥११४॥

अनुवाद

जब तक महाप्रभु इस स्थान पर रहे, वे यथावत् अपने भावावेश में रहे और हँसते, नाचते तथा कीर्तन करते रहे। जो भी उन्हें देखता, आश्चर्यचकित रह जाता।

आश्चर्य शुनिया लोक आइल देखिबारे।
प्रभुर रूप-प्रेम देखि' हैला चमत्कारे॥११५॥

अनुवाद

इन अद्भुत घटनाओं को सुन-सुनकर लोग उन्हें देखने आते। जब वे महाप्रभु का सौन्दर्य तथा उनकी भावदशा देखते तो आश्चर्यचकित रह जाते।

दर्शने 'वैष्णव' हैल, बले 'कृष्ण' 'हरि'।
प्रेमावेशे नाचे लोक ऊर्ध्व बाहु करि'॥११६॥

अनुवाद

महाप्रभु के दर्शन-मात्र से लोग भक्त बन गये। वे कृष्ण तथा हरि एवं समस्त पवित्र नामों का कीर्तन करने लगे। वे सभी प्रेमावेश में मग्न होकर अपने हाथ ऊपर उठा-उठाकर नाचने लगे।

कृष्णनाम लोकमुखे शुनि' अविराम।
सेइ लोक 'वैष्णव' कैल अन्य सब ग्राम॥११७॥

अनुवाद

उन्हें सदैव कृष्ण-नाम का कीर्तन करते सुन कर उन गाँवों के अन्य लोग भी वैष्णव बन गये।

एइमत परम्पराय देश 'वैष्णव' हैल।
कृष्णनामामृत-वन्याय देश भासाइल॥११८॥

अनुवाद

कृष्ण का पवित्र नाम सुन-सुनकर सारा देश वैष्णव बन गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो कृष्ण-नाम ने सम्पूर्ण देश को आप्लावित कर दिया हो।

कतक्षणे प्रभु ग़्रदि बाह्य प्रकाशिल।
कुर्मेर सेवक बहु सम्मान करिला॥११९॥

अनुवाद

कुछ समय बाद जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने बाह्य चेतना दिखलाई, तो कूर्मदेव के एक पुजारी ने उन्हें विविध भेंटें दीं।

ग़्रेइ ग्रामे ग़्राय ताहाँ एइ व्यवहार।
एक ठाञि कहिल, ना कहिब आर बार॥१२०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रचार-विधि का वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ, अतएव मैं उसे फिर से नहीं दुहराऊँगा। महाप्रभु जिस किसी ग्राम में जाते, उनका व्यवहार वैसा ही रहता।

'कूर्म'-नामे सेइ ग्रामे वैदिक ब्राह्मण।
बहु श्रद्धा-भक्त्ये कैल प्रभुर निमन्त्रण॥१२१॥

अनुवाद

एक गाँव में कूर्म नाम का एक वैदिक ब्राह्मण था। उसने बड़े ही सत्कार तथा भक्ति से श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया।

घरे आनि' प्रभुर कैल पाद प्रक्षालन।
सेइ जल वंश-सहित करिल भक्षण॥१२२॥

अनुवाद

यह ब्राह्मण महाप्रभु को अपने घर ले आया, उसने उनके चरणकमल धोये और उस जल क़ो परिवार सहित पिया।

अनेक प्रकार स्नेहे भिक्षा कराइल।
गोसाञिर शेषान्न सवंशे खाइल॥१२३॥

अनुवाद

उस कूर्म ब्राह्मण ने महाप्रभु को बड़े ही स्नेह से सभी प्रकार का भोजन कराया। उसके बाद जो जूठन बचा उसे परिवार के सारे सदस्यों सहित उसने खाया।

'य़ेइ पादपद्म तोमार ब्रह्मा ध्यान करे।
सेइ पादपद्म साक्षात् आइल मोर घरे॥१२४॥

अनुवाद

फिर उस ब्राह्मण ने प्रार्थना करनी शुरू की, "हे प्रभु! आपके जिन चरणकमलों का ध्यान ब्रह्माजी करते हैं, वे ही चरणकमल मेरे घर में पड़े हैं।

मोर भाग्येर सीमा ना य़ाय कहन।
आजि मोर श्लाघ्य हैल जन्म-कुल-धन॥१२५॥

अनुवाद

"हे प्रभु! मेरे सौभाग्य की कोई सीमा नहीं रही। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज मेरा परिवार, जन्म तथा मेरा धन सभी धन्य हो गये।"

कृपा कर, प्रभु, मोरे, य़ाङ तोमा-सङ्गे।
सहिते ना पारि दुःख विषय-तरङ्गे॥१२६॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु से प्रार्थना की, "हे पुत्र! आप मुझ पर कृपादृष्टि करें और मुझे अपने साथ चलने दें। मैं अब और अधिक समय तक भौतिक जीवन-उत्पन्न चिन्ता की लहरों को सहन नहीं कर सकता।

तात्पर्य

यह कथन सबों पर लागू होता है, चाहे वह कितना ही धनी क्यों न हो। नरोत्तम दास ठाकुर ने इस कथन की पुष्टि इस प्रकार की है—*संसार-विषानले, दिवानिशि हिया ज्वले*। उनका कहना है कि भौतिकतावादी जीवन-शैली से

हृदय दग्ध होता रहता है। भौतिक जगत के दुखमय जीवन का कोई उपाय ढूँढे नहीं मिलता। यह तथ्य है कि जहाँ तक धन की बात है, हर कोई अत्यन्त सुखी हो सकता है, और वह हर प्रकार से ऐश्वर्यवान् हो सकता है, फिर भी उसे अपने शरीर तथा अपने परिवार के सदस्यों तथा आश्रितों के लिए अनेक *विषयों* का प्रबन्ध करना पड़ता है। अन्यों को की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे काफी कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसीलिए नरोत्तम दास ठाकुर विनती करते हैं—*विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन*। अतएव मनुष्य को भौतिकतावादी जीवन-शैली से मुक्त हो जाना चाहिए। उसे दिव्य आनन्द के सागर में अवगाहन करना होता है। दूसरे शब्दों में, भौतिकतावादी जीवन-शैली से मुक्त हुए बिना दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता है कि कूर्म नामक ब्राह्मण भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखी था, क्योंकि उसने अपनी कुल-परम्परा का वर्णन *जन्म-कुल-धन* कह कर किया है। अब धन्य होने पर वह सारा भौतिक ऐश्वर्य छोड़ना चाह रहा था। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ यात्रा करना चाह रहा था। वैदिक संस्कृति के अनुसार जब मनुष्य पचास वर्ष की आयु प्राप्त कर ले तो उसे अपना परिवार त्याग कर शेष जीवन भगवान् की सेवा में बिताने के लिए वृन्दावन चले जाना चाहिए।

प्रभु कहे,—"ऐछे वात् कभु ना कहिबा।
गृहे रहि' कृष्ण-नाम निरन्तर लैबा॥१२७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब फिर से ऐसा मत कहना। अच्छा यही होगा कि तुम घर पर रहो और सदैव कृष्ण-नाम का कीर्तन करो।"

तात्पर्य

इस कलियुग में सहसा अपना परिवार त्यागने की सलाह नहीं दी जाती, क्योंकि लोगों को ब्रह्मचारियों तथा गृहस्थों के रूप में समुचित प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को सलाह दी कि वह अपना पारिवारिक जीवन त्यागने के लिए इतना उत्सुक न होए। यह अच्छा होगा कि वह गृहस्थ बना रहे, और गुरु के निर्देशन में हरे-कृष्ण-महामन्त्र का नियमित कीर्तन करके शुद्ध बने। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा

है। यदि हर कोई इस शिक्षा का पालन करे तो फिर संन्यास लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगले श्लोक में श्री चैतन्य महाप्रभु ने सबों को सलाह दी है कि वे निरपराध भाव से हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करके तथा जो भी व्यक्ति मिले उसे इसी नियम की शिक्षा देकर आदर्श गृहस्थ बनें।

य़ारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार' एइ देश॥१२८॥

अनुवाद

"हर एक को उपदेश दो कि वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करे। इस तरह गुरु बनो और इस देश के हर प्राणी का उद्धार करने का प्रयास करो।"

तात्पर्य

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का यही उद्देश्य है। बहुत-से लोग आकर पूछते हैं कि क्या इस संघ में सम्मिलित होने के लिए परिवार को त्यागना आवश्यक है? किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं। मनुष्य अपने घर पर सुखपूर्वक रह सकता है। हम तो हर एक से इतना ही अनुरोध करते हैं कि महामन्त्र—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे—का कीर्तन करे। यदि वह कुछ पढ़ना जानता है और *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* पढ़ सकता है, तो और भी अच्छा। अब इन ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं और ये सभी वर्गों के व्यक्तियों को अच्छे लगते हैं। लोगों को चाहिए कि भौतिक कार्यकलापों में ही निमग्न न रह कर इस आन्दोलन का लाभ उठायें और घर बैठे अपने परिवारों सहित हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करें। मनुष्य को चाहिए कि पापकर्मों अवैध यौनाचार, मांसाहार, द्यूत-क्रीड़ा तथा नशा-से बचे। इन चारों में से अवैध यौनाचार अत्यन्त पापमय है। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह विवाह करे। विशेष रूप से हर स्त्री विवाहित हो जाय। यदि स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है, तो कुछ लोग एक से अधिक पत्नियाँ बना सकते हैं। इस तरह समाज में वेश्यावृत्ति नहीं पनपती। यदि पुरुष के एक से अधिक विवाहित पत्नियाँ हो जायँ तो अवैध यौनाचार रुक जायेगा। वह कृष्ण को अर्पित करने के लिए नाना प्रकार के व्यंजन—अन्न, फल, फूल तथा दूध—भी तैयार कर सकता है। भला मनुष्य क्योंकर व्यर्थ

ही मांसाहार की लत डाले, और वीभत्स कसाई-घर चलाये? धूम्रपान करने और चाय-काफी पीने से क्या लाभ? लोग पहले से भौतिक भोग में मदोन्मत्त हैं, और यदि वे अतिरिक्त नशा करेंगे तो फिर आत्म-साक्षात्कार के लिए अवसर कहाँ? इसी तरह मनुष्य को जुआ नहीं खेलना चाहिए, और व्यर्थ ही मन को चंचल नहीं बनाना चाहिए। मानव-जीवन का असली उद्देश्य आध्यात्मिक पद प्राप्त करके भगवान् के पास लौटना है। आध्यात्मिक साक्षात्कार का यही सार है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन मानव समाज को ऊपर उठाने का प्रयास कर रहा है, जिससे कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा कूर्म ब्राह्मण के दिये गये उपदेश में बताई गई विधि से जीवन-सिद्धि प्राप्त की जा सके। अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि घर पर ही रहे, हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करे और *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में दिये हुए कृष्ण के उपदेशों का प्रचार करे।

कभु ना वाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एइ ठाञि पाबे मोर सङ्ग॥''१२९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म ब्राह्मण को यह भी उपदेश दिया, ''यदि तुम इस उपदेश का पालन करोगे तो तुम्हारा गृहस्थ जीवन तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं बनेगा। यदि तुम इन नियमों का पालन करोगे तो हम पुनः यहीं मिलेंगे, अथवा तुम मेरा साथ कभी नहीं छोड़ोगे।''

तात्पर्य

यह सुअवसर हर एक के लिए है। यदि कोई व्यक्ति महाप्रभु के प्रतिनिधि के मार्गदर्शन में चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन-भर करता रहे, और हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करे, इसी नियम को हर एक को सिखलाये, तो उसे भौतिक जीवन का कल्मष छू तक नहीं जायेगा। फिर चाहे वह वृन्दावन, नवद्वीप या जगन्नाथ पुरी जैसे तीर्थस्थानों में रहे, अथवा यूरप के शहरों में, जहाँ भौतिकतावादी जीवन की प्रधानता है। यदि कोई भक्त श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करता है तो वह भगवान् के सान्निध्य में रहता है। वह जहाँ भी रहता है उस स्थान को वृन्दावन तथा नवद्वीप बना देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिकता उसे छू भी नहीं पाती। कृष्णभावनामृत

में अग्रसर होने वाले के लिए सफलता का यही रहस्य है।

एइ मत य़ाँर घरे करे प्रभु भिक्षा।
सेइ ऐछे कहे, ताँरे कराय एइ शिक्षा॥१३०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस किसी के घर में प्रसाद ग्रहण करके भिक्षा लेते, वे उस घर के रहने वालों को अपने संकीर्तन-आन्दोलन में ले लेते और उन्हें वैसी ही शिक्षा देते जैसी कि कूर्म नामक ब्राह्मण को दी थी।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। जो व्यक्ति उनकी शरण ग्रहण करता है और मन से उनका पालन करता है, उसे अपना स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं है। न ही उसे अपने पद बदलने की आवश्यकता है। वह गृहस्थ, डाक्टर, इंजीनियर या कुछ भी बना रह सकता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसे केवल श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेश का पालन, हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन और सम्बन्धियों तथा मित्रों को *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* की शिक्षाओं का उपदेश देना होता है। उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का पालन करते हुए दीनता तथा विनयशीलता सीखनी पड़ती है। इस तरह उसका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से सफल हो जाता है। उसे चाहिए कि वह कभी यह सोच कर कि "मैं महाभागवत हूँ" कृत्रिम ढंग से उच्च बनने की कोशिश न करे। इस तरह के विचार से बचना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि वह शिष्य न बनाये। मनुष्य को घर पर ही हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने को कहे, तथा श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिष्ठित नियमों का प्रचार करके शुद्ध बने। इस तरह वह गुरु बन सकता है और भौतिक जीवन के कल्मष से मुक्त हो सकता है।

ऐसे अनेक सहजिये हैं जो श्रील रूप, सनातन, रघुनाथ दास, भट्ट रघुनाथ, जीव तथा गोपाल भट्ट, इन षड् गोस्वामियों के कार्यकलापों की निन्दा करते हैं। ये श्री चैतन्य महाप्रभु के निजी संगी हैं और उन्होंने भक्ति-विषय पुस्तकें लिख कर समाज को प्रबुद्ध बनाया है। इसी तरह नरोत्तम दास ठाकुर तथा अन्य महान आचार्यों ने—यथा मध्वाचार्य, रामानुजाचार्य आदि ने हजारों शिष्य

बनाये और उन्हें भक्ति करने के लिए प्रेरित किया। किन्तु सहजियों का एक वर्ग है जो यह सोचता है कि ये सारे कार्य भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। निस्सन्देह, वे इन कार्यों को भौतिकता का अन्य स्वरूप मानते हैं। इस तरह वे श्री चैतन्य महाप्रभु के नियमों का विरोध करके उनके चरणकमलों पर अपराध करते हैं। उन्हें चाहिए कि वे उनके उपदेशों पर विचार करें, और श्री चैतन्य महाप्रभु के उन अनुयायियों की आलोचना करने से अपने को दूर रखें जो प्रचार-कार्य में लगे हुए हैं। अपने प्रचारकर्ताओं की रक्षा करने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने *चैतन्य-चरितामृत* के इन श्लोकों में बहुत ही स्पष्ट सलाह दे दी है।

पथे ग़्राइते देवालये रहे ग़्रेइ ग्रामे।
ग़्रार घरे भिक्षा करे, सेइ महाजने॥१३१॥
कूर्मे ग़्रैछे रीति, तैछे कैल सर्वठाञि।
नीलाचले पुनः ग़्रावत् ना आइला गोसाञि॥१३२॥

अनुवाद

अपनी यात्रा के दौरान श्री चैतन्य महाप्रभु या तो मन्दिर में या सड़क के किनारे रात बिताते। जब वे किसी व्यक्ति का भोजन ग्रहण करते, तो वे उसे वही उपदेश देते, जो उन्होंने कूर्म ब्राह्मण को दिया था। वे इस विधि को तब तक अपनाये रहे, जब तक कि वे अपनी दक्षिण भारत की यात्रा से जगन्नाथ पुरी लौट नहीं आये।

अतएव इहाँ कहिलाङ करिया विस्तार।
एइमत जानिबे प्रभुर सर्वत्र व्यवहार॥१३३॥

अनुवाद

इस तरह मैंने कूर्म के प्रसंग में महाप्रभु के व्यवहार का विस्तार से वर्णन किया है। इसी तरह से आप सारे दक्षिण भारत में महाप्रभु के व्यवहार को जान सकेंगे।

एइमत सेइ रात्रि ताहाँइ रहिला।
प्रातःकाले प्रभु स्नान करिया चलिला॥१३४॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु एक स्थान में रात-भर रहते, और प्रातःकाल स्नान करके पुनः चल देते।

प्रभुर अनुव्रजि' कूर्म बहु दूर आइला।
प्रभु ताँरे यत्न करि' घरे पाठाइला।।१३५।।

अनुवाद

जब महाप्रभु चल पड़े, तो कूर्म ब्राह्मण बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे आया, किन्तु अन्त में महाप्रभु ने उसे घर वापस भेज दिया।

'वासुदेव'-नाम एक द्विज महाशय।
सर्वाङ्गे गलित कुष्ठ, ताते कीड़ामय।।१३६।।

अनुवाद

वासुदेव नाम का एक अन्य ब्राह्मण था जो बड़ा आदमी था, किन्तु कोढ़ से पीड़ित था। उसका शरीर जीवित कीड़ों से भरा था।

अङ्ग हैते येइ कीड़ा खसिया पड़य।
उठाञा सेइ कीड़ा राखे सेइ ठाञ।।१३७।।

अनुवाद

यद्यपि वासुदेव कोढ़ से पीड़ित था, किन्तु ज्ञानी था। ज्योंही उसके शरीर से कोई कीड़ा गिर पड़ता, तो वह उसे उठाकर पुनः उसी स्थान में रख देता।

रात्रिते शुनिला तेँहो गोसाञिर आगमन।
देखिबारे आइला प्रभाते कूर्मेर भवन।।१३८।।

अनुवाद

एक रात को वासुदेव ने महाप्रभु के आगमन की बात सुनी, और प्रातः होते ही वह कूर्म के घर महाप्रभु का दर्शन करने आया।

प्रभुर गमन कूर्म-मुखेर शुनिञा।
भूमिते पड़िला दुःखे मूर्छित हञा।।१३९।।

अनुवाद

जब वह कोढ़ी वासुदेव कूर्म के घर चैतन्य महाप्रभु को देखने गया, तो उसे बताया गया कि महाप्रभु वहाँ से पहले ही जा चुके हैं। इस पर वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा।

अनेक प्रकार विलाप करिते लागिला।
सेइक्षणे आसि' प्रभु ताँरे आलिंगिला॥१४०॥

अनुवाद

जब वह कोढ़ी ब्राह्मण महाप्रभु का दर्शन न कर सकने के कारण विलाप कर रहा था, तो महाप्रभु तुरन्त उस स्थान को लौट आये और उसको आलिंगन किया।

प्रभु-स्पर्शे दुःख-सङ्गे कुष्ठ दूरे गेल।
आनन्द सहिते अङ्ग सुन्दर हइल॥१४१॥

अनुवाद

जब महाप्रभु ने उसका स्पर्श किया तो उसका कोढ़ तथा उसका कष्ट एकसाथ दूर भग गये। वासुदेव का शरीर अत्यन्त सुन्दर हो गया जिससे उसे परम सुख हुआ।

प्रभुर कृपा देखिऽताँर विस्मय हैल मन।
श्लोक पड़ि' पाये धरि, करये स्तवन॥१४२॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु की अद्भुत कृपा देख कर चकित था और वह महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करके श्रीमद्भागवत का श्लोक सुनाने लगा।

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥१४३॥

अनुवाद

उसने कहा, "मैं कौन हूँ? एक पापी, ब्राह्मण या दरिद्र मित्र। और कृष्ण कौन हैं? षड् ऐश्वर्ययुक्त भगवान्। फिर भी उन्होंने अपनी बाहुओं में भर कर मेरा आलिंगन किया है।

तात्पर्य

यह श्लोक सुदामा ब्राह्मण ने भगवान् कृष्ण से भेंट के समय कहा था (श्रीमद्भागवत १०.८१.१६)।

बहु स्तुति करि' कहे,—शुन दयामय।
जीवे एइ गुन नाहि, तोमाते एइ हय॥१४४॥
मोरे देखि' मोर गन्धे पलाय पामर।
हेन-मोरे स्पर्श' तुमि,—स्वतन्त्र ईश्वर॥१४५॥

अनुवाद

वासुदेव ब्रह्मण ने कहा, "हे दयामय स्वामी! ऐसी कृपा सामान्य जीवों में सम्भव नहीं। ऐसी कृपा तो केवल आप में ही पाई जाती है। पापी भी मुझे देख कर मेरे शरीर की दुर्गंध के कारण दूर चला जाता है, फिर भी आपने मेरा स्पर्श किया। भगवान् का व्यवहार ऐसा स्वतन्त्र होता है।

किन्तु आछिलाङ भाल अधम हञा।
एबे अहङ्कार मोर जन्मिबे आसिया॥१४६॥

अनुवाद

उस दीन वासुदेव को चिन्ता थी कि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा अच्छा कर दिये जाने से कहीं वह गर्वित न हो उठे।

प्रभु कहे,—"कभु तोमार ना हबे अभिमान।
निरन्तर कह तुमि 'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम॥१४७॥

अनुवाद

इससे बचने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को सलाह दी कि वह निरन्तर हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करे। ऐसा करने से वह कभी भी व्यर्थ गर्वित नहीं होगा।

कृष्ण उपदेशि' कर जीवेर निस्तार।
अचिरते कृष्ण तोमा करिबेन अङ्गीकार॥१४८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वासुदेव को यह भी सलाह दी कि वह कृष्ण के विषय में उपदेश देकर जीवों का उद्धार करे। फलस्वरूप कृष्ण शीघ्र ही उसे अपना भक्त बना लेंगे।

तात्पर्य

यद्यपि वासुदेव विप्र कोढ़ी था और उसे अत्यधिक कष्ट था, फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने उसे अच्छा कर दिया। बदले में महाप्रभु ने यही चाहा कि वासुदेव कृष्ण के उपदेशों का प्रचार करे और सारे मनुष्यों का उद्धार करे। अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की विधि यही है। इस संघ के हर सदस्य को अत्यन्त घृणित अवस्था से उबारा गया है, किन्तु अब वे कृष्णभावनामृत-सम्प्रदाय के प्रचार में लगे हुए हैं। उन्हें न केवल भौतिकतावाद रूपी रोग से छुटकारा मिला है, अपितु वे अत्यन्त सुखी जीवन बिता रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन्हें कृष्ण के महान् भक्तों के रूप में स्वीकार करता है, और उनके गुण उनके चेहरों से प्रकट हो जाते हैं। यदि कोई चाहता है कि कृष्ण द्वारा भक्त के रूप में उसे मान्यता मिले, तो उसे श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश मानते हुए प्रचार-कार्य में लग जाना चाहिए। तब उसे अविलम्ब ही साक्षात् कृष्णस्वरूप श्रीकृष्ण चैतन्य के चरणकमल प्राप्त हो सकेंगे।

एतेक कहिया प्रभु कैल अन्तर्धाने।
दुइ विप्र गलागलि कान्दे प्रभुर गुणे॥१४९॥

अनुवाद

वासुदेव ब्राह्मण को इस प्रकार उपदेश देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु उस स्थान से अदृश्य हो गये। तब कूर्म तथा वासुदेव दोनों ब्राह्मण एक-दूसरे के गले लग कर श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य गुणों का स्मरण कर-कर रोने लगे।

'वासुदेवोद्धार' एइ कहिल आख्यान।
'वासुदेवामृत प्रद' हैल प्रभुर नाम॥१५०॥

अनुवाद

इस प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिस तरह वासुदेव कोढ़ी का उद्धार

किया, और जिस तरह उनका नाम वासुदेवामृत-प्रद पड़ा, उसका वर्णन मैंने किया है।

एइ त' कहिल प्रभुर प्रथम गमन।
कूर्म-दरशन, वासुदेव विमोचन॥१५१॥

अनुवाद

इस तरह मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रथम यात्रा का वर्णन समाप्त करता हूँ, जिसमें उन्होंने कूर्म-मन्दिर देखा और कोढ़ी वासुदेव का उद्धार किया।

श्रद्धा करि' एइ लीला ये करे श्रवण।
अचिराते मिलये तारे चैतन्य-चरण॥१५२॥

अनुवाद

जो कोई श्री चैतन्य महाप्रभु की इन लीलाओं को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सुनता है उसे तुरन्त ही उनके चरणकमल प्राप्त हो जाते हैं।

चैतन्यलीलार आदि-अन्त नाहि जानि।
सेइ लिखि, येइ महान्तेर मुखे शुनि॥१५३॥

अनुवाद

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का आदि और अन्त नहीं जानता। फिर भी मैंने जो कुछ लिखा है, उसे महापुरुषों के मुख से सुन कर लिखा है।

तात्पर्य

सार्वभौम भट्टाचार्य ने जो श्लोक रचे हैं उनमें वासुदेवामृत-प्रद नाम आया है। जब मनुष्य की चेतना जाग्रत होती है, तो उसका आध्यात्मिक जीवन भी जाग्रत होता है और वह भगवान् की सेवा में अनुरक्त हो जाता है। तभी वह *आचार्य* बन सकता है। दूसरे शब्दों में, हर व्यक्ति को चाहिए कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए प्रचार-कार्य में लग जाय। इस तरह भगवान् कृष्ण प्रसन्न होंगे और तुरन्त ही उसे मान्यता प्रदान करेंगे। वस्तुतः श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्त को चाहिए कि वह प्रचार-कार्य में लग जाय, जिससे महाप्रभु के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हो। इस प्रकार वास्तविक वैदिक ज्ञान का प्रचार सारे विश्व में करने से सारी मानवता

को लाभ पहुँचेगा।

> इथे अपराध मोर ना लइओ, भक्तगण।
> तोमा-सबार चरण—मोर एकान्त शरण॥१५४॥

अनुवाद

हे भक्त! इस विषय में मेरे अपराधों पर विचार मत करना। आपके चरणकमल ही मेरी एकमात्र शरण हैं।

> श्रीरूप-रघुनाथ-पदे यार आश।
> चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥१५५॥

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर विनती करते हुए और सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जिसमें वासुदेव ब्राह्मण के मोक्ष तथा महाप्रभु की दक्षिण-भारत-यात्रा का वर्णन हुआ है।

अध्याय ८

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री रामानन्द राय की वार्ता

आठवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में दिया है।

जियड़-नृसिंह मन्दिर को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गोदावरी नदी के तट पर स्थित विद्यानगर नामक स्थान को गये। श्रील रामानन्द राय नदी में स्नान करने जा रहे थे, तभी दोनों की भेंट हुई। परिचय होने पर श्री रामानन्द राय ने महाप्रभु से प्रार्थना की कि वे कुछ दिनों तक गाँव में रहें। उनकी प्रार्थना मान कर महाप्रभु वहाँ कुछ वैदिक ब्राह्मणों के घर में रहे। श्रील रामानन्द राय नित्य ही संध्या-समय महाप्रभु से भेंट करने आते थे। सामान्य वस्त्र धारण किये रामानन्द राय ने महाप्रभु को नमस्कार किया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूजा के उद्देश्य और विधि पर प्रश्न पूछे और वैदिक साहित्य से कुछ श्लोक सुनाने को कहा।

सर्वप्रथम श्रील रामानन्द राय ने वर्णाश्रम पद्धति का व्याख्यान किया। उन्होंने *कर्मार्पण* के विषय में अनेक श्लोक सुनाये जिनमें कहा गया था कि हर वस्तु भगवान् को समर्पित की जानी चाहिए। फिर उन्होंने वियुक्त कर्म, भक्तिमिश्रित ज्ञान तथा भगवान् की रागानुगा भक्ति के विषय में बतलाया। श्रील रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये श्लोकों को सुन लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने समस्त प्रकार के चिन्तन से रहित भक्ति को स्वीकार किया। तत्पश्चात् महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे भक्ति के उच्चतर स्तर की व्याख्या करें। तब श्रील रामानन्द राय ने शुद्ध भक्ति, भगवत्प्रेम, शुद्ध दास्य भाव, सख्य भाव तथा वात्सल्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में व्याख्या की। अन्त में उन्होंने माधुर्य भाव से भगवान् की सेवा के विषय में बतलाया। तत्पश्चात् उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार विभिन्न तरीकों से माधुर्य भाव

को उत्पन्न किया जा सकता है। यह माधुर्य प्रेम कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी के प्रेम में सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त करता है। इसके बाद उन्होंने श्रीमती राधारानी की स्थिति तथा भगवत्प्रेम के रसों का वर्णन किया। तब उन्होंने अपना एक श्लोक सुनाया जो *प्रेम-विलास-विवर्त* से सम्बद्ध था। उन्होंने यह भी बतलाया कि माधुर्य प्रेम की सारी अवस्थाएँ वृन्दावनवासियों, विशेषतया गोपियों की कृपा के माध्यम, से ही प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह उन्होंने क्रमशः इन सारे विषयों का विस्तार से वर्णन किया। श्रील रामानन्द राय ने धीरे-धीरे महाप्रभु की स्थिति समझ ली और जब श्रील चैतन्य महाप्रभु ने अपना वास्तविक रूप प्रदर्शित किया तो रामानन्द राय बेहोश हो गये। कुछ काल बाद महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त करके जगन्नाथ पुरी चले आयें। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मिलन का यह विवरण स्वरूप दामोदर गोस्वामी की नोटबुक (स्मृति-पुस्तिका) से लिया गया है।

सञ्चार्य रामाभिध-भक्तमेघे
स्वभक्तिसिद्धान्तचयामृतानि ।
गौराब्धिरेतैरमुना वितीर्णै-
स्तज्ज्ञत्व-रत्नालयतां प्रयाति ॥१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु, जो गौरांग भी कहलाते हैं, भक्ति विषयक समस्त सैद्धान्तिक ज्ञान के आगार हैं। उन्होंने श्री रामानन्द राय को शक्ति प्रदान की, जिनकी तुलना भक्ति के बादल से की जा सकती है। यह बादल भक्ति के समस्त सैद्धान्तिक तात्पर्यों से पूरित था, और महासागर द्वारा शक्तिप्रदत्त था कि वह इस जल को समुद्र के ऊपर फैला दे। श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं शुद्ध भक्ति के ज्ञान-सागर थे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत आचार्य की जय हो; तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त

भक्तों की जय हो।

पूर्व-रीते प्रभु आगे गमन करिला।
जियड़-नृसिंह-क्षेत्रे कतदिने गेला॥३॥

अनुवाद

अपने पूर्ववर्ती कार्यक्रम के अनुसार महाप्रभु अपनी यात्रा में आगे बढ़ते गये और कुछ दिनों के बाद जियड़-नृसिंह नामक तीर्थस्थान पहुँचे।

तात्पर्य

जियड़-नृसिंह मन्दिर विशाखापत्तन से लगभग ५ मील दूर एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित है। वहाँ पर दक्षिण भारतीय रेलवे पर सिंहाचल नामक रेलवे स्टेशन है। सिंहाचल नाम से विख्यात मन्दिर विशाखापत्तन के आसपास का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त वैभवयुक्त है और स्थानीय स्थापत्य कला का अनूठा उदाहरण है। एक शिलालेख में यह उल्लेख है कि पहले किसी रानी ने अर्चाविग्रह को सोने के पत्तर से मढ़वाया था। विशाखापत्तनम गजेटियर में इसका वर्णन मिलता है। मन्दिर के चारों ओर पुजारियों तथा भक्तों के रहने के लिए मकान बने हैं। इस समय दर्शक भक्तों को टिकाने के लिए अनेक रिहायशी मकान बन गये हैं। आदि विग्रह मन्दिर के गर्त में स्थित है, किन्तु उस की एक अनुकृति भी है जो *विजय मूर्ति* कहलाती है। यह छोटी मूर्ति मन्दिर से हटाई जा सकती है और जुलूसों में निकाली जाती है। सारे पुजारी सामान्यतया रामानुज सम्प्रदाय के हैं, और उन्हीं पर अर्चाविग्रह की पूजा का भार है।

नृसिंह देखिया कैल दण्डवत्प्रणति।
प्रेमावेशे कैल बहु नृत्य-गीत-स्तुति॥४॥

अनुवाद

मन्दिर में भगवान् नृसिंह के अर्चाविग्रह को देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर प्रेमावेश में उन्होंने तमाम नृत्य किये, कीर्तन किया और स्तुतियाँ कीं।

"श्रीनृसिंह, जय नृसिंह, जय जय नृसिंह।
प्रह्लादेश जय पद्मामुखपद्मभृङ्ग॥"५॥

अनुवाद

"नृसिंहदेव की जय हो! प्रह्लाद महाराज के प्रभु नृसिंहदेव की जय हो, जो भौंरे के समान ही लक्ष्मीजी के कमल सदृश मुख को देखने में सदैव लगे रहते हैं।

तात्पर्य

लक्ष्मीजी सदैव भगवान् नृसिंहदेव द्वारा आलिंगित होती हैं। श्रीमद्भागवत के प्रथम तथा दशम स्कंधों में इसका उल्लेख महान भाष्यकार श्रील श्रीधर स्वामी ने किया है। *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (१०.८७.१) की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित श्लोक की रचना की है—

वागीश यस्यवदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये सम्वित् तं नृसिंहमहं भजे॥

"विद्या की देवी सरस्वती सदैव नृसिंहदेव की सहायता करती हैं और लक्ष्मीजी सदैव उनके वक्षस्थल का आलिंगन करती हैं। भगवान् सदैव अपने में ज्ञान में पूर्ण हैं। हम उन नृसिंहदेव को नमस्कार करते हैं।"

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध (१.१.१) की टीका करते हुए श्रीधर स्वामी ने नृसिंहदेव का वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रह्लाद-हृदयाह्लादं भक्ताविद्याविदारणम्।
शरदिन्दुरुचिं वन्दे पारीन्द्रवदनं हरिम्॥

"मैं उन नृसिंहदेव को नमस्कार करता हूँ जो प्रह्लाद महाराज के हृदय के भीतर से सदैव प्रकाश प्रदान करते हैं, और जो भक्तों पर आक्रमण करने वाली अविद्या का सदैव विनाश करते हैं। उनकी कृपा चाँदनी की तरह फैली हुई है, और उनका मुख सिंह के समान है। मैं उन्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"

उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्वभक्तानां नृकेशरी।
केशरीव स्वपोतानामन्येषां उग्र विक्रमः॥६॥

अनुवाद

यद्यपि सिंहिनी अत्यन्त खूँख्वार होती है, किन्तु वह अपने बच्चों के

प्रति अत्यन्त दयालु होती है। इसी तरह यद्यपि नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु जैसे अभक्तों के प्रति अत्यन्त नृशंस हैं, किन्तु प्रह्लाद महाराज जैसे भक्तों के लिए अत्यन्त कोमल एवं दयालु हैं।''

तात्पर्य

यह *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (७.९.१) पर श्रीधर स्वामी द्वारा की गई टीका का श्लोक है।

एइमत नाना श्लोक पड़ि' स्तुति कैल।
नृसिंह-सेवक माला-प्रसाद आनि' दिल॥७॥

अनुवाद

इस प्रकार महाप्रभु ने शास्त्रों से अनेक श्लोक सुनाये। तब नृसिंहदेव के पुजारी ने महाप्रभु को लाकर मालाएँ तथा प्रसाद दिया।

पूर्ववत् कोन विप्रे कैल निमन्त्रण।
सेइ रात्रि ताहाँ रहि' करिला गमन॥८॥

अनुवाद

पहले की ही तरह एक ब्राह्मण ने श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। महाप्रभु ने वह रात्रि मन्दिर में ही बिताई और पुनः अपनी यात्रा शुरू कर दी।

प्रभाते उठिया प्रभु चलिला प्रेमावेशे।
दिग् विदिक् नाहि ज्ञान रात्रि-दिवसे॥९॥

अनुवाद

अगली सुबह श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रेमावेश में अपनी यात्रा पर बिना किसी दिशा-ज्ञान के ही चल पड़े और अहर्निश चलते गये।

पूर्ववत् 'वैष्णव' करि' सर्व लोकगणे।
गोदावरी-तीरे प्रभु आइला कतदिने॥१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पहले की ही तरह मार्ग में मिलने वाले अनेक लोगों को वैष्णव बनाया। कुछ दिनों बाद महाप्रभु गोदावरी नदी के

तट पर जा पहुँचे।

गोदावरी देखि' हइल 'यमुना'-स्मरण।
तीरे वन देखि' स्मृति हैल वृन्दावन॥११॥

अनुवाद

जब उन्होंने गोदावरी नदी देखी तो उन्हें यमुना नदी का स्मरण हो आया और जब उन्होंने नदी-तट पर स्थित वन देखा तो उन्हें श्री वृन्दावन धाम की याद हो आई।

सेइ वने कतक्षण करि' नृत्य-गान।
गोदावरी पार हञा ताहाँ कैल स्नान॥१२॥

अनुवाद

इस वन में कुछ समय तक पूर्ववत् कीर्तन तथा नृत्य करने के बाद महाप्रभु ने नदी पार की और दूसरे किनारे पर पहुँच कर स्नान किया।

घाट छाड़ि' कतदूरे जल-सन्निधाने।
वसि' प्रभुकरे कृष्णनाम-संकीर्तने॥१३॥

अनुवाद

नदी में स्नान करने के बाद महाप्रभु स्नान-घाट से कुछ दूर गये और कृष्ण के पवित्र नाम-कीर्तन में लग गये।

हेनकाले दोलाय चड़ि' रामानन्द राय।
स्नान करिबारे आइला, बाजना बाजाय॥१४॥

अनुवाद

उसी समय बाजे-गाजे के साथ पालकी पर चढ़ कर रामानन्द राय स्नान करने आये।

ताँर सङ्गे बहु आइला वैदिक ब्राह्मण।
विधिमते कैल तेँहो स्नानादि-तर्पण॥१५॥

अनुवाद

रामानन्द राय के साथ साथ वैदिक सिद्धान्तों का पालन करने वाले अनेक ब्राह्मण थे। रामानन्द राय ने वैदिक रीति से स्नान किया और

अपने पितरों को तर्पण दिया।

प्रभु ताँरे देखि' जानिल—एइ रामराय।
ताँहारे मिलिते प्रभुर मन उठि' धाय॥१६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि जो व्यक्ति नदी में स्नान करने आया है वह रामानन्द राय है। महाप्रभु उससे मिलने के लिए इतने इच्छुक हो उठे कि उनका मन उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा।

तथापि धैर्य धरि' प्रभु रहिला वसिया।
रामानन्द आइला अपूर्व संन्यासी देखिया॥१७॥

अनुवाद

यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु का मन उसके पीछे पीछे दौड़ रहा था किन्तु वे धैर्यपूर्वक बैठे रहे। तब रामानन्द राय इस अपूर्व संन्यासी को देख कर उससे मिलने आये।

सूर्यशत-सम कान्ति, अरुण वसन।
सुबलित प्रकाण्ड देह, कमल-लोचन॥१८॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने देखा कि श्री चैतन्य महाप्रभु सौ सूर्यों के समान कान्तिवान् हैं। उन्होंने केसरिया वस्त्र पहन रखा है। उनका शरीर विशाल तथा पुष्ट बना है और उनकी आँखें कमल की पंखड़ियों जैसी हैं।

देखिया ताँहार मने हैल चमत्कार।
आसिया करिल दण्डवत् नमस्कार॥१९॥

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने इस अद्भुत संन्यासी को देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वे उनके पास गये और भूमि पर दण्डवत् गिर कर उन्हें सादर नमस्कार किया।

उठि' प्रभु कहे,—उठ, कह 'कृष्ण' 'कृष्ण'।

तारे आलिङ्गिते प्रभुर हृदय सतृष्ण ॥२०॥

अनुवाद

महाप्रभु खड़े हो गये और उन्होंने रामानन्द राय से उठने तथा कृष्ण-नाम का कीर्तन करने के लिए कहा। श्री चैतन्य महाप्रभु उनका आलिंगन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

तथापि पूछिल,—तुम राय रामानन्द?
तेँहो कहे,—सेइ हङ दास शूद्र मन्द ॥२१॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने पूछा कि तुम रामानन्द हो? तो उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं आपका तुच्छ दास हूँ और शूद्र जाति का हूँ।"

तबे तारे कैल प्रभु दृढ आलिङ्गन।
प्रेमावेशे प्रभु-भृत्य दोँहे अचेतन ॥२२॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय का दृढ़ता से आलिंगन किया। इस तरह प्रभु तथा दास दोनों प्रेमावेश में अचेत-से हो गये।

स्वाभाविक प्रेम दोँहार उदय करिला।
दूँहा आलिङ्गिया दुँहे भूमिते पड़िला ॥२३॥

अनुवाद

दोनों में एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया, दोनों ने आलिंगन किया और दोनों भूमि पर गिर पड़े।

तात्पर्य

श्री रामानन्द राय विशाखा गोपी के अवतार थे। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् कृष्ण थे, अतएव विशाखा तथा कृष्ण में प्रेम का उदय होना स्वाभाविक था। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के सम्मिलित रूप हैं। विशाखा गोपी श्रीमती राधारानी की प्रधान सहायिका थी। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक-दूसरे का गाढ़ालिंगन किया क्योंकि उनमें स्वाभाविक प्रेम भी उमड़ आया था।

स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्ण्य।
दुँहार मुखेते शुनि' गद्‌गद 'कृष्ण' वर्ण॥२४॥

अनुवाद

एक-दूसरे का आलिंगन करते समय स्तम्भ, स्वेद, अश्रु, कम्प, पुलक, वैवर्ण्य—ये भावलक्षण प्रकट हो आये। उनके मुखों से रुक-रुककर "कृष्ण" शब्द निकल रहा था।

देखिया ब्राह्मणगणेर हैल चमत्कार।
वैदिक ब्राह्मण सब करेन विचार॥२५॥

अनुवाद

जब कट्टरपंथी कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मणों ने इस प्रेम-आवेश के प्राकट्य को देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। वे सारे ब्राह्मण इस प्रकार विचार करने लगे।

एइ त' संन्यासीर तेज देखि ब्रह्मसम।
शूद्रे आलिंगिया केने करेन क्रन्दन॥२६॥

अनुवाद

"हम देख रहे हैं कि इस संन्यासी में ब्रह्म जैसा तेज है, किन्तु यह एक शूद्र का आलिंगन करके चिल्ला रहा है?"

एइ महाराज—महापण्डित, गम्भीर।
संन्यासीर स्पर्शे मत्त हइला अस्थिर॥२७॥

अनुवाद

उन्होंने सोचा, "यह रामानन्द राय तो मद्रास का गवर्नर है, प्रकाण्ड पण्डित और गम्भीर व्यक्ति है, किन्तु इस संन्यासी का स्पर्श करके यह पागल व्यक्ति की तरह व्याकुल हो उठा है।"

एइमत विप्रगण भावे मने मन।
विजातीय लोक देखि, प्रभु कैल सम्वरण॥२८॥

अनुवाद

जब सारे ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु एवं रामानन्द राय के कार्यों के

विषय में इस प्रकार सोच रहे थे तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने इन ब्राह्मणों को देख लिया, अतएव उन्होंने अपने दिव्य भावों को रोका।

तात्पर्य

रामानन्द राय का श्री चैतन्य महाप्रभु से घनिष्ठ सम्बन्ध था, अतएव उन्हें *सजातीय* माना जा सकता है। किन्तु सारे ब्राह्मण वैदिक अनुष्ठानों के मानने वाले थे, अतएव वे श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ वह घनिष्ठता नहीं बना पा रहे थे। इसीलिए इन्हें *विजातीय लोक* कहा गया है। दूसरे शब्दों में, ये शुद्ध भक्त नहीं थे। कोई कितना ही विद्वान् ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह शुद्ध भक्त नहीं है तो वह *विजातीय* है—जाति-निकाला है या यों कह लें कि अभक्त है। यद्यपि श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय भावविभोर होकर आलिंगन कर रहे थे, किन्तु महाप्रभु ने बाहरी ब्राह्मणों को देख कर अपने भावों को रोका।

सुस्थ हञा दुँहे सेइ स्थानेते वसिला।
तबे हासि' महाप्रभु कहिते लागिला॥२९॥

अनुवाद

जब दोनों स्वस्थचित्त हो गये तो दोनों बैठ गये और श्री चैतन्य महाप्रभु ने हँस कर इस प्रकार कहना शुरू किया।

'सार्वभौम भट्टाचार्य कहिल तोमार गुणे।
तोमारे मिलिते मोरे करिल यतने॥३०॥

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने आपके सारे गुण मुझसे बतलाये हैं और उन्होंने मुझे आश्वस्त करने का काफी प्रयास किया है कि मैं आपसे मिलूँ।

तोमा मिलिबारे मोर एथा आगमन।
भाल हैल, अनायासे पाइलुं दरशन॥"३१॥

अनुवाद

"निस्सन्देह मैं यहाँ आपसे ही मिलने आया हूँ। अच्छा हुआ कि बिना प्रयास के आपसे भेंट हो गई।"

राय कहे,—सार्वभौम करे भृत्यज्ञान।
परोक्षेह मोर हिते हय सावधान॥३२॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "सार्वभौम भट्टाचार्य मुझे अपने सेवक की तरह मानते हैं। वे मेरी अनुपस्थिति में भी मेरा हित करने के लिए सावधान रहते हैं।

ताँर कृपाय पाइनु तोमार दरशन।
आजि सफल हैल मोर मनुष्यजन्म॥३३॥

अनुवाद

"उनकी कृपा से मुझे यहाँ पर आपका दर्शन हुआ। फलतः मैं मानता हूँ कि आज मेरा मनुष्य-जन्म सफल हो गया।

सार्वभौम तोमार कृपा,—तार एइ चिह्न।
अस्पृश्य स्पर्शिले हञा तार प्रेमाधीन॥३४॥

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आपने सार्वभौम भट्टाचार्य पर विशेष कृपा की है। अतएव आपने मेरा स्पर्श किया है, यद्यपि मैं अस्पृश्य (अछूत) हूँ। यह आपके प्रति उनके प्रेम के ही कारण है।

काहाँ तुमि—साक्षात् ईश्वर नारायण।
काहाँ मुञि—राजसेवी विषयी शूद्राधम॥३५॥

अनुवाद

"आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं और मैं भौतिकतावादी कार्यों में रुचि रखने वाला एक सरकारी नौकर हूँ। निस्सन्देह मैं शूद्रों में भी सबसे नीच हूँ।

मोर स्पर्श ना करिले घृणा, वेदभय।
मोर दर्शन तोमा वेदे निषेधय॥३६॥

अनुवाद

"क्या आपको इस वैदिक आदेश का भी भय नहीं है कि शूद्र का

साथ नहीं करना चाहिए? यद्यपि वेदों में शूद्रों की संगति करने का निषेध है, किन्तु आपको मेरा स्पर्श करने में कोई घृणा क्यों नहीं हुई?

तात्पर्य

भगवद्गीता में (९.३२) भगवान् कहते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

"हे पार्थ! जो मेरी शरण ग्रहण करते हैं वे भले ही निम्न जन्म के—स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र—क्यों न हों, परम धाम को पहुँच सकते हैं।"

पापयोनयः का अर्थ है "निम्न जाति की स्त्रियों से उत्पन्न।" वैश्य व्यापारी होते हैं और शूद्र कामकाज करने वाले चाकर या सेवक। वैदिक विभाजन के अनुसार वे नीच जाति में आते हैं। अधम (नीच) जीवन का अर्थ है कृष्णभावनामृतविहीन जीवन। ब्राह्मण को सर्वोच्च पद पर इसीलिए माना जाता है क्योंकि वह ब्रह्म को जानने वाला है। दूसरी जाति क्षत्रिय की है। वह भी ब्रह्म को जानती है, किन्तु ब्राह्मणों से कम। वैश्य तथा शूद्र ईश-चेतना को ठीक से नहीं समझते, किन्तु यदि भगवान् कृष्ण तथा गुरु की कृपा से वे कृष्णभावनामृत ग्रहण करते हैं तो वे निम्न जातियों में (*पापयोनयः*) नहीं रहते। स्पष्ट कहा गया है—*तेऽपि यान्ति परां गतिम्*।

जीवन का सर्वोच्च पद प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भगवद्धाम वापस नहीं जा सकता। भले ही कोई शूद्र, वैश्य या स्त्री क्यों न हो, यदि वह कृष्णभावनामृत द्वारा भगवान् को प्राप्त करता है तो उसे शूद्र, वैश्य या शूद्र से अधम नहीं माना जा सकता। भगवान् की सेवा में लगा व्यक्ति भले ही निम्न कुल में उत्पन्न क्यों न हो, उसे निम्न नहीं माना जा सकता। *पद्म-पुराण* में वर्जित किया गया है—*वीक्षते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्*। जो व्यक्ति भगवद्भक्त के जन्म पर भेदभाव करता है वह तुरन्त नरक जाता है। यद्यपि रामानन्द राय ने शूद्र कुल में जन्म लिया था, किन्तु उन्हें शूद्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि वे महाभागवत थे। वे दिव्य पद को प्राप्त थे। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया था। श्री रामानन्द राय ने आध्यात्मिक विनयशीलतावश ही अपने आपको शूद्र के रूप में प्रस्तुत किया था (*राजसेवी विषयी शूद्राधम*)। भले ही कोई सरकारी

नौकरी या अन्य किसी व्यापार में—भौतिकतावादी जीवन में—क्यों न लगा हो, उसे केवल कृष्णभावनामृत स्वीकार करना चाहिए। कृष्णभावनामृत अत्यन्त सरल विधि है। उसे केवल भगवन्नाम का जप करना होता है और पापकर्म का निषेध करने वाले नियमों का पालन करना होता है। इस तरह से वह अस्पृश्य, विषयी या शूद्र नहीं रह जाता। जो आध्यात्मिक जीवन में बढ़े-चढ़े हैं उन्हें अभक्तों की—अर्थात् सरकारी नौकरी वालों, विषय-भोग में लगे व्यक्तियों या अन्यों की—सेवा करने वालों की संगति नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोग *विषयी* अर्थात् भौतिकतावादी कहलाते हैं। कहा भी गया है—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
परां परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिनामथ योषितां च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

"जो व्यक्ति अविद्या के सागर को लाँघने के उद्देश्य से भक्ति में गम्भीरतापूर्वक लगा हुआ है और जिसने सारे भौतिक कार्यों को त्याग दिया है, उसे चाहिए कि वह कभी भी शूद्र, वैश्य या स्त्री को न देखे।" (श्रीचैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.२३)।

तोमार कृपाय तोमाय कराय निन्द्यकर्म।
साक्षात् ईश्वर तुमि, के जाने तोमार मर्म॥३७॥

अनुवाद

"आप साक्षात् भगवान् हैं, अतएव आपके प्रयोजन (रहस्य) को कोई नहीं समझ सकता। यह आपकी कृपा है कि आप मेरा स्पर्श कर रहे हैं, यद्यपि वेदों द्वारा इसकी अनुमति नहीं है।

तात्पर्य

किसी संन्यासी को विषयी तथा भौतिकतावादी लोगों को देखना पूरी तरह वर्जित है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपनी असीम अहैतुकी कृपा से जन्म तथा पद पर विचार किये बिना ही किसी पर भी कृपा कर सकते थे।

आमा निस्तारिते तोमार इहाँ आगमन।
परम-दयालु तुमि पतित-पावन॥३८॥

अनुवाद

"आप यहाँ मेरा उद्धार करने के लिए विशेष रूप से पधारे हैं। आप इतने दयालु हैं कि सभी पतितात्माओं को केवल आप ही उबार सकते हैं।

तात्पर्य

प्रार्थना में (४०) श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने लिखा है—

श्रीकृष्णचैतन्य-प्रभु दया कर मोरे।
तोमा विना के दयालु जगत् संसारे॥

पतितपावन-हेतु तव अवतार।
मो-सम पतित प्रभु ना पाइबे आर॥

"हे प्रभु! आप मुझ पर कृपालु हों। तीनों संसार में आपसे अधिक दयालु कौन हो सकता है? आप बद्ध पतित जीवों का उद्धार करने के लिए ही अवतार लेते हैं, किन्तु आपको विश्वास दिलाऊँ कि मुझसे बड़ा पतित आपको अन्य कोई नहीं मिलेगा।"

श्री चैतन्य महाप्रभु का विशिष्ट उद्देश्य पतितात्माओं का उद्धार करना है। इस कलियुग में शायद ही कोई ऐसा हो जो वैदिक दृष्टि से पतित न हो। रूप गोस्वामी को शिक्षा देते समय श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैदिक धर्म के इन तथाकथित अनुयायियों का वर्णन इस प्रकार किया है (मध्य १९.१४६)—

वेदनिष्ठमध्ये अर्धेक वेद 'मुखे' माने।
वेदनिषिद्ध पाप करे, धर्म नाहि गणे॥

अतएव वैदिक नियमों के तथाकथित अनुयायी वेदों को औपचारिक रूप से ही मानते हैं, क्योंकि वे उन नियमों के विपरीत कर्म करते हैं। यह इस कलियुग का लक्षण है। लोग अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि बतलाकर किसी एक धर्म का पालन करते हैं, किन्तु वास्तव में कोई भी व्यक्ति धर्मशास्त्रों में बतलाये गये नियमों का पालन नहीं करता। यही इस युग का रोग है। किन्तु दयालु चैतन्य महाप्रभु ने तो केवल हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने की सलाह दी है—*हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्*। महाप्रभु किसी भी व्यक्ति का उद्धार कर सकते हैं—चाहे वह शास्त्रों के आदेशानुसार पतित ही क्यों

न हो। यही श्री चैतन्य महाप्रभु की विशिष्ट कृपा है। इसीलिए वे *पतितपावन* कहलाते हैं।

महान्त-स्वभाव एइ तारिते पामर।
निज कार्य नाहि तबु य़ान तार घर॥३९॥

अनुवाद

"सारे सन्त पुरुषों की यह सामान्य रीति है कि वे पतितों का उद्धार करते हैं। इसीलिए वे लोगों के घरों में जाते हैं, यद्यपि वहाँ उनका कोई निजी कार्य नहीं रहता।

तात्पर्य

एक संन्यासी से उम्मीद की जाती है कि वह द्वार-द्वार जाकर भीख माँगे। वह इसलिए भीख नहीं माँगता कि भूखा है। उसका असली उद्देश्य तो हर घर के मालिक को कृष्णभावनामृत का उपदेश देकर जाग्रत करना रहता है। संन्यासी मात्र भिक्षा माँगने के लिए अपना उच्च पद छोड़ कर भिखारी नहीं बनता। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन में रह कर कोई व्यक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकता है, किन्तु स्वेच्छा से वह साधू-महात्मा का जीवन बिता सकता है। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी मन्त्री थे, किन्तु उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों का प्रचार करने के लिए स्वेच्छा से साधू-जीवन स्वीकार किया। उनके बारे में कहा जाता है—*त्यक्ता तूर्णं अशेषमण्डलपति श्रेणीं तुच्छवत् भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीनकण्ठाश्रितौ*। यद्यपि ये दोनों गोस्वामी राजसी ठाठ-बाट से रह रहे थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार पतितात्माओं का उद्धार करने के लिए वे संन्यासी बन गये। मनुष्य को इस पर भी विचार करना चाहिए कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत के उपदेश-कार्य में लगे हुए हैं वे श्री चैतन्य महाप्रभु के मार्गदर्शन में रहते हैं। वे वास्तव में भिखारी नहीं हैं, उनका असली कार्य तो पतितात्माओं का उद्धार करना है। इसीलिए चाहे किसी पुस्तक का ही प्रचार क्यों न हो, उसके लिए वे द्वार-द्वार जाते हैं, जिससे लोग उसे पढ़ कर प्रकाश प्राप्त कर सकें। पहले ब्रह्मचारी तथा संन्यासी द्वार-द्वार जाकर भीख माँगते थे। किन्तु आजकल, विशेषतया पश्चिमी देशों में, यदि कोई द्वार-द्वार भीख माँगे तो उसे पुलिस पकड़ लेती है। कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्यों को भीख माँगने से कोई सरोकार नहीं। वे तो कृष्णभावनामृत सम्बन्धी साहित्य का प्रचार करने के लिए कठोर श्रम

करते हैं जिससे लोग उसे पढ़ कर लाभान्वित हों। किन्तु यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को कोई चन्दा या सहायता देता है तो वह उसे अस्वीकार नहीं करता।

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।
निःश्रेयसाय भगवन्नान्यथा कल्पते क्वचित्॥४०॥

अनुवाद

"हे प्रभु! कभी-कभी बड़े से बड़े सन्त पुरुष भी गृहस्थों के घर जाते हैं, यद्यपि ये गृहस्थ सामान्यतया तुच्छ बुद्धि वाले होते हैं। जब कोई सन्त पुरुष उनके घर जाता है तो यही समझना चाहिए कि गृहस्थों को लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त उनका कोई अन्य मन्तव्य नहीं हो सकता।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१०.८.४) है।

आमार सङ्गे ब्राह्मणादि सहस्रेक जन।
तोमार दर्शने सबार द्रवीभूत मन॥४१॥

अनुवाद

"मेरे साथ ब्राह्मणों को मिलाकर लगभग एक हजार व्यक्ति हैं और उन सबों के हृदय आपके दर्शन से द्रवीभूत हो चुके हैं।

'कृष्ण' 'कृष्ण' नाम शुनि सबार वदने।
सबार अङ्ग—पुलकित, अश्रु-नयने॥४२॥

अनुवाद

"मैं हर व्यक्ति को कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हुए सुन रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का शरीर भाव से पुलकित है और हर एक की आँखों में आँसू हैं।

आकृत्ये-प्रकृत्ये तोमार ईश्वर-लक्षण।
जीवे ना सम्भवे एइ अप्राकृत गुण॥४३॥

अनुवाद

"मान्यवर! आप अपनी आकृति तथा अपने स्वभाव से भगवान् हैं।

सामान्य जीवों में ऐसा स्वभाव और आकृति का मिलना असम्भव है, क्योंकि उनमें ऐसे दिव्य गुण नहीं हो सकते।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु की आकृति असाधारण थी। निस्सन्देह उनका शरीर लम्बा-चौड़ा था। उनकी छाती तथा उनके बाहुओं की लम्बाई समान थी। इसे *न्यग्रोध परिमण्डल* कहते हैं। जहाँ तक उनके स्वभाव की बात है, वे हर एक के प्रति दयालु थे। भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा नहीं हो सकता। इसीलिए भगवान् का नाम कृष्ण अर्थात् सर्वआकर्षक है। *भगवद्गीता* में (१४.४) कहा गया है कि कृष्ण हर एक के प्रति दयालु हैं। वे सभी योनियों (*सर्वयोनिषु*) के बीजदाता आदि पिता (*बीजप्रदः पिता*) हैं। तो फिर वे किसी जीव के प्रति निष्ठुर कैसे हो सकते हैं? चाहे कोई मनुष्य हो, पशु या वृक्ष हो, भगवान् हर एक पर दयालु होते हैं। यही ईश्वर का गुण है। उन्होंने *भगवद्गीता* में भी (९.२९) कहा है—*समोऽहम् सर्वभूतेषु*—भगवान् हर एक के प्रति दयालु हैं। उनका उपदेश है—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*। यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं, अपितु सारे जीवों के लिए है। जो भी उनकी इस शर्त को मानता है, वह तुरन्त सारे पापों से मुक्त होकर भगवद्धाम को जाता है। जब चैतन्य महाप्रभु इस धराधाम में थे तो उन्होंने भी यही शर्त रखी थी।

प्रभु कहे,—तुम महाभागवतोत्तम।
तोमार दर्शने सबार द्रव हैल मन॥४४॥

अनुवाद

महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "महोदय! आप सर्वोच्च भक्तों के सिरताज हैं, अतएव आपके दर्शनों से हर एक का हृदय द्रवित हो उठा है।

तात्पर्य

सर्वोच्च भक्त हुए बिना कोई उपदेशक नहीं हो सकता। सामान्यतया उपदेशक सर्वोच्च भक्त होता है, किन्तु सामान्य जनता से मिलने के लिए उसे भक्तों तथा अभक्तों में अन्तर करना होता है। अन्यथा महान् भक्त को ऐसा अन्तर करने की आवश्यकता नहीं है। वह तो हर एक को सदैव भगवान् की

सेवा में लगा देखता है। जब कोई व्यक्ति उपदेश या प्रचार-कार्य में लग जाता है तो उसे मनुष्यों में अन्तर करना आना चाहिए और यह समझना चाहिए कि कुछ लोग भगवान् की भक्ति में नहीं लगे हैं। तब उपदेशक को ऐसे अबोध लोगों पर दया करनी होती है, जिन्हें यह ज्ञान नहीं है कि भगवान् की पूजा कैसे की जाय। *श्रीमद्भागवत* में (११.२.४५) सर्वोच्च भक्त के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मन।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

"महान् भक्त सभी जीवों को भगवान् के अंश रूप में देखता है। हर एक में कृष्ण हैं और कृष्ण भी हर एक में हैं। ऐसी दृष्टि उसी में हो सकती है जो भक्ति में बहुत बढ़ा-चढ़ा होता है।"

अन्येर कि कथा, आमि—'मायावादी संन्यासी'।
आमिह तोमार स्पर्शे कृष्ण-प्रेमे भासि॥४५॥

अनुवाद

"यद्यपि मैं मायावादी संन्यासी अर्थात् अभक्त हूँ, किन्तु आपका स्पर्श पाने से मैं भी कृष्ण-प्रेम के सागर में तैर रहा हूँ। अन्यों की तो कुछ कहना ही नहीं।

एइ जानि' कठिन मोर हृदय शोधिते।
सार्वभौम कहिलेन तोमारे मिलिते॥४६॥

अनुवाद

"यह जान कर कि मेरा हृदय अत्यन्त कठोर है, उसे ठीक करने के उद्देश्य से ही सार्वभौम ने मुझसे कहा है कि मैं आपसे मिलूँ।"

एइमत दुँहे स्तुति करे दुँहार गुण।
दुँहे दुँहार दरशने आनन्दित मन॥४७॥

अनुवाद

इस तरह दोनों एक-दूसरे के गुणों की प्रशंसा करते रहे, और दोनों ही एक-दूसरे को देख कर अत्यन्त प्रसन्न थे।

हेनकाले वैदिक एक वैष्णव ब्राह्मण।
दण्डवत् करि' कैल प्रभुर निमन्त्रण॥४८॥

अनुवाद

उसी समय एक वैष्णव ब्राह्मण, जो वैदिक नियमों का पालन करने वाला था, आया और उसने नमस्कार किया। महाप्रभु के समक्ष दण्डवत् गिरने के बाद उन्हें भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

निमन्त्रण मानिल ताँरे वैष्णव जानिया।
रामानन्दे कहे प्रभु ईषत् हासिया॥४९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को एक भक्त जान कर उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और कुछ-कुछ हँसते हुए रामानन्द से वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस वैष्णव ब्राह्मण का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कोई भले ही कट्टर ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु यदि वह भक्त नहीं है, अर्थात् श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुयायी नहीं है तो उसका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करना चाहिए। सम्प्रति, लोग इतने गिर चुके हैं कि वैष्णव नियमों के पालन की बात जानें दें, वे वैदिक नियमों तक का पालन नहीं करते। वे सर्वभक्षी हैं। अतएव कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के सदस्यों को निमन्त्रण स्वीकार करते समय काफी सावधान रहने की जरूरत है।

तोमार मुखे कृष्णकथा शुनिते हय मन।
पुनरपि पाइ ग्रेन तोमार दरशन॥५०॥

अनुवाद

"मैं आपसे भगवान् कृष्ण के विषय में सुनना चाहता हूँ। चूँकि मेरा मन इस ओर लगा है, अतएव मैं आपके दर्शन फिर से करना चाहता हूँ।"

राय कहे, आइला ग्रदि पामर शोधिते।
दर्शनमात्रे शुद्ध नहे मोर दुष्ट चित्ते॥५१॥

दिन पाँच-सात रहि' करह मार्जन।
तबे शुद्ध हय मोर एइ दुष्ट मन॥५२॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु! यद्यपि आप मुझ पतित का परिष्कार करने आये हैं, किन्तु मेरा मन आपको देखने से अभी शुद्ध नहीं हुआ है। कृपया ५-७ दिन रुकें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें। इतने दिनों में मेरा मन अवश्य ही शुद्ध हो जायेगा।"

य़द्यपि विच्छेद दोँहार सहन ना य़ाय।
तथापि दण्डवत् करि' चलिला रामराय॥५३॥

अनुवाद

यद्यपि वे दोनों एक-दूसरे के विछोह को सहन नहीं कर सकते थे, फिर भी रामानन्द राय ने महाप्रभु को नमस्कार किया और वहाँ से विदा ली।

प्रभु य़ाइ' सेइ विप्रघरे भिक्षा कैल।
दुइ जनार उत्कण्ठाय आसि' सन्ध्या हैल॥५४॥

अनुवाद

तब महाप्रभु उस ब्राह्मण के घर गये, जिसने उन्हें आमन्त्रित किया था और वहीं भोजन किया। जब संध्या हुई तो रामानन्द राय तथा महाप्रभु दोनों ही एक-दूसरे से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठे।

प्रभु स्नान-कृत्य करि' आछेन वसिया।
एकभृत्य-सङ्गे राय मिलिला आसिया॥५५॥

अनुवाद

शाम का स्नान करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु बैठ कर रामानन्द राय के आने की राह जोहने लगे। तभी रामानन्द राय एक नौकर के साथ उनसे मिलने के लिए आये।

तात्पर्य

वैष्णव, चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, उसे दिन में तीन बार—प्रातः, दोपहर और शाम को स्नान करना चाहिए। जो व्यक्ति अर्चाविग्रह की सेवा में

नियुक्त हो, उसे *पद्म-पुराण* के सिद्धान्तों का पालन करते हुए नियमित रूप से स्नान करना चाहिए। स्नान के बाद उसे अपने शरीर में द्वादश तिलक भी लगाना चाहिए।

नमस्कार कैल राय, प्रभु कैल आलिङ्गने।
दुइ जने कृष्ण-कथा कय रहःस्थाने॥५६॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने महाप्रभु के पास आकर नमस्कार किया और महाप्रभु ने उनका आलिंगन किया। फिर वे दोनों एकान्त स्थान में कृष्ण के विषय में विवेचना करने लगे।

तात्पर्य

रहः स्थाने अर्थात् "एकान्त स्थान में" अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कृष्ण तथा उनकी लीलाएँ—विशेषतया उनकी वृन्दावन-लीलाएँ तथा गोपियों के साथ आचरण—ये अत्यन्त गोपनीय हैं। इन पर सरेआम विवेचना नहीं की जा सकती, क्योंकि जिन्हें कृष्ण की लीलाओं की दिव्य प्रकृति के विषय में जानकारी नहीं है, वे सदैव यह सोच कर अपराध के भागी बनते हैं कि कृष्ण एक सामान्य मनुष्य हैं और गोपियाँ सामान्य युवतियाँ हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा गोपियों के आचरण के विषय में कभी भी विवेचना नहीं करते थे, अतएव कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के भक्तों के लिए यह हिदायत है कि वे कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं की विवेचना जनता के समक्ष न करें। सामान्य जनता में कृष्णभावनामृत जाग्रत करने की सबसे प्रभावशाली विधि संकीर्तन है। यदि हो सके तो *भगवद्गीता* में उपदिष्ट सिद्धान्तों की विवेचना की जाय। श्री चैतन्य महाप्रभु इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन करते थे और विद्वानों के साथ, यथा सार्वभौम भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के साथ, *भगवद्गीता* के दर्शन पर बहस करते थे। किन्तु वे सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी जैसे शिष्यों को भक्ति-सम्प्रदाय के नियमों की शिक्षा देते थे। वे रामानन्द राय के साथ कृष्ण तथा गोपियों के मध्य सर्वोच्च भक्तिमय आचरण की विवेचना करते थे। सामान्य जनों के लिए वे बड़ी तत्परता से संकीर्तन करते थे। हमें भी चाहिए कि कृष्णभावनामृत का सारे विश्व में प्रचार करते समय इन्हीं सिद्धान्तों को अपनायें।

प्रभु कहे—"पड़ श्लोक साध्येर निर्णय।"
राय कहे,—"स्वधर्माचरणे विष्णु भक्ति हय।।"५७।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को आदेश दिया कि वे जीवन के चरम लक्ष्य से सम्बन्धित शास्त्रों से एक श्लोक सुनायें। इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया कि यदि कोई अपने सामाजिक पद के लिए नियत कर्मों को सम्पन्न करता है तो वह अपने मूल कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।

तात्पर्य

वेदार्थ-संग्रह में श्री रामानुजाचार्य ने इस सम्बन्ध में बतलाया है कि जीव को स्वभावतः भक्ति अत्यन्त प्रिय है। निस्सन्देह यही जीवन-लक्ष्य है। यह भक्ति परम ज्ञान या कृष्णभावनामृत है और यह समस्त भौतिक कर्म से विरक्ति उत्पन्न करने वाली है। दिव्य अवस्था में जीव भगवान् की सेवा की सर्वोच्चता को स्वीकार करता है। भक्तगण केवल भक्ति से भगवान् को प्राप्त करते हैं। ऐसा ज्ञान होने पर मनुष्य द्वारा अपने वृत्तिपरक कार्य में लगे रहने को *भक्तियोग* कहते हैं। भक्तियोग सम्पन्न करने पर मनुष्य शुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त कर सकता है।

श्री व्यासदेव के पिता महामुनि पराशर ने विशेष रूप से उल्लेख किया है कि वर्णाश्रम धर्म के अनुसार कर्म करते हुए मानव समाज में भगवद्भक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। भगवान् ने वर्णाश्रम धर्म की स्थापना इसी उद्देश्य से की है कि मनुष्यों को भगवद्धाम वापस जाने का अवसर मिल सके। भगवान् श्रीकृष्ण, जिन्हें *भगवद्गीता* में पुरुषोत्तम कहा गया है, जब स्वयं अवतरित हुए तो यह घोषित किया कि वर्णाश्रम धर्म की स्थापना मैंने की है। *भगवद्गीता* में (४.१३) आया है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्य कर्तारमव्ययम्॥

भगवद्गीता में अन्यत्र (१८.४५-४६) भगवान् कहते हैं—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नराः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

मानव समाज को चार वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—में विभाजित किया जाना चाहिए और हर एक को चाहिए कि अपने वृत्तिपरक कार्य (धर्म) में सदैव रत रहे। भगवान् कहते हैं कि जो लोग अपने-अपने कार्यें में लगे हुए हैं, वे अपना कार्य सम्पन्न करने मात्र से भगवान् की भक्ति करते हैं। वास्तव में वर्गविहीन समाज का आधुनिक आदर्श कृष्णभावनामृत के द्वारा ही लाया जा सकता है। सारे लोग अपना-अपना कार्य करें और जो लाभ हो उसे भगवान् की सेवा में अर्पित कर दें। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को जीवन की पूर्णता अपना वृत्तिपरक कर्तव्य निबाहने तथा फलों को भगवान् की सेवा में लगाने से ही प्राप्त हो सकती है। इस विधि की पुष्टि बोधायन, तंक, द्रमिड, गुहदेव, कपर्दि तथा भारुचि जैसे महापुरुषों द्वारा हुई है। वेदान्त सूत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत्तत्तोषकारणम्॥५८॥

अनुवाद

"वर्णाश्रम प्रणाली में नियत कर्तव्यों को उचित रीति से सम्पन्न करके भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है। भगवान् को तुष्ट करने की कोई अन्य विधि है ही नहीं। मनुष्य को चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के संस्थान में स्थित होना चाहिए।"

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु पुराण* का (३.८.९) है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में कहा है "तात्पर्य यह है कि भगवान् को तुष्ट करने से ही जीवन की पूर्णता का अनुभव किया जा सकता है।" *श्रीमद्भागवत* में भी (१.२.१३) इसकी पुष्टि हुई है—

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रम विभागशः।
स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

"हे द्विज-श्रेष्ठ! मनुष्य वर्ण (जाति) तथा आश्रम के अनुसार नियत कर्म (*धर्म*) पूरा करके जो सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करता है, वह हरि को तुष्ट करता है।"

प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही अपने वृत्तिपरक कार्य सम्पन्न करने चाहिए। उसे अपनी क्षमताओं के अनुसार ही वर्णाश्रम संस्थान में पद स्वीकार करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र विभाग समाज के भीतर के प्राकृतिक विभाग हैं। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार हर व्यक्ति का अपना-अपना नियत कर्तव्य होता है। जो लोग अपने कर्तव्य पूरा करते हैं वे शान्तिपूर्वक रहते हैं और भौतिक परिस्थितियों से विचलित नहीं होते। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये चार *आश्रम* कहलाते हैं। यदि कोई व्यक्ति वर्ण तथा आश्रम दोनों के नियत कर्तव्यों को पूरा करता है तो उससे भगवान् तुष्ट रहते हैं। यदि वह अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करता है तो वह अतिचारी बन जाता है और नरक को जाता है। वास्तव में विभिन्न लोग विभिन्न तरीकों से अपने अपने कामों में लगे रहते हैं, अतएव कर्म के अनुसार विभाग बनने चाहिए। सिद्धि प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चाहिए कि भक्ति को अपने जीवन का केन्द्रबिन्दु मान ले। इस तरह वह कर्म, संगति तथा शिक्षा द्वारा अपनी प्राकृतिक अन्तश्चेतना को जाग्रत कर सकता है। वर्णाश्रम धर्म को जन्म से नहीं अपितु योग्यता के अनुसार स्वीकार करना चाहिए। इस प्रणाली को चालू किये बिना मानव-कार्य क्रमबद्ध रूप से सम्पन्न नहीं किये जा सकते।

ब्राह्मण लोग ही वे बुद्धिजीवी हैं जो भगवान् को समझ सकते हैं। वे सदैव ज्ञान के अनुशीलन में लगे रहते हैं—चाहे वे भारत के हों या भारत से बाहर के। जो लोग शूरवीर होते हैं और अन्यों पर शासन करना चाहते हैं वे *क्षत्रिय* कहलाते हैं। जो लोग खेती करके अन्न उपजाना, गौवों तथा अन्य पशुओं की रक्षा करना एवं व्यापार में लगे रहना चाहते हैं, वे *वैश्य* या व्यापारी कहलाते हैं। जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होने के लिए पर्याप्त बुद्धिमान नहीं होते, वे स्वामी की सेवा करने के लिए आवश्यक होते हैं और *शूद्र* कहलाते हैं। इस तरह हर व्यक्ति भगवान् तथा कृष्ण-चेतना

की सेवा में लग सकता है। यदि समाज ऐसे प्राकृतिक विभाजनों के अनुसार कार्य नहीं करता, तो सामाजिक व्यवस्था में गिरावट आती है। निष्कर्ष यही है कि समाज को *वर्णाश्रम धर्म* की वैज्ञानिक विधि अपनानी चाहिए।

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे, "कृष्ण कर्मार्पण—सर्वसाध्यसार॥"५९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह तो बाह्य है। आप मुझे कोई दूसरा साधन बतलायें।" इस पर रामानन्द ने उत्तर दिया, "सारी सिद्धि का सार यह है कि अपने कर्मों के फल कृष्ण को अर्पित किये जायँ।"

यं करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तं कुरुष्व मदर्पणम्॥६०॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने सुनाया, "हे कुन्ती-पुत्र! तुम जो कुछ करो, जो भी खाओ, जो भी यज्ञ में डालो और जो भी दान दो तथा तुम जितनी भी तपस्याएँ करो, उन सबों को मुझे अर्पण करो।"

तात्पर्य

महाप्रभु यह कह चुके हैं कि इस कलियुग में वर्णाश्रम धर्म का ठीक से पालन नहीं हो पाता, इसलिए उन्होंने रामानन्द राय को आदेश दिया कि वे अपनी बात को आगे बढ़ायें। रामानन्द राय ने जवाब में *भगवद्गीता* का यह श्लोक (९.२७) पढ़ा कि वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह करते हुए मनुष्य अपने कर्मफल प्रेमपूर्वक भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दे। स्वाभाविक है कि श्री चैतन्य महाप्रभु रामानन्द राय से भक्ति सम्पन्न करने की बात पूछ रहे थे। रामानन्द राय ने सर्वप्रथम वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों को भौतिक लोगों के दृष्टिकोण से बतलाया। किन्तु यह विचार दिव्य नहीं है। जब तक मनुष्य इस भौतिक जगत में रहता है, उसे चाहिए कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करे, किन्तु भक्ति तो दिव्य होती है। वर्णाश्रम धर्म की पद्धति प्रकृति के तीन गुणों को बताने वाली है, किन्तु भक्ति तो सर्वोच्च पद पर स्थित होती है। श्री चैतन्य महाप्रभु का सम्बन्ध वैकुण्ठ से था और संकीर्तन-आन्दोलन को फैलाने की उनकी विधियाँ भी वैकुण्ठ से लाई गई थीं। श्रील नरोत्तम

दास ठाकुर का गीत है—*गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम-संकीर्तन, रति न जन्मिल केने ताय*। इसका अर्थ है कि संकीर्तन-आन्दोलन का इस भौतिक जगत से कोई सरोकार नहीं है। यह वैकुण्ठ अर्थात् गोलोक वृन्दावन से लाया जाता है। नरोत्तम दास ठाकुर को शोच है कि संसारी लोग संकीर्तन-आन्दोलन को ठीक से ग्रहण नहीं करते। भक्ति तथा संकीर्तन-आन्दोलन की स्थिति पर विचार करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने वर्णाश्रम-धर्म-प्रणाली को भौतिक बतलाया, यद्यपि इसका उद्देश्य आध्यात्मिक पद को प्राप्त करना है। किन्तु संकीर्तन-आन्दोलन तो तुरन्त ही आध्यात्मिक पद को प्राप्त कराने वाला है। फलतः वर्णाश्रम धर्म को बाह्य कहा गया है और श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से विषय की गहराई में जाकर आध्यात्मिक पद को उद्घाटित करने के लिए कहा।

कभी-कभी भौतिकतावादी लोग विष्णु को भौतिक कल्पना मान बैठते हैं। निर्विशेषवादी सोचते हैं कि भगवान् विष्णु से भी बढ़ कर निर्विशेष ब्रह्म है। निर्विशेषवादी भगवान् विष्णु की पूजा को गलत ढंग से लेते हैं। वे भगवान् विष्णु की पूजा उनके शरीर में लीन होने के लिए करते हैं। कोई *विष्णु-आराधन* को गलत न समझे, इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे अपनी बात को और स्पष्ट करें। तब रामानन्द राय ने *भगवद्गीता* का श्लोक उद्धृत करते हुए कहा कि अपने वृत्तिपरक कार्य के फलों को भगवान् विष्णु या कृष्ण को अर्पित किया जा सकता है। *भगवद्गीता* में (१.२.८) भी कहा गया है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

"यदि कोई व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के वृत्तिपरक कार्य सम्पन्न करता है, किन्तु अपने सुप्त कृष्णभावनामृत का अनुशीलन नहीं करता तो उसके सारे कार्य व्यर्थ जाते हैं। उसकी वृत्ति (पेशा) व्यर्थ का श्रम बन कर रह जाती है।"

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"स्वधर्म-त्याग,—एइ साध्यसार॥"६१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह भी बाह्य है। इस विषय पर आगे

कहो।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "वर्णाश्रम में अपने वृत्तिपरक कार्यों को त्यागना ही सिद्धि का सार है।"

तात्पर्य

ब्राह्मण अपने परिवार को त्याग कर संन्यास ग्रहण कर सकता है। क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपने अपने परिवार त्याग कर कृष्णभावनामृत अंगीकार कर सकते हैं। ऐसा त्याग *कर्म-त्याग* कहलाता है। ऐसे त्याग से भगवान् तुष्ट होते हैं। किन्तु कृष्ण के लिए स्वकर्मों का ऐसा परित्याग कलुषरहित नहीं होता, अतएव भौतिक स्तर पर ही होता है। ऐसे कर्म भौतिक जगत के भीतर ही माने जाते हैं क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार ये भौतिक जगत के सूचक हैं, अतएव बाह्य हैं। इसे संशोधित करने के लिए रामानन्द राय ने संस्तुति की कि भौतिक कर्मों को लाँघने के लिए संन्यास ग्रहण किया जाय। इसका समर्थन *श्रीमद्भागवत* के निम्नलिखित श्लोक से (११.११.३२) होता है—

आज्ञायैवं गुणान् दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत् स च सत्तमः ॥६२॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "शास्त्रों में वृत्तिपरक कर्त्तव्यों का वर्णन हुआ है। उनका विश्लेषण करने पर उनके गुण-दोषों का पता चल सकता है और तब उनका परित्याग करके भगवान् की सेवा की जा सकती है। ऐसा व्यक्ति उच्च कोटि का माना जाता है।"

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६३॥

अनुवाद

"जैसा कि शास्त्र (भगवद्गीता १८.६६) में कहा गया है 'यदि तुम सारे धार्मिक तथा वृत्तिपरक कर्त्तव्यों को त्याग कर मुझ भगवान् की शरण में आ जाओ तो मैं तुम्हें तुम्हारे जीवन के सारे पापकर्मों से छुटकारा दिला दूँगा। तुम चिन्ता मत करो।' "

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील रघुनाथ दास अपनी पुस्तक *मनःशिक्षा* में (२) उपदेश देते हैं—

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु।
व्रजे राधाकृष्णप्रचुरपरिचार्यामिह तनु॥

इस तरह उन्होंने आदेश दिया है कि हमें वेदों में बतलाये गये धार्मिक या अधार्मिक कृत्यों को करने की आवश्यकता नहीं है। सबसे उत्तम मार्ग यही है कि भगवान् कृष्ण तथा राधारानी की सेवा में तत्पर रहा जाय। इस जीवन की यही पूर्णता है। इसी प्रकार *श्रीमद्भागवत* में (४.२९.४६) नारद मुनि ने कहा है—

यदा यस्यानुगृह्णाति भगवान् आत्मभावितः।
सजहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥

"जब कोई वास्तव में भगवान् की प्रेमाभक्ति करने लगता है तो वह भौतिक जगत का तथा वैदिक साहित्य द्वारा नियत किये गये सारे कार्यों का परित्याग कर देता है। इस तरह वह भगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है।"

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह आर।"
राय कहे,—"ज्ञानमिश्रा भक्ति—साध्यसार॥"६४॥

अनुवाद

रामानन्द राय को इस तरह बातें करते सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आगे कुछ और कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "ज्ञानमिश्रित भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

अवैदिक ज्ञान से मिश्रित भक्ति निश्चय ही शुद्ध भक्ति नहीं है। अतएव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने *अनुभाष्य* में उपदेश दिया है कि कर्मकाण्ड द्वारा आत्म-साक्षात्कार होना मुक्ति तथा बद्धजीवन की निरपेक्ष अवस्था है। इस भौतिक जगत से परे विरजा नदी में ही प्रकृति के तीनों गुण दमित होते हैं। किन्तु आध्यात्मिक जगत में, जिसे वैकुण्ठ-लोक कहते हैं, आध्यात्मिक

शक्ति प्रकट होती है जहाँ कोई चिन्ता नहीं रहती। भौतिक जगत *ब्रह्माण्ड* कहलाता है। यह ब्रह्माण्ड बहिरंगा शक्ति से उत्पन्न है। भौतिक सृष्टि तथा आध्यात्मिक सृष्टि के बीच में विरजा नँदी तथा ब्रह्मलोक स्थित हैं। विरजा नदी तथा ब्रह्मलोक उन जीवों के आश्रय हैं जो भौतिक जीवन से ऊब कर निर्विशेष जीवन की ओर उन्मुख होते हैं। चूँकि ये स्थान विष्णु-लोक में नहीं हैं, अतएव श्री चैतन्य महाप्रभु इन्हें बाह्य बतलाते हैं। ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी में रह कर कोई वैकुण्ठ-लोक की कल्पना नहीं कर सकता। पर ब्रह्मलोक तथा विरजा नदी भी काफी तपस्या के बाद प्राप्त हो पाते हैं। किन्तु इन लोकों में भगवान् तथा उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति की कोई जानकारी नहीं हो पाती। ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान के बिना भौतिक परिस्थितियों से विरक्ति का होना इस भौतिक जगत का दूसरा पक्ष है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह सब बाह्य है। जब महाप्रभु ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो रामानन्द राय ने यह प्रस्ताव रखा कि दर्शन तथा तर्क पर आश्रित भक्ति अधिक प्रगत अवस्था में होती है। इसलिए उन्होंने *भगवद्गीता* का निम्नलिखित श्लोक (१८.५४) उद्धृत किया।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥६५॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "भगवद्गीता के अनुसार—जो इस प्रकार दिव्य पद को प्राप्त है, उसे ब्रह्म की अनुभूति तुरन्त हो जाती है और वह पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोच करता है, न किसी वस्तु की इच्छा रखता है। वह सभी जीवों के प्रति समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी पूर्ण भक्ति प्राप्त करता है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति एकेश्वरवाद को स्वीकार करता है, अर्थात् जो आध्यात्मिक जीवन के विषय में दार्शनिक विवेचनाओं में ही जुटा रहता है, वह प्रसन्न होता है और समस्त भौतिक शोच तथा लालसाओं से छुटकारा पा लेता है। इस अवस्था में वह समदर्शी हो जाता है। वह सारे जीवों को आध्यात्मिक रूप में देखता है। इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने पर वह शुद्ध भक्ति प्राप्त करता है। निष्कर्ष यह निकला कि कर्मकाण्ड

से मिश्रित भक्ति ज्ञानमिश्रित भक्ति से निकृष्ट है।

प्रभु कहे,—"एहो बाह्य, आगे कह राय।"
राय कहे,—"ज्ञानशून्याभक्ति—साध्यसार॥"६६॥

अनुवाद

यह सुन कर महाप्रभु ने पहले की तरह बाह्य भक्ति मानते हुए इसे भी स्वीकार कर दिया। और रामानन्द राय से पुनः आगे बोलने के लिए कहा। इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया—"ज्ञान से रहित शुद्ध भक्ति ही पूर्णता का सार है।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने *अनुभाष्य* नामक अपनी टीका में कहा है कि यह ज्ञानमिश्रित अवस्था भी बाह्य है और वैकुण्ठ-लोक में की जाने वाली शुद्ध भक्ति के क्षेत्र में नहीं आती। जब कोई भौतिक विचार उठता है, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, तो ऐसी सेवा आध्यात्मिक नहीं रह पाती। भले ही वह भौतिक कल्मष से रहित क्यों न हो; किन्तु मानसिक चिन्तन होने के कारण भक्ति शुद्ध नहीं रह पाती। जो जीव नितान्त शुद्ध रहना चाहता है, उसे इस भौतिक विचार से ऊपर उठना चाहिए। भौतिक जगत का निषेध आध्यात्मिक जगत का सूचक नहीं है। भौतिक जगत का निषेध करने पर भी हो सकता है आध्यात्मिक जगत अर्थात् *सच्चिदानन्द* प्रगट न हों। वास्तव में जब तक मनुष्य भगवान् के साथ अपने नित्य सम्बन्ध को नहीं समझ लेता, तब तक उसे आध्यात्मिक जीवन प्राप्त नहीं हो पाता। आध्यात्मिक जीवन का अर्थ ही है भौतिक जीवन से विरक्त होकर भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगना। इसीलिए महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा कि वे ज्ञानमिश्रित भक्ति से भी आगे की बात बतायें। शुद्ध भक्त भगवान् के चरणकमलों में पूर्णतया शरणागत होता है और वह अपने प्रेम के बल पर ही अजेय कृष्ण को जीत लेता है। कृष्ण सदैव अजेय हैं। उन्हें कोई नहीं जीत सकता। पूर्ण शरणागति के द्वारा ही शुद्ध भक्ति की अवस्था प्राप्त की जा सकती है। इसकी सम्पुष्टि श्रीमद्भागवत के श्लोक (१०.१४.३) से होती है जिसमें ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की शक्ति से पराजित होकर उनकी शरण ग्रहण कर ली।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भावदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रि लोक्याम्।।६७।।

अनुवाद

रामानन्द ने कहा, "ब्रह्माजी ने कहा, 'हे प्रभु! जिन भक्तों ने परम सत्य के बारे में निर्विशेष भाव को निकाल फेंका है और जिन्होंने दार्शनिक सत्यों के बारे में विचार-विमर्श करना त्याग दिया है, उन्हें चाहिए कि वे स्वरूपसिद्ध भक्तों से आपके नाम, रूप, लीलाओं तथा गुणों के बारे में श्रवण करें। उन्हें भक्ति के नियमों का पालन करना चाहिए और अवैध यौनाचार, जुआ खेलना, नशा करना तथा पशु-हत्या से दूर रहना चाहिए। मन, कर्म तथा वचन से शरणागत होकर वे किसी भी वर्ण या आश्रम में रह सकते हैं। आप अजेय होते हुए भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा जीते जाते हैं।' "

प्रभु कहे,—"एहो हय, आगे कह आर।"
राय कहे,—"प्रेमभक्ति—सर्वसाध्यसार।।"६८।।

अनुवाद

इस पर महाप्रभु ने कहा, "यह ठीक है, फिर भी कुछ आगे कहो।" तब रामानन्द राय ने कहा, "समस्त पूर्णता का सार भगवान् की प्रेमाभक्ति है।"

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में लिखते हैं कि रामानन्द की बात सुनने के बाद महाप्रभु ने कहा—*एहो हय, आगे कह आर*। इसका अर्थ है कि भक्ति में यही विधि मान्य है, किन्तु इसमें इससे भी अधिक छिपा रहता है। इसीलिए महाप्रभु ने अनुरोध किया कि वे यह बतायें कि इसके आगे क्या है। समस्त वर्णों तथा आश्रमों के कर्तव्यों का पालन करना ही अपने समस्त कर्मफलों को भगवान् को अर्पित करने के तुल्य नहीं है। जब कोई व्यक्ति सारे सकाम कर्म छोड़ कर भगवान् का शरणागत बनता है तो वह *स्वधर्म-त्याग* करता है, जिसमें वह अपने वर्ण

को छोड़ कर संन्यास ग्रहण करता है। यह निश्चित रूप से श्रेष्ठ है। किन्तु संन्यास ग्रहण करने से भी उत्तम है ज्ञानमिश्रित भक्ति का अनुशीलन। तो भी ये सारे कर्म आध्यात्मिक जगत के कार्यों से बाह्य हैं। इनमें शुद्ध भक्ति का लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। न तो कोरे ज्ञान से शुद्ध भक्ति प्राप्त हो सकती है, न केवल सत्संगति से सिद्धि प्राप्त हो सकती है। आत्म-साक्षात्कार द्वारा भक्ति सर्वथा भिन्न विषय है। इसमें सकाम कर्म का लेशमात्र नहीं रहता, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मफल भगवान् को अर्पित कर देता है, वह अपने नियत कर्तव्यों का परित्याग कर देता है और संन्यास आश्रम में चला जाता है। ऐसी भक्ति ज्ञानमिश्रित भक्ति से श्रेष्ठ है। इसकी सम्पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में (१.१.११) की गई है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

"मनुष्य को चाहिए कि सकाम कर्मों या दार्शनिक चिन्तन के द्वारा किसी लाभ की इच्छा किये बिना भगवान् की प्रेमाभक्ति करे। यही शुद्ध भक्ति है।"

फिर भी कभी-कभी नौसिखिया अवस्था में भक्तिमय कार्यकलाप अशुद्ध लग सकते हैं, किन्तु प्रौढ़ अवस्था में ये पूर्णतया शुद्ध होते हैं। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अन्तिम वाक्य को सुन कर रामानन्द राय ने उत्तर दिया—*प्रेमभक्ति-सर्वसाध्यसार*। श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक को (*ज्ञाने प्रयासम्*) पूर्णता का मूल सिद्धान्त स्वीकार किया। मनुष्य को और आगे बढ़ने के लिए इस सिद्धान्त का अभ्यास करना होता है। जब और आगे प्रगति हो जाती है तो मनुष्य भगवान् की प्रेमाभक्ति को प्राप्त होता है। यह पहली अवस्था *साधन भक्ति* कहलाती है। साधन भक्ति का परिणाम है *प्रेमा भक्ति*। नौसिखिया अवस्था में *साधन भक्ति* के अन्तर्गत श्रद्धा, भक्तों की संगति तथा भक्ति करना आते हैं। इस तरह मनुष्य अवांछित वस्तुओं से मुक्त हो जाता है। तब वह भक्ति में स्थिर हो जाता है और उसमें भक्ति-कार्य करने की और इच्छा होती है। इस तरह वह भगवान् तथा उनकी भक्ति में आसक्त हो जाता है।

नानोपचार-कृतपूजनमार्तबन्धोः
प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात्।
यावत् क्षुदस्ति जठरे जरठा पिपासा
तावत् सुखाय भवतो ननु भक्ष्य-पेये॥६९॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "जब तक भूख और प्यास है, तब तक खाने-पीने से मनुष्य अत्यन्त सुखी अनुभव करता है। जब शुद्ध प्रेम से भगवान् की पूजा की जाती है तो भक्त के हृदय में दिव्य आनन्द जाग्रत होता है।"

कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥७०॥

अनुवाद

"सैकड़ों-हजारों जन्मों के पुण्यकर्मों से भी कृष्णभावनाभावित शुद्ध भक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। इसे तो केवल एक मूल्य पर—उसे प्राप्त करने की उत्कृट लालसा से ही—प्राप्त किया जा सकता है। यदि यह कहीं उपलब्ध हो सके, तो मनुष्य को चाहिए कि तुरन्त ही उसे खरीद ले।"

तात्पर्य

श्लोक ६९ तथा ७० श्रील रूप गोस्वामी कृत *पद्यावली* से (१३,१४) उद्धृत हैं। श्लोक ६९ में श्रद्धायुत भक्ति का और श्लोक ७० में उत्कट लालसा से की जाने वाली भक्ति का उल्लेख है। श्रद्धा भक्ति विधि-विधानों के अनुसार सम्पन्न की जाने वाली (साधन) भक्ति है, जबकि दूसरी भक्ति किसी बाह्य प्रयास के बिना भगवान् के प्रति स्वतः स्फूर्त (रागानुराग प्रेम) भक्ति है। इसके आगे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की वार्ता का विषय भगवान् की प्रेम-भक्ति होगा। शास्त्रों के आदेशानुसार विधि-विधान आवश्यक हैं, क्योंकि मनुष्य की मूल सुप्त कृष्ण-चेतना स्वतः जाग्रत नहीं होती। स्वतः स्फूर्त क्रिया का उदाहरण है समुद्र में नदियों का गिरना। जिस तरह जल

के प्रवाह को कोई रोक नहीं पाता उसी तरह जब मनुष्य की सुप्त कृष्ण-चेतना जाग्रत हो जाती है तो यह निर्बाध रूप से कृष्ण के चरणकमलों से जा मिलती है। अब रामानन्द राय इसके आगे जो भी कहेंगे, वह स्वतः स्फूर्त प्रेम पर आधृत होने के कारण महाप्रभु को स्वीकार्य होगा और महाप्रभु उनसे अधिकाधिक प्रश्न करते जायेंगे।

प्रभु कहे,—"एहो हय, आगे कह आर।"
राय कहे,—"दास्य-प्रेम—सर्वसाध्यसार॥"७१॥

अनुवाद

स्वतः स्फूर्त प्रेम की बात सुन कर महाप्रभु ने कहा, "यह ठीक है, किन्तु यदि आप और अधिक जानते हों तो कृपया मुझे बतलायें।" इसके उत्तर में रामानन्द राय ने कहा, "दास्य प्रेम—स्वामी तथा सेवक में आदान-प्रदान होने वाला प्रेम—ही सर्वोच्च सिद्धि है।"

तात्पर्य

भगवान् की प्रेम-भक्ति सेवक तथा सेव्य के बीच घनिष्ठ आसक्ति से युक्त भक्ति है। यह घनिष्ठता *ममता* कहलाती है। सेवक तथा सेव्य में अभिन्नता का भाव होता है। यह *ममता* सेवक (दास) द्वारा सेव्य (स्वामी) के प्रति की गई सेवा अर्थात् दास्य प्रेम से शुरू होती है। जब तक ऐसा सम्बन्ध नहीं होता, तब तक भगवान् तथा उसके भक्त के मध्य प्रेम स्थिर नहीं हो पाता। जब भक्त यह अनुभव करता है कि "भगवान् मेरे स्वामी हैं", और वह उनकी सेवा करता है तो कृष्णभावनामृत का उदय होता है। यह स्थिर चेतना भगवत्प्रेम की मात्र जानकारी से उच्च स्तर पर होती है।

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥७२॥

अनुवाद

"जिन भगवान् के चरणकमल तीर्थस्थानों को उत्पन्न करते हैं, उनके पवित्र नाम को सुनने से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है। अतएव जो उनके दास बन चुके हैं, उन्हें अब आगे पाने के लिए क्या बचा हुआ है?"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* का (९.५.१६) है, जो दुर्वासा मुनि की स्वीकारोक्ति है। दुर्वासा मुनि, जो कि जाति के ब्राह्मण और महान् योगी थे, महाराज अम्बरीष से ईर्ष्या रखते थे। जब उन्होंने अपनी योगशक्ति से महाराज अम्बरीष को दण्ड देना चाहा तो भगवान् के सुदर्शन चक्र ने उनका पीछा किया। जब मामला शान्त हो गया तो उन्होंने कहा, "जब कोई व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम को सुनता है तो वह तुरन्त निर्मल हो जाता है। भगवान् भक्तों के स्वामी हैं और उनके शरणागत भक्तगण उनके ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।"

भवन्तमेवानुचरन्निरन्तरः
प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः ।
कदाहमेकान्तिकनित्यकिङ्करः
प्रहर्षयिष्यामि स-नाथ-जीवितम् ॥७३॥

अनुवाद

"आपकी निरन्तर सेवा करते रहने से मनुष्य सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्णतया शान्त बन जाता है। वह दिन कब आयेगा जब आप हमें नित्य दास बना लेंगे और हम आप जैसा पूर्ण स्वामी पाकर परम हर्ष का अनुभव करेंगे।"

तात्पर्य

यह कथन परम सन्त भक्त यामुनाचार्य का है जो *स्तोत्ररत्न* (४३) से लिया गया है।

प्रभु कहे—"एहो हय, किछु आगे आर।"
राय कहे,—"सख्य-प्रेम,—सर्वसाध्यसार॥"७४॥

अनुवाद

रामानन्द राय से यह सुन कर महाप्रभु ने पुनः प्रार्थना की कि वे आगे बढ़ें। रामानन्द राय ने उत्तर में कहा, "सख्य भाव से की गई कृष्ण की प्रेमाभक्ति सर्वोच्च सिद्धि है।"

तात्पर्य

जब तक सेव्य-सेवक सम्बन्ध में भगवान् की प्रेम-भक्ति की जाती है, तब तक कुछ भय रहता है, क्योंकि स्वार्थ की प्रगाढ़ता के बावजूद दास को स्वामी का भय बना रहता है। इस अवस्था में दास सदैव स्वामी से भयभीत रहता है और उसका आदर करता है। किन्तु जब भक्त आगे बढ़ चुकता है तो फिर किसी बात का भय नहीं रह जाता। वह अपने को भगवान् के समान पद पर मानता है। ऐसे अवसर पर भक्त को विश्वास हो जाता है कि भगवान् कृष्ण मित्र (सखा) हैं और यदि भक्त उनके समान पद पर रहता है तो वे असन्तुष्ट नहीं होंगे। यह समझ *विश्रम्भ* कहलाती है—इसमें सम्मान-प्रवृत्ति का अभाव रहता है। इस प्रवृत्ति को अपनाने पर *सख्य प्रेम* उपजता है। इस अवस्था में भगवान् तथा भक्त के बीच समानता की चेतना उत्पन्न होती है।

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण सार्धं विजह्रुः कृतपुन्यपुञ्जाः॥७५॥

अनुवाद

"जो लोग भगवान् के ब्रह्मतेज को अच्छा बताते हुए आत्म-साक्षात्कार में लगे हैं, और जो लोग भगवान् को स्वामी मान कर भक्ति में लगे हैं, तथा वे, जो भगवान् को सामान्य पुरुष मान कर माया के पाश में बँधे रहते हैं, कभी यह नहीं समझ सकते कि अनेक महापुरुष तमाम पुण्यकर्मों को सञ्चित करने के बाद ग्वालबालों के रूप में भगवान् के साथ मैत्रीवश खेल रहे हैं।"

तात्पर्य

यह कथन शुकदेव गोस्वामी का है (भागवत १०.१२.११) जो कृष्ण के साथ खेलने वाले तथा यमुना नदी के तट पर उनके साथ भोजन करने वाले ग्वालबालों के भाग्य की सराहना कर रहे हैं।

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर।"
राय कहे,—"वात्सल्य-प्रेम—सर्वसाध्यसार॥"७६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "यह उत्तम कथन है, किन्तु आगे कहते चलो।"

तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् के प्रति वात्सल्य-प्रेम सर्वोच्च सिद्धि अवस्था है।"

तात्पर्य

वात्सल्य-प्रेम सख्य प्रेम से आगे की अवस्था है। सख्य सम्बन्ध में समानता का भाव रहता है, किन्तु जब समानता का भाव वात्सल्य का रूप धारण कर लेता है तो वात्सल्य-प्रेम का पद प्राप्त हो जाता है। इस सन्दर्भ में *श्रीमद्भागवत* का निम्नलिखित श्लोक (१०.८.४६) उद्धृत किया गया है जिसमें शुकदेव गोस्वामी कृष्ण के प्रति नन्द महाराज तथा माता यशोदा के उत्कट प्रेम की प्रशंसा करते हैं।

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥७७॥

अनुवाद

रामानन्द राय कहते रहे, "हे ब्राह्मण! भला नन्द महाराज ने कौन-सा सुकृत किया था, जिसके कारण भगवान् कृष्ण उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त हुए और माता यशोदा ने कौन-से पुण्यकर्म किये थे, जिनके कारण भगवान् कृष्ण से अपने को माता कहलाया और अपने स्तनों का पान कराया?"

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्याङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥७८॥

अनुवाद

"मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण से माता यशोदा को जो आश्रय मिला, वह न तो कभी ब्रह्मा को प्राप्त हो सका, न शिवजी को, न ही उन लक्ष्मीजी को जो सदैव भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं।"

तात्पर्य

यह कथन *श्रीमद्भागवत* का है (१०.९.२०)। जब माता यशोदा कृष्ण को रस्सी से न बाँध पाईं तो कृष्ण ने अपने को बँधवा लिया। श्री शुकदेव महाराज ने महाराज परीक्षित के समक्ष कृष्ण-लीलाओं का वर्णन करते हुए

इस तरह से दूसरी प्रशंसा की।

प्रभु कहे,—"एहो उत्तम, आगे कह आर।"
राय कहे,—"कान्ताप्रेम सर्वसाध्यसार॥"७९॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा "तुम्हारे कथन उत्तरोत्तर अच्छे होते जा रहे हैं, किन्तु इन सब से बढ़ कर अन्य दिव्य रस है जिसे आप अच्छी तरह बतला सकते हैं।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया "भगवत्प्रेम में कृष्ण के प्रति माधुर्य आसक्ति सर्वोपरि है।"

तात्पर्य

सामान्यतया भगवत्प्रेम स्वामित्व की घनिष्ठता से रहित होता है। दास्य प्रेम में विश्वास का अभाव रहता है। सख्य प्रेम में अधिक स्नेह का अभाव रहता है, जब यह स्नेह बढ़ कर वात्सल्य-सम्बन्ध का रूप धारण करता है तो भी उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता का अभाव रहता है। किन्तु जब कोई कृष्ण को दाम्पत्य-भाव से प्रेम करने लगता है तो अन्य सम्बन्धों के सारे अभाव प्रकट हो आते हैं। दाम्पत्य अवस्था में भगवत्प्रेम में कोई अभाव नहीं रह जाता। इस श्लोक का सारांश यह है कि वात्सल्य-प्रेम सख्य प्रेम से बढ़ कर है और दाम्पत्य प्रेम उससे भी ऊँचा है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से और आगे बढ़ने के लिए कहा तभी उन्होंने दाम्पत्य सम्बन्ध (माधुर्य भाव) की बात उठाई जो दिव्य प्रेम की सर्वोच्च सिद्ध अवस्था है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उद्गाद्व्रजसुन्दरीणाम॥८०॥

अनुवाद

"जब भगवान् कृष्ण गोपियों के साथ रासनृत्य कर रहे थे तो उनकी भुजाएँ गोपियों से छू जाती थीं। ऐसा सुयोग न तो कभी लक्ष्मीजी को प्राप्त हुआ, न ही वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को। न ही स्वर्गलोक

की उन सर्वसुन्दरियों ने, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्धि कमल के फूल जैसी है, कभी ऐसी कल्पना की थी। तो भला उन सांसारिक स्त्रियों की कौन कहे जो भौतिक दृष्टि से परम सुन्दरी हैं?''

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत १०.४७.६०) उद्धव ने उस समय कहा था जब वे कृष्ण का सन्देश लेकर गोपियों के पास श्री वृन्दावन गये थे। उद्धव गोपियों की गतिविधियाँ जानने के लिए वृन्दावन में रहे थे। जब उन्होंने कृष्ण के विरह में गोपियों द्वारा प्रकट प्रेम-भाव देखा तो उन्होंने उनके सर्वोच्च प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए यह श्लोक कहा। उन्होंने स्वीकार किया कि गोपियों के भाग्य की तुलना में जब लक्ष्मी का भाग्य नगण्य है, तो स्वर्ग की सुन्दरियों की तो बात ही नहीं उठती।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥८१॥

अनुवाद

''गोपियों की विरह भावनाओं के कारण कृष्ण पीताम्बर पहने फूलों की माला धारण किये एकाएक उनके बीच में प्रकट हो गये। उनका कमल-मुख मुसकरा रहा था और वे कामदेव के मन को भी आकृष्ट करने वाले थे।''

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१०.३२.२) है। कृष्ण रासनृत्य के बीच से ही अन्तर्धान हो गये थे, जिससे गोपियाँ उनके विरह और उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण विह्वल हो उठीं। फलस्वरूप कृष्ण को पुनः प्रकट होना पड़ा।

कृष्ण-प्राप्तिर उपाय बहुविध हय।
कृष्णप्राप्ति-तारतम्य बहुत आछय॥८२॥

अनुवाद

''कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के अनेक साधन तथा विधियाँ हैं। अब उन सारी विधियों का अध्ययन सापेक्ष महत्व की दृष्टि से किया जायेगा।''

किन्तु ग्राँर ग्रेइ रस, सेइ सर्वोत्तम।
तटस्थ हञा विचारिले, आछे तर-तम॥८३॥

अनुवाद

"यह सच है कि भगवान् के साथ जिस भक्त का जैसा भी सम्बन्ध है, वही उसके लिए सर्वोत्तम है। किन्तु तो भी जब हम विभिन्न विधियों का अध्ययन तटस्थ होकर करते हैं तो हम समझ पाते हैं कि प्रेम की उच्च तथा निम्न कोटियाँ हैं।"

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि इस श्लोक में भगवत्प्रेम की कुछ नई विधियों का मनमाना समर्थन नहीं हुआ। न ही ऐसी विधियों को सर्वोच्च नहीं माना जा सकता। श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में (१.२.१०१) कहा है—

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

वे स्पष्ट कहते हैं कि वैदिक साहित्य तथा अन्य गौण साहित्य को देखना चाहिए और वेदों के प्रमाणों को मानना चाहिए। कल्पित भक्ति-प्रवृत्ति से दिव्य जगत में गड़बड़ी ही मचती है। यदि गृहस्थ जीवन में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* या कृष्णभावनामृत को अपनी आजीविका का साधन बनाता है, तो उसका यह कार्य निश्चित रूप से अपराधपूर्ण है। न तो गुरु बन कर मन्त्रों को बेचना चाहिए, न ही अपनी आजीविका के लिए चेले बनाने चाहिए। ये सारे कार्य अपराधपूर्ण हैं। न ही किसी को संकीर्तन-टोली बनाकर आजीविका चलानी चाहिए, न समाज, मैत्री तथा प्यार में अनुरक्त रह कर भक्ति करनी चाहिए। न ही सामाजिक शिष्टाचार पर अवलम्बित रहना चाहिए। यह सब मानसिक चिन्तन (मनोरथ) है। इनमें से किसी एक की भी तुलना शुद्ध भक्ति से नहीं की जा सकती। अनन्य भक्ति या कृष्णभावनामृत की तुलना सांसारिक कार्यों से नहीं की जानी चाहिए। ऐसी अनेक अवैध टोलियाँ हैं, जो अपने को श्री चैतन्य महाप्रभु से सम्बद्ध बताती हैं—यथा आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेडा, दरवेश, साँई, सखीभेकी, स्मार्त, जाट गोसाईं, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी तथा गौरांग नागरी।

फिर गोसाईं जाति है जो अपने मत की तुलना श्री रूप तथा सनातन आदि षड् गोस्वामियों से करती है। यह एक प्रकार की ठग-विद्या ही है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अभक्त हैं जो अवैध गीत रचते हैं, धन के लिए मन्दिरों की स्थापना करते हैं, वेतन पाने के लिए पुजारी बन कर अर्चाविग्रहों की पूजा करते हैं, और ब्राह्मण जाति अपना लेते हैं। किन्तु वे शुद्ध वैष्णव के महत्व को नहीं जानते। वास्तव में स्मार्त जाति के ब्राह्मण *सात्वत पंचरात्र* के नियमों के विरोधी होते हैं। फिर अनेक मायावादी हैं जो इन्द्रिय-भोग में बुरी तरह लिप्त रहते हैं। इनमें से किसी की भी तुलना कृष्णभावनामृत के उपदेशक से नहीं की जा सकती। प्रत्येक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति विभिन्न दिव्य युक्तियों का उपयोग भगवान् की सेवा में करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा भक्त सारे भौतिक भोगों को त्याग कर अपने गुरु और श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में समर्पित हो जाता है। वह पूर्ण ब्रह्मचारी, संयमी गृहस्थ, नियमित वानप्रस्थ या त्रिदण्डी संन्यासी हो सकता है। छद्म अध्यात्मवादियों तथा भक्तों का कोई मुकाबला नहीं, न ही उस पर तर्क किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति पूजा की नई विधि को जन्म दे सकता है।

इस श्लोक को देने का उद्देश्य यही है कि शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रसों की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट हो जाय। ये सारे रस दिव्य पद को प्राप्त हैं। शुद्ध भक्तगण इनमें से किसी एक को आधार बनाकर आध्यात्मिक जीवन बिताते हैं। वास्तव में इनमें से किसी रस का आश्रय तब लिया जाय, जब भौतिक आसक्ति से पूर्णतया विमुक्त हो लिया जाय। भौतिक आसक्ति से पूर्णतया मुक्त होने पर ही भक्त के हृदय में रस का भाव उदय होता है। यही *स्वरूपसिद्धि* है। यह स्वरूपसिद्धि किसी एक रस को प्राप्त हो सकती है। सारे रस अपने में पूर्ण हैं। किन्तु निष्पक्ष अध्ययन से पता चलेगा कि दास्य रस शान्त रस से उत्तम है। इसी तरह सख्य रस दास्य रस से उत्तम है, वात्सल्य रस सख्य रस से उत्तम है और इन सबों से बढ़ कर है माधुर्य रस। किन्तु इन सबों को दिव्य पद प्राप्त है क्योंकि ये सभी एक ही केन्द्रबिन्दु, कृष्ण, पर आधारित हैं।

इन रसों की तुलना भक्तों की पूजा से प्राप्त होने वाले भावों से नहीं की जा सकती। कृष्ण एक हैं, किन्तु देवता भिन्न-भिन्न हैं। वे भौतिक हैं। कृष्ण-प्रेम की तुलना विभिन्न देवताओं के प्रति भौतिक प्रेम से नहीं की जा सकती। चूँकि मायावादीजन भौतिक स्तर पर होते हैं, अतएव वे शिव

या दुर्गा की पूजा करने के लिए कहते हैं और यह दलील देते हैं कि काली तथा कृष्ण की पूजा एक है। किन्तु देवता-पूजा आध्यात्मिक स्तर पर नहीं होती। आराध्य तो केवल कृष्ण हैं। अतएव शान्त रस या दास्य रस, वात्सल्य रस या माधुर्य रस के भक्तों में कोई अन्तर नहीं होता, तो भी इन विभिन्न स्थितियों में प्रेम की गहनता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह कहा जा सकता है कि दास्य रस शान्त रस से उत्तम है किन्तु दोनों में ही भगवत्प्रेम रहता है। इसी तरह सख्य प्रेम शान्त-रस तथा दास्य रस से उत्तम कहा जा सकता है। और जैसा कि पहले कहा जा चुका है माधुर्य रस वात्सल्य रस से श्रेष्ठ है।

दक्ष आचार्यों ने भगवत्प्रेम के विविध प्रकारों का विश्लेषण किया है। दुर्भाग्यवश कुछ अनुभवहीन अवैध संसारी लोग इस दिव्य विधि में दोष निकालने का प्रयास करते हैं। यह उनकी हठधर्मिता ही कहलायेगी।

यथोत्तमरसो स्वादविशेषोल्लासमय्यपि।
रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते कापि कस्यचित्॥८४॥

अनुवाद

"अधिकाधिक प्रेम का अनुभव विभिन्न स्वादों में होता है। किन्तु सर्वोच्च स्वाद वाला प्रेम तो माधुर्य रस के रूप में ही प्रकट होता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत-सिन्धु* का (२.५.३८) है। यह आदिलीला में भी (४.४५) आया है।

पूर्व-पूर्व-रसेर गुण—परे परे हय।
दुइ-तिन गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य॥८५॥

अनुवाद

"एक रस से लेकर बाद के रसों तक क्रमशः सुधार होता जाता है। प्रत्येक परवर्ती रस के गुण में पूर्ववर्ती रस से पहले दो, फिर तीन और अधिक से अधिक पाँच गुण प्रकट होते हैं।"

गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति-रसे।
शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्येर गुण मधुरेते वैसे॥८६॥

अनुवाद

"गुणों में वृद्धि के साथ-साथ प्रत्येक रस के स्वाद में भी अभिवृद्धि होती जाती है। अतएव शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस तथा वात्सल्य रस में प्राप्य सारे गुण माधुर्य रस में प्रकट होते हैं।

आकाशादिर गुण ग्रेन पर-पर भूते।
दुइ-तिन क्रमे बाड़े पञ्च पृथिवीते॥८७॥

अनुवाद

पञ्च भौतिक तत्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—में गुणों की उत्तरोत्तर वृद्धि एक, दो, तथा तीन की क्रमिक विधि से होती है और अन्तिम अवस्था अर्थात् पृथ्वी तत्व में पाँचों गुण पूर्णतया दृष्टिगोचर होते हैं।

परिपूर्ण-कृष्णप्राप्ति एइ 'प्रेमा' हैते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण—कहे भागवते॥८८॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण के चरणकमलों की पूर्ण प्राप्ति विशेष रूप से माधुर्य रस द्वारा सम्भव हो पाती है। भगवान् कृष्ण इस आदर्श प्रेम के वश में हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में भी ऐसा कहा गया है।"

तात्पर्य

माधुर्य रस के सर्वोच्च गुण की व्याख्या करने के लिए श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी भौतिक तत्वों—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी—का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। आकाश में ध्वनि का गुण है। इसी तरह वायु में ध्वनि तथा स्पर्श के गुण हैं। अग्नि में तीन गुण होते हैं—ध्वनि, स्पर्श तथा स्वरूप। जल में चार गुण हैं—ध्वनि, स्पर्श, स्वरूप तथा स्वाद। और पृथ्वी—में पाँच गुण हैं—ध्वनि, स्पर्श, स्वरूप, स्वाद तथा गन्ध। अब यह देखा जा सकता है कि आकाश का गुण सबों में—वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी में हैं। पृथ्वी में हमें भौतिक प्रकृति के सारे गुण मिलते हैं। यही बात माधुर्य रस पर भी लागू होती है। माधुर्य रस में शान्त, दास्य, सख्य तथा वात्सल्य के अतिरिक्त स्वयं माधुर्य-प्रेम के सारे गुण पाये जाते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि माधुर्य रस के द्वारा भगवान् पूर्णतया तुष्ट होते हैं।

माधुर्य रस को *शृंगार रस* भी कहा जाता है। *श्रीमद्भागवत* का यह निष्कर्ष है कि माधुर्य रस में भगवान् पूर्णतया भक्त के वश में हो जाते हैं। माधुर्य रस का सर्वोच्च रूप राधारानी में देखा जाता है, अतएव राधा तथा कृष्ण की लीलाओं में कृष्ण सदैव श्रीमती राधारानी के प्रभाव से दबे रहते हैं।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत् स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥८९॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने गोपियों से कहा, "मेरी कृपा प्राप्त करने का साधन मेरी प्रेमाभक्ति है और सौभाग्य से तुम सब उसी में लगी हुई हो। जो जीव मेरी सेवा करते हैं, वे वैकुण्ठ जाने और ज्ञान तथा आनन्द से पूर्ण शाश्वत जीवन प्राप्त करने के पात्र हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में (१०.८२.४५) मानव जीवन की पूर्ति का सार दिया गया है। इस श्लोक में दो महत्वपूर्ण शब्द हैं—*भक्ति* तथा *अमृतत्व*। मानव जीवन का उद्देश्य शाश्वत जीवन का प्राकृतिक पद प्राप्त करना है। यह शाश्वत जीवन एकमात्र भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

कृष्णेर प्रतिज्ञा दृढ़ सर्वकाले आछे।
ये यैछे भजे, कृष्ण तारे भजे तैछे॥९०॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ने सदा सदा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की है। जो कोई कृष्ण की जितनी सेवा करता है, वे उसे उतनी ही भगवद्भक्ति में सफलता प्रदान करते हैं।

तात्पर्य

यह सोचना बहुत बड़ी भूल होगी कि किसी भी रूप में या किसी प्रकार से कृष्ण की पूजा करके मनवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा निर्णय निपट भौतिकतावादी व्यक्तियों का है। ऐसे लोग सामान्यतया यह कहते हैं कि भगवान् की पूजा की नई विधि बनाई जा सकती है और किसी

भी तरह की पूजा से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। यह सत्य है कि कर्म, ज्ञान, योग तथा तपस्या द्वारा विभिन्न फलों की प्राप्ति के लिए पृथक-पृथक विधियाँ हैं। इसलिए बेढंगे लोग कहते हैं कि इनमें से चाहे जिस विधि को अपना लिया जाय, भगवान् की कृपा तो प्राप्त होगी ही। उनका दावा है कि कोई भी एक विधि अपनाई जा सकती है। यदि कोई किसी स्थान को जाना चाहता है तो वहाँ जाने के अनेक मार्ग होते हैं और इनमें से किसी भी एक मार्ग से वहाँ तक पहुँचा जा सकता है। इसी तरह ये निपट भौतिकतावादी भी कहते हैं कि भगवान् की कृपा प्राप्त करने की विभिन्न विधियाँ हैं। उनका कहना है कि भगवान् की कल्पना दुर्गा, काली, शिव, गणेश, राम, कृष्ण, निर्विशेष ब्रह्म आदि के रूप में की जा सकती है और जो जिस भी तरह और किसी भी रूप में चाहे, भगवन्नाम का कीर्तन कर सकता है और अन्त में तादात्म्य प्राप्त कर सकता है। ऐसे भौतिकतावादियों का दावा है कि इससे फल एक-सा मिलता है। वे यह भी कहते हैं कि किसी मनुष्य के कई नाम हो सकते हैं, किन्तु वह किसी भी एक नाम से पुकारे जाने पर उत्तर देगा। इसलिए उनका कहना है कि हरे-कृष्ण-मन्त्र का कीर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई काली, दुर्गा, शिव, गणेश या अन्य किसी के नाम का जप करता है तो परिणाम एक-सरीखा होगा। ऐसे दावे कपोल-कल्पना करने वालों द्वारा किये जाते हैं, और उन्हीं के लिए निस्सन्देह सुहावने होते हैं, किन्तु जो असली ज्ञानी हैं वे ऐसे निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि ये निष्कर्ष शास्त्रों के विरुद्ध हैं। कम-से-कम प्रामाणिक आचार्य ऐसे निष्कर्ष को तो नहीं ही स्वीकार करेगा। कृष्ण ने *भगवद्गीता* में (९.२५) स्पष्ट कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

"जो लोग देवताओं की पूजा करते हैं वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे, जो भूतप्रेत पूजते हैं वे भूतों-प्रेतों के बीच उत्पन्न होंगे, जो पितरों की पूजा करते हैं वे पितरों के पास जायेंगे और जो मेरी पूजा करते हैं वे मेरे साथ रहेंगे।"

भगवान् के धाम में केवल भक्तों को प्रवेश होने दिया जाता है, देवताओं

के पूजकों, कर्मियों, योगियों या अन्यों को नहीं। जो व्यक्ति स्वर्गलोक जाना चाहता है, वह अनेक देवताओं की पूजा करता है और प्रकृति प्रसन्न होकर ऐसे भक्तों को वांछित पद प्रदान कर सकती है। फलस्वरूप प्रकृति हर व्यक्ति को उसकी प्रकृति (स्वभाव) प्रदान करती है, जिससे वह विविध देवताओं के प्रति स्नेह को बढ़ाता है। किन्तु *भगवद्गीता* में (७.२०) कहा गया है कि देवताओं की पूजा उन लोगों के लिए है, जिनकी बुद्धि नष्ट हो चुकी है—

कामैस्तैस्तैर्हृत ज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

"जिनके मन भौतिक इच्छाओं से विकृत हो चुके हैं, वे देवताओं की शरण में जाते हैं और वे अपने अपने स्वभावों के अनुसार पूजा की विधियों का पालन करते हैं।"

कोई भले ही स्वर्गलोक क्यों न चला जाय किन्तु ऐसे वर के परिणाम सीमित होते हैं—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

"अल्प बुद्धि वाले लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उनके फल सीमित तथा नश्वर होते हैं। जो लोग देवताओं को पूजते हैं, वे देवलोकों को जाते हैं, किन्तु मेरे भक्त अन्ततः मेरे परम धाम पहुँचते हैं।" (भगवद्गीता ७.२३)।

स्वर्गलोक या किसी भौतिक लोक पहुँचने का अर्थ यह नहीं है कि ज्ञान तथा आनन्द से युक्त शाश्वत जीवन की प्राप्ति हो चुकी है। भौतिक जगत का अन्त होने पर ये सारी उपलब्धियाँ भी समाप्त हो जायेंगी। *भगवद्गीता* के अनुसार (१८.५५) जो लोग कृष्ण की प्रेमाभक्ति में रत होते हैं वे ही वैकुण्ठ-लोक में प्रवेश कर सकते हैं और भगवान् के पास जा सकते हैं, अन्य लोग नहीं।

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

"केवल भक्ति के द्वारा भगवान् को यथारूप में समझा जा सकता है। जब मनुष्य भगवान् की ऐसी भक्ति से परिपूरित होता है तो वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है।"

चूँकि निर्विशेषवादी भगवान् को नहीं समझ सकते, अतएव उनके लिए भगवान् के आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर पाना और भगवान् के पास वापस जा पाना सम्भव नहीं है। विभिन्न साधनों से भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त होते हैं। ऐसा नहीं है कि सारी उपलब्धियाँ एक ही हों। जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में रुचि रखते हैं, उनकी तुलना भगवान् की अनन्य भक्ति करने वालों से नहीं की जा सकती। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* में (१.१.२) कहा गया है—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

"भौतिक दृष्टि वाले सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह *भागवत पुराण* सर्वोच्च सत्य की स्थापना करता है, जो शुद्ध हृदय वाले भक्तों की समझ में आने वाला है। यह सर्वोच्च सत्य सबों के कल्याण हेतु सत्य है जो मोह (भ्रम) से भिन्न है। ऐसा सत्य तीनों कष्टों को समूल नष्ट करता है। महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा प्रणीत यह *भागवत* अपने आप में ईश-साक्षात्कार के लिए पर्याप्त है। जो व्यक्ति ध्यानपूर्वक तथा विनीत भाव से *भागवत* के सन्देश को सुनता है, वह भगवान् के प्रति अनुरक्त हो जाता है।"

मुक्ति की इच्छा रखने वाले निर्विशेष ब्रह्म में लीन होने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य से वे धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* इसे ठग-विद्या मानता है। ऐसे लोग स्वप्न में भी भगवद्धाम वापस जाने की बात नहीं सोच सकते। धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष के उद्देश्य और भक्ति के उद्देश्य में काफी अन्तर है।

देवी दुर्गा इस पंचतत्वों से बने भौतिक जगत की अध्यक्षा हैं। सारे देवता विविध निर्देशक हैं, जो भौतिक कार्यकलाप सम्पन्न कराने में लगे हुए हैं और उसी भौतिक शक्ति के अधीन हैं। किन्तु कृष्ण की अन्तरंगा शक्तियों को इस विराट जगत की सृष्टि से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। आध्यात्मिक

जगत तथा सारे आध्यात्मिक कार्यकलाप अन्तरंगा शक्ति के निर्देशन में रहते हैं, और ऐसे कार्यकलाप *योगमाया* अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति द्वारा सम्पन्न होते हैं। यह योगमाया भगवान् की आध्यात्मिक अथवा अन्तरंगा शक्ति है। जो लोग आध्यात्मिक जगत में जाने में रुचि रखते हैं और भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं उन्हें योगमाया के अधीन सिद्धि प्राप्त होती है। जो लोग भौतिक उन्नति चाहते हैं वे इन्द्रियतृप्ति का विकास करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान तथा आर्थिक विकास में जुटे रहते हैं। अन्ततोगत्वा वे निर्विशेष भगवान् में लीन होने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग सामान्यतया निर्विशेषवादी बन जाते हैं। वे शिव या देवी दुर्गा की पूजा में रुचि दिखाते हैं, किन्तु उनका भगवद्धाम लौटना शतप्रतिशत भौतिकतावादी होता है।

कभी-कभी गोपियों का उदाहरण सामने रख कर भक्तगण देवी कात्यायनी की पूजा करते हैं, किन्तु वे उन्हें योगमाया का अवतार समझते हैं। गोपियों ने कात्यायनी योगमाया की पूजा कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिये की थी। *सप्त-शती* में उल्लेख है कि सुरथ नामक एक क्षत्रिय राजा तथा समाधि नामक धनी वैश्य ने दुर्गा के रूप में भौतिक प्रकृति की पूजा की थी, जिससे उन्हें भौतिक सिद्धि प्राप्त हो सके। जो कोई योगमाया तथा महामाया को एक समझते हुए दोनों की पूजा में घालमेल करता है, वह बुद्धिमानी का काम नहीं करता। यह सोचना कि सारी वस्तुएँ एक हैं, मूर्खता है और कम बुद्धि की उपज है। मूर्ख तथा धूर्त ही कहेंगे कि योगमाया तथा महामाया की पूजा एक है। यह निष्कर्ष मानसिक चिन्तन की उपज है; इसमें व्यावहारिकता नहीं है। भौतिक जगत में व्यर्थ की वस्तुओं को भी उपाधि दे दी जाती है, जैसे कि किसी अंधे व्यक्ति का नाम पद्मलोचन रख देना। अन्धे बालक को पद्मलोचन कहना मूर्खता होगी।

आध्यात्मिक जगत में भगवान् सदैव अपने नाम, यश, रूप, गुण तथा लीला से अभिन्न होते हैं। किन्तु भौतिक जगत में ऐसी पहचान असम्भव है, जहाँ व्यक्ति का नाम व्यक्ति से भिन्न हो। भगवान् के अनेक नाम हैं यथा परमात्मा, ब्रह्म, तथा स्रष्टा; किन्तु जो व्यक्ति स्रष्टा के रूप में भगवान् की पूजा करता है, वह पाँच रसों के अन्तर्गत भक्त तथा भगवान् के सम्बन्ध को नहीं समझ सकता, न ही कृष्ण की अनुभूति ही उसकी समझ में आ सकती है। कोई भी व्यक्ति भगवान् को निर्विशेष ब्रह्म के रूप में जान कर भगवान् के षड् ऐश्वर्यों को नहीं समझ सकता।

परम सत्य की निर्विशेष अनुभूति सचमुच दिव्य है, किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि मनुष्य भगवान् के सच्चिदानन्द स्वरूप को समझ सकता है। इसी तरह परमात्मा की अनुभूति भी परम सत्य की अपूर्ण जानकारी है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परम सत्य का स्वांश परमात्मा है। भगवान् नारायण का भक्त कृष्ण के आकर्षक स्वरूप को नहीं समझ सकता। दूसरी ओर, कृष्ण का भक्त, जो भगवान् के सर्वआकर्षक स्वरूप में अनुरक्त है, नारायण को अधिक महत्व नहीं देता। जब कभी गोपियों ने कृष्ण को नारायण रूप में देखा, तो वे उनके प्रति आकृष्ट नहीं हुईं। गोपियों ने कृष्ण को कभी भी रुक्मिणीरमण नहीं कहा। वृन्दावन में कृष्ण के भक्त उन्हें राधारमण, नन्दनन्दन तथा यशोदानन्दन के नाम से पुकारते हैं, वसुदेवनन्दन या देवकीनन्दन के नाम से नहीं। यद्यपि भौतिक विचार से नारायण, रुक्मिणीरमण तथा कृष्ण एक हैं, किन्तु आध्यत्मिक जगत में रुक्मिणीरमण या नारायण के स्थान पर कृष्ण का नाम प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। यदि कोई अल्प ज्ञान के कारण ऐसा करता है तो भगवान् के प्रति उसका रस सदोष हो जाता है और वह *रसाभास* कहलाता है। उच्च भक्त, जिसे भगवान् के दिव्य स्वरूप की अनुभूति हो चुकी है, कभी भी एक नाम के स्थान पर दूसरे नाम का प्रयोग करके रसाभास की स्थिति उत्पन्न नहीं करेगा। कलियुग के प्रभाव से अपव्यय और उदारता के नाम पर काफी रसाभास है। शुद्ध भक्त ऐसे पागलपन को दाद नहीं देते।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥९१॥

अनुवाद

"भगवद्गीता में (४.११) भगवान् कृष्ण के अनुसार, "मैं उन सबों को, जो मेरी शरण में आते हैं, तदनुरूप पुरस्कृत करता हूँ। हे पृथा-पुत्र! हर व्यक्ति सभी प्रकार से मेरे पथ का अनुसरण करता है।"

एइ 'प्रेमेर' अनुरूप ना पारे तजिते।
अतएव 'ऋणी' हय—कहे भागवते॥९२॥

अनुवाद

***श्रीमद्भागवत* में (१०.३२.२२) कहा गया है कि कृष्ण माधुर्य रस में**

भक्ति के अनुपात में आदान-प्रदान नहीं कर पाते, अतएव वे ऐसे भक्तों के सदैव ऋणी रहते हैं।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जय-गेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुनाः॥९३॥

अनुवाद

"जब गोपियाँ कृष्ण से रासलीला में उनकी अनुपस्थिति के कारण असंतुष्ट होकर विह्वल थीं, तभी कृष्ण वापस आ गये और उन्होंने उनसे कहा "गोपियो! हमारा मिलन समस्त भौतिक कल्मष से मुक्त है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं तुम सबों के ऋण को अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकूँगा, क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ढूँढ़ने के लिए अपने परिवार-बन्धनों को तोड़ डाला है। अतएव मैं ऋण चुकाने में असमर्थ हूँ। फलतः तुम लोग अपने नेक कार्यों से सन्तुष्ट हो जाओ।"

यद्यपि कृष्ण-सौन्दर्य—माधुर्येर धूर्य।
व्रजदेवीर सङ्गे ताँर बाड़ये माधुर्य॥९४॥

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण का अप्रतिम सौन्दर्य सर्वोच्च माधुर्य है, किन्तु जब वे गोपियों के संग में होते हैं तो उनका माधुर्य बढ़ता जाता है। अतएव गोपियों के साथ कृष्ण द्वारा प्रेम का आदान-प्रदान भगवत्प्रेम की चरम सिद्धि है।

तात्पर्य

भगवान् के माधुर्य रस में कृष्ण तथा उनके भक्तों में पूरी घनिष्ठता रहती है। अन्य रसों में भगवान् तथा भक्त इतनी पूर्णता से दिव्य आनन्द का भोग नहीं कर पाते। अगले श्लोक में, जो श्रीमद्भागवत से है (१०.३३.६) इस श्लोक की पूरी व्याख्या हो जाती है।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महाभारकतो यथा॥९५॥

अनुवाद

"यद्यपि देवकी-पुत्र भगवान् समस्त सौन्दर्य के आगार हैं, किन्तु जब वे गोपियों के संग होते हैं तो अधिक सुन्दर लगते हैं, क्योंकि वे सोने तथा अन्य मणियों से घिरे हुए मारकत मणि जैसे लगते हैं।"

प्रभु कहे, एइ—'साध्यावधि' सुनिश्चय।
कृपा करि' कह, ग़दि आगे किछु हय॥९६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह निश्चय ही पूर्णता की सीमा है, किन्तु आप मुझ पर कृपा करें और यदि कुछ और हो तो उसे कहें।"

राय कहे,—इहार आगे पूछे हेन जने।
एतदिन नाहि जानि, आछये भुवने॥९७॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "आज तक मैं इस संसार में ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता, जो भक्ति की इस सिद्ध अवस्था के आगे क्या है, इसके बारे में पूछ सके।"

इहाँर मध्ये राधार प्रेम—'साध्यशिरोमणि'।
ग़ाँहार महिमा सर्वशास्त्रेते वाखानि॥९८॥

अनुवाद

रामानन्द राय कहते गये, "गोपियों के प्रेम में से कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का प्रेम सर्वोपरि है। श्रीमती राधारानी की महिमा का बखान सभी शास्त्रों में हुआ है।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥९९॥

अनुवाद

"जिस तरह राधारानी श्रीकृष्ण को परम प्रिय हैं उसी तरह उनका स्नान-स्थान राधाकुण्ड भी उन्हें प्रिय है। सारी गोपियों में श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं और कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।"

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥१००॥

अनुवाद

"गोपियों ने परस्पर बातें करते हुए कहा, "सखियो! जिस गोपी को कृष्ण अपने साथ एकान्त स्थल में ले गये हैं, उसने भगवान् की पूजा अन्यों की अपेक्षा अधिक की होगी।"

तात्पर्य

राधानाम *अनयाराधितः* से (भागवत १०.३०.२८) व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है "उसके द्वारा भगवान् की पूजा की जाती है।" कभी-कभी *श्रीमद्भागवत* के आलोचकों को राधारानी का नाम नहीं मिलता, किन्तु उस रहस्य का उद्घाटन *आराधितः* शब्द से होता है जिससे *राधा* शब्द बना है। राधारानी का नाम प्रत्यक्ष रूप से अन्य पुराणों में मिलता है। इस गोपी द्वारा की गई कृष्ण की पूजा सर्वोपरि है, अतएव उसका नाम राधा अर्थात् सर्वोच्च आराधिका है।

प्रभु कहे,—आगे कह, शुनिते पाइ सुखे।
अपूर्वामृत नदी बहे तोमार मुखे॥१०१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "बोलते जाइये। मुझे सुन कर परम सुख हो रहा है, क्योंकि आपके मुख से अद्वितीय अमृत की नदी बह रही है।"

चुरि करिऽराधाके निल गोपीगणेर डरे।
अन्यापेक्षा हैले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे॥१०२॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी ने रासनृत्य के समय अन्य गोपियों की उपस्थिति के कारण श्रीकृष्ण से प्रेम का आदान-प्रदान नहीं किया। अन्यों पर आश्रित होने के कारण राधा तथा कृष्ण के प्रेम की प्रगाढ़ता प्रकट नहीं हो पाई। इसीलिए वे उन्हें चुरा ले गये।"

राधा लागिऽगोपीरे यदि साक्षात् करे त्याग।
तबे जानि,—राधाय कृष्णेर गाढ़-अनुराग॥१०३॥

अनुवाद

"यदि श्रीकृष्ण राधारानी के लिए अन्य गोपियों का साथ त्याग देते तो हम यह समझ सकते कि भगवान् श्रीकृष्ण में उनके लिए प्रगाढ़ स्नेह है।"

राय कहे,—तबे शुन प्रेमेर महिमा।
त्रिजगते राधा-प्रेमेर नाहिक उपमा॥१०४॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "अतएव आप मुझसे श्रीमती राधारानी के प्रेम की महिमा सुनें। तीनों लोकों में उसकी उपमा के योग्य अन्य कोई नहीं है।

गोपीगणेर रास-नृत्य-मण्डली छाड़िया।
राधा चाहिऽवने फिरे विलाप करिया॥१०५॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी ने जब यह देखा कि उसके साथ अन्य गोपियों जैसा व्यवहार हो रहा है, तो उन्होंने चाल चली और रासनृत्य के मण्डल (वृत्त) को छोड़ दिया। श्रीमती राधारानी को न पाकर कृष्ण दुखी हुए और विलाप करने तथा उसकी खोज में सारे जंगल में घूमने लगे।

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः॥१०६॥

अनुवाद

"कंस के शत्रु भगवान् कृष्ण ने श्रीमती राधारानी को अपने हृदय में बसा लिया, क्योंकि वे उसके साथ नाचना चाहते थे। इस तरह उन्होंने रासनृत्य मंडल को तथा व्रज की अन्य सुन्दरियों का साथ छोड़ दिया।"

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गवाणव्रणखिन्नमानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी तटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः॥१०७॥

अनुवाद

"कामदेव के बाणों से विद्ध होकर तथा राधारानी के साथ किये गये दुर्व्यवहार से दुखी होकर माधव श्रीमती राधारानी को यमुना नदी के किनारे-किनारे खोजने लगे। किन्तु जब उन्हें नहीं पा सके तो वे वृन्दावन के कुंजों में घुस कर विलाप करने लगे।"

तात्पर्य

उपर्युक्त दोनों श्लोक जयदेव कृत *गीत गोविन्द* (३.१-२) से लिए गये हैं।

एइ दुइ-श्लोकेर अर्थ विचारिले जानि।
विचारिते उठे य़ेन अमृतेर खनि॥१०८॥

अनुवाद

"केवल इन्हीं दो श्लोकों पर विचार करने से समझा जा सकता है कि ऐसे प्रेम-व्यापारों में कितना अमृत है। यह तो वैसा ही है जैसे अमृत की खान को खोल दिया जाय।

शतकोटि गोपी-सङ्गे रास-विलास।
तार मध्ये एक-मूर्त्ये रहे राधा-पाश॥१०९॥

अनुवाद

"यद्यपि रासनृत्य के समय श्रीकृष्ण लाखों गोपियों के बीच में थे, किन्तु तो भी उन्होंने दिव्य रूप में अपने को श्रीमती राधारानी के बगल में रखा।"

साधारण-प्रेमे देखि सर्वत्र 'समता'।
राधार कुटिल-प्रेमे हइल 'वामता'॥११०॥

अनुवाद

"यद्यपि भगवान् कृष्ण अपने सामान्य व्यवहार में सबों के प्रति समभाव रखते हैं, किन्तु श्रीमती राधारानी के कुटिल प्रेम के कारण विरोधी तत्व उपस्थित हो गये।"

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव कुटिला भवेत्।
अतो हेतोरहेतोश्च यूनोर्मान उदञ्चति॥१११॥

अनुवाद

"तरुण युगलों के मध्य प्रेम की प्रगति साँप की गति जैसी होती है। इसके फलस्वरूप तरुण युगलों में दो प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है—एक तो हेतु सहित क्रोध और दूसरे हेतु रहित क्रोध।"

तात्पर्य

रासनृत्य के समय प्रत्येक दो गोपियों के मध्य कृष्ण का एक रूप था। किन्तु श्रीमती राधारानी के बगल में केवल एक कृष्ण थे। इतना होने पर भी श्रीमती राधारानी कृष्ण से असहमति प्रकट कर रही थी। यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (शृंगार भेद कथन १०२) से लिया गया है।

> क्रोध करि' रास छाडिऽगेला मान करि'।
> ताँरे ना देखिया व्याकुल हैल श्रीहरि॥११२॥

अनुवाद

"जब श्रीमती राधारानी क्रोध (मान) करके रासनृत्य से चली गईं तो उन्हें न देख कर श्रीकृष्ण अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

> सम्यक्सार वासना कृष्णेर रासलीला।
> रासलीला-वासनाते राधिका शृङ्खला॥११३॥

अनुवाद

"रासलीला मण्डल में भगवान् कृष्ण की इच्छा सम्यक् रूप से पूर्ण है, किन्तु उस इच्छा को बाँधने वाली कड़ी श्रीमती राधारानी हैं।

> ताहाँ विनु रासलीला नाहि भाय चित्ते।
> मण्डली छाड़िया गेला राधा अन्वेषिते॥११४॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के बिना कृष्ण के हृदय में रासनृत्य में चमक नहीं आती। अतएव उन्होंने भी रासनृत्य मण्डल को छोड़ दिया और राधा की खोज में निकल गये।

इतस्ततः भ्रमि' काहाँ राधा ना पाञा।
विषाद करेन कामवाणे खिन्न हञा॥११५॥

अनुवाद

"जब कृष्णजी श्रीमती राधारानी की खोज में निकल गये तो वे इधर-उधर घूमते रहे। किन्तु उन्हें न पाकर वे कामदेव के बाण से खिन्न होकर इधर-उधर विलाप करने लगे।

शतकोटि-गोपीते नहे काम-निर्वापण।
ताहातेइ अनुमानि श्रीराधिकार गुण॥११६॥

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण की काम-वासना लाखों गोपियों के बीच में भी पूरी नहीं हो सकी और वे श्रीमती राधारानी की खोज करते रहे, अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनमें कितनी भव्य योग्यता थी।"

प्रभु कहे,—'ये लागि आइलाम तोमा-स्थाने।
सेइ सब तत्त्व-वस्तु हैल मोर ज्ञाने॥११७॥

अनुवाद

यह सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "मैं जिसके लिए आपके निवास स्थान आया हूँ वह अब मेरी जान में सत्य की वस्तु बन चुका है।

एबे से जानिलूँ साध्य-साधन-निर्णय।
आगे आर आछे किछु, शुनिते मन हय॥११८॥

अनुवाद

"अब जाकर मैं जीवन के उच्च लक्ष्य को और उसे प्राप्त करने की विधि को समझ पाया हूँ। इतने पर भी मैं सोचता हूँ कि अभी और कुछ है, जिसे पाने के लिए मेरा मन करता है।

'कृष्णेर स्वरूप' कह 'राधा स्वरूप'।
'रस' कोन् तत्त्व, 'प्रेम'—कोन तत्त्वरूप॥११९॥

अनुवाद

"कृपया कृष्ण तथा श्रीमती राधारानी के दिव्य स्वरूप का वर्णन करें। कृपया दिव्य रस तथा भगवत्प्रेम का दिव्य स्वरूप भी बतलायें।

कृपा करि' एइ तत्त्व कह त' आमारे।
तोमा-विना केह इहा निरूपिते नारे।।१२०।।

अनुवाद

"कृपा करके मुझे इन सारे तत्वों को समझा दें। आपके अतिरिक्त इनका निरूपण अन्य कोई नहीं कर सकता।"

राय कहे,—इहा आमि किछुइ ना जानि।
तुमि एइ कहाओ, सेइ कहि आमि वाणी।।१२१।।

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं इसके विषय में कुछ भी नहीं जानता। मैं तो वही शब्द निकाल पाता हूँ, जिसे आप मुझसे बोलवाते हैं।"

तोमार शिक्षाय पड़ि ग्रेन शुक-पाठ।
साक्षात् ईश्वर तुमि, के बुझे तोमार नाट।।१२२।।

अनुवाद

"मैं तो आपके द्वारा दी गई शिक्षाओं को तोते की तरह केवल दोहराता हूँ। आप साक्षात् भगवान् हैं। आपके नाटकीय कृत्यों को भला कौन समझ सकता है?

हृदये प्रेरण कर, जिह्वाय कहाओ वाणी।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि।।१२३।।

अनुवाद

"आप मेरे हृदय में से प्रेरित करते हैं और जीभ से कहलाते हैं। मैं यह नहीं जानता कि मैं अच्छा बोल रहा हूँ या बुरा।"

प्रभु कहे,—मायावादी आमि तऽसन्यासी।
भक्तितत्व नाहि जानि, मायावादे भासि।।१२४।।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "मैं तो मायावादी संन्यासी हूँ और मैं यह भी नहीं जानता कि भगवान् की प्रेमाभक्ति है क्या। मैं तो मायावादी दर्शन के सागर में केवल तैरता रहता हूँ।

सार्वभौम-सङ्गे मोर मन निर्मल हइल।
'कृष्णभक्ति-तत्त्व कह', ताँहारे पुछिल॥१२५॥

अनुवाद

"सार्वभौम की संगति करने से मेरा मन निर्मल हुआ है, इसीलिए मैंने उनसे कृष्ण की प्रेमाभक्ति की सचाई के विषय में पूछताछ की है।

तेँहो कहे,—आमि नाहि जानि कृष्णकथा।
सबे रामानन्द जाने, तेँहो नाहि एथा॥१२६॥

अनुवाद

"सार्वभौम भट्टाचार्य ने मुझसे कहा, "वास्तव में मैं भगवान् कृष्ण की कथा के विषय में नहीं जानता। रामानन्द राय ही सबकुछ जानता है किन्तु वह यहाँ उपस्थित नहीं हैं"

तोमार ठाञि आइलाङ तोमार महिमा शुनिया।
तुमि मोरे स्तुति कर 'संन्यासी' जानिया॥१२७॥

अनुवाद

"मैं आपकी महिमा सुन कर आपके यहाँ आया हूँ। किन्तु आप मुझे संन्यासी जान कर मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर बतलाते हैं कि संसारी व्यक्ति को संसारी ऐश्वर्य से धनी बन कर सदा यह जानते रहना चाहिए भक्तों का दिव्य ऐश्वर्य संसारी व्यक्ति के भौतिकतावादी ऐश्वर्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। भौतिक ऐश्वर्य से युक्त संसारी व्यक्ति को एक दिव्य भक्त के समक्ष गर्वित नहीं होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी भौतिक मर्यादा, ऐश्वर्य, शिक्षा और सौन्दर्य के बल पर भक्त के पास जाता है और उसका आदर नहीं करता, तो वैष्णव भक्त ऐसे गर्वित व्यक्ति का सम्मान तो कर सकता है,

किन्तु हो सकता है कि वह उसे दिव्य ज्ञान न दे। वह भक्त उसे अब्राह्मण या शूद्र के रूप में देखता है। ऐसा गर्वित व्यक्ति कृष्ण-तत्त्व को नहीं समझ सकता। घमंडी व्यक्ति दिव्य जीवन में धोखा खाता है और मनुष्य का शरीर पाकर भी नरक में जा गिरता है। श्री चैतन्य महाप्रभु अपने दृष्टान्त से बतलाते हैं कि एक वैष्णव के समक्ष किस प्रकार विनम्र होना चाहिए, भले ही वह उच्च पद को प्राप्त क्यों न हो। विश्व के आचार्य स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा ऐसी ही है।

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥१२८॥

अनुवाद

"कोई चाहे ब्राह्मण हो, अथवा संन्यासी या शूद्र—यदि वह कृष्ण-तत्त्व जानता है तो गुरु बन सकता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में बतलाया है कि किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होते हुए तथा संन्यासी के उच्च पद पर रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के लिए अनुचित था कि वे शूद्र जाति में उत्पन्न रामानन्द राय से उपदेश ग्रहण करते। इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही महाप्रभु ने रामानन्द राय को बताया कि कृष्णभावनामृत का ज्ञान होना जाति से अधिक महत्वपूर्ण है। *वर्णाश्रम-धर्म*-प्रणाली में ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा शूद्रों के विविध कर्तव्य होते हैं। इसमें ब्राह्मण को अन्य वर्णों, अर्थात् जातियों, का गुरु माना जाता है; किन्तु जहाँ तक कृष्णभावनामृत का सम्बन्ध है, कोई भी व्यक्ति गुरु बन सकता है, क्योंकि कृष्णभावनामृत का ज्ञान आत्मा के स्तर पर होता है। कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए आत्म-ज्ञान से अवगत होने की ही आवश्यकता होती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र अथवा संन्यासी या गृहस्थ। यदि वह इस विज्ञान को समझता है तो वह गुरु बन सकता है।

हरिभक्ति-विलास में कहा गया है कि यदि उपयुक्त ब्राह्मण उपलब्ध हो तो अब्राह्मण से दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। यह उपदेश उनके लिए है जो सांसारिक सामाजिक व्यवस्था पर अत्यधिक आश्रित रहते हैं और सांसारिक

जीवन बिताना चाहते हैं। यदि कोई कृष्णभावनामृत की सचाइयों को समझता है और जीवन की पूर्णता के लिए दिव्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक है तो वह किसी भी जाति के गुरु को स्वीकार कर सकता है, बशर्ते वह गुरु कृष्ण-विज्ञान (कृष्ण-तत्व) से पूरी तरह अवगत हो। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर यह भी कहते हैं कि यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी कृष्ण-विज्ञान से अवगत है तो वह *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु, दीक्षागुरु* अथवा *शिक्षागुरु* बन सकता है। आध्यात्मिक जीवन के विषय में सूचना देने वाले को *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु* कहा जाता है। जो गुरु शास्त्रों के नियमानुसार दीक्षा देता है वह *दीक्षागुरु* कहलाता है और जो ऊपर उठने के लिए शिक्षा देता है वह *शिक्षागुरु* कहलाता है। तथ्य तो यह है कि कृष्ण-तत्त्व के ज्ञान के अनुसार ही गुरु में योग्यता आती है। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, संन्यासी या शूद्र। श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दिया गया यह आदेश शास्त्रों के आदेश के विरुद्ध नहीं है। *पद्म-पुराण* में कहा गया है—

न शूद्राः भगवद्भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने॥

जो आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है, वह शूद्र-कुल में उत्पन्न होने पर भी शूद्र नहीं होता। किन्तु एक *विप्र* या ब्राह्मण अपने षड् ब्राह्मण कर्मों (पठन, पाठन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह) तथा वैदिक स्तोत्रों में भी पटु क्यों न हो, किन्तु यदि वह वैष्णव नहीं है, तो वह गुरु नहीं बन सकता। यदि वह चण्डाल-कुल में जन्म लेकर कृष्णभावनामृत में दक्ष हो तो वह गुरु बन सकता है। ये शास्त्रों के आदेश हैं और इन्हीं आदेशों का पालन करते हुए विश्वम्भर नामक गृहस्थ श्री चैतन्य महाप्रभु को ईश्वरपुरी नामक गुरु ने दीक्षा दी थी। इसी प्रकार श्री नित्यानन्द प्रभु को माधवेन्द्र पुरी नामक संन्यासी ने दीक्षा दी थी। किन्तु कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें लक्ष्मीपति तीर्थ ने दीक्षा दी। इसी तरह अद्वैत आचार्य ने गृहस्थ होते हुए भी माधवेन्द्र पुरी से दीक्षा ली और ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न रसिकानन्द ने श्री श्यामसुन्दर प्रभु से दीक्षा ली, जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ जन्मजात ब्राह्मण ने ऐसे व्यक्ति से दीक्षा ग्रहण की जो ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न नहीं था। *श्रीमद्भागवत* में (७.११.३५) ब्राह्मण के

लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

यदि शूद्र-कुल में उत्पन्न कोई व्यक्ति गुरु के समस्त गुणों से युक्त हो, तो उसे न केवल ब्राह्मण मान लेना चाहिए, अपितु योग्य गुरु भी मान लेना चाहिए। यही आदेश श्री चैतन्य महाप्रभु का भी है। इसीलिए श्रील भक्तिसिद्धान्त ठाकुर ने सारे वैष्णवों के लिए विधिवत् जनेऊ-संस्कार का सूत्रपात किया।

कभी-कभी *भजनानन्दी* वैष्णव का *सावित्र संस्कार* (जनेऊ धारण करना) नहीं हुआ रहता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रचार-कार्य के लिए इस पद्धति को प्रयोग में लाया जाय। वैष्णव दो प्रकार के होते हैं—*भजनानन्दी* तथा *गोष्ठ्यानन्दी*। भजनानन्दी की रुचि प्रचार-कार्य में नहीं होती, किन्तु गोष्ठ्यानन्दी प्रचार-कार्य तथा वैष्णवों की संख्या बढ़ाने में सदैव रुचि रखता है। वैष्णव को ब्राह्मण-पद से ऊपर माना जाता है। प्रचारक के रूप में उसे ब्राह्मण की मान्यता मिलनी चाहिए, अन्यथा लोगों को उसके वैष्णव-पद में भ्रम हो सकता है। किन्तु वैष्णव ब्राह्मण का चुनाव जन्म के आधार पर नहीं, अपितु उसके गुणों के आधार पर किया जाता है। दुर्भाग्यवश, जो बुद्धिमान नहीं हैं वे ब्राह्मण तथा वैष्णव के अन्तर को नहीं समझ पाते। वे इस भ्रम में रहते हैं कि ब्राह्मण हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस श्लोक में कहा है—

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेइ 'गुरु' हय॥

जो गुरु बन जाता है वह स्वतः ब्राह्मण हो जाता है। कभी-कभी गुरु-जाति के लोग कहते हैं—*ये कृष्ण-तत्त्व वेत्ता सेइ गुरु हय* का अर्थ है कि जो ब्राह्मण नहीं है वह *शिक्षागुरु* या *वर्त्म-प्रदर्शक गुरु* तो बन सकता है, किन्तु *दीक्षागुरु* नहीं बन सकता। ऐसे गुरुओं के अनुसार जन्म तथा कुल को सर्वोपरि माना जाता है। किन्तु वैष्णवों को यह वंश-परम्परा मान्य नहीं है। *गुरु* शब्द वर्त्म-प्रदर्शक गुरु, शिक्षागुरु तथा दीक्षागुरु पर समान रूप से लागू होता है। जब तक हम श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा संस्थापित नियम को स्वीकार नहीं करते, तब तक यह कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे विश्व में नहीं फैल

सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु की आन्तरिक इच्छा थी—*पृथिवीते आछे यत नगरादि-ग्राम सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम*। श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय का प्रचार सारे विश्व में किया जाना चाहिए। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोग उनकी शिक्षाओं को ग्रहण करके शूद्र या चण्डाल बने रहें। ज्योंही कोई शुद्ध वैष्णव के रूप में प्रशिक्षित हो ले, उसे प्रामाणिक ब्राह्मण मान लिया जाय। इस श्लोक में महाप्रभु के उपदेशों का यही सार है।

'संन्यासी' बलिया मोरे ना करिह वञ्चन।
कृष्ण-राधा-तत्व कहि' पूर्ण कर मन॥१२९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "आप मुझे विद्वान् संन्यासी समझ कर ठगने की चेष्टा न करें। आप राधा तथा कृष्ण के सत्य का वर्णन करके मेरे मन को तुष्ट करें।"

यद्यपि राय—प्रेमी, महाभागवते।
ताँर मन कृष्ण-माया नारे आच्छादिते॥१३०॥
तथापि प्रभुर इच्छा,—परम प्रबल।
जानिलेह रायेर मन हैल टलमल॥१३१॥

अनुवाद

श्री रामानन्द राय महान भगवद्भक्त तथा ईश-प्रेमी थे और यद्यपि उनका मन कृष्ण की माया से कभी आच्छादित नहीं हुआ और वे महाप्रभु के प्रबल मन की बात समझ सकते थे, किन्तु फिर भी रामानन्द का मन कुछ-कुछ विचलित हो उठा।

तात्पर्य

पूर्ण भक्त सदा परमेश्वर की इच्छाओं के अनुरूप कार्य करता है। किन्तु भौतिकतावादी व्यक्ति माया की लहरों में बह जाता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है—*मायार वशे, यच्छा भेसे, खाच्छा हाबुडुबु, भाइ*।

भौतिक शक्ति के चंगुल में रहने वाला व्यक्ति सदैव माया की लहरों में बह जाता है। दूसरे शब्दों में, भौतिक जगत में मनुष्य सदा माया का

दास रहता है जबकि आध्यात्मिक शक्तियुक्त मनुष्य भगवान् का दास होता है। यद्यपि रामानन्द राय जानते थे कि श्री चैतन्य महाप्रभु से कुछ छिपा नहीं है, फिर भी वे उस विषय पर महाप्रभु की इच्छा के कारण आगे बोलने लगे।

राय कहे,—"आमि—नट, तुमि—सूत्रधार।
ग्रेइ मत नाचाओ, तैछे चाहि नाचिबार॥१३२॥

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "मैं तो नाचने वाली कठपुतली की भाँति हूँ, और आप रस्सी खींचने वाले हैं। आप मुझे जिस तरह नचायेंगे मैं उसी तरह नाचूँगा।

मोर जिह्वा,—वीणायन्त्र, तुमि—वीणा-धारी।
तोमार मने ग्रेइ उठे, ताहाइ उच्चारि॥१३३॥

अनुवाद

"हे प्रभु! मेरी जीभ वीणा के समान है, और आप इस वीणा के वादक हैं। अतएव जो आपके मन में उठता है, मैं उसी की ध्वनि उत्पन्न करता हूँ।"

परम ईश्वर कृष्ण—स्वयं भगवान्।
सर्व-अवतारी, सर्वकारण-प्रधान॥१३४॥

अनुवाद

फिर रामानन्द राय कृष्ण-तत्त्व पर बोलने लगे। उन्होंने कहा, "वे भगवान् हैं। वे साक्षात् आदि ईश्वर हैं, जो समस्त अवतारों के उद्गम तथा समस्त कारणों के कारण हैं।

अनन्त वैकुण्ठ, आर अनन्त अवतार।
अनन्त ब्रह्माण्ड इहाँ,—सबार आधार॥१३५॥

अनुवाद

"वैकुण्ठ-लोकों की संख्या अनन्त है और अवतार भी असंख्य हैं। भौतिक जगत में भी असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और कृष्ण उन सबों के आधार हैं।

सच्चिदानन्द-तनु, व्रजेन्द्रनन्दन।
सर्वैश्वर्य-सर्वशक्ति-सर्वरस-पूर्ण ॥१३६॥

अनुवाद

"श्रीकृष्ण का दिव्य शरीर नित्य है और आनन्द तथा ज्ञान से पूर्ण है। वे नन्द महाराज के पुत्र हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, शक्तियों तथा रसों से पूर्ण हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥१३७॥

अनुवाद

"गोविन्द के नाम से विख्यात श्रीकृष्ण परम नियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दपूर्ण तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। समस्त कारणों के मूल कारण होने के कारण उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है।

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्म-संहिता* का (५.१) है और आदिलीला में भी आया है (२.१०७)।

वृन्दावने 'अप्राकृत नवीन मदन'।
कामगायत्री कामबीजे याँर उपासन॥१३८॥

अनुवाद

"वृन्दावन के आध्यात्मिक जगत में कृष्ण चिरनवीन आध्यात्मिक कामदेव हैं। उनकी पूजा क्लीं बीज के साथ कामगायत्री मन्त्र का उच्चारण करके की जाती है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता में (५.५६) इस वृन्दावन का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नृत्यं गमनपि वंशी प्रिय-सखी

चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च॥

स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान्
निमेषार्द्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं
विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचशः कतिपये॥

वृन्दावन का आध्यात्मिक संसार सदैव आध्यात्मिक रहता है। वहाँ पर लक्ष्मी तथा गोपियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं। वे कृष्ण को प्रिय हैं और वे भी कृष्ण के समान आध्यात्मिक हैं। वृन्दावन में कृष्ण महापुरुष हैं और वे समस्त गोपियों के तथा लक्ष्मी के पति हैं। वृन्दावन के वृक्ष कल्पवृक्ष होते हैं। वहाँ की भूमि चिन्तामणि से बनी हुई, और जल अमृत है। सारे शब्द संगीत की ध्वनियाँ और सारी गतियाँ नृत्य होती हैं। वंशी भगवान् की नित्य संगिनी होती है। गोलोक वृन्दावन सूर्य के समान स्वतः तेजवान और आनन्द से पूर्ण होता है। जीवन की पूर्णता इस आध्यात्मिक लोक का आस्वाद करने में है; अतएव हर एक को चाहिए कि इस ज्ञान का अनुशीलन करे। वृन्दावन की आध्यात्मिक गौवें आध्यात्मिक दूध देने वाली हैं। वहाँ एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाता—अर्थात् वहाँ भूत, वर्तमान तथा भविष्य नहीं होता। समय का एक कण भी व्यर्थ नहीं जाता। इस भौतिक जगत के अन्तर्गत भक्तगण उस धाम की पूजा गोलोक वृन्दावन के रूप में करते हैं। स्वयं ब्रह्मा ने कहा था, "मैं उस आध्यात्मिक लोक की पूजा करता हूँ, जहाँ कृष्ण विद्यमान हैं।" इस दिव्य वृन्दावन की प्रशंसा उन लोगों द्वारा ही नहीं की जाती जो भक्त नहीं हैं क्योंकि यह वृन्दावन धाम पूरी तरह आध्यात्मिक है। वहाँ पर भगवान् की लीलाएँ भी आध्यात्मिक हैं। वहाँ कुछ भी भौतिक नहीं है। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की प्रार्थना के अनुसार (प्रार्थना १)—

आर कबे निताइ-चाँदेर करुणा हइबे।
संसार-वासना मोर कबे तुच्छ ह'बे॥

"मुझ पर नित्यानन्द प्रभु कब कृपा करेंगे कि मैं भौतिक आनन्द की तुच्छता का अनुभव कर सकूँगा?"

विषय-छाड़िया कबे शुद्ध ह'बे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥

"वह समय कब आयेगा, जब मेरा मन भौतिक मल से शुद्ध हो सकेगा, और मुझे आध्यात्मिक वृन्दावन की उपस्थिति का अनुभव हो सकेगा?"

रूप-रघुनाथ-पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझब से युगल-पिरीति॥

"वह समय कब होगा जब मैं गोस्वामियों के उपदेशों के प्रति आकृष्ट हो सकूँगा, और यह समझ पाऊँगा कि राधा तथा कृष्ण क्या हैं और वृन्दावन क्या है?"

इन श्लोकों से सूचित होता है कि यदि कोई वृन्दावन को समझना चाहता है तो उसे समस्त भौतिक इच्छाओं, सकाम कर्म के प्रति सारे आकर्षणों तथा ज्ञान से शुद्ध होना पड़ेगा।

अप्राकृत नवीन मदन में *"अप्राकृत"* सूचक है भौतिक विचार से सर्वथा विरुद्ध विचार। मायावादीगण इसे शून्य या निर्विशेष मानते हैं, किन्तु बात ऐसी नहीं है। भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु जड़ है, किन्तु आध्यात्मिक जगत की प्रत्येक वस्तु सजीव है। भोग की इच्छा कृष्ण तथा उनके अंशों अर्थात् जीवों में समान रूप में पाई जाती है। आध्यात्मिक जगत में ऐसी इच्छाएँ भी आध्यात्मिक होती हैं। ऐसी इच्छाओं को भूल कर भी भौतिक नहीं समझना चाहिए। यदि इस भौतिक जगत में कोई व्यक्ति यौन के प्रति उन्मुख है और उसका भोग करता है तो यह भोग क्षणिक होता है। कुछ ही मिनट बाद उसका भोग समाप्त हो जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में यही भोग न समाप्त होने वाला होता है। उसका निरन्तर भोग होता रहता है। आध्यात्मिक जगत में ऐसी यौन-इच्छा प्रत्येक नवीन स्वरूप के साथ अधिकाधिक आस्वाद्य लगती है। किन्तु भौतिक जगत में यौन-भोग कुछ ही मिनटों में स्वादरहित हो जाता है, और स्थायी भी नहीं होता। चूँकि कृष्ण अत्यधिक यौन-उन्मुख प्रतीत होते हैं, इसलिए उन्हें नवीन कामदेव कहा गया है। किन्तु ऐसी इच्छा में कोई उच्छृंखलता नहीं रहती।

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृताः—जो कोई गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह क्रमशः भौतिक बन्धन से छूट जाता है। जो भवबन्धन

से छुड़ाये, वही *गायत्री* है। गायत्री मन्त्र की व्याख्या मध्यलीला में (२१.१२५) उपलब्ध है—

काम-गायत्री-मन्त्र-रूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्ध-चबिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय
त्रिजगत् कैला काम-मय॥

यह मन्त्र वैदिक स्तुति के समान है, किन्तु यह साक्षात् भगवान् है। *कामगायत्री* तथा कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही २४ १/२ दिव्य अक्षरों से बने हैं। अक्षरों द्वारा अंकित यह मन्त्र कृष्ण भी है, और यह मन्त्र चन्द्रमा के समान उदय होता है। इसके कारण मानव-समाज में तथा सारे जीवों में इच्छा का विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है। *क्लीं कामदेवया विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्*—इस मन्त्र में कृष्ण को कामदेव या मदनमोहन कहा गया है, जो कृष्ण के साथ हमारे सम्बन्ध को स्थापित करने वाला अर्चाविग्रह है। गोविन्द या *पुष्पबाण* (अर्थात् फूलों का बाण धारण करने वाला) भगवान् है, जो हमारी भक्ति को स्वीकार करता है। *अनंग* या गोपीजन वल्लभ समस्त गोपियों को तुष्ट करता है और जीवन का चरम लक्ष्य है। यह *कामगायत्री (क्लीं कामदेवया.....प्रचोदयात्)* केवल इसी भौतिक जगत से सम्बद्ध नहीं है। आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य अपनी शुद्ध इन्द्रियों से भगवान् की पूजा कर सकता है और भगवान् की इच्छाओं को पूरा कर सकता है।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियो' सि मे॥

"सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आ सकोगे। मैं यह वचन देता हूँ क्योंकि तुम मेरे मित्र हो (भगवद्गीता १८.६५)।

ब्रह्म-संहिता में (५.२७-२८) कहा गया है—

अथ वेणु निनादस्य त्रयीमूर्तिमयी गतिः।
स्फुरति प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयंभुवः॥

गायत्रीं गायतस्तस्माद् अधिगत्य सरोजजः।
संस्कृतश्चादिगुरुणा द्विजतामगमत्ततः॥

त्रय्या प्रबुद्धोऽथ विधिर्विज्ञाततत्त्वसागरः।
तुष्टाव वेदसारेण स्तोत्रेणानेन केशवम्॥

"तब वेदमाता गायत्री श्रीकृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि से प्रकट होकर स्वयंभू ब्रह्मा के कमलमुख में उनके आठ कर्णकुहरों से प्रविष्ट हुई। कमल से उत्पन्न ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की वंशी के संगीत से उत्पन्न गायत्री मन्त्र को प्राप्त किया। इस तरह उन्हें द्विज का पद प्राप्त हुआ, क्योंकि परम आदि गुरु साक्षात् भगवान् ने दीक्षा दी। तीन वेदों से युक्त उस गायत्री का स्मरण करके ब्रह्माजी सत्य के समुद्र से अवगत हुए। तब उन्होंने स्तोत्र द्वारा समस्त वेदों के सार श्रीकृष्ण की पूजा की।"

कृष्ण की वंशी की ध्वनि वैदिक स्तोत्रों की उद्गम है। कमलासीन ब्रह्मा ने कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनी, जिससे वे गायत्री मन्त्र द्वारा दीक्षित हो गये।

पुरुष, य़ोषित्, किबा स्थावर-जङ्गम।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात् मन्मथ-मदन॥१३९॥

अनुवाद

"कृष्ण नाम बतलाता है कि वह कामदेव को भी आकृष्ट करने वाला है। अतएव वे सबों के लिए—स्त्री तथा पुरुष, चर तथा अचर जीवों के लिए आकर्षक हैं। कृष्ण सर्वचित्ताकर्षक कहे जाते हैं।

तात्पर्य

जिस तरह भौतिक जगत में तारे या ग्रह हैं, उसी तरह आध्यात्मिक जगत में अनेक वैकुण्ठ-लोक हैं। किन्तु आध्यात्मिक ब्रह्माण्ड भौतिक ब्रह्माण्ड से बहुत ही दूरी पर है। इस ब्रह्माण्ड में नक्षत्रों तथा ग्रहों की संख्या का अनुमान भौतिक विज्ञानी नहीं लगा सकते। वे अन्तरिक्ष यानों द्वारा अन्य नक्षत्रों तक यात्रा करने में भी अक्षम हैं। *भगवद्गीता* के अनुसार (८.२०) एक आध्यात्मिक जगत भी है—

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

"एक अन्य प्रकृति भी है जो शाश्वत है और व्यक्त तथा अव्यक्त पदार्थ से परे है। यह सर्वोपरि है और इसका संहार कभी नहीं होता। जब इस संसार की प्रत्येक वस्तु का संहार हो जाता है तब भी वह उसी तरह बनी रहती है।" (भगवद्गीता ८.२०)।

इस तरह से एक अन्य प्रकृति भी है, जो भौतिक प्रकृति से श्रेष्ठ है। *भाव* या *स्वभाव* शब्द प्रकृति के लिए आये हैं। आध्यात्मिक प्रकृति शाश्वत है, क्योंकि सारे भौतिक ब्रह्माण्डों के विनष्ट हो जाने पर भी आध्यात्मिक जगत जैसे का तैसा बना रहता है। वह उसी तरह बना रहता है जैसे कि शरीर के विनष्ट होने के बाद आत्मा बचा रहता है। आध्यात्मिक जगत *अप्राकृत* अर्थात् प्राकृतिक जगत का विपरीत कहलाता है। इस आध्यात्मिक जगत का सर्वोच्च लोक गोलोक वृन्दावन है। यही भगवान् कृष्ण का धाम है और भगवान् कृष्ण भी पूर्णरूपेण आध्यात्मिक हैं। यहाँ पर कृष्ण को *अप्राकृत मदन* कहा जाता है। उनका शरीर मदन के समान भौतिक नहीं है। कृष्ण का शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक—*सच्चिदानन्द-विग्रह*—है। इसीलिए वे अप्राकृत मदन कहलाते हैं, जिसका अर्थ है कि वे मदन को भी आकृष्ट करने वाले हैं। कभी-कभी निपट भौतिकतावादी व्यक्ति कृष्ण की लीलाओं एवं उनके आकर्षक शरीर का गलत अर्थ लगाते हैं और उन पर अनैतिक होने का दोषारोपण करते हैं, क्योंकि वे गोपियों के साथ नाचते थे। किन्तु ऐसा दोषारोपण कृष्ण को ठीक से न जानने के कारण लगाया जाता है। कृष्ण तो इस भौतिक जगत से परे हैं। उनका शरीर सच्चिदानन्द विग्रह है—अर्थात् पूर्णतया आध्यात्मिक है। उनके शरीर में भौतिक कल्मष का लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। उनके शरीर को हाडमांस का पुतला नहीं मानना चाहिए। मायावादी दार्शनिक कृष्ण के शरीर को भौतिक मानते हैं, किन्तु यह अत्यन्त गर्हित, स्थूल भौतिकतावादी धारणा है। जिस तरह कृष्ण पूर्णतया आध्यात्मिक हैं, उसी तरह गोपियाँ भी पूर्ण आध्यात्मिक हैं जिसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* से (५.३७) होती है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ तो अपने ही धाम गोलोक में राधा के साथ निवास करते हैं, जो अपनी ही आध्यात्मिक छवि के सदृश हैं और जो ह्लादिनी शक्ति से समन्वित हैं। उनकी संगिनी उनकी विश्वासपात्र सखियाँ हैं, जो उनके स्वरूप से युक्त हैं और जो सदैव आनन्दमय आध्यात्मिक रस से आप्लावित रहती हैं।"

गोपियाँ भी उन्हीं के आध्यात्मिक गुणों वाली (*निजरूपतया*) हैं क्योंकि वे कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की अंश हैं। न तो कृष्ण को, न ही गोपियों को पदार्थ से या भौतिक धारणा से कोई वास्ता है। इस भौतिक जगत में जीव भौतिक शरीर के भीतर बन्दी है और अज्ञानवश वह अपने को शरीर समझता है। पुरुष तथा स्त्री के बीच काम-वासनाएँ भौतिक हैं। भौतिकतावादी मनुष्य की कामेच्छाओं की तुलना कृष्ण से नहीं की जा सकती। आत्म-विज्ञान में समुन्नत हुए बिना कृष्ण तथा गोपियों के मध्य की कामेच्छाओं को नहीं समझा जा सकता। *चैतन्य-चरितामृत* में गोपियों की कामेच्छाओं की उपमा स्वर्ण से की गई है, किन्तु भौतिकतावादी व्यक्ति की कामेच्छाओं की उपमा लोहे से दी गई है। सोने और लोहे में कोई तुलना नहीं है। सारे जीव, चाहे जड़ हों या चेतन, कृष्ण के अंश हैं; अतएव उनमें भी मूलतः वैसी ही कामेच्छा पाई जाती है। किन्तु जब कामेच्छा को पदार्थ के माध्यम से व्यक्त किया जाता है तो वह गर्हित बन जाती है। जब जीव आध्यात्मिक रूप से उन्नत होता है और भवबन्धन से मुक्त हो जाता है, तो वह कृष्ण को सही ढंग से समझ सकता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.९) कहा गया है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! जो मेरे प्रकट होने तथा मेरे कार्यों के स्वभाव को जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद इस जगत में फिर से शरीर धारण नहीं करता, अपितु मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।"

जब मनुष्य कृष्ण के शरीर को तथा उनकी कामेच्छाओं को समझ लेता

है, तो उसे तुरन्त मुक्ति प्राप्त हो जाती है। भौतिक शरीर के भीतर बन्दी बद्ध आत्मा कृष्ण को नहीं समझ सकता। *भगवद्गीता* में (७.३) कहा गया है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

"हजारों व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति सिद्धि के लिए प्रयास करता है और जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो चुकी है उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे सही-सही जान पाता है।"

सिद्धये शब्द मुक्ति का सूचक है। भौतिक बन्धन से छूटने पर ही कृष्ण को समझा जा सकता है। जब कोई व्यक्ति कृष्ण को यथारूप में (*तत्त्वतः*) समझ लेता है, तो वह भौतिक शरीर के भीतर होते हुए भी आध्यात्मिक जगत में रहता है। इस विज्ञान को वही समझता है जो वास्तव में आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत है।

श्रील रूप गोस्वामी ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में (१.२.१८७) कहा है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

जब कोई व्यक्ति इस जगत में प्रेम तथा भक्तिपूर्वक कृष्ण की सेवा करना चाहता है तो वह इस जगत में कर्म करते हुए भी मुक्त हो जाता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से (१४.२६) होती है—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

"जो पूर्ण भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में नीचे नहीं गिरता, वह तुरन्त प्रकृति के गुणों को पार करके ब्रह्म-पद को प्राप्त होता है।"

भगवान् की प्रेमाभक्ति में लगे रहने से ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (१८.५४) कहा गया है—*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति*। जो आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है और जिसने ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त कर ली है, वह न तो शोच करता है न किसी

भौतिक वस्तु के लिए लालायित रहता है। यही आत्म-साक्षात्कार की अवस्था है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर *ब्रह्मभूत* अवस्था के दो विभाग मानते हैं—*स्वरूपगत* तथा *वस्तुगत*। जब कोई कृष्ण को वास्तव में समझ जाता है, किन्तु फिर भी भौतिक सम्बन्ध बनाये रहता है, तो वह अपने *स्वरूप* (मूल चेतना) में स्थित बतलाया जाता है। जब यह स्वरूप (मूल चेतना) पूर्णतया आध्यात्मिक होता है, तो इसे कृष्णभावनामृत कहा जाता है। जो ऐसी चेतना को प्राप्त होता है वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। वह चाहे जहाँ रहे, स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जब कृष्ण की कृपा से कोई मनुष्य शरीर तथा मन से पूर्ण तथा कल्मषरहित हो जाता है तो वह वास्तव में वृन्दावन में रहता है। यह अवस्था *वस्तुगत* है।

मनुष्य का चाहिए कि वह चेतना की *स्वरूपगत* अवस्था में अपने आध्यात्मिक कार्य सम्पन्न करे। उसे *चिन्मयी गायत्री* मन्त्र का भी जप करना चाहिए—*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* या *क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा। क्लीं कामदेवाय विद्महे पुष्प वाणाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्*। ये कामगायत्री या कामबीज मन्त्र हैं। मनुष्य को चाहिए कि प्रामाणिक गुरु से दीक्षा ले और कृष्ण की पूजा कामगायत्री या कामबीज मन्त्रों से करे।

कृष्णदास कविराज ने बतलाया है (चैतन्य-चरितामृत मध्य ८.१३८-१३९)—

वृन्दावनेऽप्राकृत नवीन मदन।
कामगायत्री कामबीजे याँर उपासना॥

पुरुष, योषित, किबा स्थावर-जंगम।
सर्व-चित्ताकर्षक, साक्षात् मन्मथ-मदन॥

जो व्यक्ति पूर्णतया शुद्ध है और गुरु द्वारा दीक्षाप्राप्त है वह इसी मन्त्र से भगवान् की पूजा करता है। वह कामबीज के साथ साथ कामगायत्री का जप करता है। जैसी कि *भगवद्गीता* में (१८.६५) पुष्टि की गई है, मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की पूजा करे जिससे वह सर्वआकर्षक कृष्ण द्वारा आकृष्ट होने योग्य रहे।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां
नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि
मे॥

"सदैव मेरा चिन्तन करो और मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे मित्र हो।"

चूँकि हर जीव कृष्ण का अंश है इसलिए कृष्ण स्वभावतः आकर्षक हैं। भौतिक आवरण के कारण कृष्ण के प्रति आकर्षण में रुकावट आती है। सामान्यतया इस जगत में मनुष्य कृष्ण द्वारा आकृष्ट नहीं होता, किन्तु भौतिक बन्धन से मुक्त होते ही वह आकृष्ट होता है। इसीलिए इस श्लोक में कृष्ण को *सर्वचित्ताकर्षक* कहा गया है। प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः कृष्ण द्वारा आकृष्ट होता है। यह आकर्षण हर एक के हृदय के भीतर रहता है और जब हृदय निर्मल हो जाता है, तो यह आकर्षण प्रगट हो पाता है (*चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणम्*)।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ-मन्मथः॥१४०॥

अनुवाद

"जब कृष्ण रासलीला नृत्य छोड़ कर चले गये तो गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हो गईं; किन्तु जब वे शोकमग्न थीं तो कृष्ण पीताम्बर धारण किये पुनः प्रकट हो गये। फूलों की माला पहने तथा मृदु मुस्कान करते वे कामदेव को भी आकृष्ट करने वाले थे। इस तरह कृष्ण गोपियों के बीच प्रकट हो गये।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (१०.३२.२) है।

नाना-भक्तेर रसामृत नानाविध हय।
सेइ सब रसामृतेर 'विषय' 'आश्रय'॥१४१॥

अनुवाद

"हर भक्त का कृष्ण के साथ एक विशेष प्रकार का रस होता है। किन्तु इन सारे दिव्य सम्बन्धों में भक्त पूजक (आश्रय) होता है और

कृष्ण पूज्य (विषय)।

अखिल रसामृतमूर्तिः प्रसृमर-रुचिरुद्ध-तारका-पालिः।
कलितश्यामाललितो राधाप्रेयान् विधूर्जयति॥१४२॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की जय हो। उन्होंने अपने आकर्षक स्वरूप के कारण तारका तथा पाली नामक गोपियों को विजित कर लिया और श्यामा तथा ललिता को अपने में लीन कर लिया। वे श्रीमती राधारानी के सर्वाधिक आकर्षक प्रेमी हैं और समस्त भक्तिरसों के लिए आनन्द के आगार हैं।

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति में विशेष रस होता है, जिससे वह कृष्ण से प्रेम करता है, और उनकी सेवा करता है। हर प्रकार के भक्त के लिए कृष्ण सर्वाधिक आकर्षक मूर्ति हैं। इसीलिए वे सभी प्रकार के भक्तों के लिए *अखिल रसामृत-मूर्ति* कहलाते हैं, फिर वह भक्त चाहे शान्त रस में हो, या दास्य, सख्य, माधुर्य या वात्सल्य रस में।

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *भक्तिरसामृत सिन्धु* का पहला श्लोक है।

शृङ्गार-रसराजमय-मूर्तिधर।
अतएव आत्मपर्थन्त-सर्व-चित्त-हर॥१४३॥

अनुवाद

"कृष्ण सारे रसों के लिए सर्वआकर्षक हैं, क्योंकि वे साक्षात् माधुर्य रस हैं। कृष्ण न केवल समस्त भक्तों के लिए, अपितु स्वयं के लिए भी आकर्षक हैं।

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्[illegible]न्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।
स्वच्छन्दः व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति॥१४४॥

अनुवाद

"सखियो! देखो न, श्रीकृष्ण किस तरह वसन्त ऋतु का आनन्द लूट रहे हैं। गोपियाँ उनके सारे अंगों का आलिंगन कर रही हैं, जिससे वे साक्षात् शृंगार लगते हैं। वे अपनी दिव्य लीलाओं से सारी गोपियों तथा अखिल सृष्टि को जीवन प्रदान करते हैं। उनके मृदु श्यामल हाथ तथा पाँव नीले कमलों की भाँति हैं, जिनसे उन्होंने कामदेव के लिए उत्सव की सृष्टि कर दी है।

तात्पर्य

यह श्लोक *गीतगोविन्द* का (१.११) है। *चैतन्य-चरितामृत* भी देखें (आदिलीला ४.२२४)।

लक्ष्मीकान्तादि अवतारेर हरे मन।
लक्ष्मी-आदि नारीगणेर करे आकर्षण॥१४५॥

अनुवाद

"वे संकर्षण के अवतार नारायण तथा लक्ष्मी के पति को भी आकर्षित करने वाले हैं। वे न केवल नारायण को अपितु नारायण की प्रेयसी लक्ष्मी समेत समस्त स्त्रियों को आकर्षित करते हैं।

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा, मयोपनीताभुवि धर्मगुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भवासुरान्, हत्वेह भूयस्त्वरयेतभन्ति मे॥१४६॥

अनुवाद

"कृष्ण तथा अर्जुन को सम्बोधित करते हुए महाविष्णु (महाविष्णु) ने कहा मैं आप दोनों को देखना चाहता था, इसलिए मैं ब्राह्मण-पुत्रों को चुरा लाया हूँ। आप दोनों इस जगत में धर्म की स्थापना करने के लिए अपनी-अपनी समस्त शक्तियों समेत प्रकट हुए हैं। आप सारे असुरों का वध करने के बाद, तुरन्त वैकुण्ठ लौट आयें।"

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* का (१०.८९.५८) है, जिसमें ब्राह्मण-पुत्रों की खोज करते हुए अर्जुन को कृष्ण भौतिक ब्रह्माण्ड से परे ले जाने की चेष्टा करते हैं।

महाविष्णु, जो भौतिक जगत से परे स्थित हैं, भी कृष्ण के स्वरूप से आकृष्ट थे। वास्तव में महाविष्णु ने द्वारका से ब्राह्मण के पुत्रों को जान कर चुरा लिया था, जिससे कृष्ण तथा अर्जुन उन्हें देखने आयें। यह श्लोक यह दिखाने के लिए उद्धृत किया गया है कि कृष्ण इतने आकर्षक हैं कि महाविष्णु भी उनसे आकर्षित थे।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणुस्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥१४७॥

अनुवाद

"हे प्रभु! हमें ज्ञात नहीं है कि किस तरह कालिय नाग को आपके चरणकमलों की धूल स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके लिए लक्ष्मीजी ने अन्य सारी इच्छाएँ त्याग कर तथा दृढ़ व्रत धारण करके शताब्दियों तक तपस्या की थी। निस्सन्देह हम नहीं जानतीं कि इस कालिया नाग को ऐसा अवसर किस तरह प्राप्त हुआ।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* है का (१०.१६.३६) जिसे कालिय असुर की पत्नियों ने कहा था।

आपन-माधुर्ये हरे आपनार मन।
आपना आपनि चाहे करिते आलिंगन॥१४८॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण की माधुरी इतनी आकर्षक है कि वह उन्हीं के मन को चुरा लेती है। इस तरह वे स्वयं को आलिंगन करना चाहते हैं।

अपरिकलितपूर्वः कश्चमत्कारकारी
स्फुरति मम गरीयानेष माधुर्यपूरः।
अयमहमपि हन्त प्रेक्ष्य यं लुब्धचेताः
सरभसमुपभोक्तुं कामये राधिकेव॥१४९॥

अनुवाद

''अपने द्वारका के महल के रत्नजटित खम्भों में अपनी ही परछाईं देख कर कृष्ण ने यह कहते हुए उसे आलिंगन करना चाहा, 'हाय! मैंने इसके पूर्व इतना सुन्दर पुरुष नहीं देखा। यह कौन है? इसे देख कर ही मैं श्रीमती राधारानी के समान इसका आलिंगन करने को उत्सुक हो रहा हूँ।

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव* से (८.३४) लिया गया है।

एइ त' संक्षेपे कहिल कृष्णेर स्वरूप।
एबे संक्षेपे कहि शुन राधा-स्वरूप॥१५०॥

अनुवाद

तब श्री रामानन्द राय ने कहा, ''इस तरह मैंने भगवान् के आदि स्वरूप को संक्षेप में कहा। अब मैं श्रीमती राधारानी की स्थिति का वर्णन करूँगा।

कृष्णेर अनन्त-शक्ति, ताते तिन—प्रधान।
'चिच्छक्ति' 'मायाशक्ति' 'जीवशक्ति'—नाम॥१५१॥

अनुवाद

''श्रीकृष्ण की अनन्त शक्तियाँ हैं, जिन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। ये हैं—आध्यात्मिक शक्ति, भौतिक शक्ति तथा तटस्था शक्ति जो जीवों के नाम से विख्यात है।

'अन्तरङ्गा', 'बहिरङ्गा', 'तटस्था' कहि य़रे।
अन्तरंगा 'स्वरूप शक्ति'—सबार उपरे॥१५२॥

अनुवाद

दूसरे शब्दों में—अंतरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था—ये सभी भगवान् की शक्तियाँ हैं, किन्तु अन्तरंगा शक्ति भगवान् की निजी शक्ति है और अन्य दो से बढ़ कर है।

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्या-कर्मसंज्ञाख्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥१५३॥

अनुवाद

"भगवान् विष्णु की आदि शक्ति श्रेष्ठ अर्थात् आध्यात्मिक है। जीव वास्तव में इसी श्रेष्ठ शक्ति से सम्बन्धित है; किन्तु एक अन्य शक्ति भी है जो भौतिक शक्ति कहलाती है। यह तीसरी शक्ति अज्ञान से पूर्ण होती है।

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु-पुराण* का (६.७.६१) है।

सच्चिदानन्दमय कृष्णेर स्वरूप।
अतएव स्वरूप-शक्ति हय तिन रूप॥१५४॥

अनुवाद

"मूलतः भगवान् कृष्ण सच्चिदानन्द-विग्रह हैं, अतएव उनकी निजी शक्ति—अन्तरंगा शक्ति—के तीन रूप हैं।

आनन्दांशे 'ह्लादिनी' सदंशे 'सन्धिनी'।
चिदंशे 'सम्वित्', य़ारे ज्ञान करि' मानि॥१५५॥

अनुवाद

"ह्लादिनी उनका आनन्द पक्ष है, सन्धिनी नित्यता पक्ष और सम्वित् ज्ञान पक्ष है।

ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंश्रये।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥१५६॥

अनुवाद

"हे प्रभु! आप समस्त दिव्य शक्तियों के दिव्य आगार हैं। आपकी ह्लादिनी, सन्धिनी तथा सम्वित् शक्तियाँ वास्तव में आपकी एक ही अन्तरंगा शक्ति हैं। बद्ध आत्मा, आध्यात्मिक होते हुए भी कभी हर्ष का अनुभव करता है, तो कभी पीड़ा का और कभी हर्ष और पीड़ा दोनों के मिश्रण का। पदार्थ का स्पर्श होने से ऐसा होता है। किन्तु आप इन समस्त गुणों से परे हैं; अतएव ये गुण आप में नहीं पाये जाते। आपकी

अपरा शक्ति पूर्णतया दिव्य है। आपके लिए हर्ष, पीड़ा या हर्षमिश्रित पीड़ा जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

तात्पर्य

यह उद्धरण *विष्णु पुराण* (१.१२.६९) का है।

कृष्णके आह्लादे, ता' ते नाम—'ह्लादिनी'।
सेइ शक्ति-द्वारे सुख आस्वादे आपनि॥१५७॥

अनुवाद

"ह्लादिनी शक्ति कृष्ण को दिव्य आनन्द प्रदान करती है। इसी ह्लादिनी शक्ति के माध्यम से कृष्ण समस्त आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन करते हैं।

सुखरूप कृष्ण करे सुख आस्वादन।
भक्तगणे सुख दिते 'ह्लादिनी'—कारण॥१५८॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण साक्षात् सुख होते हुए भी दिव्य सुख का आस्वादन करते हैं। उनके शुद्ध भक्त द्वारा आस्वाद किया गया सुख भी उनकी ह्लादिनी शक्ति से प्रकट होता है।"

ह्लादिनीर सार अंश, तार 'प्रेम' नाम।
आनन्दचिन्मयरस प्रेमेर आख्यान॥१५९॥

अनुवाद

"इस ह्लादिनी शक्ति का सबसे अनिवार्य अंग भगवत्प्रेम (प्रेम) है। फलस्वरूप भगवत्प्रेम की व्याख्या भी आनन्द से पूर्ण दिव्य रस है।

प्रेमेर परम-सार 'महाभाव' जानि।
सेइ महाभावरूपा राधा-ठाकुराणी॥१६०॥

अनुवाद

"भगवत्प्रेम का अनिवार्य अंग महाभाव कहलाता है और इस महाभाव का प्रतिनिधित्व करने वाली हैं श्रीमती राधारानी।

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका।
महाभावस्वरूपेयं गुणैरतिवरीयसी ॥१६१॥

अनुवाद

"वृन्दावन की गोपियों में श्रीमती राधारानी तथा अन्य गोपियाँ प्रमुख मानी जाती हैं। किन्तु जब हम गोपियों की परस्पर तुलना करते हैं, तो ऐसा लगता है कि श्रीमती राधारानी सबसे महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके असली स्वरूप से सर्वोत्तम प्रेमभाव व्यक्त होता है। अन्य गोपियों द्वारा अनुभूत प्रेमभाव श्रीमती राधारानी के प्रेमभाव की बराबरी नहीं कर सकता।"

तात्पर्य

यह उद्धरण श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* से (४.३) लिया गया है।

प्रेमेर 'स्वरूप-देह'—प्रेमविभावित।
कृष्णेर प्रेयसी-श्रेष्ठा जगते विदित ॥१६२॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का शरीर भगवत्प्रेम का वास्तविक रूप है। वे कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय संगिनी हैं, जो कि जगत-विदित है।

आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविताभि
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलाताभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१६३॥

अनुवाद

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ, जो अपने गोलोक-धाम में राधा के साथ निवास करते हैं। ये राधा उनके आध्यात्मिक स्वरूप के समान हैं, और ह्लादिनी-शक्ति रूपा हैं। उनकी विश्वासपात्र संगिनियाँ उनके स्वरूप के अंश हैं, और सदैव आनन्दमय रस से परिव्याप्त रहती हैं।

तात्पर्य

यह उद्धरण *ब्रह्म-संहिता* से (५.३७) है।

सेइ महाभाव हय 'चिन्तामणि-सार'।
कृष्णा-वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य ताँर॥१६४॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का वह महाभाव ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। उनका एकमात्र कार्य कृष्ण की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करना रहता है।

'महाभाव-चिन्तामणि' राधार स्वरूप।
ललितादि सखी—ताँर काव्यव्यूहरूप॥१६५॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी सर्वोत्तम आध्यात्मिक मणि हैं और अन्य गोपियाँ—यथा ललिता, विशाखा आदि—उनके आध्यात्मिक शरीर के अंश रूप हैं।

राधा-प्रति कृष्ण-स्नेह—सुगन्धि उद्वर्तन।
ता'ते अति सुगन्धि देह—उज्जवल-वरण॥१६६॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी का दिव्य शरीर उज्ज्वल कान्ति वाला है, तथा समस्त दिव्य सुगन्धि से पूर्ण है। उनके प्रति कृष्ण का स्नेह सुगन्धित उबटन के समान है।

तात्पर्य

सुगन्धि उद्वर्तन तमाम सुगन्धित पदार्थों तथा सुगन्धित तेल से बने उबटन का सूचक है। इस उबटन को सारे शरीर में लगाने से शरीर का मैल हट जाता है। श्रीमती राधारानी का शरीर स्वतः सुगन्धित है, किन्तु जब कृष्ण स्नेह रूपी उबटन से उनके शरीर की मालिश की जाती है, तो उनका शरीर दुगुना सुगन्धित तथा उज्ज्वल कान्ति से युक्त हो जाता है। कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीमती राधारानी के दिव्य शरीर का वर्णन यहीं से प्रारम्भ करते हैं। यह विवरण श्री रघुनाथ दास गोस्वामी कृत *प्रेमाम्भोजमरन्द* नामक

पुस्तक से लिया गया है। श्लोक १६५-१८१ इसी पुस्तक पर आधृत हैं। मूल संस्कृत का अनुवाद श्री भक्तिविनोद ठाकुर ने दिया है जो इस प्रकार है—

“कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम दिव्य भाव से पूर्ण है। यह उज्ज्वल मणि की तरह प्रतीत होता है। ऐसे दिव्य मणि से प्रकाशित राधारानी का शरीर सुगन्धि तथा कुमकुम से सज्जित किया जाता है। प्रातःकाल उनके शरीर को करुणा के अमृत से नहलाया जाता है, दोपहर के बाद वह यौवन के अमृत से, और सन्ध्या-समय साक्षात् कान्ति के अमृत से नहलाया जाता है। इस तरह स्नान करने से उनका शरीर चिन्तामणि की तरह उज्ज्वल हो जाता है। उनके विविध प्रकार के रेशमी वस्त्रों की तुलना उनकी सहज लज्जा से की जा सकती है। साक्षात् सौन्दर्य रूपी कुमकुम और माधुर्य रस रूपी श्याम कस्तूरी से सजाने पर उनका सौन्दर्य और भी निखर उठता है। इस तरह उनका शरीर विविध रंगों से सजाया जाता है। कुमकुम लाल होता है और कस्तूरी काली। उनके आभूषण मानो विविध भावों के लक्षण हों यथा—कम्प, अश्रु, हर्ष, आश्चर्य, खेद, गदगद वाणी, शारीरिक लालिमा, उन्माद तथा आलस्य। इस तरह सारा शरीर इन नौ मणियों से अलंकृत रहता है। तिस पर भी उनके शरीर का सौन्दर्य उनके दिव्य गुणों के कारण बढ़ जाता है, जो उनके शरीर पर फूलों की माला के समान छाए रहते है। कृष्ण के प्रति भाव *धीर* तथा *अधीर* कहलाता है। ऐसा भाव श्रीमती राधारानी के शरीर की ओढनी है, जिसे कपूर से सुसज्जित किया जाता है। कृष्ण के प्रति उनका क्रोध मानों उनके सिर की वेणी है, और सौभाग्य रूपी तिलक उनके सुन्दर मस्तक पर सुशोभित है। श्रीमती राधारानी के ज्ञान के कुण्डल कृष्ण के नाम तथा उनका यश हैं। उनके अधर कृष्ण के प्रेम भाव रूपी ताम्बूल के कारण सदैव लाल रहते हैं। उनकी आँखों में लगा अंजन कृष्ण-प्रेम के कारण उत्पन्न उनकी कुटिलता है। कृष्ण के साथ उनका हास-परिहास वह कपूर है, जिससे वे सुगन्धित बनी रहती हैं। वे अपने कमरे में गर्व की सुगन्धि से सोती हैं, और जब वे बिस्तर पर लेटती हैं तो उनके प्रेमभाव उनके वियोग रूपी हार के मणिमय लाकेट के समान होते हैं। उनके दिव्य स्तन कृष्ण के प्रति स्नेह तथा क्रोध रूपी साड़ी से ढके रहते हैं। उनके पास *कच्छपीवीणा* है जो यश तथा सौभाग्य तुल्य है, और अन्य गोपियों के मुखों तथा स्तनों को सुखाने वाली है। वे अपने

दोनों हाथ अपनी गोपी सखी के कन्धे पर रखती हैं, जो उनके यौवनपूर्ण सौन्दर्य के समान है और वे अनेक गुणों से सम्पन्न होते हुए भी कृष्ण रूपी कामदेव से पीड़ित रहती हैं। इस तरह वे पराजित हो जाती हैं। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी अपने मुँह में तिनका दबाकर श्रीमती राधारानी को सादर नमस्कार करते हैं। वे स्तुति करते हैं "हे गान्धर्विका! श्रीमती राधारानी! जिस प्रकार भगवान् कृष्ण किसी शरणागत को नहीं ठुकराते, उसी प्रकार आप भी मुझे नहीं ठुकरायें।" यही *प्रेमाम्भोज-मरन्द* का अनुवाद-सार है जिसे कविराज गोस्वामी ने उद्धृत किया है।

कारुण्यामृत-धाराय स्नान प्रथम।
तारुणामृत-धाराय स्नान मध्यम ॥१६७॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी पहला स्नान करुणा रूपी अमृत की धारा में करती हैं, और दूसरा स्नान युवावस्था के अमृत में करती हैं।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी सर्वप्रथम अपने शरीर में कृष्ण के स्नेह का उबटन लगाती हैं। तब वे करुणा रूपी जल में स्नान करती हैं। पौगण्ड अवस्था (५-१० वर्ष) पार करने पर श्रीमती राधारानी करुणा के रूप में प्रकट होती हैं। दूसरा स्नान दोपहर के समय तारुण्यामृत के अमृत में किया जाता है। यह उनके नवीन तरुणावस्था की वास्तविक अभिव्यक्ति है।

लावण्यामृत-धाराय तदुपरि स्नान।
निज-लज्जा-श्याम-पट्टसाटि-परिधान ॥१६८॥

अनुवाद

"दोपहर के स्नान के बाद श्रीमती राधारानी शारीरिक कान्ति के अमृत से पुनः स्नान करती हैं और तब लज्जा रूपी वस्त्र धारण करती हैं, जो काली रेशमी साड़ी जैसा होता है।

तात्पर्य

दोपहर के बाद किया जाने वाला स्नान पूर्ण सौन्दर्य के अमृत में किया जाता है। यह अमृत सौन्दर्य तथा कान्ति के निजी गुणों को बताने वाला

है। इस तरह विभिन्न प्रकार के जलों में तीन स्नान किये जाते हैं। तत्पश्चात् श्रीमती राधारानी दो प्रकार के वस्त्र पहनती हैं—अधोवस्त्र तथा ऊपरी वस्त्र। ऊपरी वस्त्र तो कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति है, और अधोवस्त्र लज्जा है। इस अधोवस्त्र की तुलना श्यामल साड़ी से की गई है, और उनका ऊपरी वस्त्र गुलाबी रंग का है। यह गुलाबी वस्त्र कृष्ण के प्रति उनका स्नेह तथा आकर्षण है।

कृष्ण अनुराग द्वितीय अरुण-वसन।
प्रणय-मान-कञ्चूलिकाय वक्ष आच्छादन॥१६९॥

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति श्रीमती राधारानी का स्नेह उनका ऊपरी वस्त्र है, जिसका रंग गुलाबी है। वे अपने स्तनों को एक दूसरे वस्त्र से ढकती हैं, जो कृष्ण के प्रति स्नेह तथा क्रोध से युक्त होता है।

सौन्दर्य—कुंकुम, सखी-प्रणय चन्दन।
स्मितकान्ति—कर्पूर, तिने—अङ्गे विलेपन॥१७०॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के सौन्दर्य की उपमा कुंकुम नामक गुलाबी चूर्ण से की जाती है। अपनी सखियों के प्रति उनका स्नेह चन्दन-लेप की तरह है, और उनकी हँसी की मधुरता कपूर के समान है। इन सबों को मिलाकर तब उनके शरीर पर लेप किया जाता है।

कृष्णेर-उज्ज्वल रस—मृगमद-भर।
सेइ मृगमदे विचित्रित कलेवर॥१७१॥

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति माधुर्य रस मानो कस्तूरी की प्रचुरता है। इसी कस्तूरी से राधारानी का सम्पूर्ण शरीर सजाया जाता है।

प्रच्छन्न-मान वाम्य—धम्मिल्ल-विन्यास।
'धीराधीरात्मक' गुण—अङ्गे पटवास॥१७२॥

अनुवाद

प्रच्छन्न क्रोध तथा कुटिलता उनके केश विन्यास हैं। ईर्ष्या के कारण

उत्पन्न क्रोध का गुण उनके शरीर पर पड़े रेशमी आवरण के तुल्य है।

राग-ताम्बूलरागे अधर उज्ज्वल।
प्रेमकौटिल्य—नेत्रयुगले कज्जल॥१७३॥

अनुवाद

"कृष्ण के प्रति उनकी अनुरक्ति उनके चमकीले होठों पर पान का लाल रंग है। उनकी प्रेम-कुटिलता उनकी आँखों में लगा काजल है।

'सुदीप्त-सात्त्विक' भाव, हर्षादि सञ्चारी।
एइ सब भाव-भूषण सब-अङ्गे भरि'॥१७४॥

अनुवाद

"उनके शरीर में सजे हुए गहने दीप्तिवान सात्विक भाव हैं, और इन स्थायी भावों में हर्ष प्रमुख है। ये सारे भाव उनके शरीर-भर में गहनों के तुल्य हैं।

'किलकिञ्चितादि'-भाव-विंशति भूषित।
गुणश्रेणी-पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित॥१७५॥

अनुवाद

"ये शरीर के गहने किलकिञ्चित से प्रारम्भ होने वाले बीस प्रकार के भाव-लक्षण हैं। उनके दिव्य गुण उनके सारे शरीर पर लटक रही फूल की मालाएँ हैं।

तात्पर्य

किलकिञ्चित आदि बीस विभिन्न भावों का वर्णन इस प्रकार है—*भाव, हाव* तथा *हेला* शरीर से सम्बन्धित होते हैं। शरीर से सम्बन्धित भाव शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भत, औदार्य तथा धैर्य हैं और स्वभाव से सम्बन्धित भाव हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति तथा विभ्रम। किलकिञ्चित, मोट्टायित तथा कुट्टमित भी ऐसे ही भाव हैं।

फूल की माला श्रीमती राधारानी के गुण को प्रदर्शित करती है। यह माला तीन भागों में बँटी है—मानसिक, मौखिक तथा शारीरिक। क्षमा तथा करुणा के गुण मानसिक हैं। उनकी सुमधुर बातें मौखिक हैं और आयु,

सौन्दर्य, कान्ति तथा दीप्ति—ये शारीरिक गुण हैं।

सौभाग्य-तिलक चारु-ललाटे उज्ज्वल।
प्रेम-वैचित्त्य—रत्न, हृदय—तरल॥१७६॥

अनुवाद

"उनके मस्तक पर सौभाग्य का तिलक है। उनका प्रेम मणितुल्य है और उनका हृदय ही तरल (लाकेंट) है।

मध्य-वयस, सखी-स्कन्धे कर-न्यास।
कृष्णलीला मनोवृत्ति-सखी आशपाश॥१७७॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी की सखियाँ (गोपियाँ) उनकी मानसिक क्रियाएँ हैं जो कृष्ण-लीलाओं पर ही केन्द्रित रहती हैं। वे अपना हाथ अपनी-अपनी युवावस्था की प्रतीक सखी के कन्धे पर रखती हैं।

तात्पर्य

राधारानी की अष्ट सखियाँ कृष्ण-लीला से सम्बन्धित हर्ष की विविध प्रकार हैं। श्रीकृष्ण की इन लीलाओं के साथ के अन्य कार्यकलाप गोपिकाओं की सहायिकाओं की सूचक हैं।

निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्यङ्क।
ताऽते वसि' आछे, सदा चिन्ते कृष्णसङ्ग॥१७८॥

अनुवाद

श्रीमती राधारानी की सेज साक्षात् गर्व है जो उनकी शारीरिक सुगन्धि के धाम में स्थित है। वे सदैव उसमें आसीन होकर कृष्ण के संग के लिए सोचती रहती हैं।

कृष्ण-नाम-गुण-यश—अवतंस काणे।
कृष्ण-नाम-गुण-यश-प्रवाह-वचने॥१७९॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी के कान की बालियाँ भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों की द्योतक हैं। भगवान् कृष्ण के नाम, यश तथा गुणों

की महिमा उनकी वाणी को आप्लावित किये रहती है।

कृष्णके कराय श्यामरस-मधु पान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥१८०॥

अनुवाद

"श्रीमती राधारानी कृष्ण को माधुर्य रस का मधु पीने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। फलतः वे कृष्ण की सारी काम-वासनाओं को पूरा करने में लगी रहती हैं।

कृष्णेर विशुद्ध-प्रेम-रत्नेर आकर।
अनुपम-गुणगण-पूर्ण कलेवर॥१८१॥

अनुवाद

श्रीमती राधारानी कृष्ण-प्रेम रूपी अमूल्य मणियों से पूर्ण खान के सदृश हैं। उनका दिव्य शरीर अद्वितीय आध्यात्मिक गुणों से पूर्ण है।

का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुयमगुण राधिकैका न चान्या।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छापूर्त्यै प्रभवति हरे राधिकैका न चान्या॥१८२॥

अनुवाद

"यदि कोई पूछे कि कृष्ण-प्रेम का उद्गम कहाँ है तो उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी में। कृष्ण को सर्वाधिक प्रिय कौन है? पुनः उत्तर होगा एकमात्र श्रीमती राधारानी। अन्य कोई नहीं। श्रीमती राधारानी के बाल अत्यन्त घुंघराले हैं, उनकी दोनों आँखें चंचल हैं और उनके स्तन कठोर हैं। चूँकि श्रीमती राधारानी में सारे दिव्य गुण प्रकट हैं, अतएव अकेले वे ही कृष्ण की सारी इच्छाएँ पूरी करने में समर्थ हैं—अन्य कोई नहीं।"

तात्पर्य

यह श्लोक कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत *श्री गोविन्द लीलामृत* से (११.१२२) लिया गया है। प्रश्नोत्तर के रूप में इस श्लोक में श्रीमती राधारानी की महिमा का वर्णन हुआ है।

ग़ाँर सौभाग्य-गुण वाञ्छे सत्यभामा।
ग़ाँर ठाञि कलाविलास शिखे व्रज-रामा॥१८३॥
ग़ाँर सौन्दर्यादि-गुण वाञ्छे लक्ष्मी-पार्वती।
ग़ाँर पतिव्रता-धर्म वाञ्छे अरुन्धती॥१८४॥

अनुवाद

"यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की रानियों में से सत्यभामा भी श्रीमती राधारानी के सौभाग्य और उत्तम गुणों के लिए सिहाती रहती हैं। सारी गोपियाँ श्रीमती राधारानी से सजने की कला सीखती हैं और विष्णु-पत्नी लक्ष्मी तथा शिव-पत्नी पार्वती भी उनके सौन्दर्य और गुणों के लिए सिहाती हैं। वशिष्ट की पतिव्रता पत्नी अरुन्धती भी श्रीमती राधारानी के पातिव्रत्य तथा धार्मिक नियमों का अनुकरण करना चाहती हैं।

ग़ाँर सद्गुण-गणने कृष्ण न पाय पार।
ताँर गुण गणिबे केमने जीव छार॥१८५॥

अनुवाद

"यहाँ तक कि स्वयं भगवान् कृष्ण श्रीमती राधारानी के दिव्य गुणों का पार नहीं पा सकते, तो भला तुच्छ जीव किस प्रकार उनकी गिनती कर सकता है?"

प्रभु कहे,—जानिलुँ कृष्ण-राधा-प्रेम-तत्त्व।
शुनिते चाहिये दुँहार विलास-महत्त्व॥१८६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब जाकर मैं राधा तथा कृष्ण के प्रेम की सचाई को समझ सकता हूँ। तो भी मैं सुनने का इच्छुक हूँ कि वे दोनों ऐसे प्रेम का भोग किस तरह करते हैं।"

राय कहे,—कृष्ण हय 'धीर-ललित'।
निरन्तर कामक्रीडा—ग़ाँहार चरित॥१८७॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "भगवान् कृष्ण धीरललित हैं, क्योंकि वे अपनी प्रेयसी को वश में रख सकते हैं। इस तरह उनका एकमात्र

व्यापार है इन्द्रियतृप्ति का भोग करना।

तात्पर्य

यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति भौतिक जगत की इन्द्रियतृप्ति जैसी नहीं है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति स्वर्ण जैसी है और उस इन्द्रियतृप्ति का जो विकृत रूप इस भौतिक जगत में पाया जाता है वह लोहे के तुल्य है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण निर्विशेष नहीं हैं। उनमें वे सारी इच्छाएँ रहती हैं, जो इस भौतिक जगत में विकृत रूप में प्रकट होती हैं। किन्तु उनके गुण भिन्न हैं—एक आध्यात्मिक है और दूसरा भौतिक। जिस तरह जीवन और मृत्यु में अन्तर है, उसी तरह आध्यात्मिक और भौतिक इन्द्रियतृप्ति में अन्तर होता है।

विदग्धो नवतारुण्यः परिहास-विशारदः।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः॥१८८॥

अनुवाद

"धीरललित वह व्यक्ति है, जो अत्यन्त चालाक होता है, सदैव तरुण रहता है, परिहास करने में दक्ष होता है, चिन्तारहित होता है और जो अपनी प्रेयसियों को वश में रखता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत सिन्धु* (२.१.२३०) का है।

रात्रि-दिन कुञ्जे क्रीड़ा करे राधा-सङ्गे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीड़ा-रङ्गे॥१८९॥

अनुवाद

"भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन के कुंजों में श्रीमती राधारानी के संग अहर्निश क्रीड़ा करते हैं। इस तरह उनकी कैशोर अवस्था राधारानी के साथ क्रीड़ा में पूरी हुई।

वाचा सूचितशर्वरीरतिकला-प्रागल्भ्यया राधिकां
व्रीडा-कुञ्चित-लोचनां विरचयन्नग्रे सखीनामसौ।

तद्वक्षोरुहचित्रकेलिमकरीपाण्डित्यपारं गतः
कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः॥१९०॥

अनुवाद

"इस तरह भगवान् कृष्ण ने गत रात्रि की रति-क्रीड़ा का वर्णन किया। इससे राधारानी ने लज्जावश अपनी आँखें बन्द कर लीं। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्रीकृष्ण ने उनके स्तनों पर तरह-तरह की नगरिनियाँ चित्रित कर दीं। इस तरह वे समस्त गोपियों के लिए अत्यन्त कुशल चित्रकार बन गये। ऐसी लीलाओं में भगवान् ने अपने कैशोर को सफल बनाया।"

तात्पर्य

यह उद्धरण भी *भक्तिरसामृत सिन्धु* (२.१.२३१) का है।

प्रभु कहे,—एहो हय, आगे कह आर।
राय कहे,—इहा वइ बुद्धि-गति नाहि आर॥१९१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "यह तो ठीक है किन्तु और आगे कहिये।" तब रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मैं नहीं समझता कि मेरी बुद्धि इससे आगे जा सकती है।"

ग्रेबा 'प्रेम-विलास-विवर्त' एक हय।
ताहा शुनि' मार सुख हय, कि ना हय॥१९२॥

अनुवाद

तब रामानन्द राय ने महाप्रभु को बतलाया "प्रेम विलासविवर्त नामक एक अन्य विषय है। चाहें तो आप मुझसे सुन सकते हैं, किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आप सुखी होंगे अथवा नहीं।

तात्पर्य

ये बातें हमारे ज्ञानवर्धन के लिए दी गई हैं जो श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के *अमृत-प्रवाह-भाष्य* के अनुसार हैं। संक्षेपतः, महाप्रभु ने रामानन्द राय से कहा, "हे रामानन्द! आपने श्रीमती राधारानी तथा कृष्ण के जीवन-लक्ष्य और लीलाओं के विषय में जो व्याख्या की वह निश्चित रूप से सत्य

है। किन्तु फिर भी, यदि कुछ और हो तो उसे भी कहें।" इस पर रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी समझ में तो अब और कुछ कहने को शेष नहीं रहा, किन्तु एक विषय और है, जिसे मैं आपको बतला सकता हूँ और वह है *प्रेमविलासविवर्त*। किन्तु मैं कह नहीं सकता कि इससे आपको सुख मिलेगा अथवा नहीं।"

एत बलि' आपन-कृत गीत एक गाइल।
प्रेमे प्रभु स्वहस्ते ताँर मुख आच्छादिल॥१९३॥

अनुवाद

यह कह कर रामानन्द राय ने स्वरचित गीत गाना शुरू किया, किन्तु महाप्रभु ने भावावेश में आकर तुरन्त ही अपने हाथ से रामानन्द राय का मुँह बन्द कर दिया।

तात्पर्य

अब श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के बीच जिन विषयों की चर्चा होने जा रही है, उन्हें न तो भौतिकतावादी कवि समझ सकता है, न उन्हें बुद्धि या अनुभूति से समझा जा सकता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि आध्यात्मिक रस की अनुभूति तभी हो सकती है, जब मनुष्य सतोगुण से ऊपर दिव्य पद पर स्थित हो। यह पद *विशुद्ध सत्त्व* कहलाता है (*सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितम्*)। शुद्ध सत्त्व भौतिक जगत के क्षेत्र से परे है और इसकी अनुभूति न तो शारीरिक इन्द्रियों द्वारा हो पाती है, न मानसिक चिन्तन द्वारा। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म मन के साथ हमारी पहचान आध्यात्मिक ज्ञान से भिन्न होती है। चूँकि बुद्धि तथा मन भौतिक हैं, अतएव श्री राधा-कृष्ण का प्रेम उनकी अनुभूति के परे है। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*—जब हम सारी उपाधियों से मुक्त होते हैं और हमारी इन्द्रियाँ भक्ति-विधि द्वारा पूर्णतया निर्मल हो जाती हैं, तब हम परम सत्य के इन्द्रिय-कार्यों को समझ सकते हैं (*हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते*)।

आध्यात्मिक इन्द्रियाँ भौतिक इन्द्रियों से परे हैं। भौतिकतावादी किसी भौतिक विविधता का निषेध ही सोच सकता है, वह आध्यात्मिक विविधता नहीं समझ सकता। वह इतना ही सोच सकता है कि आध्यात्मिक विविधता भौतिक विविधता की विरोधिनी है, और वह निषेध या शून्य है। किन्तु ऐसी अनुभूति आत्म-साक्षात्कार के पास भी नहीं फटक पाती। स्थूल शरीर

तथा सूक्ष्म मन के अद्भुत कार्यकलाप सदैव अपूर्ण रहते हैं। वे आध्यात्मिक ज्ञान की कोटि से निम्न और क्षणभंगुर हैं। आध्यात्मिक रस अद्भुत होता है और *पूर्ण, शुद्ध नित्यमुक्त* कहा जाता है। जब हम अपनी भौतिक इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाते, तब अवश्य ही खेद और उलझन होती है। इसे ही *विवर्त* कहा जा सकता है। किन्तु आध्यात्मिक जीवन में दुख, उन्मत्तता या अपूर्णता नहीं पाई जाती। श्रीमती राधारानी और कृष्ण के आध्यात्मिक कार्यकलापों को समझने में श्री रामानन्द दक्ष थे और जब उन्होंने महाप्रभु से पूछा कि वे उनके आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति की पुष्टि करते हैं या नहीं, उसी समय यह आध्यात्मिक अनुभव भी महाप्रभु के समक्ष रखा।

इस सम्बन्ध में तीन पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। एक तो भक्तदास बाउल कृत *विवर्त-विलास*, दूसरी जगदानन्द-प्रणीत *प्रेमविवर्त* और तीसरी श्री रामानन्द राय कृत *प्रेमविलास-विवर्त*। इनमें से *विवर्त-विलास* अन्य दो पुस्तकों से सर्वथा भिन्न है। भले ही कोई शोधार्थी इस पुस्तक का लाभ उठाये, किन्तु यदि वास्तव में किसी को चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय से डाक्टरेट उपाधि लेनी हो तो उसे सर्वप्रथम समस्त उपाधियों से मुक्त होना होगा (*सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*)। जो अपनी पहचान अपने भौतिक शरीर से करता है, वह श्री रामानन्द राय तथा महाप्रभु की वार्ता को नहीं समझ सकता। मनुष्य निर्मित धार्मिक शास्त्र तथा दिव्य दार्शनिक वार्ताएँ सर्वथा भिन्न होती हैं—दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। इस विषय का वर्णन श्रीमन् मध्वाचार्य ने बड़े परिश्रमपूर्वक किया है। चूँकि भौतिक दार्शनिक *विलास-विवर्त* के भौतिक प्रेम में स्थित होते हैं, अतएव वे आध्यात्मिक *प्रेम-विलास-विवर्त* को नहीं समझ सकते। वे सुई के छेद से हाथी नहीं निकाल सकते। इसी तरह ज्ञानी भी आध्यात्मिक हाथी को नहीं पकड़ पाते। यह तो मेढ़की द्वारा समुद्र की थाह लेने जैसा प्रयास है। भौतिकतावादी दार्शनिक तथा सहजिया लोग रामानन्द राय तथा महाप्रभु के बीच राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित वार्ता को नहीं समझ सकते। निर्विशेषवादी या प्राकृत सहजियों की एकमात्र प्रवृत्ति निर्विशेषवाद की ओर देखना है। वे आध्यात्मिक बात नहीं समझ सकते। इसीलिए जब रामानन्द राय अपने बनाये श्लोक सुनाने लगे तो श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनके मुँह को अपने हाथ से बन्द कर दिया।

पहिलेहि राग नयनभङ्गे भेल।
अनुदिन बाढ़ल, अवधि ना गेल॥
ना सो रमण, ना हम रमणी।
दुहुँ-मन मनोभव पेषल जानि'॥
ए सखि, से सब प्रेमकाहिनी।
कानुठामे कहबि बिछुरल जानि'॥
ना खोजलुँ दूती, ना खोजलुँ आन्।
दुहुँकेरि मिलने मध्य त पाँचबान॥
अब् सोहि विराग, तुँहु भेलि दूती।
सु-पुरुख-प्रेमकि ऐछन रीति॥१९४॥

अनुवाद

" 'हाय! हमारे मिलन के पूर्व चितवन के आदान-प्रदान से प्रारम्भिक अनुरक्ति हुई थी। इस तरह अनुरक्ति विकसित होती रही। यह अनुरक्ति क्रमशः बढ़ने लगी है, और अब इसका कोई वारापार नहीं है। अब वही अनुरक्ति हमारे बीच प्राकृतिक क्रम बना चुकी है। ऐसा नहीं है कि यह भोक्ता कृष्ण के कारण है, न ही मुझ भोज्या के कारण है। यह अनुरक्ति हमारे पारस्परिक मिलन से ही सम्भव हो सकी है। आकर्षण का यह आदान-प्रदान मनोभव अर्थात् कामदेव कहलाता है। मेरा और कृष्ण का मन मिल कर एक हो गया है। अब इस विरह की घड़ी में प्रेम-व्यापारों की व्याख्या कर पाना कठिन है। हे सखी! सम्भव है कृष्ण ये सारी बातें भूल चुके हों। तुम समझ सकती हो, इसलिए यह संदेश उन तक ले जा सकती हो। किन्तु प्रथम मिलन के समय हम दोनों के बीच न तो कोई दूत था, न ही मैंने किसी से कहा था कि वह उनके पास जाए। कामदेव के पाँच बाण ही हमारे माध्यम थे। अब इस विरह की अवधि में आकर्षण ने दूसरी भावदशा प्राप्त कर ली है। हे सखी! मेरी दूती बनो क्योंकि सुन्दर पुरुष से प्रेम करने का यही परिणाम होता है।'

तात्पर्य

रामानन्द राय ने पहले इन श्लोकों की रचना की और इन्हें वे गाया करते

थे। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का सुझाव है कि भोग के समय अनुरक्ति की तुलना साक्षात् कामदेव से की जा सकती है। किन्तु वियोग के समय कामदेव अत्युच्च प्रेम का दूत बन जाता है। यही *प्रेम विलास विवर्त* कहलाता है। जब वियोग होता है तो स्वयं भोग दूत का काम करता है और श्रीमती राधारानी ने ऐसे दूत को मित्र (सखी) कहा है। इस आदान-प्रदान का सार सीधा-सादा है—वियोग तथा संयोग दोनों ही में प्रेम आस्वाद्य है। जब श्रीमती राधारानी कृष्ण के प्रेम में तल्लीन थीं, तो वे श्यामतमाल वृक्ष को कृष्ण समझ बैठीं और उसे आलिंगन कर लिया। ऐसी भूल *प्रेम-विवर्त-विलास* कहलाती है।

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वैदेर्विलाप्य क्रमाद्
युञ्जन्नद्रि-निकुञ्ज-कुञ्जरपते निर्धूत-भेदभ्रमम्।
चित्राय स्वयमन्वरञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे
भूयोभिर्नव-राग-हिङ्गुलभवैः शृङ्गार-कारुः कृती॥१९५॥

अनुवाद

" 'हे प्रभु! आप गोवर्धन पर्वत के जंगल में रहते हैं और आप हाथियों के राजा की तरह माधुर्य प्रेम की कला में पटु हैं। हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! आपका हृदय तथा श्रीमती राधारानी का हृदय दोनों लाख की तरह हैं और वे अब द्रवित हो पसीना बन गये हैं। इसलिए अब आप में तथा राधारानी में कोई अन्तर नहीं कर सकता। अब आपने अपने नवप्रसूत स्नेह को, जो सिन्दूर की तरह है, अपने द्रवित हृदय से मिश्रित कर दिया है और सारे विश्व के कल्याण हेतु इस ब्रह्माण्ड रूपी प्रासाद के भीतर दोनों के हृदयों को रंग दिया है।' "

तात्पर्य

श्री रामानन्द राय द्वारा उद्धृत यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *उज्ज्वल नीलमणि* (१४.१५५) का है।

प्रभु कहे—'साध्यवस्तुर अवधि' एइ हय।
तोमार प्रसादे इहा जानिलुँ निश्चय॥१९६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रामानन्द राय द्वारा सुनाये गये इन श्लोकों की पुष्टि यह कह कर की, ''मानव-जीवन के लक्ष्य की यही सीमा है। केवल आपकी कृपा से मैं निश्चित रूप से इसे समझ सका।''

'साध्यवस्तु' 'साधन' विनु केह नाहि पाय।
कृपा करि' कह, राय, पाबार उपाय॥१९७॥

अनुवाद

''साधन के बिना जीवन-लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अब आप मुझ पर कृपा करके उस उपाय को बतलायें, जिससे यह जीवन-लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।''

राय कहे,—ये़इ कहाओ, सेइ कहि वाणी।
कि कहिये भाल-मन्द, किछुइ ना जानि॥१९८॥

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, ''मैं क्या कह रहा हूँ, यह नहीं जानता, किन्तु अच्छा या बुरा जो भी है, उसे आप ही मुझसे कहलवा रहे हैं। मैं तो उसी सन्देश को दोहरा रहा हूँ।

त्रिभुवन-मध्ये ऐछे हय कोन् धीर।
ये़ तोमार माया-नाटे हइबेक स्थिर॥१९९॥

अनुवाद

''तीनों लोकों में ऐसा कौन अविचलित व्यक्ति होगा जो आपकी विभिन्न शक्तियों के अदलने-बदलने पर स्थिर रह सके?'

मोर मुखे वक्ता तुमि, तुमि हओ श्रोता।
अत्यन्त रहस्य, शुन, साधनेर कथा॥२००॥

अनुवाद

''वास्तव में आप मेरे मुँह से बोलने वाले हैं और साथ ही सुनने वाले भी हैं। यह अत्यन्त रहस्यात्मक है। जो भी हो, कृपा करके

उस व्याख्या को सुनें जिससे लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

तात्पर्य

श्रील सनातन गोस्वामी ने हमें यह सलाह दी है कि वैष्णव के मुख से ही कृष्ण के विषय में सुना जाय। उन्होंने अवैष्णव से सुनने के लिए स्पष्ट मना किया है—

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम्।
श्रवणं नैव कर्त्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥

पद्म-पुराण का उद्धरण देते हुए उन्होंने आगाह किया है कि कोई अवैष्णव कितना ही बड़ा पण्डित क्यों न हो, उससे कृष्ण के विषय में न सुना जाय। जिस तरह साँप के होठों के स्पर्श से दूध जहरीला हो जाता है, उसी तरह अवैष्णव द्वारा दिया गया कृष्ण विषयक प्रवचन भी विषैला होता है। किन्तु वैष्णव द्वारा दिया गया प्रवचन आध्यत्मिक रूप से शक्तिप्रद होता है, क्योंकि वह भगवान् के शरणागत होता है। *भगवद्गीता* में (१०.१०) भगवान् कृष्ण कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

"जो निरन्तर मेरी भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं वह बुद्धि देता हूँ, जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।" जब शुद्ध वैष्णव बोलता है तो वह सही-सही बोलता है। यह कैसे? क्योंकि उसकी वाणी को स्वयं कृष्ण हृदय के भीतर से व्यवस्थित करते हैं। श्रील रामानन्द राय यह आशीर्वाद श्री चैतन्य महाप्रभु से प्राप्त करते हैं, इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि वे जो कुछ भी बोल रहे हैं, उनकी बुद्धि से नहीं निकल रहा, प्रत्युत श्री चैतन्य महाप्रभु से निकल रहा है। *भगवद्गीता* (१५.१५) के अनुसार—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्॥

"मैं हर एक के हृदय में स्थित हूँ और मुझी से स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति

प्राप्त होती है। सारे वेदों से मुझे जाना जाता है, मैं ही वेदान्त का प्रणेता हूँ, और मैं सारे वेदों का ज्ञाता हूँ।"

सारी बुद्धि हर मनुष्य के भीतर स्थित परमात्मा से उद्भूत होती है। अभक्तगण भगवान् से इन्द्रियतृप्ति की याचना करना चाहते हैं इसलिए वे माया के वशीभूत हो जाते हैं। किन्तु भगवान् द्वारा निर्देशित होने से भक्त योगमाया के वश में रहता है। इसीलिए एक भक्त तथा एक अभक्त के कथनों में जमीन-आसमान का अन्तर रहता है।

राधाकृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर।
दास्य-वात्सल्यादि-भावे ना हय गोचर॥२०१॥

अनुवाद

"राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ अत्यन्त गूढ़ हैं। उन्हें दास्य या वात्सल्य रसों के माध्यम से नहीं समझा जा सकता।

सबे एक सखीगणेर इहाँ अधिकार।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥२०२॥

अनुवाद

"वास्तव में एकमात्र गोपियों को यह अधिकार है कि वे इन दिव्य लीलाओं की प्रशंसा करें और वे ही इन लीलाओं का विस्तार कर सकती हैं।

सखी विना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय॥२०३॥

अनुवाद

"गोपियों के बिना राधाकृष्ण की लीलाओं का संवर्धन नहीं हो सकता। केवल उन्हीं के सहयोग से इन लीलाओं का विस्तार होता है। रसास्वादन भी उन्हीं का कार्य है।

सखी विना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे ये ताँरे करे अनुगति॥२०४॥

राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥२०५॥

अनुवाद

"गोपियों की सहायता के बिना इन लीलाओं में प्रवेश नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति गोपी भाव में भगवान् की पूजा करता है और गोपियों के पदचिह्नों पर चलता है, वही श्री श्री राधाकृष्ण की सेवा वृन्दावन के कुंजों में कर सकता है। तभी वह राधा और कृष्ण के माधुर्य रस को समझ सकता है। इसके अतिरिक्त इसे समझने का कोई अन्य उपाय नहीं है।

तात्पर्य

भक्ति उपाय है भगवद्धाम वापस जाने का, किन्तु सबों में भगवत्सेवा करने की रुचियाँ एक-सी नहीं होतीं। कोई दास्य रस में भक्ति करता है, तो कोई सख्य या वात्सल्य रस में। किन्तु इन सबों के द्वारा भगवान् की माधुर्य रस में सेवा नहीं की जा सकती। ऐसी सेवा कर पाने के लिए गोपियों के सखी-भाव का अनुसरण करना होगा। तभी माधुर्य रस को समझा जा सकता है।

उज्ज्वल नीलमणि में श्रील रूप गोस्वामी का उपदेश है—

प्रेमलीलाविहाराणां सम्यग् विस्तारिका सखी
विश्रम्भरत्नपेटी च।

सखी ही गोपियों में कृष्ण के माधुर्य रस का तथा उनके भोग का विस्तार करने वाली होती है। वह विश्वासपात्र गोपी होती है। ऐसी सहायिकाएँ कृष्ण के विश्वास के लिए रत्न-स्वरूप होती हैं। सखियों के वास्तविक कार्य का विवरण *उज्ज्वल नीलमणि* में प्राप्य है—

मिथः प्रेमगुणोत्कीर्तिस्तयोरासक्तिकारिता।
अभिसारो द्वयोरेव सख्याः कृष्णे समर्पणम्॥

नर्माश्वासननेपथ्यं हृदयोद्घाटपाटवम्।
छिद्र संवृतिरेतस्याः पत्यादेः परिवाचना॥

शिक्षा संगमनं काले सेवनं व्यजनादिभिः।
तयोर्द्वयोरुपालम्भः सन्देशप्रेषणं तथा॥

नायिकाप्राणसंरक्षा प्रयत्नाद्याः सखी-क्रियाः॥

कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में कृष्ण नायक होते हैं, और राधिका नायिका। सखी का पहला कार्य है नायक तथा नायिका दोनों की महिमा का बखान करना। दूसरा काम है ऐसी परिस्थिति ला देना कि नायक नायिका के प्रति और नायिका नायक के प्रति आकृष्ट हो। उसका तीसरा काम है उन्हें इस तरह प्रेरित करना कि वे एक-दूसरे के निकट आयें। उसका चौथा काम कृष्ण की शरण में जाना, पाँचवा हर्षमय वातावरण की सृष्टि करना, छठा उनकी लीलाओं को भोग करते रहने का आश्वास देना, सातवाँ नायक तथा नायिका को साजना-सँवारना, आठवाँ उन्हें अपनी इच्छाएँ व्यक्त करने का मार्ग बताना, नौवाँ नायिका के दोषों को छिपाना, दसवाँ उनके पतियों तथा परिवार वालों को धोखा देना, ग्यारहवाँ शिक्षा देना, बारहवाँ उचित समय पर नायक-नायिका को मिलाना, तेरहवाँ नायक-नायिका के ऊपर पंखा झालना, चौदहवाँ नायक-नायिका को कभी-कभी डाँटना (तिरस्कार), पंद्रहवाँ बातें चालू कराना और सोलहवाँ कार्य है सभी प्रकार से नायिका की रक्षा करना।

भौतिक सहजियागण राधा तथा कृष्ण की लीलाओं को ठीक से न समझ सकने के कारण किसी प्रमाण के बिना अपनी निजी जीवन-शैली ढालते हैं। ऐसे सहजिया *सखीभेकी* या कभी-कभी *गौरनागरी* कहलाते हैं। उनका विश्वास है कि यह भौतिक शरीर, जो कुत्तों तथा सियारों का भक्ष्य है, कृष्ण द्वारा ही भोग्य है। फलतः वे कृष्ण को आकृष्ट करने के लिए अपने को सखियाँ मान कर अपना शरीर साजते-सँवारते हैं। किन्तु कृष्ण कभी इस तरह सजने-सँवरने से आकृष्ट नहीं होते। जहाँ तक राधारानी और उनकी गोपियों का सम्बन्ध है, उनके शरीर, घर, वस्त्र, आभूषण, प्रयत्न तथा कार्य—सभी आध्यात्मिक हैं। ये सभी कृष्ण की आध्यात्मिक इन्द्रियों को तुष्ट करने के निमित्त हैं। निस्सन्देह ये सब कृष्ण को इतना प्रसन्न करने वाले तथा प्रिय हैं कि वे श्रीमती राधारानी तथा उनकी सखियों के वश में हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्माण्ड के १४ भुवनों में किसी संसारी वस्तु से कोई वास्ता नहीं रहता। यद्यपि कृष्ण सर्वआकर्षक हैं, किन्तु इतने पर भी वे गोपियों तथा श्रीमती राधारानी के द्वारा आकृष्ट होते हैं।

किसी को यह भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए कि उसका भौतिक शरीर पूर्ण है, इसलिए वह सखी बन सकता है। यह *अहंग्रहोपासना* अर्थात् मायावादियों द्वारा अपने शरीर की पूजा ब्रह्म मान कर करना जैसी बात होगी। श्रील रूप गोस्वामी ने संसारियों को ऐसी धारणा से बचे रहने के लिए सतर्क किया है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी है कि गोपियों के पदचिह्नों पर चले बिना अपने को ब्रह्म का संगी सोचना वैसा ही अपराध है जैसा कि अपने को ब्रह्म मानना। ऐसा सोचना *अपराध* है। मनुष्य को चाहिए कि वह कृष्ण के साथ गोपियों की वार्ताओं को सुनते हुए वृन्दावन में रहने का अभ्यास करे। किन्तु वह अपने को गोपी न माने, क्योंकि ऐसा सोचना अपराध है।

विभुरपि सुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि न हि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदामासां कः सखीनां रसज्ञः॥२०६॥

अनुवाद

" 'श्री राधा तथा कृष्ण की लीलाएँ स्वतः तेजोमय हैं। वे साक्षात् असीम सर्वशक्तिमान सुख हैं। इतने पर भी ऐसी लीलाओं का आध्यात्मिक भाव भगवान् की सखियों अर्थात् गोपियों के बिना कभी पूरा नहीं होता। भगवान् अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बिना कभी भी पूर्ण नहीं होते। अतएव गोपियों की शरण लिये बिना कोई राधा तथा कृष्ण की संगति प्राप्त नहीं कर सकता। भला गोपियों की शरण लिए बिना उनकी आध्यात्मिक लीलाओं में कौन रुचि रख सकता है?'

तात्पर्य

यह उद्धरण *गोविन्द-लीलामृत* से (१०.१७) है।

सधीर स्वभाव एक अकथ्य-कथन।
कृष्ण-सह निजलीलाय नाहि सखीर मन॥२०७॥

अनुवाद

"गोपियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति (स्वभाव) अवर्णनीय है। गोपियाँ कृष्ण के साथ स्वयं भोग करना नहीं चाहतीं।

कृष्ण सह राधिकार लीला ये कराय।
निज-सुख हैते ताते कोटि सुख पाय॥२०८॥

अनुवाद

"जब गोपियाँ श्री श्री राधा और कृष्ण को उनकी दिव्य लीलाओं में प्रवृत्त करने का काम पूरा कर पाती हैं, तो उनका सुख करोड़ गुना बढ़ जाता है।

राधार स्वरूप—कृष्णप्रेम-कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता॥२०९॥

अनुवाद

"स्वभाव से श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता के समान हैं, और गोपियाँ उस लता की टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ हैं।

कृष्णलीलामृत यदि लताके सिञ्चय।
निज-सुख हैते पलवाद्येर कोटि-सुख हय॥२१०॥

अनुवाद

"जब इस लता पर कृष्ण-लीला रूपी अमृत छिड़का जाता है तो टहनियों, फूलों तथा पत्तियों को जो सुख मिलता है वह लता की तुलना में एक करोड़ गुना अधिक होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने *अमृत-प्रवाह-भाष्य* में कहा है "श्रीमती राधारानी भगवत्प्रेम की लता हैं और गोपियाँ टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ हैं। जब लता पर जल छिड़का जाता है, तो टहनियाँ, फूल तथा पत्तियाँ अप्रत्यक्ष रूप से लता को मिलने वाला लाभ प्राप्त करती हैं। किन्तु लता की जड़ में डाला गया जल जितना प्रभावशाली होता है उतना टहनियों, फूलों तथा पत्तियों पर सीधे डाला गया जल नहीं होता। जब गोपियाँ कृष्ण से सीधे मिलना चाहती हैं, तो वे उतनी प्रसन्न नहीं होतीं, जितनी कि श्रीमती राधारानी को कृष्ण से मिलाने के बाद होती हैं। उन्हें मिलाने में उनका दिव्य आनन्द निहित है।"

सख्यः श्रीराधिकाया व्रजकुमुदविधोर्ह्लादिनी-नामशक्तेः
सारांश-प्रेमवल्याः किसलयदलपुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः।
सिक्तायां कृष्णलीलामृतरसनिचयैरुल्लसन्त्याममुष्याम्
जातोल्लासाः स्वसेकाच्छतगुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम्।।२११।।

अनुवाद

" 'श्रीमती राधारानी की सखियाँ—सारी गोपियाँ—उन्हीं के समान हैं। कृष्ण व्रजभूमि के निवासियों को उसी तरह अच्छे लगने वाले हैं, जिस तरह चन्द्रमा कमल-पुष्पों के लिए होता है। उनकी आनन्ददायिनी शक्ति ह्लादिनी कहलाती है, जिसका मुख्य तत्त्व श्रीमती राधारानी हैं। उनकी उपमा उस लता से दी जाती है, जिसमें नये-नये फूल तथा कोंपले लगी हैं। जब कृष्ण-लीला रूपी अमृत श्रीमती राधारानी पर छिड़का जाता है तो उनकी सारी सखियों (गोपियाँ) को अपने ऊपर छिड़के, जाने की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक आनन्द का अनुभव होता है।' वास्तव में यह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी *गोविन्द लीलामृत* से (१०.१६) लिया गया है।

य़द्यपि सखीर कृष्ण-संगमे नाहि मन।
तथापि राधिका य़त्ने करान संगम।।२१२।।

अनुवाद

"यद्यपि श्रीमती राधारानी की सखियाँ (गोपियाँ) श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष भोग नहीं करना चाहतीं, किन्तु श्रीमती राधारानी श्रीकृष्ण को इसके लिए प्रेरित करने का काफी प्रयत्न करती रहती हैं कि वे गोपियों के साथ भोग करें।

नाना-च्छले कृष्ण प्रेरिऽसंगम कराय।
आत्मकृष्ण-संग हैते कोटि-सुख पाय।।२१३।।

अनुवाद

"वे कभी-कभी तरह-तरह के बहानों से गोपियों को कृष्ण के पास भेजती हैं, जिससे वे उनसे प्रत्यक्ष मिल सकें। ऐसे अवसरों पर उन्हें

अपने प्रत्यक्ष मिलन की अपेक्षा एक करोड़ गुना अधिक सुख मिलता है।

अन्यान्ये विशुद्ध प्रेमे करे रस पुष्ट।
ताँ-सबार प्रेम देखि' कृष्ण हय तुष्ट॥२१४॥

अनुवाद

"भगवत्प्रेम के पारस्परिक व्यवहार में दिव्य रस की पुष्टि होती है। जब कृष्ण यह देखते हैं कि गोपियों ने उनके लिए किस तरह से प्रेम उत्पन्न कर रखा है तो वे अत्यधिक तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य

श्रीमती राधारानी तथा गोपियों को कृष्ण के संग से प्राप्त होने वाले निजी सुख में कोई रुचि नहीं है। प्रत्युत वे एक-दूसरे को कृष्ण के साथ रहते देख कर सुखी होती हैं। इस तरह भगवत्प्रेम से उनका प्रेम बढ़ता है जिसे देख कर कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

सहज गोपीर प्रेम,—नहे प्राकृत काम।
कामक्रीड़ा-साम्ये तार कहि 'काम' नाम॥२१५॥

अनुवाद

"यह ध्यान देने की बात है कि गोपियों का सहज गुण है भगवान् से प्रेम करना। उनकी कामेच्छा की तुलना भौतिक काम-वासना से नहीं की जानी चाहिए। फिर भी चूँकि कभी-कभी उनकी इच्छा भौतिक काम-वासना जैसी प्रतीत होती है, इसलिए कभी-कभी कृष्ण के प्रति उनका दिव्य प्रेम "काम" कह कर पुकारा जाता है।

तात्पर्य

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कहना है कि दिव्य ज्ञान से पूर्ण कृष्ण के मत्थे कभी-कभी भौतिक काम कभी-भी नहीं मढ़ा जाना चाहिए। भौतिक काम को भगवान् की सेवा में नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि यह भौतिकतावादियों पर ही लागू होता है, कृष्ण पर नहीं। कृष्ण की तुष्टि के लिए केवल *प्रेम* शब्द का व्यवहार होना चाहिए। *प्रेम* भगवान् की पूर्ण सेवा है। गोपियों का काम-व्यापार वास्तव में सर्वोच्च भगवत्प्रेम है, क्योंकि गोपियाँ कभी-भी

अपनी निजी तुष्टि के लिए कार्य नहीं करतीं। वे अन्य गोपियों को भगवान् की सेवा में लगा करके ही प्रसन्न होती हैं। गोपियों को स्वयं भगवान् की सेवा में लग कर उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि अन्य गोपियों को उनकी सेवा में लगाने से होती है। भौतिक काम तथा भगवत्प्रेम में यही अन्तर है। काम भौतिक जगत पर लागू होता है और भगवत्प्रेम केवल कृष्ण पर लागू होता है।

प्रेमेव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥२१६॥

अनुवाद

"कृष्ण के साथ गोपियों के व्यवहार शुद्ध भगवत्प्रेम के स्तर पर होते हैं। किन्तु कभी-कभी उन्हें काममय मान लिया जाता है। किन्तु ऐसे व्यवहार सर्वथा आध्यात्मिक होते हैं, अतएव उद्धव जैसे भगवान् के अत्यन्त प्रिय भक्त एवं अन्य लोग भी उनमें भाग लेने के इच्छुक रहते हैं।

तात्पर्य

यह उद्धरण *भक्तिरसामृत-सिन्धु* (१.२.२८५) का है।

निजेन्द्रियसुख हेतु कामेर तात्पर्य।
कृष्णसुख-तात्पर्य गोपीभाव-वर्य॥२१७॥

अनुवाद

"कामेच्छाओं का अनुभव तब होता है जब कोई अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए उत्सुक रहता है। किन्तु गोपियों में ऐसा भाव नहीं रहता। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण की इन्द्रियों को तृप्त करना है।

निजेन्द्रियसुख वाञ्छा नाहि गोपिकार।
कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार॥२१८॥

अनुवाद

"गोपियों में अपनी इन्द्रियतृप्ति की रंचमात्र इच्छा नहीं है। उनकी एकमात्र इच्छा कृष्ण को आनन्द प्रदान करना है। इस तरह वे उनसे मिलती हैं और उनका भोग करती हैं।

यत्ते सुजात-चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तदव्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥२१९॥

अनुवाद

"सारी गोपियों ने कहा, 'हे कृष्ण! हम आपके चरणकमलों को बड़ी सावधानी से अपने स्तनों पर रखती हैं। जब आप जंगल में विचरण करते हैं, तो आपके चरणकमलों में कंकड़-पत्थर लगते हैं। हम डरती रहती हैं कि इससे आपको पीड़ा होती होगी। आप हमारे जीवन और आत्मा हैं। अतएव जब आपके चरणकमलों को पीड़ा पहुँचती हैं, तो हमारे मन अत्यन्त विचलित हो उठते हैं।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* से (१०.३१.१९) लिया गया है।

सेइगोपीभावामृते ग्याँर लोभ हय।
वेदधर्मलोक त्यजि' से कृष्णे भजय॥२२०॥

अनुवाद

"जो व्यक्ति गोपियों के प्रेमभाव से आकृष्ट हैं, वह वैदिक जीवन के विधानों या लोकमत की परवाह नहीं करता। प्रत्युत वह कृष्ण की शरण में जाकर उनकी सेवा करता है।

रागानुगमार्गे ताँरे भजे ग्रेइ जन।
सेइजन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥२२१॥

अनुवाद

"जो व्यक्ति रागानुग मार्ग पर भगवान् की पूजा करता है और वृन्दावन जाता है, उसे नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन की शरण प्राप्त होती है।

तात्पर्य

शास्त्रों द्वारा तथा गुरु द्वारा कृष्ण की सेवा करने की ६४ विधियाँ बताई गई हैं। मनुष्य को इन विधियों के अनुसार कृष्ण की सेवा करनी होती

है, किन्तु यदि व्रजभूमि में वास करने वालों के समान किसी में कृष्ण-प्रेम का सहज उदय होता है, तो उसे *रागानुग-भक्ति*-प्राप्त कहा जाता है। रागानुग भक्ति प्राप्त करने वाला व्रजभूमि के वासियों जैसा पद प्राप्त करता है। व्रजभूमि में कृष्ण की भक्ति के लिए कोई विधान नहीं है। हर काम सहज भाव से किया जाता है। वैदिक विधि के नियमों का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे नियमों का पालन तो इस भौतिक जगत में किया जाता है। लेकिन कृष्ण का रागानुग प्रेम तो दिव्य होता है। लगने को ऐसा लगता है कि विधानों का अतिक्रमण हो रहा है, किन्तु भक्त दिव्य पद को प्राप्त हुआ रहता है। ऐसी सेवा *गुणातीत* या *निर्गुण* कहलाती है क्योंकि वह प्रकृति के तीन गुणों द्वारा कलुषित नहीं होती।

व्रजलोकेर कोन भाव लञा एइ भजे।
भाव य़ोग्य देह पाञा कृष्ण पाय व्रजे॥२२२॥

अनुवाद

"मुक्त होने पर भक्त भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के पाँच भावों में से किसी एक भाव के द्वारा आकृष्ट होता है। वह उसी भाव से भगवान् की सेवा करते रहने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण की सेवा करने के लिए आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है।

ताहाते दृष्टान्त—उपनिषद् श्रुतिगण।
रागमार्गेभजि' पाइल व्रजेन्द्रनन्दन॥२२३॥

अनुवाद

"जिन सन्तजनों ने उपनिषदों की रचना की वे इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। रागानुग प्रेम के मार्ग पर भगवान् की पूजा करके उन्होंने नन्द महाराज के पुत्र व्रजेन्द्रनन्दन के चरणकमल प्राप्त किये।

तात्पर्य

गोलोक वृन्दावन-लोक में कृष्ण के सेवकों में रक्तक तथा पत्रकप्रमुख हैं। इसी तरह श्रीदाम, सुबल आदि उनके मुख्य सखा हैं। वहाँ पर गोपियाँ तथा गोप भी हैं, जिनमें नन्द महाराज, माता यशोदा तथा अन्य प्रमुख हैं। ये सारे व्यक्ति कृष्ण के प्रति अपनी-अपनी अनुरक्ति के अनुसार भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। इस जीवन में विशेष भाव में कृष्ण की निरन्तर

सेवा करते रहने से इस शरीर के त्यागने पर मनुष्य उपयुक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है, जिससे उसी विशेष भाव में कृष्ण की सेवा कर सके। वह दास, सखा, पिता या माता के रूप में सेवा कर सकता है। इसी तरह यदि कोई व्यक्ति माधुर्य भाव से कृष्ण की सेवा करना चाहता है, तो वह गोपियों के मार्गदर्शन में वैसा ही शरीर प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे ज्वलन्त उदाहरण उन सन्त पुरुषों का है जिन्हें *श्रुति* कहा गया है और जिन्होंने उपनिषदों की रचना की है। ये श्रुतिगण यह समझते हैं कि कृष्ण की सेवा किये बिना तथा गोपियों के पदचिह्नों का अनुसरण किये बिना भगवद्धाम में प्रवेश करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। इसीलिए वे कृष्ण की रागानुग भक्ति करते हैं और गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हैं।

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि य-
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्त-धियो
वयमपि ते समाः समदृशो' ङ्घि सरोजसुधाः॥२२४॥

अनुवाद

" 'बड़े बड़े मुनियों ने योगाभ्यास द्वारा अपने श्वास को वश में करके अपने मन तथा इन्द्रियों को जीता। इस तरह योग में प्रवृत्त होकर उन्होंने अपने हृदयों के भीतर परमात्मा का दर्शन किया, और निर्विशेष ब्रह्म में लीन हुए। किन्तु यह पद तो भगवान् के शत्रु भी उनका केवल चिन्तन करके प्राप्त करते हैं। व्रजांगनाएँ अर्थात् गोपियाँ कृष्ण का आलिंगन करना और उनकी सर्प जैसी भुजाओं को पकड़ना चाहती थीं। कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उन्होंने भगवान् के चरणकमलों के अमृत का आस्वादन किया। हम भी गोपियों के पदचिह्नों पर चल कर कृष्ण के चरणकमलों का अमृत चख सकते हैं।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* से (१०.८७.२३) लिया गया है जो श्रुतियों द्वारा कहा गया है जो साक्षात् वेद हैं।

'समदृशः'-शब्दे कहे 'सेइ भावे अनुगति'।
'सभाः'-शब्दे कहे श्रुतिर गोपीदेह-प्राप्ति॥२२५॥

अनुवाद

"पिछले श्लोक की चौथे चरण में उल्लिखित "समदृशः" शब्द का अर्थ है "गोपियों के भाव का अनुगमन करते हुए।" 'समाः' का अर्थ है "गोपियों जैसा ही शरीर प्राप्त करके।"

'अङ्घ्रि-पद्मसुधा'य कहे 'कृष्णसंगानन्द'।
विधिमार्गे ना पाइये व्रजे कृष्णचन्द्र॥२२६॥

अनुवाद

"अङ्घ्रि-पद्मसुधा" का अर्थ है "कृष्ण से घनिष्ठतापूर्वक संगति करते हुए।" ऐसी पूर्णता एकमात्र भगवान् के रागानुग प्रेम द्वारा मिल सकती है। केवल विधि-विधानों द्वारा भगवान् की सेवा करने से गोलोक वृन्दावन में कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥२२७॥

अनुवाद

" 'यशोदा-पुत्र भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुग भक्ति में लगे हुए हैं। किन्तु वे शुष्क चिन्तकों, कठिन तपस्या द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या शरीर को आत्मा मानने वालों को सरलता से सुलभ नहीं हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१०.९.२१) है, जिसे श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा था। इसमें गोपियों द्वारा कृष्ण के वशीभूत होने तथा उनके यशोगान करने का वर्णन है।

अतएव गोपीभाव करि अङ्गीकार।
रात्रि-दिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥२२८॥

अनुवाद

"अतएव गोपियों के सेवाभाव को ग्रहण करना चाहिए। ऐसे भाव में

लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

चिन्तिङ्करे ताँहाञि सेवन।
ावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥२२९॥

अनुवाद

**उनकी लीलाओं का दीर्घकाल तक चिन्तन करने और
े पूरी तरह मुक्त होने पर मनुष्य वैकुण्ठ-लोक को
ग्हाँ भक्त को गोपी के रूप में राधा तथा कृष्ण की
अवसर प्राप्त होता है।**

तात्पर्य

ारस्वती ठाकुर की टीका है कि *सिद्धदेह* का अर्थ "सिद्धि-प्राप्त
है। यह पंचतत्वों से बने भौतिक स्थूल देह और मन,
से बने सूक्ष्म देह से परे है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य
व्य युगल की सेवा करने के योग्य पूर्णतया आध्यात्मिक
—*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*।
ने आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त होता है जो इस स्थूल
शरीर के परे है, तभी वह राधाकृष्ण की सेवा करने
यह शरीर *सिद्धदेह* कहलाता है। जीव को पूर्वकर्मों तथा
के अनुसार विशेष प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है।
सिक अवस्था तरह-तरह से बदलती है, और वही जीव
 अनुरूप अगले जन्म में दूसरा शरीर प्राप्त करता है।
हंकार प्रकृति पर प्रभुत्व जताने में सदैव तत्पर रहते हैं।
 अनुसार मनुष्य को स्थूल देह मिलता है, जिससे वह
तुओं को भोग सके। वर्तमान देह के कार्यों के अनुसार
शरीर तैयार करता है और इस सूक्ष्म शरीर के अनुसार
शरीर प्राप्त होता है। यही भौतिक जगत का नियम है।
आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर लेता है और स्थूल या
ामना नहीं करता तो उसे अपना मूल आध्यात्मिक शरीर
ा कि *भगवद्गीता* में (४.९) पुष्टि की गई है—*त्यक्त्वा
ामेति सोऽर्जुन*।
क शरीर द्वारा वैकुण्ठ-लोक अथवा गोलोक वृन्दावन को

सेवा करते रहने से
शरीर प्राप्त करता है,
वह दास, सखा, पिता
तरह यदि कोई व्यक्ति
तो वह गोपियों के
सम्बन्ध में सबसे
गया है और जिन्होंने
हैं कि कृष्ण की सेवा
किये बिना भगवद्धाम
वे कृष्ण की रागानुग
करते हैं।

निभृतमरुन्मनो
न्मुनय उपासते
स्त्रिय उरगेन्द्र
वयमपि ते

" 'बड़े बड़े मुनियों ने
अपने मन तथा इन्द्रियों
अपने हृदयों के भीतर
में लीन हुए। किन्तु
चिन्तन करके प्राप्त
करना और उनकी
के सौन्दर्य से आकृ
का आस्वादन किया।
के चरणकमलों का

यह उद्धरण श्रीमद्भागवत
कहा गया है जो साक्षात्

श्री राधाकृष्ण की लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

सिद्धदेहे चिन्तिङ्करे ताँहात्रि सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥२२९॥

अनुवाद

"राधाकृष्ण तथा उनकी लीलाओं का दीर्घकाल तक चिन्तन करने और भौतिक कल्मष से पूरी तरह मुक्त होने पर मनुष्य वैकुण्ठ-लोक को चला जाता है। वहाँ भक्त को गोपी के रूप में राधा तथा कृष्ण की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टीका है कि *सिद्धदेह* का अर्थ "सिद्धि-प्राप्त आध्यात्मिक देह" है। यह पंचतत्वों से बने भौतिक स्थूल देह और मन, बुद्धि तथा अहंकार से बने सूक्ष्म देह से परे है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य राधा तथा कृष्ण दिव्य युगल की सेवा करने के योग्य पूर्णतया आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करता है—*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।*

मनुष्य जब अपने आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त होता है जो इस स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर के परे है, तभी वह राधाकृष्ण की सेवा करने के योग्य होता है। यह शरीर *सिद्धदेह* कहलाता है। जीव को पूर्वकर्मों तथा मानसिक अवस्था के अनुसार विशेष प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है। इस जीवन में मानसिक अवस्था तरह-तरह से बदलती है, और वही जीव अपनी इच्छाओं के अनुरूप अगले जन्म में दूसरा शरीर प्राप्त करता है। मन, बुद्धि तथा अहंकार प्रकृति पर प्रभुत्व जताने में सदैव तत्पर रहते हैं। उस सूक्ष्म शरीर के अनुसार मनुष्य को स्थूल देह मिलता है, जिससे वह अपनी इच्छित वस्तुओं को भोग सके। वर्तमान देह के कार्यों के अनुसार मनुष्य अन्य सूक्ष्म शरीर तैयार करता है और इस सूक्ष्म शरीर के अनुसार उसे दूसरा स्थूल शरीर प्राप्त होता है। यही भौतिक जगत का नियम है। किन्तु जब मनुष्य आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर लेता है और स्थूल या सूक्ष्म शरीर की कामना नहीं करता तो उसे अपना मूल आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (४.९) पुष्टि की गई है—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।*

मनुष्य आध्यात्मिक शरीर द्वारा वैकुण्ठ-लोक अथवा गोलोक वृन्दावन को

प्राप्त होता है। आध्यात्मिक शरीर में भौतिक इच्छाएँ नहीं रह जातीं और मनुष्य राधाकृष्ण की सेवा करके परम सन्तुष्ट रहता है। यह *भक्ति*-पद है (*हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते*)। जब आध्यात्मिक शरीर, मन तथा इन्द्रियाँ पूरी तरह शुद्ध हो जाते हैं, तो मनुष्य भगवान् तथा उनकी प्रेयसी की सेवा कर सकता है। वैकुण्ठ-लोक में भगवान् की प्रेयसी लक्ष्मी और गोलोक वृन्दावन में श्रीमती राधारानी हैं। मनुष्य आध्यात्मिक शरीर द्वारा राधाकृष्ण तथा लक्ष्मीनारायण की सेवा कर सकता है। इस तरह का व्यक्ति अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के विषय में किसी तरह का चिन्तन नहीं करता। यह आध्यात्मिक शरीर *सिद्धदेह* कहलाता है—अर्थात् ऐसा शरीर जो राधा तथा कृष्ण की दिव्य सेवा कर सकता है। इसकी विधि यही है कि दिव्य इन्द्रियों को प्रेमाभक्ति में लगाया जाये। इस श्लोक में—*सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण*—का विशेष उल्लेख हुआ है, जिसका अर्थ है कि सिद्धदेह व्यक्ति गोपियों के भाव में राधा तथा कृष्ण के चरणकमलों की सेवा में लग सकता है।

गोपी-आनुगत्य विना ऐश्वर्य-ज्ञाने।
भजिलेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने॥२३०॥

अनुवाद

"जब तक मनुष्य गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण नहीं करता, तब तक उसे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के चरणकमलों की भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। यदि वह भगवान् के ऐश्वर्य के ज्ञान से परास्त हो जाता है, तो उसे भगवान् के चरणकमल नहीं प्राप्त हो सकते, भले ही वह भक्ति में क्यों न व्यस्त रहता हो।

तात्पर्य

मनुष्य *विधि-मार्ग* की विधि से लक्ष्मीनारायण की पूजा कर सकता है, जिसमें शास्त्र तथा गुरु के आदेशानुसार नियमपूर्वक भगवान् की पूजा करनी होती है। किन्तु राधाकृष्ण की पूजा इस विधि से सीधे नहीं की जा सकती। राधा, कृष्ण तथा गोपी के मध्य का व्यवहार लक्ष्मीनारायण के ऐश्वर्यों से रहित होता है। *विधि-मार्ग* का उपयोग लक्ष्मीनारायण की पूजा में किया जाता है, किन्तु रागानुग प्रेम, जिसमें वृन्दावन की निवासिनी गोपियों के चरणचिह्नों पर चलना होता है, अधिक उन्नत है, और इसी से राधा-कृष्ण की पूजा की जाती है। भगवान् को उनके ऐश्वर्य में पूजते हुए यह उन्नत पद प्राप्त

नहीं किया जा सकता। जो लोग राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम द्वारा आकृष्ट होते हैं, उन्हें गोपियों का अनुसरण करना चाहिए। तभी गोलोक वृन्दावन में भगवान् की सेवा में प्रविष्ट हुआ जा सकता है, और राधा तथा कृष्ण से प्रत्यक्ष संगति की जा सकती है।

ताहाते दृष्टान्त—लक्ष्मी करिल भजन।
तथापि ना पाइल व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥२३१॥

अनुवाद

"इस प्रसंग में अकथनीय उदाहरण लक्ष्मी का है जिन्होंने वृन्दावन में कृष्ण की लीलाओं को प्राप्त करने के लिए भगवान् कृष्ण की पूजा की। किन्तु अपनी ऐश्वर्यमयी जीवन-शैली के कारण उन्हें वृन्दावन में कृष्ण की सेवा प्राप्त नहीं हो सकी।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीत कण्ठ-
लब्धशिषां य उदगाद् व्रजसुन्दरीणाम्॥२३२॥

अनुवाद

" 'जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के साथ रासलीला में नृत्य कर रहे थे, तो भगवान् की भुजाएँ गोपियों की गर्दन को आलिंगित किए थीं। यह कृपा न तो लक्ष्मीजी को, न ही वैकुण्ठ में अन्य किसी प्रेयसी को प्राप्त हो पाई। न ही स्वर्गलोक की उन सुन्दरियों ने कभी ऐसी कल्पना की थी, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी है। तो भला संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय जो केवल भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुन्दरी हैं?' "

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (१०.४७.६०) का है।

एत शुनि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गन।
दुइ जने गलागलि करेन क्रन्दन॥२३३॥

अनुवाद

यह सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और दोनों एक-दूसरे का कन्धा पकड़ कर रुदन करने लगे।

एइमत प्रेमवेशे रात्रि गोङाइला।
प्रातःकाले निज-निज-कार्ये दुँहे गेला॥२३४॥

अनुवाद

इस तरह सारी रात भगवान् के प्रेमावेश में बीती और प्रातःकाल दोनों अपने-अपने कार्यों पर चले गये।

विदाय-समये प्रभुर चरणे धरिया।
रामानन्द राय कहे विनति करिया॥२३५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से विदा होने के पूर्व रामानन्द राय ने पृथ्वी पर गिर कर महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये। फिर अत्यन्त विनीत भाव से बोले।

'मोरे कृपा करिले तोमार इहाँ आगमन।
दिन दश रहि' शोध मोर दुष्ट मन॥२३६॥

अनुवाद

श्री रामानन्द राय ने कहा, "आप मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा दर्शाने यहाँ आये हैं। अतएव आप कम-से-कम दस दिन रुक जायें और मेरे दूषित मन को शुद्ध कर दें।

तोमा विना अन्य नाहि जीव उद्धारिते।
तोमा विना अन्य नाहि कृष्णप्रेम दिते॥'२३७॥

अनुवाद

"आपके अतिरिक्त ऐसा कौन है जो सारे जीवों का उद्धार कर सके क्योंकि आप ही कृष्ण-प्रेम प्रदान करने वाले हैं।"

प्रभु कहे,—आइलाङ शुनि' तोमार गुण।
कृष्णकथा शुनि, शुद्ध कराइते मन॥२३८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मैं आपके सद्गुण सुन कर यहाँ आया हूँ। मैं तो आपके पास कृष्ण का गुणानुवाद सुनने और इस तरह अपना मन शुद्ध करने आया था।

ग्रैछे शुनिलूँ, तैछे देखिलूँ तोमार महिमा।
राधाकृष्ण-प्रेमरस-ज्ञानेर तुमि सीमा॥२३९॥

अनुवाद

"जिस तरह मैंने आप से सुना, उसी तरह मैंने आपकी महिमा भी देख ली। जहाँ तक राधा तथा कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का सम्बन्ध है, आप तो ज्ञान की सीमा हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु को राधाकृष्ण प्रेम के दिव्य ज्ञान के सबसे बड़ा अधिकारी रामानन्द राय मिले। इस श्लोक में महाप्रभु वास्तव में कहते हैं कि रामानन्द राय इस ज्ञान की पराकाष्ठा थे।

दश दिनेर का-कथा ग्रावत् आमि जीब'।
तावत् तोमार सङ्ग छाड़िते नारिब॥२४०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "दस दिन की क्या बात है, जब तक मैं रहूँगा तब तक आपका साथ छोड़ पाना मेरे लिए असम्भव होगा।

नीलाचले तुमि-आमि थाकिब एक-सङ्गे।
सुखे गोङाइब काल कृष्णकथा-रङ्गे॥२४१॥

अनुवाद

"आप और मैं—दोनों साथ साथ जगन्नाथ पुरी में रहेंगे। हम साथ-साथ हँसी-खुशी में कृष्ण तथा उनकी लीलाओं की बातें करते हुए अपना समय बितायेंगे।"

एत बलि' दुँहे निज-निज कार्ये गेला।
सन्ध्याकाले राय पुनः आसिया मिलिला॥२४२॥

अनुवाद

इस तरह वे दोनों अपने अपने कामों पर चले गये। तत्पश्चात् संध्या-समय रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु से मिलने आये।

अन्यान्ये मिलि' दुँहे निभृते वसिया।
प्रश्नोत्तर-गोष्ठी कहे आनन्दित हञा॥२४३॥

अनुवाद

इस तरह वे बारम्बार मिलते रहे, कभी एकांत स्थान में बैठते और कभी प्रश्नोत्तर के रूप में प्रसन्न चित्त होकर कृष्ण की लीलाओं पर चर्चा चलाते।

प्रभु पुछे, रामानन्द करेन उत्तर।
एइ मत सेइ रात्रे कथा परस्पर॥२४४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रश्न पूछते थे और रामानन्द राय उत्तर देते थे। इस तरह रात-भर वे विचार-विमर्श में लगे रहते।

प्रभु कहे,—"कोन् विद्या विद्या-मध्ये सार?"
राय कहे,—"कृष्णभक्ति विना विद्या नाहि आर॥"२४५॥

अनुवाद

अवसर पाकर महाप्रभु ने पूछा, "सभी प्रकार की विद्याओं में कौन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "कृष्ण-भक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य विद्या महत्वपूर्ण नहीं है।"

तात्पर्य

श्लोक २४५ से २५७ तक श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के प्रश्नोत्तर हैं। इस आदान-प्रदान में भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत के अन्तर को दिखाने की चेष्टा की गई है। कृष्णभावनामृत की विद्या दिव्य है और समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ है। भौतिक विद्या का लक्ष्य भौतिक इन्द्रियतृप्ति के कार्यों को बढ़ाना रहता है। किन्तु भौतिक इन्द्रियतृप्ति के परे ज्ञान का निषेध पक्ष भी है जो *ब्रह्म-विद्या* कहलाता है। किन्तु इस ब्रह्म-विद्या से भी परे भगवान् विष्णु की भक्ति-विद्या है। यह विद्या उच्चतर है और इससे भी बढ़ कर

है भगवान् कृष्ण की भक्ति जो सर्वोच्च विद्या है। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार (४.२९.४९)—

तत्कर्म हरितोषं यत् सा विद्या तन्मतिर्यया

"भगवान् को प्रसन्न करने के निमित्त किया गया कार्य सर्वोत्तम है, और जो विद्या कृष्ण-चेतना को बढ़ाये वही सर्वश्रेष्ठ है।"

श्रीमद्भागवत के ही अनुसार (७.५.२३-२४)

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं।
अर्चनं वन्दनं दास्यम् सख्यमात्म निवेदम्॥

इति पुंसार्पिताविष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

यह प्रह्लाद महाराज का उत्तर है अपने पिता द्वारा उठाये गये प्रश्न का। प्रह्लाद महाराज ने कहा, "भगवान् विष्णु के विषय में सुनना या कीर्तन करना, उन्हें स्मरण करना, उनके चरणकमलों की सेवा करना, उनकी पूजा करना, उनकी स्तुति करना, उनका दास तथा मित्र बनना, उनकी सेवा में सर्वस्व निछावर कर देना—ये भक्ति के विविध प्रकार हैं। जो व्यक्ति ऐसे कार्यों में लगा हुआ है वह सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त माना जाता है।"

'कीर्तिगण-मध्ये जीवेर कोन् बड कीर्ति ?'
'कृष्णभक्त बलिया य़ाँहाँर हय ख्याति॥'२४६॥

अनुवाद

तब श्री महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "समस्त यशस्वी कार्यों में कौन सर्वाधिक यशस्वी है?" रामानन्द ने उत्तर दिया, "वह व्यक्ति जो भगवान् कृष्ण के भक्त के रूप में विख्यात है, वही सर्वाधिक यश तथा कीर्ति भोगता है।"

तात्पर्य

कोई जीव जिस सर्वोच्च यश को पा सकता है, वह कृष्ण-भक्त बनना तथा कृष्णभावनामृत में कार्य करना है। इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति प्रचुर भौतिक ऐश्वर्य एकत्र करके विख्यात बनना चाहता है। कर्मियों के बीच धनी

समाज में आगे बढ़ने के लिए निरन्तर स्पर्धा चल रही है। सारा विश्व उसी स्पर्धा में लगा है। किन्तु इस प्रकार का नाम तथा यश नश्वर है, क्योंकि यह सब नश्वर शरीर तक ही रह पाता है। इससे कोई ब्रह्मज्ञानी के रूप में, तो कोई ऐश्वर्यवान व्यक्ति के रूप में विख्यात हो सकता है। किन्तु ऐसी ख्याति कृष्ण-भक्त की ख्याति से निकृष्ट होती है। *गरुड़ पुराण* में कहा गया है—

कलौ भागवतं नाम दुर्लभं नैव लभ्यते।
ब्रह्मरुद्रपदोत्कृष्टं गुरुणा कथितं मम॥

"इस कलियुग में महान् भक्त के रूप में यश पाना दुर्लभ है। किन्तु ऐसा पद ब्रह्मा तथा महादेव जैसे देवताओं से श्रेष्ठतर है। यह सारे गुरुओं का मत है।"

इतिहास समुच्चय में पुण्डरीक से नारद कहते हैं—

जन्मान्तर सहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य सर्वाल्लोकान् समुद्धरेत्॥

"जब अनेकानेक जन्मों के बाद मनुष्य को अनुभूति होती है कि वह वासुदेव का नित्य दास है तो वह सारे लोकों का उद्धार कर सकता है।"

आदि पुराण में कृष्ण तथा अर्जुन की वार्ता में कहा गया है—

भक्तानां अनुगच्छन्ति मुक्तयः श्रुतिभिः सह

"वैदिक ज्ञान से मुक्ति का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है। हर व्यक्ति भक्त के पदचिह्नों का अनुसरण करता है।"

इसी प्रकार *बृहन्नारदीय पुराण* में भी कहा गया है—

अद्यापि च मुनि श्रेष्ठा ब्रह्माद्या अपि देवताः

"आज तक ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े-बड़े देवता भी भक्त के प्रभाव को नहीं जान पाये।"

इसी प्रकार *गरुड़ पुराण* में कहा गया है—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते
सत्रयाजीसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः।
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते
वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकान्त्येको विशिष्यते॥

"कहा जाता है कि हजारों ब्राह्मणों में से कोई एक यज्ञ करने के योग्य होता है, और ऐसे हजारों योग्य ब्राह्मणों में कोई एक ब्राह्मण सारे वैदिक ज्ञान को लाँघ सकता है। ऐसा व्यक्ति इन सारे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जाता है। फिर भी ऐसे हजारों ब्राह्मणों में कोई एक विष्णु-भक्त हो सकता है जो अत्यन्त विख्यात होता है। ऐसे हजारों वैष्णवों में से वह एक, जो कृष्ण की सेवा में दृढ़ रहता है, सर्वाधिक प्रसिद्ध होता है। जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में लगा रहता है, वह निश्चित रूप से भगवद्धाम वापस जाता है।"

श्रीमद्भागवत में भी (३.१३.४) एक कथन है जो इस प्रकार है—

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य
नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः।
तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द
पादरविन्दं हृदयेषु येषाम्॥

"काफी कठिन श्रम के बाद वैदिक साहित्य का पंडित अत्यन्त विख्यात होता है। किन्तु जो व्यक्ति सदैव अपने हृदय में मुकुन्द के चरणकमलों की महिमा का श्रवण और उच्चारण करता रहता है वह निश्चय ही श्रेष्ठ है।"

नारायण-व्यूह-स्तव में कहा गया है—

नाहं ब्रह्मापि भूयासं त्वद्भक्तिरहितो हरे।
त्वयि भक्तस्तु कीटोऽपि भूयासं जन्म-जन्मसु॥

"यदि ब्रह्मा भगवद्भक्त नहीं है, तो मैं ब्रह्मा के रूप में जन्म लेने की आकांक्षा नहीं करता। किन्तु मैं एक कीड़े के रूप में जन्म लेना पसन्द करूँगा, यदि उसे भक्त के घर में रहने का अवसर मिले।"

श्रीमद्भागवत में ऐसे ही अनेक श्लोक हैं (३.२५.३८, ४.२४.२९, ४.३१.२२, ७.९.२४ तथा १०.१४.३०)।

शिवजी ने ही कहा था, "मैं कृष्ण के विषय में सचाई नहीं जानता, किन्तु कृष्ण का भक्त सारी सचाई जानता है। कृष्ण के सारे भक्तों में प्रह्लाद महानतम हैं।"

पाण्डवों से भी ऊपर हैं पाण्डवजन। पाण्डवों से भी ऊपर यदुवंशी हैं और यदुवंश में उद्धव सर्वाधिक प्रगत हैं, किन्तु उद्धव से भी बढ़ कर व्रजधाम की गोपियाँ हैं।

बृहद वामन पुराण में भृगु मुनि से ब्रह्माजी कहते हैं:

षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणुपलब्धये॥

"मैंने गोपियों के चरणकमलों की धूलि को समझने के लिए ६० हजार वर्ष तक तपस्या की। फिर भी मैं उन्हें समझ न पाया। मैं तो क्या, शिव, शेष तथा लक्ष्मीजी भी उन्हें नहीं समझ सकीं।"

आदि पुराण में स्वयं भगवान् कहते हैं—

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्म रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मिर्न चात्मा च यथा गोपीजनो मम॥

"मुझे गोपियों के समान ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी प्रिय नहीं हैं, यहाँ तक कि स्वयं मैं प्रिय नहीं हूँ।" समस्त गोपियों में से श्रीमती राधारानी सर्वोच्च हैं। रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी श्रीमती राधारानी तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के महान सेवक हैं। जो लोग इनकी सेवा में लगे रहते हैं, वे *रागानुग* भक्त कहलाते हैं। श्रील रूप गोस्वामी के सम्बन्ध में *चैतन्य-चन्द्रोदय* में कहा गया है—

आस्तां वैराग्यकोटिर्भवतु शमदमक्षान्तिमैत्र्यादिकोटि-
स्तत्त्वानुध्यानकोटिर्भवतु वा वैष्णवी भक्तिकोटिः।
कोट्यंशोऽप्यस्य न स्यात्तदपि गुणगणो यः स्वतः सिद्ध आस्ते
श्रीमच्चैतन्यचन्द्रप्रियचरणनखज्योतिरामोदभाजाम्॥

श्री चैतन्य की सेवा में लगे रहने वाले के गुणों—यथा कीर्ति, तपस्या, ज्ञान—की तुलना अन्यों के सद्गुणों से नहीं करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु की सेवा में लगे रहने वाले भक्त की पूर्णता ऐसी ही है।

'सम्पत्तिर मध्ये जीवेर कोन् सम्पत्ति गणि?'
'राधाकृष्ण प्रेम याँर, सेइ बड़ धनी॥'२४७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सम्पत्तिवानों में सर्वोच्च कौन है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो राधा तथा कृष्ण के प्रेम का सबसे बड़ा धनी है, वही सबसे बड़ा सम्पत्तिवान है।"

तात्पर्य

इस भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए धन प्राप्त करना चाहता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी व्यक्ति भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करने और उसे बनाये रखने के अतिरिक्त और किसी बात की परवाह नहीं करता। इस जगत में सम्पत्तिवान व्यक्ति सामान्यतया सबसे महत्वपूर्ण माने जाते हैं, किन्तु जब हम धनी व्यक्ति के धन की तुलना राधाकृष्ण की भक्ति के धनी से करते हैं, तो बादवाला ही सबसे बड़ा सम्पत्तिवान पाया जाता है। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार (१०.३९.२)—

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।
तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किञ्चन॥

"लक्ष्मी के आश्रय भगवान् कृष्ण के भक्तों के लिए कौन-सी बात कठिन है? हे राजन! ये भक्त कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये किसी बात की चिन्ता नहीं करते।"

'दुःख-मध्ये कोन दुःख हय गुरुदेव?'
कृष्णभक्त-विरह विना दुःख नाहि देखि पर॥'२४८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त दुखों में कौन सर्वाधिक कष्टदायक है?" श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "मेरी जानकारी में कृष्ण-भक्त के विरह से बढ़ कर कोई दूसरा असह्य दुख नहीं है।"

तात्पर्य

इसके विषय में *श्रीमद्भागवत* का कथन है—

मामनाराध्य दुःखार्तः कुटुम्बासक्तमानसः।
सत्संगरहितो मर्त्यो वृद्धसेवापरिच्युतः॥

"जो व्यक्ति मेरी पूजा नहीं करता, जो परिवार के प्रति अत्यधिक आसक्त है, और जो भक्ति में लिप्त नहीं होता, उसे सबसे दुखी व्यक्ति मानना चाहिए। इसी तरह जो वैष्णवों की संगति नहीं करता या अपने से बड़ों की सेवा नहीं करता, वह भी दुखी है।"

बृहद्भागवतामृत में भी (१.५.४४) कहा गया है—

स्वजीवनाधिकं प्रार्थ्यं श्रीविष्णुजनसंगतः।
विच्छेदेन कृष्णं चात्र न सुखांशं लभामहे॥

"जीव के जीवन में जिन-जिन वांछित वस्तुओं का अनुभव होता है, उनमें से भगवद्भक्तों की संगति सबसे बड़ी है। भक्त से क्षण-भर का भी वियोग हमें सुखी अनुभव नहीं होने देता।"

'मुक्त-मध्ये कोन् जीव मुक्त करि' मानि?'
'कृष्णप्रेम याँर, सेइ मुक्त-शिरोमणि॥'२४९॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त मुक्त पुरुषों में किसे सबसे महान् माना जाय?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो कृष्ण-प्रेम से युक्त है, उसे ही सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (६.१४.५) कहा गया है—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

"हे महामुनि! लाखों मुक्त पुरुषों तथा लाखों सिद्ध पुरुषों में नारायण का भक्त अत्यन्त दुर्लभ होता है। वह अत्यन्त पूर्ण एवं शान्त व्यक्ति है।"

'गान-मध्ये कोन गान—जीवेर निज धर्म?'
'राधाकृष्णेर प्रेमकेलि—येइ गीतेर मर्म॥२५०॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय से पूछा, "अनेक गीतों में से किस गीत को जीव का वास्तविक धर्म माना जाय?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "श्री राधा तथा कृष्ण के प्रेम से युक्त गीत अन्य समस्त गीतों से श्रेष्ठ है।"

तात्पर्य

जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (१०.३३.३७) कहा गया है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

"भगवान् कृष्ण मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं, और वृन्दावन में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रकट करते हैं, जिससे बद्धजीव उनके दिव्य कार्यकलापों को सुनने के लिए आकृष्ट हो।" अभक्तों को राधाकृष्ण सम्बन्धी प्रेम-गीतों में भाग लेना वर्जित है। भक्त बने बिना राधाकृष्ण की लीलाओं के उन गीतों को सुनना घातक है, जिन्हें जयदेव गोस्वामी, चण्डीदास तथा अन्य भक्तों ने लिखा है। यद्यपि शिवजी ने विष-पान किया था, किन्तु हमें इसका अनुकरण नहीं करना चाहिए। पहले भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बनना चाहिए। तभी जयदेव के गीतों को सुन कर दिव्य आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। जो व्यक्ति शिवजी के कार्यों का मात्र अनुकरण करता है, उसकी मृत्यु निश्चित है।

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की वार्ताएँ केवल उच्च भक्तों के निमित्त हैं। संसारी लोग तथा शोध प्रबन्ध के लिए इन वार्ताओं के अध्ययन करने वाले लोग इन वार्ताओं को नहीं समझ सकेंगे। उल्टे इनका प्रभाव विषैला होगा।

'श्रेयो मध्ये कोन श्रेयः जीवेर हय सार?'
कृष्णभक्त-संग विना श्रेयः नाहि आर॥'२५१॥

अनुवाद

"समस्त शुभ तथा लाभप्रद कार्यों में से जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ कार्य कौन-सा है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "एकमात्र शुभ-कार्य कृष्ण-भक्तों की संगति है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अनुसार (११.२.३०)—

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम्॥

"हम आपसे सर्वाधिक कल्याणप्रद कार्य के विषय में पूछ रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि इस जगत में भक्तों की संगति, चाहे क्षण-भर के लिए ही क्यों न हो, मनुष्य के लिए सबसे बड़ा खजाना है।"

'काँहार स्मरण जीव करिबे अनुक्षण?'
'कृष्ण'-नाम-गुण-लीला—प्रधान स्मरण॥'२५२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सारे जीव किसका निरन्तर स्मरण करें?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "स्मरण करने की मुख्य वस्तु भगवान् के नाम, गुण तथा लीलाएँ हैं।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का कथन है (२.२.३६)—

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "जीव का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में भगवान् का सदैव स्मरण करे। सारे मनुष्यों को भगवान् का श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करना चाहिए।"

'ध्येय-मध्ये जीवेर कर्तव्य कोन् ध्यान?'
'राधाकृष्णपदाम्बुज-ध्यान—प्रधान॥'२५३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने और आगे पूछा, "समस्त प्रकार के ध्यानों में कौन-सा ध्यान जीवों के लिए आवश्यक है?" श्री रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जीव का प्रधान कर्तव्य है कि वह राधाकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करे।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत का कथन है (१.२.१४)—

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥

सूत गोस्वामी ने शौनक आदि ऋषियों को बतलाया, "हर व्यक्ति को ध्यानपूर्वक भगवान् की लीलाएँ सुननी चाहिए। उसे उनके कार्यकलापों का गुणगान करना चाहिए और उनका नियमित ध्यान करना चाहिए।"

'सर्व त्यजि' जीवेर कर्तव्य काहाँ वास?'
'व्रजभूमि वृन्दावन ग्राहाँ लीलारास॥'२५४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "जीव को अन्य सारे स्थान त्याग कर कहाँ रहना चाहिए?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "वृन्दावन या व्रजभूमि नामक पवित्र स्थान में, जहाँ भगवान् ने रासनृत्य किया था।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अनुसार (१०.४७.६१)—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं
स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

"मैं वृन्दावन की वह लता तथा पौधा बनना चाहता हूँ, जिसे गोपियों ने मुकुन्द के चरणकमलों की पूजा करने के लिए, परिवार तथा मित्रों से अपने सारे सम्बन्ध तोड़ कर, अपने पैरों से रौंदा हो। उन चरणकमलों की खोज वैदिक साहित्य के अध्ययन में दक्ष बड़े बड़े सन्तजन भी करते हैं।"

'श्रवणमध्ये जीवेर कोन् श्रेष्ठ श्रवण?'
'राधाकृष्ण-प्रेमकेलिकर्ण-रसायन ॥'२५५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "सुने जाने वाले समस्त विषयों में कौन-सा

विषय समस्त जीवों के लिए सर्वोत्तम है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "राधा तथा कृष्ण के प्रेम-व्यापार के विषय में श्रवण करना कानों को सर्वाधिक सुहावना लगता है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अनुसार (१०.३३.४०)—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

"जो व्यक्ति रासनृत्य में कृष्ण तथा गोपियों के व्यवहार को श्रद्धापूर्वक सुनता है और जो इन कार्यों का वर्णन भक्ति की सिद्धि प्राप्त करने के लिए करता है, वह भौतिक वासनामय इच्छाओं से रहित हो जाता है।"

जब मनुष्य मुक्त हो जाता है और राधाकृष्ण के प्रेमालापों का श्रवण करता है, तो उसमें कामेच्छाएँ नहीं उत्पन्न होतीं। एक संसारी धूर्त ने एक बार कहा कि जब कोई वैष्णव "राधा राधा" का जप करता है तो उसे राधा नामक नाइन (नाइ की पत्नी) का स्मरण हो आता है। यह व्यावहारिक उदाहरण है। जब तक मनुष्य मुक्त न हो, उसे राधाकृष्ण के प्रेम के विषय में सुनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यदि वह बिना मुक्त हुए रासलीला सुनता है, तो उसे अपने संसारिक कार्यों का तथा राधा नामक किसी स्त्री के साथ अपने अवैध सम्बन्ध का स्मरण हो सकता है। बद्ध अवस्था में ऐसी बातों को स्मरण करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। साधना मार्ग का अनुसरण करने से मनुष्य को कृष्ण-प्रेम का रागानुग पद प्राप्त हो सकता है। तभी उसे राधा-कृष्ण-लीला सुननी चाहिए। यद्यपि ये प्रेम-व्यापार बद्ध तथा मुक्त जीवों के लिए समान रूप से सुहावने लगने वाले हो सकते हैं, किन्तु बद्धजीवों को इन्हें नहीं सुनना चाहिए। रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताएँ मुक्त स्तर पर संपादित होती हैं।

'उपास्येर मध्ये कोन् उपास्य प्रधान?'
'श्रेष्ठ उपास्य—युगल 'राधाकृष्ण' नाम॥'२५६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "समस्त पूजा के योग्य (उपास्य) वस्तुओं में कौन प्रधान है?" रामानन्द ने उत्तर दिया, "प्रधान पूजा-योग्य वस्तु राधाकृष्ण का नाम—हरे कृष्ण मन्त्र—है।"

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के अनुसार (६.३.२२)—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥

"इस भौतिक जगत में जीव का एकमात्र कार्य भक्तियोग के मार्ग को स्वीकार करना तथा भगवन्नाम का कीर्तन करना है।"

'मुक्ति, भुक्ति वाञ्छे ग्रेइ, काहाँ दुँहार गति?'
'स्थावरदेह, देवदेह ग्रैछे अवस्थिति॥'२५७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पूछा, "और जो मुक्ति चाहते हैं तथा जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं, उनका गन्तव्य क्या है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "जो लोग भगवान् के शरीर में लीन होने की चेष्टा करते हैं, उन्हें वृक्ष का शरीर धारण करना होगा और जो लोग इन्द्रियतृप्ति में अधिक अनुरक्त हैं, उन्हें देवताओं का शरीर मिलेगा।"

तात्पर्य

जो लोग भगवान् के शरीर में लीन होना चाहते हैं, उन्हें इस भौतिक जगत में इन्द्रियतृप्ति की कोई कामना नहीं रहती। किन्तु साथ ही उन्हें भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने का कोई ज्ञान नहीं रहता। अतएव उन्हें हजारों वर्षों तक वृक्ष की तरह खड़े रहना पड़ता है। वृक्ष जीवधारी होते हुए भी अचर या जड़ हैं। जो मुक्तात्माएँ भगवान् के शरीर में लीन होना चाहती हैं, वे वृक्ष तुल्य हैं। वृक्ष भी भगवान् के शरीर में खड़े हैं, क्योंकि भौतिक शक्ति तथा भगवान् की शक्ति एक ही हैं। इसी तरह ब्रह्मतेज भी भगवान् की ही शक्ति है। अतएव चाहे कोई ब्रह्मतेज में रहे या भौतिक शक्ति में, दोनों एक-से हैं, क्योंकि इन दोनों में से किसी में भी आध्यात्मिक क्रियाशीलता

नहीं होती। इनसे अच्छे तो वे हैं जो इन्द्रियतृप्ति की इच्छा करते हैं और स्वर्गलोक जाना चाहते हैं। ऐसे लोग उसी तरह भोग करना चाहते हैं, जिस तरह नन्दनकानन में स्वर्ग के निवासी भोग करते हैं। वे जीवन का भोग करने के लिए कम-से-कम अपनी पहचान तो बनाये रखते हैं, किन्तु निर्विशेषवादी तो अपनी पहचान खोने के साथ ही भौतिक तथा आध्यात्मिक आनन्द से वंचित हो जाते हैं। पत्थर जड़ है, जिसमें न भौतिक और न आध्यात्मिक क्रियाशीलता है। जहाँ तक कठोर श्रम करने वाले *कर्मियों* की बात है, *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है (११.१०.२३)—

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः।
भुञ्जीत देववत् तत्र भोगान् दिव्यान् निजार्जितान्॥

"स्वर्गलोक जाने के लिए नाना प्रकार के यज्ञ करने के बाद कर्मीजन वहाँ पहुँचते हैं और देवताओं के साथ रह कर वैसा ही भोग करते हैं, मानों उन्हें अपने पुण्यकर्मों का फल मिल चुका हो।"

जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (९.२०-२१) कहा गया है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते॥

"जो लोग स्वर्गलोक की तलाश में वेदाध्ययन करते हैं, और सोमरस का पान करते हैं, वे मेरी अप्रत्यक्ष पूजा करते हैं। वे इन्द्र-लोक में जन्म लेते हैं, जहाँ देवों जैसा आनन्द भोगते हैं। जब वे स्वर्ग का इन्द्रिय-सुख भोग चुकते हैं, तो वे पुनः इस मर्त्यलोक में लौट आते हैं। इस तरह वे वैदिक सिद्धान्तों के माध्यम से केवल क्षणिक सुख प्राप्त करते हैं।"

अतएव पुण्यकर्मों का फल समाप्त हो जाने पर कर्मीजन पुनः इस लोक में वृष्टि के रूप में लौट आते हैं, और घास तथा पौधों के रूप में जीवन बिताते हैं।

अरसज्ञ काक चुषे ज्ञान-निष्फले।
रसज्ञ कोकिल खाय प्रेमाम्र-मुकुले॥२५८॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "सभी रसों से रहित व्यक्ति (अरसिक) उन कौवों के समान हैं जो ज्ञानरूपी नीम वृक्ष के तीते फलों का रस चूसते हैं, किन्तु रसज्ञ व्यक्ति उन कोयलों के तुल्य हैं जो भगवत्प्रेम रूपी आम्र वृक्ष की मंजरियों को खाते हैं।"

तात्पर्य

शुष्क ज्ञान-दर्शन नीम वृक्ष के फल के समान तिक्त होता है। इस फल को चखना कौवों का काम है। दूसरे शब्दों में, परम सत्य की अनुभूति की दार्शनिक विधि कौवे जैसे व्यक्तियों द्वारा ग्रहण की जाती है। कोयलों की वाणी मधुर होती है जिससे वे भगवान् के नाम का उच्चारण कर सकती हैं, और वे आम के मधुर फल का आस्वादन करती हैं। ऐसे भक्त भगवान् के मधुर रस का आस्वादन करते हैं।

अभागिया ज्ञानी आस्वादये शुष्क ज्ञान।
कृष्ण-प्रेमामृत पान करे भाग्यवान्॥२५९॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "अभागे शुष्क दार्शनिकजन दर्शन की शुष्क विधि का आस्वादन करते हैं, किन्तु भक्तगण नियमित रूप से कृष्ण-प्रेम रूपी अमृत का पान करते हैं। अतएव वे सर्वाधिक भाग्यशाली हैं।

एइमत दुइ जन कृष्णकथा-रसे।
नृत्य-गीत-रोदने हैल रात्रि-शेषे॥२६०॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण-कथा के रस का आस्वादन करते हुए पूरी रात बिताई। उनके कीर्तन करते, नाचते तथा रोते हुए सारी रात बीत गई।

दोँहे निज-निज-कार्ये चलिला विहाने।
सन्ध्याकाले राय आसि' मिलिला आर दिने॥२६१॥

अनुवाद

प्रातः होने पर दोनों अपने अपने कार्य पर चले गये, किन्तु संध्या-समय रामानन्द पुनः महाप्रभु से मिलने आये।

इष्ट-गोष्ठी कृष्णकथा कहि' कतक्षण।
प्रभुपद धरि' राय करे निवेदन॥२६२॥

अनुवाद

अगले दिन संध्या-समय कुछ समय तक कृष्ण-कथा की चर्चा चलाने के बाद रामानन्द राय ने महाप्रभु के चरणकमल पकड़ लिये और इस तरह बोले।

'कृष्णतत्त्व' 'राधातत्त्व' 'प्रेमतत्त्वसार'।
'रसतत्त्व' 'लीलातत्त्व' विविध प्रकार॥२६३॥

अनुवाद

"राधारानी तथा कृष्ण विषयक वार्ता तथा उनके दिव्य प्रेम, रस तथा लीलाओं के अनेकानेक भेद हैं।"

एत तत्त्व मोर चित्ते कैले प्रकाशन।
ब्रह्माके वेद ग्रेन पड़ाइल नारायण॥२६४॥

अनुवाद

फिर रामानन्द राय ने स्वीकार किया, "आपने मेरे हृदय में अनेक दिव्य तत्त्वों (सत्यों) को प्रकट किया है। नारायण ने इसी तरह ब्रह्माजी को शिक्षा दी थी।"

तात्पर्य

भगवान् ने ब्रह्मा के हृदय को ज्ञान से प्रकाशित किया। *श्वेताश्वतर उपनिषद* में (६.१८) सूचना दी गई है—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं अहं प्रपद्ये॥

"चूँकि मैं मुक्ति चाहता हूँ, इसलिए मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ, जिन्होंने ब्रह्मा के हृदय के भीतर से वैदिक ज्ञान का प्रकाश किया।

भगवान् समस्त प्रकाश तथा आध्यात्मिक उन्नति के आदि स्रोत हैं। *श्रीमद्भागवत* में (२.९.३०-३५, ११.१४.३, १२.४.४० तथा १२.१३.१९) तत्सम्बन्धी अनेक सन्दर्भ हैं।

अन्तर्यामी ईश्वरेर एइ रीति हये।
बाहिरे ना कहे, वस्तु प्रकाशे हृदये॥२६५॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "परमात्मा हर एक के हृदय के भीतर से बोलता है, बाहर से नहीं। वह सभी प्रकार से भक्तों को उपदेश देता है, और यही उनकी उपदेश-विधि है।"

तात्पर्य

यहाँ पर श्री रामानन्द राय स्वीकार करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु परमात्मा हैं। परमात्मा ही भक्त को प्रेरणा देता है, इसलिए वही गायत्री-मन्त्र का उद्गम है। गायत्री में कहा गया है—*ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्*। *सवितृ* समस्त बुद्धि का आदि स्रोत है। वह सवितृ श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* से (२.४.२२) होती है—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

"जिस भगवान् ने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के हृदय के भीतर से निहित ज्ञान को वर्धित किया और सृष्टि के पूर्ण ज्ञान तथा परमात्मा से अनुप्राणित किया और जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होते प्रतीत हुए वे मुझ पर प्रसन्न हों।" यह श्लोक शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के समक्ष श्रीमद्भागवत सुनाने के पूर्व भगवान् से आशीर्वाद माँगने के लिए कहा था।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥२६६॥

अनुवाद

" 'मैं उन वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ जो परम सर्वव्यापी भगवान् हैं। मैं उन सत्य रूप का ध्यान करता हूँ जो समस्त कारणों के आदि कारण हैं, जिससे सारे व्यक्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, जिनमें वे निवास करते हैं और जिनके द्वारा वे नष्ट हो जाते हैं। मैं उन नित्य तेजस्वी भगवान् का ध्यान करता हूँ जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से समस्त जगत से अवगत रहते हुए भी उनसे परे हैं। उन्होंने ही पहले पहल जन्म लेने वाले ब्रह्मा के हृदय में वैदिक ज्ञान प्रदान किया। यह जगत उनके माध्यम से मृगतृष्णा की भाँति बड़े-बड़े मुनियों तथा देवताओं को भी सत्य प्रतीत होता है। उन्हीं के कारण तीन गुणों से निर्मित ब्रह्माण्ड वास्तविकता प्रतीत होते हैं, यद्यपि वे असत्य होते हैं। अतएव मैं उन परम सत्य का ध्यान करता हूँ, जो अपने दिव्य धाम में निरन्तर रहते हैं और जो माया से सदा मुक्त रहते हैं।' "

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (१.१.१) मंगलाचरण है।

एक संशय मोर आछये हृदये।
कृपा करि' कह मोरे ताहार निश्चये॥२६७॥

अनुवाद

तत्पश्चात् रामानन्द राय ने कहा कि उनके हृदय में अब एक ही संशय बचा है अतएव उन्होंने महाप्रभु से याचना की कि "आप मुझ पर कृपालु हों और मेरा संशय दूर करें।"

पहिले देखिलूँ तोमार संन्यासि-स्वरूप।
एबे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥२६८॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने महाप्रभु से कहा, "पहले पहल मैंने आपको संन्यासी की तरह प्रगट होते देखा, किन्तु अब मैं श्यामसुन्दर नामक एक गोप के रूप में देख रहा हूँ।

तोमार सन्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढाका॥२६९॥

अनुवाद

"अब मैं आपको सुनहरे गुड्डे की तरह प्रकट होते देख रहा हूँ और आपका सारा शरीर सुनहरी कान्ति से आच्छादित है।

तात्पर्य

श्यामसुन्दर तो श्याम रंग के हैं, किन्तु रामानन्द राय कहते हैं कि उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को सुनहरे रंग में प्रकट होते देखा। श्री चैतन्य महाप्रभु का कान्तिमय शरीर श्रीमती राधारानी के शारीरिक रंग से ढका था।

ताहाते प्रकट देखों स-वंशी वदन।
नाना भावे चञ्चल ताहे कमलनयन॥२७०॥

अनुवाद

"मैं देख रहा हूँ कि आप मुख में वंशी धारण किये हैं और आपके कमल-नेत्र विभिन्न भावों के कारण चंचल हो रहे हैं।

एइमत तोमा देखि' हय चमत्कार।
अकपटे कह, प्रभु, कारण इहार॥२७१॥

अनुवाद

"मैं आपको इसी रूप में देख रहा हूँ और यह अत्यन्त अद्भुत है। हे प्रभु! निष्कपट भाव से बतलायें कि ऐसा क्यों हो रहा है।"

प्रभु कहे,—कृष्ण तोमार गाढ़प्रेम हय।
प्रेमार स्वभाव एइ जानिह निश्चय॥२७२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप में कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम है, और जिस किसी को ऐसा होता है वह वस्तुओं को इसी तरह से देखता है। आप इसे निश्चय जानें।

महाभागवत देखे स्थावर-जङ्गम।
ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्रीकृष्ण-स्फुरण॥२७३॥

अनुवाद

"आध्यात्मिक पद को प्राप्त भक्त प्रत्येक चर तथा अचर वस्तु को भगवान् के रूप में देखता है। उसे इधर-उधर दिखने वाली सारी वस्तुएँ भगवान् कृष्ण के ही स्वरूप जान पड़ती हैं।

स्थावर-जंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेर-स्फूर्ति॥२७४॥

अनुवाद

"महान भक्त अर्थात् महाभागवत हर वस्तु को चर तथा अचर करके देखता है, किन्तु वह उनके असली स्वरूपों को नहीं देखता। प्रत्युत वह जहाँ कहीं भी देखता है उसे भगवान् का स्वरूप प्रकट होते दिखता है।"

तात्पर्य

कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण, महाभागवत सर्वत्र कृष्ण का ही दर्शन करता है, अन्य किसी का नहीं। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* में (५.३८) इस प्रकार हुई है—*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*।

जब भी भक्त कोई वस्तु देखता है, चाहे वह चर या अचर, तो वह तुरन्त कृष्ण का स्मरण करता है। महाभागवत ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा होता है। यह ज्ञान भक्त में सहज है, क्योंकि वह *भगवद्गीता* में पढ़े रहता है कि किस तरह कृष्णभावनामृत जाग्रत किया जाय। *भगवद्गीता* के अनुसार (७.८)—

रसोऽमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥

"हे कुन्ती-पुत्र (अर्जुन)! मैं जल का स्वाद हूँ, सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रकाश हूँ, वैदिक मन्त्रों का ॐ शब्द हूँ, आकाश का शब्द तथा मनुष्य का पौरुष हूँ।"

अतएव जब भक्त जल या अन्य द्रव पीता है तो वह तुरन्त कृष्ण को स्मरण करता है। भक्त चौबीसों घण्टे कृष्णभावनामृत में लीन रहता है। इसीलिए कहा गया है—

स्थावर जंगम देखे ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेव-स्फूर्ति॥

सन्त पुरुष या महाभागवत चौबीसों घण्टे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखता। जहाँ तक चर तथा अचर वस्तुओं का सम्बन्ध है, भक्त इन सबों को कृष्ण की शक्ति का विकार मानता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में (७.४) कहा गया है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा॥

"भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—ये आठों मेरी भिन्न भौतिक शक्तियाँ हैं।"

वास्तव में कृष्ण से भिन्न कुछ नहीं हैं। भक्त जब किसी वृक्ष को देखता है, तो वह जानता है कि यह वृक्ष दो शक्तियों—भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का संयोग (समन्वय) है। कनिष्ठा शक्ति भौतिक है, जिससे वृक्ष का शरीर बनता है, किन्तु वृक्ष के भीतर आध्यात्मिक स्फुलिंग, जीव, होता है, जो कृष्ण का अंश है। यह इस जगत में कृष्ण की उत्कृष्ठा शक्ति है। हम जो भी सजीव वस्तु देखते हैं वह मात्र इन दोनों शक्तियों का समन्वय है। जब महाभागवत इन शक्तियों के बारे में सोचता है, तो वह तुरन्त समझ जाता है कि वे भगवान् की अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रातःकाल जब हम सूर्य को देखते हैं तो उठ कर प्रातःकाल के कार्यों में जुट जाते हैं। इसी तरह भक्त भगवान् की शक्ति को देखते ही भगवान् कृष्ण का स्मरण करता है। इसकी व्याख्या *सर्वत्र हय निज इष्ट देव स्फूर्ति* श्लोक में की गई है।

जिस भक्त ने भक्ति के द्वारा अपने शरीर को निर्मल बना लिया है, वह पग-पग पर कृष्ण का ही दर्शन करता है। अगले श्लोक में जो *श्रीमद्भागवत* से लिया गया है (११.२.४५) इसी की व्याख्या हुई है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥२७५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "भक्ति में अग्रसर व्यक्ति हर वस्तु के भीतर आत्माओं की आत्मा, भगवान् कृष्ण, को देखता है। फलस्वरूप वह भगवान् के स्वरूप को समस्त कारणों का कारण करके देखता है, और यह समझता रहता है कि सारी वस्तुएँ उसी में स्थित हैं।"

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभावविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म॥२७६॥

अनुवाद

"कृष्ण के भाव में पौधे, लताएँ तथा वृक्ष फूलों तथा फलों से लदे थे, जिसके कारण वे झुके जा रहे थे। वे कृष्ण के ऐसे प्रगाढ़ प्रेम से अनुप्राणित थे कि वे मधु की वर्षा कर रहे थे। इस तरह गोपियों ने वृन्दावन के पूरे जंगल को देखा।"

तात्पर्य

यह श्लोक (भागवत १०.३५.९) कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियों द्वारा गाया गया एक गीत है। कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ सदैव उनके विचार में मग्न रहती थीं। इसी प्रकार से भागवत हर वस्तु को भगवान् की सेवा में लगा देखता है। श्रील रूप गोस्वामी की संस्तुति है—

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥
(भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.१२६)

भागवत को ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखती, जो कृष्ण से सम्बन्धित न हो। मायावादी दार्शनिकों से भिन्न, एक भक्त भौतिक जगत को मिथ्या नहीं देखता। प्रत्युत, भौतिक जगत की हर वस्तु को वह कृष्ण से सम्बन्धित देखता है। भक्त जानता रहता है कि ऐसी वस्तुओं का उपयोग भगवान् की सेवा में कैसे किया जाय—यह महाभागवत का गुण है। गोपियों ने वृक्ष, लताएँ तथा वन-वृक्षों को फल-फूल से लदा देखा, जो कृष्ण की सेवा के लिए उद्यत थे। इस तरह उन्हें अपने आराध्य श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया। उन्होंसे ससारी व्यक्ति की तरह पौधों, लताओं तथा वृक्षों को नहीं देखा।

राधाकृष्णे तोमार महाप्रेम हय।
ग़ाहाँ ताहाँ राधाकृष्ण तोमारे स्फुरय॥२७७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे राय! आप महाभागवत हैं, और राधाकृष्ण के प्रेम से सदैव पूरित रहते हैं। अतएव आप जहाँ कहीं जो कुछ देखते हैं, वह आप में कृष्णभावनामृत को जाग्रत करता है।"

राय कहे,—प्रभु तुमि छाड़ भारिभूरि।
मोर आगे निजरूप ना करिह चूरि॥२७८॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने उत्तर दिया, "हे प्रभु! आप इन सारी गम्भीर बातों को छोड़ दें। आप मुझसे अपना असली रूप मत छिपायें।"

राधिकार भावकान्ति करि' अङ्गीकार।
निजरस आस्वादिते करियाछ अवतार॥२७९॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे महाप्रभु! मैं जानता हूँ कि आपने श्रीमती राधारानी का भाव तथा शारीरिक वर्ण धारण कर रखा है। इस तरह आप अपने निजी रस का आस्वादन कर रहे हैं, और श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं।

निजगूढ़कार्य तोमार—प्रेम आस्वादन।
आनुषङ्गे प्रेममय कैले त्रिभुवन॥२८०॥

अनुवाद

"हे महाप्रभु! आप निजी कारणों से चैतन्य महाप्रभु का अवतार धारण कर प्रकट हुए हैं। आप अपने आध्यात्मिक आनन्द का आस्वाद करने और साथ ही साथ भगवत्प्रेम का प्रसार करके सारे जगत को रूपान्तरित करने आये हैं।

आपने आइले मोरे करिते उद्धार।
एबे कपट कर,—तोमार कोन व्यवहार॥२८१॥

अनुवाद

"हे महाप्रभु! आप मुझे मुक्ति प्रदान करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से मेरे समक्ष प्रकट हुए हैं। अब आप छल कर रहे हैं। ऐसे व्यवहार का क्या कारण है?"

तबे हासि' ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज', 'महाभाव'—दुइ एक रूप॥२८२॥

अनुवाद

भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं और श्रीमती राधारानी साक्षात् भावमय भगवत्प्रेम हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु में ये दोनों स्वरूप मिल गये हैं। ऐसा होने के कारण श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को अपना असली स्वरूप दिखलाया।

तात्पर्य

इसका वर्णन *राधाभावद्युतिसुवलितं नौमिकृष्णस्वरूपम्* में हुआ है। श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी के स्वरूप में लीन थे। इसका पता रामानन्द राय को तब चला, जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा। महाभागवत यह समझ सकता है—*श्रीकृष्णचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य*। श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्ण तथा राधा का समन्वित रूप होने के कारण राधाकृष्ण युगल से अभिन्न हैं। स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने इसकी व्याख्या की है—

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्माद्
एकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटं अधुना तद्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥
(चैतन्य-चरितामृत आदि १.५)

राधाकृष्ण एक हैं। राधाकृष्ण कृष्ण तथा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति का संयुक्त रूप हैं। जब कृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्ति प्रकट करते हैं तो वे दो—राधा तथा कृष्ण—प्रतीत होते हैं। अन्यथा राधा तथा कृष्ण दोनों एक हैं। यह एकत्व श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से महाभागवत के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है। रामानन्द राय के साथ ऐसा ही हुआ और ऐसा ही साक्षात्कार महाभागवत को हो सकता है। मनुष्य ऐसा ही पद पाने की आकांक्षा

कर सकता है, किन्तु उसे महाभागवत का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

देखि' रामानन्द हैला आनन्दे मूर्च्छितो।
धरिते ना पारे देह, पड़िला भूमिते॥२८३॥

अनुवाद

यह स्वरूप देख कर रामानन्द राय दिव्य आनन्द के कारण मूर्छित हो गये। वे खड़े नहीं रह सके, अतः भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु ताँरे हस्त स्पर्शि' कराइला चेतन।
संन्यासीर वेष देखि' विस्मित हैल मन॥२८४॥

अनुवाद

जब रामानन्द राय मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े, तो चैतन्य महाप्रभु ने उनका हाथ छुआ, जिससे उन्हें तुरन्त चेतना प्राप्त हो गई। किन्तु जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को संन्यासी वेश में देखा तो वे आश्चर्यचकित हो गये।

आलिङ्गन करि' प्रभु कैल आश्वासन।
तोमा विना एइरूप ना देखे अन्यजन॥२८५॥

अनुवाद

रामानन्द राय का आलिंगन करने के बाद महाप्रभु ने उन्हें सान्त्वना दी और बतलाया, "तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी ने यह स्वरूप नहीं देखा है।"

तात्पर्य

भगवद्गीता में (७.२५) कहा गया है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजनाति लोको मामजमव्ययम्॥

"मैं मूर्खों तथा बुद्धिहीनों के समक्ष कभी प्रकट नहीं होता। उनके लिए तो मैं अपनी योगमाया से आच्छादित रहता हूँ, जिससे प्रवंचित संसार मुझ अजन्मा तथा अव्यय को नहीं जान पाता।"

भगवान् को यह अधिकार है कि वह हर एक के समक्ष प्रकट न हों।

किन्तु भक्तगण सदैव भगवान् की सेवा में रत रहते हैं। वे अपनी जीभ से हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके और महाप्रसाद का आस्वादन करके उनकी सेवा करते हैं। निष्ठावान भक्त भगवान् को क्रमशः प्रसन्न कर लेता है, और भगवान् अपने को प्रकट कर देते हैं। कोई भी मनुष्य निजी प्रयास से भगवान् का दर्शन नहीं कर सकता। भगवान् जब भक्त की सेवा से प्रसन्न होते हैं, तभी वे स्वयं प्रकट होते हैं।

मोर तत्त्वलीला-रस तोमार गोचरे।
अतएव एइरूप देखाइलुँ तोमारे॥२८६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने पुष्टि की, "मेरी लीलाओं तथा रसों का सारा तत्त्व (सत्य) आपके ज्ञान की सीमा के अन्तर्गत है। इसीलिए मैंने आपको यह स्वरूप दिखलाया है।

गौर अङ्ग नहे मोर—राधाङ्ग-स्पर्शन।
गोपेन्द्रसुत विना तेँहो ना स्पर्शे अन्यजन॥२८७॥

अनुवाद

"वास्तव में मेरा शरीर गौर वर्ण का नहीं है। यह तो श्रीमती राधारानी का शरीर स्पर्श करने से ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु राधारानी नन्द महाराज के पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श नहीं करतीं।

ताँर भावे भावित करि' आत्म-मन।
तबे निज-माधुर्य करि आस्वादन॥२८८॥

अनुवाद

"अब मैंने अपने शरीर तथा मन को श्रीमती राधारानी के भाव में रंग लिया है। इस तरह मैं अपने ही माधुर्य का आस्वादन उस रूप में कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

गौरसुन्दर ने श्री रामानन्द राय को बतलाया, "आप वास्तव में गौर वर्ण वाले भिन्न व्यक्ति को देख रहे हैं। वास्तव में मैं गौर वर्ण का नहीं हूँ। मैं नन्द महाराज का पुत्र श्रीकृष्ण होने के कारण श्याम हूँ, किन्तु श्रीमती

राधारानी के सम्पर्क में आते ही मैं गौर वर्ण का हो जाता हूँ। श्रीमती राधारानी कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी के शरीर का स्पर्श नहीं करतीं। मैं श्रीमती राधारानी का वर्ण स्वीकार कर अपने ही दिव्य स्वरूप का आस्वादन करता हूँ। राधारानी के बिना कृष्ण के माधुर्य रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता।" इस सम्बन्ध में श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय पर टीका करते हैं जो कृष्ण तथा चैतन्य को पृथक-पृथक शरीर वाला मानता है। वे यहाँ पर आये *गौर अंग नाहे मोर* की भ्रान्त विवेचना करते हैं। इस श्लोक में यह समझा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु कृष्ण से अभिन्न हैं। दोनों एक ही भगवान् हैं। कृष्ण के रूप में भगवान् आध्यात्मिक आनन्द का भोग करते हैं और समस्त भक्तों के आश्रय—*विषय-विग्रह*—बने रहते हैं। अपने गौरांग स्वरूप में कृष्ण श्रीमती राधारानी के भाव में कृष्ण-विरह का आस्वादन करते हैं। यह भावस्वरूप ही श्रीकृष्ण चैतन्य है। श्रीकृष्ण सदैव समस्त आनन्द के आगार हैं और *धीरललित* कहलाते हैं। राधारानी सदेह आध्यात्मिक शक्ति हैं जो साक्षात् कृष्ण-प्रेम है। इसीलिए केवल कृष्ण ही उनका स्पर्श कर सकते हैं। यह धीरललित पक्ष भगवान् के किसी रूप में—न तो विष्णु में, न नारायण में देखा जाता है। इसीलिए श्रीमती राधारानी गोविन्द नन्दिनी तथा गोविन्द मोहिनी कहलाती हैं, क्योंकि वे ही कृष्ण के दिव्य आनन्द की एकमात्र स्रोत हैं। वे ही ऐसी हैं जो उनके चित्त को चुरा सकती हैं।

तोमार ठाञिआमार किछु गुप्त नाहि कर्म।
लुकाइले प्रेम-बले जान-सर्व-मर्म॥२८९॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शुद्ध भक्त रामानन्द राय के समक्ष स्वीकार किया, "अब कोई ऐसा गुप्त कार्य नहीं जो आपसे अज्ञात हो। यद्यपि मैं अपने कार्यों को गुप्त रखने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु आप मेरे प्रति अपने उन्नत प्रेम के कारण प्रत्येक बात को विस्तार से समझ सकते हैं।"

गुप्ते राखिह, काहाँ ना करिओ प्रकाश।
आमार बातुल-चेष्टा लोके उपहास॥२९०॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया, "इन सारी बातों को गुप्त रखें। आप इन्हें कहीं भी प्रकट न करें। चूँकि मेरे कार्य उन्मत्त व्यक्ति के-से प्रतीत होते हैं, अतएव लोग उनकी हँसी उड़ा सकते हैं।"

आमि—एक बातुल, तुमि—द्वितीय बातुल।
अतएव तोमाय आमाय इह समतुल॥२९१॥

अनुवाद

"मैं सचमुच उन्मत्त हूँ और तुम भी उन्मत्त हो। अतएव हम दोनों समान धरातल पर हैं।"

तात्पर्य

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की ये वार्ताएँ एक सामान्य व्यक्ति को, जो भक्त नहीं है, हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। सारा जगत भौतिक विचारधारा से पूर्ण है और लोग इन वार्ताओं को, संसारी दर्शन द्वारा बद्ध होने के कारण, समझने में असमर्थ हैं। जो लोग संसारी कार्यों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, वे इन वार्ताओं को नहीं समझ सकेंगे। इसीलिए महाप्रभु ने रामानन्द राय से अनुरोध किया कि वे इन सारी वार्ताओं को गुप्त रखें और उन्हें सामान्य जनता में प्रकट न करें। जो वास्तव में कृष्णभावनामृत में बढ़ा हुआ होता है, वही इन गुप्त बातों को समझ सकता है, अन्यथा ये प्रलाप प्रतीत होंगी। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को बतलाया कि वे दोनों ही बातुल (उन्मत्त) लगते हैं और एक ही धरातल पर हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा (२.६९) भी होती है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

"जो समस्त जीवों के लिए रात है, वह संयमी व्यक्तियों के लिए जगने का समय है, और जो समस्त जीवों के जगने का समय है, वह मुनियों के लिए रात है।"

कभी-कभी संसारी व्यक्तियों को कृष्णभावनामृत उन्मत्तता प्रतीत होता है जिस तरह संसारी व्यक्तियों के कार्य कृष्णभावनाभावित व्यक्ति द्वारा उन्मत्तता समझे जाते हैं।

एइरूप दशरात्रि रामानन्द-सङ्गे।
सुखे गोङाइला प्रभु कृष्णकथा-रङ्गे॥२९२॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने कृष्ण की लीलाओं पर विचार-विमर्श करते हुए सुखपूर्वक दस रातें बिता दीं।

निगूढ़ व्रजेर रस-लीलार विचार।
अनेक कहिल, तार ना पाइल पार॥२९३॥

अनुवाद

रामानन्द राय तथा चैतन्य महाप्रभु के बीच हुई वार्ताएँ अत्यन्त गूढ़ हैं, जो वृन्दावन (व्रजभूमि) में राधा तथा कृष्ण के माधुर्य प्रेम से सम्बन्धित हैं। यद्यपि दोनों ने इन लीलाओं पर विस्तार से बातें कीं, किन्तु वे उनका पार नहीं पा सके।

तामा, काँसा, रूपा, सोना, रत्नचिन्तामणि।
केह यदि काहाँ पोता पाय एकखानि॥२९४॥

अनुवाद

वस्तुतः ये वार्ताएँ उस विशाल खान के तुल्य हैं, जिससे सभी तरह की धातुएँ—ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना तथा अन्य निकृष्ट धातुएँ निकाली जा सकती हैं। वे सब एक स्थान में गड़े हुए निकष के समान हैं।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के बीच हुइ वार्ताओं का सारांश इस प्रकार दिया है—रामानन्द राय ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा पूछे गये पाँच प्रश्नों (जो श्लोक ५७-६७ में दिये हैं) के उत्तर दिए। पहला उत्तर ताँबे के समान है और पाँचवा उत्तर अत्यन्त मूल्यवान है, क्योंकि इसमें भक्तिमय जीवन के चरम लक्ष्य—अनन्य भक्ति—का उल्लेख है। यह अपने पूर्व के चार उत्तरों पर प्रकाश डालने वाला है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि व्रजभूमि में बलुहे तटों वाली यमुना नदी है, कदम्ब वृक्ष हैं, गौवें हैं, कृष्ण की लकुटियाँ हैं, जिनसे वे गौवे हाँकते थे, तथा कृष्ण की वंशी है। ये सभी *शान्त*

रस से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण के दास हैं—यथा चित्रक, पत्रक तथा रक्तक—ये सभी दास्य भाव के साकार रूप हैं। श्रीदामा, सुदामा आदि मित्र सख्य भाव के द्योतक हैं। नन्द महाराज तथा माता यशोदा वात्सल्य रस के प्रतीक हैं। इन सबसे ऊपर हैं—श्रीमती राधारानी तथा उनकी गोपी सखियाँ—ललिता, विशाखा आदि। इस तरह पाँचो रस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य निरन्तर विद्यमान रहते हैं। इनकी तुलना ताँबा, काँसा, चाँदी, सोना जैसी धातुओं तथा निकष से की गई है। इसीलिए कविराज गोस्वामी वृन्दावन या व्रजभूमि में धातुओं की खान होने का उल्लेख करते हैं।

क्रमे उठाइते सेह उत्तम वस्तु पाय।
ऐछे प्रश्नोत्तर कैल प्रभु-रामराय॥२९५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय ने एक से एक उत्तम धातुओं को निकालने का काम किया। उनके प्रश्न तथा उत्तर इसी तरह के हैं।

आर दिन राय-पाशे विदाय मागिला।
विदायेर काले ताँरे एइ आज्ञा दिला॥२९६॥

अनुवाद

अगले दिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए रामानन्द राय से अनुमति माँगी। विदा होते समय महाप्रभु ने राय को निम्नलिखित आज्ञा दी।

विषय छाड़िया तुमि य़ाह नीलाचले।
आमि तीर्थ करि' ताँहा आसिब अल्पकाले॥२९७॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "आप सारे भौतिक कार्यकलाप छोड़ कर जगन्नाथ पुरी आयें। मैं अपनी तीर्थयात्रा समाप्त करके शीघ्र ही वहाँ लौट आऊँगा।

दुइजन नीलाचले रहिब एकसङ्गे।
सुखे गोङाइब काल कृष्णकथा-रङ्गे॥२९८॥

अनुवाद

"हम दोनों जगन्नाथ-पुरी में मिल कर रहेंगे और कृष्ण-कथा कहते हुए सुखपूर्वक अपना समय बितायेंगे।"

एत बलि' रामानन्दे करि' आलिङ्गन।
ताँरे घरे पाठाइया करिल शयन॥२९९॥

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय का आलिंगन किया और उन्हें घर भेज कर स्वयं विश्राम करने लगे।

प्रातःकाले उठि' प्रभु देखि' हनुमान्।
ताँरे नमस्करि' प्रभु दक्षिणे करिला प्रयाण॥३००॥

अनुवाद

प्रातःकाल जगने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु स्थानीय मन्दिर में गये जहाँ हनुमानजी का विग्रह था। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु ने दक्षिण भारत के लिए कूच किया।

तात्पर्य

भारत के समस्त कस्बों तथा शहरों में भगवान् रामचन्द्र के नित्य सेवक हनुमानजी के मन्दिर हैं। यहाँ तक कि वृन्दावन में गोविन्दजी के मन्दिर के पास भी हनुमान-मन्दिर है। पहले यह मन्दिर गोपालजी मन्दिर के सामने था, किन्तु गोपालजी का वह विग्रह साक्षीगोपाल के रूप में उड़ीसा चला गया। भगवान् रामचन्द्रजी का नित्य दास होने के कारण हनुमानजी की पूजा लाखों वर्षों से बड़े ही आदर के साथ होती चली आ रही है। यहाँ तक कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि किस तरह मनुष्य को हनुमानजी का आदर करना चाहिए।

'विद्यापूरे' नाना-मत लोक वैसे य़त।
प्रभु-दर्शने 'वैष्णव' हैल छाडि' निजमत॥३०१॥

अनुवाद

विद्यानगर के सारे निवासी विभिन्न मतों को मानने वाले थे किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन करने के बाद उन्होंने अपना-अपना मत त्याग दिया और वैष्णव बन गये।

रामानन्द हैला प्रभुर विरहे विह्वल।
प्रभुर ध्याने रहे विषय छाड़िया सकल॥३०२॥

अनुवाद

रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के विरह में विह्वल हो उठे। वे अपने सारे भौतिक कार्यकलाप त्याग कर महाप्रभु के ध्यान में मग्न रहने लगे।

संक्षेपे कहिलूँ रामानन्देर मिलन।
विस्तारि' वर्णिते नारे सहस्र-वदन॥३०३॥

अनुवाद

मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मिलन का संक्षेप में वर्णन किया है। इसका विस्तार से वर्णन कर पाना संभव नहीं। यहाँ तक कि हजार फनों वाले भगवान् शेषनाग भी इसका वर्णन नहीं कर सकते।

सहजे चैतन्यचरित्र—घनदुग्धपूर।
रामानन्दचरित्र ताहे खण्ड प्रचुर॥३०४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलाप औंटे दूध के समान हैं और रामानन्द राय के कार्यकलाप खांड के ढेर के समान हैं।

राधाकृष्णलीला—ताते कर्पूर-मिलन।
भाग्यवान् ये़इ, सेइ करे आस्वादन॥३०५॥

अनुवाद

उनका मिलन औंटे दूध और खांड के मिश्रण के समान है। जब वे राधा तथा कृष्ण की लीलाओं के विषय में बातें करते हैं, तो मानो उसमें कपूर मिल गया हो। जो व्यक्ति इस मिश्रित व्यंजन का स्वाद चखता है वह परम भाग्यशाली है।

ग्रे इहा एकबार पिये कर्णद्वारे।
तार कर्ण लोभे इहा छाड़िते ना पारे।।३०६।।

अनुवाद

इस अद्‌भुत व्यंजन को कानों से ग्रहण करना होता है। जो इसे ग्रहण करता है वह और अधिक आस्वाद करने के लिए लालायित रहता है।

'रसतत्त्व-ज्ञान' हय इहार श्रवणे।
'प्रेमभक्ति' हय राधाकृष्णेर चरणे।।३०७।।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की वार्ताओं को सुन कर राधाकृष्ण-लीलाओं के रसों का दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। इस तरह राधा तथा कृष्ण के चरणकमलों के प्रति अनन्य प्रेम उत्पन्न हो सकता है।

चैतन्येर गूढ़तत्त्व जानि इहा हैते।
विश्वास करि' शुन, तर्क ना करिह चित्ते।।३०८।।

अनुवाद

लेखक का हर पाठक से यही अनुरोध है कि इन वार्ताओं को श्रद्धापूर्वक बिना तर्क किये सुने। इस तरह से अध्ययन करने पर ही वह श्री चैतन्य महाप्रभु के गूढ़ तत्व को समझ सकेगा।

अलौकिक लीला एइ परम निगूढ़।
विश्वासे पाइये, तर्के हय बहुदूर।।३०९।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का यह अंश परम गोपनीय है। मनुष्य केवल श्रद्धा से लाभान्वित हो सकता है, अन्यथा तर्क करने से वह दूर बना रहेगा।

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द-अद्वैत-चरण ।
ग्राँहार सर्वस्व, ताँरे मिले एइ धन।।३१०।।

अनुवाद

जिसने श्री चैतन्य महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु तथा अद्वैत प्रभु के चरणकमलों को सबकुछ मान रखा है, वही इस दिव्य खजाने को प्राप्त कर सकता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का कथन है कि जो श्रद्धावान् हैं उन्हें कृष्ण प्राप्य हैं, किन्तु जो तर्क करने के आदी हैं, उनसे कृष्ण बहुत दूर रहते हैं। इसी तरह जिस व्यक्ति में दृढ़ श्रद्धा है वही रामानन्द राय तथा चैतन्य महाप्रभु की इन वार्ताओं को समझ सकता है। जो *असौतपन्थी* हैं अर्थात् जो परम्परा से जुड़े नहीं हैं, उनकी इन वार्ताओं में श्रद्धा नहीं होती। वे सदैव संशय करते हैं और कपोल-कल्पना में लगे रहते हैं। ऐसे सनकी लोग इन वार्ताओं को नहीं समझ पाते। जो तर्क करने वाले हैं, उनसे भी ये दिव्य वार्ताएँ दूर रही आती हैं। इस सम्बन्ध में *कठ उपनिषद* का (१.२.९) कहना है—*नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सज्ञानाय प्रेष्ठ*। *मुण्डक उपनिषद* के अनुसार (३.२.३)—*नायमात्मा प्रवश्चनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन / यमेवैषवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्*। और *ब्रह्मसूत्र* के अनुसार (२.१.११)—*तर्काप्रष्ठिनात्*।

वैदिक ग्रंथों की घोषणा है कि दिव्य विषयों को केवल तर्क से नहीं समझा जा सकता। आध्यात्मिक बातें व्यावहारिक ज्ञान से बहुत ऊपर हैं। यदि कोई कृष्ण के दिव्य प्रेमालापों में रुचि रखता है तो वह कृष्ण की कृपा होने पर ही उन्हें समझ सकता है। जो व्यक्ति केवल बुद्धि के बल पर इन दिव्य कथाओं को समझना चाहता है, उसका प्रयास निष्फल जाता है। फिर चाहे वह प्राकृत सहजिया हो, या संसारी अवसरवादी या पंडित। संसारी साधनों से इन कथाओं को समझने के लिए किया जाने वाला श्रम व्यर्थ जाता है। अतः उसे सांसारिक प्रयास त्याग कर भगवान् विष्णु का शुद्ध भक्त बनना होता है। जब ऐसा भक्त विधानों का पालन करता है तो इन वार्ताओं का सत्य उसे प्रकट होता है। इसकी पुष्टि *भक्तिरसामृत-सिन्धु* में (१.२.१०९) हुई है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादो स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

मनुष्य अपनी स्थूल भौतिक इन्द्रियों से भगवान् के नाम, लीला, रूप, गुण तथा पार्षदों को नहीं समझ सकता। किन्तु निरन्तर सेवा करते रहने से जब इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तो राधाकृष्ण की लीलाओं का आध्यात्मिक सत्य (तत्त्व) प्रकट होता है। *मुण्डक उपनिषद* में पुष्टि हुई है—*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्*। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, वही श्री चैतन्य महाप्रभु के दिव्य स्वरूप को समझ सकता है।

रामानन्द राये मोर कोटी नमस्कार।
य़াँर मुखे कैल प्रभु रसेर विस्तार॥३११॥

अनुवाद

मैं श्री रामानन्द राय के चरणकमलों पर एक करोड़ बार नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उनके मुख से आध्यात्मिक सूचना का विस्तार श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा किया गया है।

दामोदर-स्वरूपेर कड़चा-अनुसारे।
रामानन्द-मिलन-लीला करिल प्रचारे॥३१२॥

अनुवाद

मैंने श्री स्वरूप दामोदर के गुटकों के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय की मिलन-लीलाओं का प्रचार किया है।

तात्पर्य

लेखक प्रत्येक अध्याय के अन्त में शिष्य-परम्परा के महत्व को स्वीकार करता चलता है। वह यह दावा कभी नहीं करता कि उसने शोध-कार्य के आधार पर यह दिव्य साहित्य रचा है। वह स्वरूप दामोदर, रघुनाथदास गोस्वामी तथा अन्य अधिकारी व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये गुटकों (टिप्पणियों) के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता है। दिव्य साहित्य का वर्णन इसी तरह से किया जाता है, क्योंकि यह साहित्य तथाकथित विद्वानों तथा शोधार्थियों के लिए नहीं है। सही विधि है—*महाजनो येन गतः स पन्थाः*। मनुष्य को चाहिए कि महापुरुषों तथा आचार्यों का अनुगमन करे। *आचार्यवान् पुरुषो वेद*—जिसे आचार्य की कृपा प्राप्त होती वह हर बात जान जाता है। कविराज गोस्वामी का यह कथन समस्त शुद्ध भक्तों के लिए अत्यन्त मूल्यवान है। कभी-क़भी प्राकृत सहजिये दावा करते हैं कि उन्होंने अपने गुरु से सत्य

सुना है। किन्तु अप्रामाणिक गुरु से श्रवण करके ही दिव्य ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु को प्रामाणिक होना चाहिए, और उसे अपने प्रामाणिक गुरु से श्रवण करना चाहिए। तभी उसके सन्देश को प्रामाणिक माना जायेगा। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (४.१) से होती है—

श्री भगवान् उवाच
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत॥

"भगवान् ने कहा, "मैंने यह अमर योग-विद्या सूर्यदेव विवस्वान को सिखलाई, और विवस्वान् ने इसे मनु को सिखलाया, और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को सिखलाया।"

इस तरह कोई सन्देश एक प्रामाणिक गुरु से प्रामाणिक शिष्य तक पहुँचाया जाता है। इसीलिए श्रील कविराज गोस्वामी पहले ही की तरह इस अध्याय की समाप्ति षड् गोस्वामियों के चरणकमलों पर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए करते हैं। इस तरह वे अपना यह दिव्य साहित्य—चैतन्य-चरितामृत प्रस्तुत कर सके।

श्रीरूप-रघुनाथपदे याार आश।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास॥३१३॥

अनुवाद

श्री रूप और रघुनाथदास के चरणकमलों पर उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणकमलों पर चलते हुए श्रीचैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ जो श्री चैतन्य महाप्रभु तथा रामानन्द राय के मध्य हुई वार्ताओं से सम्बन्धित है।

अध्याय ९

श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्राएँ

नवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने दिया है। विद्यानगर से चलने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गौतमी-गंगा, मल्लिकार्जुन, अहोवल-नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्दक्षेत्र, त्रिमठ, वृद्धकाशी, बौद्धस्थान, त्रिपति, त्रिमल्ल, पानानृसिंह, शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची, त्रिकालहस्ती, वृद्धकोल, शियाली-भैरवी, कावेरीतीर तथा कुम्भकर्णकपाल तीर्थस्थानों में गये।

अन्त में महाप्रभु श्री रंगक्षेत्र गये, जहाँ उन्होंने व्यंकट भट्ट नामक ब्राह्मण को सपरिवार कृष्ण का भक्त बनाया। श्री रंग से चलने के बाद वे ऋषभ पर्वत आये जहाँ उनकी भेंट परमानन्द पुरी से हुई जो बाद में जगन्नाथ पुरी आ गये। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु सेतुबन्ध रामेश्वर पहुँचे। श्री शैलपर्वत पर उनकी भेंट शिव तथा उनकी पत्नी दुर्गा से एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी के वेश में हुई। इसके बाद वे कामकोष्ठीपुरी गये और फिर वहाँ से दक्षिण मथुरा पहुँचे। उनसे भगवान् रामचन्द्र के भक्त एक ब्राह्मण ने बातें की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने कृतमाला नदी में स्नान किया। उन्होंने महेन्द्रशैल पर परशुराम के दर्शन किये। तत्पश्चात् महाप्रभु सेतुबन्ध गये और धनुस्तीर्थ में स्नान किया। वे रामेश्वर भी गये जहाँ उन्होंने सीतादेवी से सम्बन्धित कुछ कागजात प्राप्त किये, जिनके मायारूप का हरण रावण ने किया था। इसके बाद महाप्रभु ने पाण्ड्य देश, ताम्रपर्णी, नयत्रिपदी, चियड़तल, तिलकाञ्ची, गजेन्द्रमोक्षण, पानागड़ि, चाम्तापुर, श्री वैकुण्ठ, मलयपर्वत तथा कन्याकुमारी स्थानों का भ्रमण किया। तत्पश्चात् मल्लार देश में महाप्रभु की भेंट भट्टथारियों से हुई और उन्होंने काला कृष्णदास को उनके चंगुल से छुड़ाया। उन्होंने पयस्विनी नदी के तट पर *ब्रह्म-संहिता* का पाँचवा अध्याय प्राप्त किया। इसके बाद वे पयस्विनी, शृंगवेरपुरीमठ तथा मत्स्य-तीर्थ गये। उडुपी नामक स्थान में उन्होंने श्री मध्वाचार्य द्वारा संस्थापित गोपाल के दर्शन किये। तत्पश्चात्

उन्होंने तत्त्ववादियों को शास्त्रार्थ में हराया। इसके बाद महाप्रभु फल्गुतीर्थ, त्रितकूप, पञ्चाप्सरा, सूरपारक तथा कोलापुर गये। श्री रंगपुरी में उन्हें शंकराचार्य के अन्तर्धान होने का समाचार मिला। फिर वे कृष्णवेण्वा नदी के तट पर गये, जहाँ उन्होंने वैष्णव ब्राह्मणों के यहाँ से बिल्वमंगल-कृत *कृष्ण कर्णामृत* नामक पुस्तक प्राप्त की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने ताप्ती, महिष्मतीपुरा, नर्मदातीर तथा ऋष्यमूक पर्वत देखा। वे दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुये और सात ताड़ वृक्षों का उद्धार किया। वहाँ से वे पम्पा सरोवर आये और पञ्चवटी, नासिक, ब्रह्मगिरि तथा गोदावरी उद्‌गम कुशावर्त देखा। इस तरह महाप्रभु ने दक्षिण भारत के प्रायः समस्त तीर्थों को देखा। अन्त में वे उसी रास्ते से होकर, फिर से विद्यानगर होते हुए जगन्नाथ पुरी लौट आये।

नानामतग्राहग्रस्तान दाक्षिणात्यजनद्विपान्।
कृपारिणा विमुच्यैतान् गौरचन्द्रे स वैष्णवान्॥१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत के निवासियों का धर्म-परिवर्तन किया। ये लोग हाथी के समान बलशाली थे, किन्तु विभिन्न विचारधाराओं—यथा बौद्ध, जैन, मायावादी दर्शनरूपी घड़ियालों (मकरों) के चंगुल में थे। महाप्रभु ने अपनी कृपा के चक्र से सबों को वैष्णव अर्थात् भगवद्‌भक्त बना दिया।

तात्पर्य

यहाँ यह बतलाया गया है कि भगवान् ने गजेन्द्र का उद्धार किया, जिस पर घड़ियालों ने आक्रमण किया था। जब चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत की यात्रा की, तो वहाँ के प्रायः सारे निवासी बौद्ध, जैन तथा मायावादी दर्शनों के घड़ियालों के चंगुलों में थे। यद्यपि कविराज गोस्वामी कहते हैं कि ये लोग हाथियों के समान बलवान थे, किन्तु वे मृत्यु के चंगुल में थे, क्योंकि उन पर विभिन्न दर्शन रूपी घड़ियालों ने हमला कर रखा था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हाथी को अपनी कृपा द्वारा घड़ियालों के चंगुल से बचाया।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्री अद्वैत प्रभु की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की जय हो।

दक्षिणगमन प्रभुर अति विलक्षण।
सहस्र सहस्र तीर्थ कैल दरशन॥३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत की यात्रा निश्चय ही अद्वितीय थी, क्योंकि उन्होंने वहाँ कई हजार तीर्थस्थान देखे।

सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' महातीर्थ कैल।
सेइ छले सेइ देशेर लोक निस्तारिल॥४॥

अनुवाद

जब महाप्रभु उन तीर्थस्थानों में गये तो उन्होंने हजारों वासियों की कायापलट की। इस तरह तमाम लोगों का उद्धार किया। उन्होंने तीर्थस्थानों को अपने स्पर्श से महान तीर्थस्थलों में परिणत कर दिया।

तात्पर्य

कहा गया है—*तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि*। *तीर्थ* वह स्थान है जहाँ बड़े-बड़े सन्त पुरुष जाते हैं या रहते हैं। यद्यपि ये तीर्थ पहले से तीर्थस्थल थे, किन्तु महाप्रभु के जाने से वे सभी निर्मल हो गये। इन तीर्थस्थानों में अनेक लोग जाते हैं और वहाँ अपने पापकर्म छोड़ आते हैं, और स्वयं कल्मष से मुक्त हो जाते हैं। जब ये कल्मष बढ़ कर राशि बन जाते हैं तो वे चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायियों जैसे महापुरुषों के आने से नष्ट होते हैं। किसी अस्पताल में तमाम तरह के रोगी आते हैं, जिससे वह अनेक रोगों से दूषित हो जाता है। वस्तुतः अस्पताल सदैव दूषित रहता है, किन्तु कुशल चिकित्सक अपनी उपस्थिति तथा व्यवस्था से अस्पताल को कीटाणुरहित बनाये रखता है। इसी तरह तीर्थस्थल आने वाले पापियों के पापों से दूषित रहते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे महापुरुषों के आने से ऐसे स्थानों का सारा कल्मष दूर हो जाता है।

सेइ सब तीर्थेर क्रम कहिते ना पारि।
दक्षिण-वामे तीर्थ-गमन हय फेराफेरि॥५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिन समस्त तीर्थस्थानों का भ्रमण किया, उनका क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं संक्षेप में इतना ही कहूँगा कि महाप्रभु ने आते-जाते दाहिने तथा बाँये के सारे तीर्थस्थानों का भ्रमण किया।

अतएव नाम-मात्र करिये गणन।
कहिते ना पारि तार य़था अनुक्रम॥६॥

अनुवाद

चूँकि इन सारे स्थानों का क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है, अतएव मैं नाम के लिए ही उनका अंकन कर रहा हूँ।

पूर्ववत् पथे य़इते य़े पाय दरशन।
य़ेस ग्रामे य़ाय, से ग्रामेर य़त जन॥७॥
सबेइ वैष्णव हय, कहे 'कृष्ण' 'हरि'।
अन्य ग्राम निस्तारये 'सेइ वैष्णव' करि'॥८॥

अनुवाद

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महाप्रभु जिन-जिन गाँवों में गये वहाँ-वहाँ के सारे निवासी वैष्णव बन गये, और 'हरि' तथा 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करने लगे। इस तरह महाप्रभु जितने सारे गाँवों में गये, उनका हर व्यक्ति वैष्णव बन गया।

तात्पर्य

कृष्ण तथा हरि नाम अथवा हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन इतना शक्तिशाली है कि आज भी जब हमारे प्रचारक विश्व के सुदूर भागों में जाते हैं, तो लोग तुरन्त कृष्ण-कीर्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् भगवान् थे। अन्य कोई ऐसा नहीं, जो उनकी या उनकी शक्तियों की बराबरी कर सके। किन्तु उनके पदचिह्नों पर चलने और हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने का उतना ही प्रभाव है, जितना चैतन्य महाप्रभु के समय

में था। हमारे प्रचारक मुख्यतया यूरप तथा अमरीका जैसे देशों के हैं फिर भी वे जहाँ कहीं शाखाएँ खोलने जाते हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिलती है। निस्सन्देह लोग सर्वत्र हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे का कीर्तन गम्भीरतापूर्वक करते हैं।

दक्षिण देशेर लोक अनेक प्रकार।
केह ज्ञानी, केह कर्मी, पाखण्डी अपार॥९॥

अनुवाद

दक्षिण भारत में अनेक प्रकार के लोग थे। कुछ तो ज्ञानी थे और कुछ सकाम कर्मी, किन्तु अभक्तों की संख्या अपार थी।

सेइ सब लोक प्रभुर दर्शन प्रभावे।
निज-निज-मत छाडि' हइल वैष्णवे॥१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से इन सारे लोगों ने अपने-अपने मत त्याग दिये और वैष्णव अर्थात् कृष्ण-भक्त बन गये।

वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक सब।
केह 'तत्त्ववादी', केह हय 'श्रीवैष्णव'॥११॥

अनुवाद

उस समय दक्षिण भारत के सारे वैष्णव भगवान् रामचन्द्र के उपासक थे। उनमें से कुछ तत्त्ववादी थे और कुछ रामानुजाचार्य के अनुयायी थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने संकेत किया है कि तत्त्ववादी द्योतक है श्रील मध्वाचार्य के अनुयायियों का। मध्वाचार्य ने अपनी शिष्य-परम्परा को शंकराचार्य के मायावादी अनुयायियों से पृथक देखने के लिए अपने दल का नाम *तत्त्ववाद* रखा। निर्विशेष अद्वैतवादियों पर ये तत्त्ववादी हमेशा आक्रमण करते हैं, और उनके निर्विशेष दर्शन को पराजित करने की चेष्टा करते हैं। सामान्यतया ये भगवान् की श्रेष्ठता जताते हैं। किन्तु मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा

ब्रह्म-वैष्णव-सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है—यह सम्प्रदाय ब्रह्मा से लेकर अब तक चला आ रहा है। फलस्वरूप मध्वाचार्य के अनुयायी तत्त्ववादी ब्रह्मा के मोह की उस घटना को स्वीकार नहीं करते जो *श्रीमद्भागवत* के दशम स्कंध में आई है। श्रील मध्वाचार्य ने *श्रीमद्भागवत* के उस अंश की जान-बूझकर टीका नहीं की, जिसमें *ब्रह्म-मोहन* (अर्थात् ब्रह्मा के मोहित होने) का उल्लेख हुआ है। श्रील माधवेन्द्र पुरी तत्त्ववादी परम्परा के आचार्यों में से थे। उन्होंने शुद्ध भक्ति की प्राप्ति को ही अध्यात्मवाद का चरम लक्ष्य बतलाया। श्रील चैतन्य महाप्रभु की शिष्य-परम्परा अर्थात् गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णवजन यद्यपि उसी तत्त्ववाद सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, किन्तु फिर भी वे तत्त्ववादियों से पृथक हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी मध्वगौड़ीय सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हैं।

पाषण्डी शब्द सूचक है शुद्धि भक्ति के विरोधियों का। विशेषतया ये मायावादी अर्थात् निर्विशेषवादी हैं। *हरिभक्ति विलास* में (१.७३) पाषण्डी की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

पाषण्डी वह है जो सोचता है कि भगवान् नारायण तथा ब्रह्मा-शिव आदि देवता एक ही पद पर स्थित हैं। लेकिन भक्तजन कभी-भी नारायण को ब्रह्मा तथा शिव के पद पर नहीं मानते। मध्वाचार्य सम्प्रदाय तथा रामानुज सम्प्रदाय मुख्य रूप से रामचन्द्र के उपासक हैं यद्यपि यह माना जाता है कि श्री वैष्णव लोग भगवान् नारायण तथा लक्ष्मी के उपासक हैं तथा तत्त्ववादी कृष्ण के उपासक हैं। सम्प्रति मध्व सम्प्रदाय के अधिकांश मठों में भगवान् रामचन्द्र की पूजा की जाती है।

अध्यात्म रामायण के बारहवें से पन्द्रहवें अध्यायों में श्री रामचन्द्र तथा सीता के अर्चाविग्रहों की पूजा किये जाने का उल्लेख है। उसमें एक कथन है कि भगवान् रामचन्द्र के काल में एक ब्राह्मण ने यह व्रत ले रखा था कि भगवान् रामचन्द्र का दर्शन किये बिना वह प्रातःकालीन भोजन नहीं करेगा। कभी-कभी कार्यवश भगवान् रामचन्द्र राजधानी से पूरे सप्ताह बाहर रहते थे। अतएव उस अवधि में नागरिकों को उनका दर्शन नहीं मिल पाता था। फलतः इस ब्राह्मण ने अपने व्रत के कारण उस सप्ताह जल की एक बूँद

भी ग्रहण नहीं की। आठ-नौ दिन बाद जब उसने साक्षात् भगवान् रामचन्द्र को देखा तो उसने अपना व्रत तोड़ा। उस ब्राह्मण के दृढ़ व्रत को देख कर भगवान् रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे उस ब्राह्मण को सीता-राम के अर्चाविग्रह की एक जोड़ी दे दें। उस ब्राह्मण ने लक्ष्मणजी से वे अर्चाविग्रह प्राप्त किये और आजीवन उनकी पूजा करता रहा। मरते समय वह इन अर्चाविग्रहों को हनुमानजी को देता गया, जिन्हें वे वर्षों तक अपले गले में लटकाकर उनकी सेवा करते रहे। किन्तु अनेक वर्षों बाद जब हनुमानजी गन्धमादन पर्वत चले गये, तो वे अर्चाविग्रहों को भीमसेन को देते गये। वे उन्हें अपने महल में ले आये और उन्हें बहुत सावधानी से रखा। अन्तिम पाण्डव राजा क्षेमकान्त ने उसी स्थान में उनकी पूजा की। बाद में अर्चाविग्रह उड़ीसा के राजा गजपतियों की अमानत में चले गये। नरहरि तीर्थ नामक आचार्य ने, जो मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा में थे, उड़ीसा के राजा से इन विग्रहों को प्राप्त किया।

ध्यान देने की बात है कि राम तथा सीता के ये अर्चाविग्रह राजा इक्ष्वाकु के समय से ही पूजे जाते रहे हैं। निस्सन्देह इनकी पूजा भगवान् रामचन्द्र के आविर्भाव के पहले से राजकुमारों द्वारा होती रही होगी। बाद में, भगवान् रामचन्द्र के काल में इनकी पूजा लक्ष्मण ने की। कहा जाता है कि श्री मध्वाचार्य ने अपने तिरोधान के तीन मास पूर्व इन अर्चाविग्रहों को प्राप्त किया था और इनकी स्थापना उडुपी मन्दिर में कर दी थी। तब से उस मठ में मध्वाचार्य सम्प्रदाय वाले उनकी पूजा करते रहे हैं। जहाँ तक श्री वैष्णवों का सम्बन्ध है, रामानुजाचार्य तथा अन्य सबों ने सीताराम-अर्चाविग्रहों की पूजा की। तिरुपति तथा अन्य स्थानों में भी ये अर्चाविग्रह पूजे जाते हैं। रामानुज सम्प्रदाय की एक अन्य शाखा रामानन्दी या रामात है और इसके अनुयायी भी सीताराम-अर्चाविग्रहों की पूजा नियमपूर्वक करते हैं। रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव राधाकृष्ण की अपेक्षा भगवान् रामचन्द्र की पूजा को वरीयता प्रदान करते हैं।

सेइ सब वैष्णव महाप्रभुर दर्शने।
कृष्ण-उपासक हैल, लय कृष्णनामे॥१२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद वे सारे वैष्णव कृष्ण-भक्त

बन गये और हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने लगे।

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! पाहि माम्।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! रक्ष माम्॥१३॥

अनुवाद

"हे रघुवंशी रामचन्द्र! मेरी रक्षा करें! हे केशी असुर के मारने वाले कृष्ण मेरी रक्षा करें।"

एइ श्लोक पथे पड़ि' करिला प्रयाण।
गौतमी-गङ्गाय याइ' कैल गङ्गास्नान॥१४॥

अनुवाद

मार्ग पर जाते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु इसी रामराघव मन्त्र का कीर्तन करते थे। इस प्रकार कीर्तन करते-करते वे गौतमी-गंगा के तट पर पहुँचे और वहाँ पर स्नान किया।

तात्पर्य

गौतमी-गंगा गोदावरी नदी की शाखा है। प्राचीनकाल में इस नदी के तट पर राजमहेन्द्री शहर के उस पार गौतम नामक ऋषि रहा करते थे, फलस्वरूप यह शाखा गौतमी-गंगा कहलाई।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहना है कि श्रील कविराज गोस्वामी ने श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा देखे गये तीर्थस्थलों के जो नाम दिये हैं, उनमें कोई क्रमबद्धता नहीं है। किन्तु गोविन्द दास के कड़चा (गुटका) में यह क्रम दिया है, और स्थानों की भौगोलिक स्थिति का भी उल्लेख है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का पाठकों से निवेदन है कि वे इस पुस्तक को देखें। श्री गोविन्द दास के अनुसार महाप्रभु गौतमी-गंगा से त्रिमंद गये, फिर वहाँ से ढुंढिराम तीर्थ गये। इस पुस्तक के अनुसार गौतमी-गंगा देखने के बाद महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये।

मल्लिकार्जुन-तीर्थे याइ' महेश देखिल।
ताहाँ सब लोके कृष्णनाम लओयाइल॥१५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये और वहाँ पर शिवजी

का अर्चाविग्रह देखा। उन्होंने सारे लोगों को हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया।

तात्पर्य

मल्लिकार्जुन का दूसरा नाम श्री शैल है। यह कृष्णा नदी के दाहिने तट पर कर्णुल से लगभग ७० मील दक्षिण में स्थित है। गाँव के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवालें हैं और इन दीवालों के भीतर मल्लिकार्जुन अर्चाविग्रह है। यह शिवजी का अर्चाविग्रह है और ज्योतिर्लिंगों में से एक है।

रामदास महादेवे करिल दरशन।
अहोवल-नृसिंहहेरे करिला गमन॥१६॥

अनुवाद

वहाँ पर उन्होंने भगवान् राम के दास महादेव (शिव) का दर्शन किया। इसके बाद वे अहोवल-नृसिंह देखने गये।

नृसिंह देखिया ताँरे कैल नति-स्तुति।
सिद्धवट गेला याहाँ मूर्ति सीतापति॥१७॥

अनुवाद

अहोवल नृसिंह अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद महाप्रभु ने भगवान् की स्तुति की। फिर वे सिद्धवट गये जहाँ उन्होंने सीतादेवी के स्वामी रामचन्द्र के अर्चाविग्रह को देखा।

तात्पर्य

यह सिद्धवट कुड़ापा ग्राम से दस मील पूर्व है। पहले यह स्थान दक्षिण काशी कहलाता था। यहाँ पर बरगद का विशाल वृक्ष है अतएव सिद्धवट कहलाता है। *वट* का अर्थ है बरगद का पेड़।

रघुनाथ देखि' कैल प्रणति स्तवन।
ताहाँ एक विप्र प्रभुर कैल निमन्त्रण॥१८॥

अनुवाद

महाप्रभु ने रघुवंशी भगवान् रामचन्द्र का अर्चाविग्रह देखने के बाद उनको नमस्कार किया और स्तुति की। तत्पश्चात् एक ब्राह्मण ने उन्हें भोजन

करने के लिए आमन्त्रित किया।

सेइ विप्र रामनाम निरन्तर लय।
'राम' 'राम' विना अन्य वाणी ना कहय॥१९॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण निरन्तर राम-नाम का उच्चारण करता था। वह ब्राह्मण राम-नाम के अतिरिक्त कोई अन्य किसी का उच्चारण नहीं करता था।

सेइ दिन ताँर घरे रहि' भिक्षा करि'।
ताँरे कृपा करि' आगे चलिला गौरहरि॥२०॥

अनुवाद

उस दिन महाप्रभु वहीं रहे और उसके घर का प्रसाद ग्रहण किया। इस तरह उस ब्राह्मण पर कृपा करने के बाद महाप्रभु आगे बढ़ गये।

स्कन्दक्षेत्र-तीर्थे कैल स्कन्द दर्शन।
त्रिमठ आइला, ताहाँ देखि' त्रिविक्रम॥२१॥

अनुवाद

स्कन्द-क्षेत्र नाम तीर्थस्थल में महाप्रभु ने स्कन्द का मन्दिर देखा। वहाँ से वे त्रिमठ गये, जहाँ विष्णु के अर्चाविग्रह त्रिविक्रम को देखा।

पुनः सिद्धवट आइला सेइ विप्र-घरे।
सेइ विप्र कृष्णनाम लय निरन्तरे॥२२॥

अनुवाद

त्रिविक्रम मन्दिर का दर्शन करने के बाद महाप्रभु सिद्धवट लौट आये, जहाँ वे पुनः उसी ब्राह्मण के घर गये। अब वह ब्राह्मण निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता था।

भिक्षा करि' महाप्रभु ताँरे प्रश्न कैल।
"कह विप्र, एइ तोमार कोन् दशा कैल॥२३॥

अनुवाद

भोजन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा "मित्रवर! मुझसे अपनी वर्तमान स्थिति के विषय में बतलाओ।

पूर्वे तुमि निरन्तर लैते रामनाम।
एबे केने निरन्तर लओ कृष्णनाम॥''२४॥

अनुवाद

''पहले तो तुम भगवान् राम के नाम का निरन्तर कीर्तन करते थे। तुम अब कृष्ण-नाम का निरन्तर कीर्तन क्यों करते हो?''

विप्र बले,—एइ तोमार दर्शन-प्रभावे।
तोमा देखि गेल मोर आजन्म स्वभावे॥२५॥

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, ''महाशय! यह आपके प्रभाव से है। आपका दर्शन करने के बाद मैंने अपने जीवन-भर के उस अभ्यास को छोड़ दिया।

बाल्यावधि रामनाम-ग्रहण आमार।
तोमा देखि' कृष्णनाम आइल एकबार॥२६॥

अनुवाद

''मैं अपने बचपन से भगवान् रामचन्द्र के नाम का कीर्तन करता रहा हूँ, किन्तु आपको देखने के बाद मैंने भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया।

सेइ हैते कृष्णनाम जिह्वाते वसिला।
कृष्णनाम स्फुरे, रामनाम दूरे गेला॥२७॥

अनुवाद

''तब से मेरी जबान पर कृष्ण-नाम ही रम गया है। जब मैं कृष्ण-नाम का कीर्तन करता हूँ, तो भगवान् रामचन्द्र का नाम दूर भग जाता है।

बाल्यकाल हैते मोर स्वभाव एक हय।
नामेर महिमा-शास्त्र करिये सञ्चय॥२८॥

अनुवाद

''मैं अपने बचपन से यह कीर्तन करता रहा हूँ, और शास्त्रों से नाम

की महिमा का संग्रह करता रहा हूँ।''

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥२९॥

अनुवाद

''परम सत्य राम कहलाता है, क्योंकि योगीजन आध्यात्मिक जगत के अनन्त सत्य के आनन्द में आनन्द प्राप्त करते हैं।''

तात्पर्य

यह *पद्म पुराण* में प्राप्य भगवान् रामचन्द्र के शतनाम स्तोत्र का आठवाँ श्लोक है।

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥३०॥

अनुवाद

कृष् **शब्द भगवान् का आकर्षक स्वरूप है, और *ण* का अर्थ है आध्यात्मिक आनन्द। *कृष्* धातु *ण* प्रत्यय से मिल कर *कृष्ण* बनाता है, जिसका अर्थ है परम सत्य।**

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत के उद्योगपर्व (७१.४) से लिया गया है।

परं ब्रह्म दुइनाम समान हइल।
पुनः आर शास्त्रे किछु विशेष पाइल॥३१॥

अनुवाद

''जहाँ तक राम तथा कृष्ण-नामों का सम्बन्ध है, वे एक समान हैं। किन्तु अधिक उन्नति के लिए हमें शास्त्रों से कुछ विशेष सूचना प्राप्त होती है।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने॥३२॥

अनुवाद

''शिवजी ने अपनी पत्नी दुर्गा को वरानना कह कर उन्हें बतलाया

"मैं राम, राम, राम नाम का कीर्तन करता हूँ, और इस सुन्दर ध्वनि का आनन्द लूटता हूँ। रामचन्द्र का यह नाम भगवान् विष्णु के एक हजार नामों के तुल्य है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड में आये *बृहद्विष्णु-सहस्र-नाम स्तोत्र* से (७२.३३५) लिया गया है।

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति॥३३॥

अनुवाद

विष्णु के सहस्र नामों को तीन बार उच्चारण करने से जो पुण्य मिलता है, वह कृष्ण के नाम का केवल एक बार उच्चारण करने से मिल जाता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्माण्ड-पुराण* का है, जो रूप गोस्वामी कृत *लघु भागवतामृत* में (१.३५४) आया है। तीन बार राम-नाम लेने से जो फल मिलता है वह एक बार कृष्ण-नाम लेने से प्राप्त होता है।

एइ वाक्ये कृष्णनामेर महिमा अपार।
तथापि लइते नारि, शुन हेतु तार॥३४॥

अनुवाद

"शास्त्रों के कथनानुसार कृष्ण के नाम की महिमा अपार है। फिर भी मैं उनका नाम नहीं ले पाया। आप इसका कारण सुनें।

इष्टदेव राम, ताँर नामे सुख पाइ।
सुख पाञा रामनाम रात्रिदिन गाइ॥३५॥

अनुवाद

"मेरे आराध्य देव भगवान् रामचन्द्र रहे हैं, और उनके नाम-कीर्तन से मैं सुख प्राप्त करता रहा हूँ। चूँकि मुझे सुख प्राप्त हुआ, इसलिए मैं भगवान् राम के नाम का कीर्तन दिन-रात करता रहा।

तोमार दर्शने ग्रबे कृष्णनाम आइल।
ताहार महिमा तबे हृदये लागिल॥३६॥

अनुवाद

"आपके आने से भगवान् कृष्ण का नाम भी आया। तब मेरे हृदय में कृष्ण नाम की महिमा का उदय हुआ।"

सेइ कृष्ण तुमि साक्षात्—इहा निर्धारिल।
एत कहि' विप्र प्रभुर चरणे पड़िल॥३७॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "महाशय! आप वही कृष्ण हैं। यह मेरा दृढ़ मत है।" यह कह कर वह ब्राह्मण महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ा।

ताँरे कृपा करि' प्रभु चलिला आर दिने।
वृद्धकाशी आसि' कैल शिव-दरशने॥३८॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण पर कृपा करके महाप्रभु अगले दिन रवाना हो गये और वृद्धकाशी आये, जहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

वृद्धकाशी का वर्तमान नाम वृद्धाचलम् है। यह मणिमुख नदी के किनारे पर दक्षिणी आर्कट जिले में स्थित है। यह स्थान कालहस्तिपुर भी कहलाता है। यहाँ के शिव-मन्दिर की पूजा रामानुजाचार्य के चचेरे भाई गोविन्द ने अनेक वर्षों तक की।

ताहाँ हैते चलि' आगे गेला एक ग्रामे।
ब्राह्मण-समाज ताहाँ, करिल विश्रामे॥३९॥

अनुवाद

तब महाप्रभु वृद्धकाशी से रवाना होकर आगे बढ़ते रहे। उन्होंने एक गाँव में, जहाँ के अधिकांश वासी ब्राह्मण थे विश्राम किया।

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने।
लक्षार्बुद लोक आइसे ना ग्राय गणने॥४०॥

अनुवाद

महाप्रभु के प्रभाव से करोड़ लोग उन्हें देखने आये। इन लोगों की संख्या अनन्त थी, अतएव उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी।

गोसाञिर सौन्दर्य देखि' ताते प्रेमावेश।
सबे 'कृष्ण' कहे, 'वैष्णव' हैल सर्व-देश॥४१॥

अनुवाद

महाप्रभु का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर था। साथ ही वे सदैव भगवान् के प्रेम में आविष्ट रहते थे। उनका दर्शन करने से ही सारे लोग कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगे, और प्रत्येक व्यक्ति वैष्णव भक्त बन गया।

तार्किक-मीमांसक, य़त मायावादिगण।
सांख्य, पातञ्जल, स्मृति, पुराण, आगम॥४२॥

अनुवाद

दार्शनिक कई प्रकार के होते हैं। कुछ तार्किक होते हैं जो गौतम या कणाद के अनुयायी हैं। कुछ जैमिनि के मीमांसा-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ शंकराचार्य के मावावाद-दर्शन के तथा कुछ कपिल के सांख्य-दर्शन या पतञ्जलि के योग-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ बीस शास्त्रों से युक्त स्मृति शास्त्र का पालन करते हैं, तथा अन्य लोग पुराण एवं तन्त्र शास्त्र का पालन करते हैं। इस तरह दार्शनिकों के विभिन्न प्रकार हैं।

निज-निज-शास्त्रोद्ग्राहे सबाइ प्रचण्ड।
सर्व मत दुषि' प्रभु करे खण्ड खण्ड॥४३॥

अनुवाद

ये विभिन्न शास्त्रों के अनुयायी अपने-अपने शास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए तैयार थे। किन्तु महाप्रभु ने उन सबों के मतों का खण्डन किया और अपने भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की, जो वेदों, वेदान्त, ब्रह्मसूत्र तथा अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व दर्शन पर आधारित था।

सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णवसिद्धान्ते।
प्रभुर सिद्धान्त केह ना पारे खण्डिते॥४४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वत्र भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्हें कोई परास्त नहीं कर पाया।

हारि' हारि' प्रभुमते करेन प्रवेश।
एइमते 'वैष्णव' प्रभु कैल दक्षिण देश॥४५॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा पराजित होकर ये सारे दार्शनिक तथा इनके अनुयायी उनके सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये। महाप्रभु ने दक्षिण भारत को वैष्णवों का देश बना डाला।

पाषण्डी आइल य़त पाण्डित्य शुनिया।
गर्व करि' आइल सङ्गे शिष्यगण लञा॥४६॥

अनुवाद

जब पाखंडियों ने महाप्रभु के पाण्डित्य के बारे में सुना, तो वे अपने-अपने शिष्यों को लेकर बड़े गर्व के साथ उनके पास आये।

बौद्धाचार्य महापण्डित निज नवमते।
प्रभुर आगे उद्ग्राह करि' लागिला बलिते॥४७॥

अनुवाद

उनमें से एक बौद्ध-सम्प्रदाय का अगुवा था, और बहुत बड़ा पंडित था। वह अपने नौ दार्शनिक प्रमाणों की स्थापना करने के उद्देश्य से महाप्रभु के समक्ष आया और इस प्रकार बोलने लगा।

य़द्यपि असम्भाष्य बौद्ध अयुक्त देखिते।
तथापि बलिला प्रभु गर्व खण्डाइते॥४८॥

अनुवाद

यद्यपि बौद्धजन विवाद करन के लिए अनुपयुक्त हैं, और वैष्णवों को चाहिए कि उनका दर्शन न करें, किन्तु उनके मिथ्या अहंकार को कम करने के उद्देश्य से ही महाप्रभु उनसे बोले।

तर्कप्रधान बौद्धशास्त्र 'नव मते'।
तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना पारे स्थापिते॥४९॥

अनुवाद

बौद्ध सम्प्रदाय के सारे शास्त्र मुख्यतः तर्क पर आश्रित हैं, और उनमें नौ सिद्धान्त प्रमुख हैं। चूँकि महाप्रभु ने उन्हें उनके तर्क में परास्त कर दिया, अतएव वे अपना सम्प्रदाय स्थापित नहीं कर पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार दर्शन समझने के दो मार्ग हैं—*हीनयान* तथा *महायान*। इस मार्ग के नौ सिद्धान्त हैं १) सृष्टि नित्य है, अतएव स्रष्टा मानने की आवश्यकता नहीं है २) विराट जगत मिथ्या है ३) मैं ही सत्य हूँ ४) जन्म तथा मृत्यु का चक्र चलता है ५) भगवान् बुद्ध ही सत्य जानने के एकमात्र स्रोत हैं ६) *निर्वाण* अर्थात् प्रलय ही चरम लक्ष्य है ७) बुद्ध-दर्शन ही एकमात्र दार्शनिक मार्ग है ८) वेदों की रचना मनुष्यों ने की ९) पुण्यकर्म—यथा अन्यों पर दया करनी चाहिए।

तर्क द्वारा परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। कोई तर्क में कितना ही दक्ष क्यों न हो, अन्य व्यक्ति उससे भी अधिक दक्ष हो सकता है। चूँकि तर्कशास्त्र में शब्दाडम्बर अधिक हैल, अतएव तर्क द्वारा परम सत्य विषयक किसी असली निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी इसे समझते हैं। किन्तु यहाँ कहा गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने तर्क द्वारा बौद्ध दर्शन को परास्त किया। इस्कान के प्रचारकों को ऐसे लोगों से सामना पड़ता है जो बौद्धिक तर्क में विश्वास करते हैं। ऐसे लोग वेदों के प्रमाण पर विश्वास नहीं करते। फिर भी वे बौद्धिक चिन्तन तथा तर्क में विश्वास करते हैं। अतएव कृष्णभावनामृत के प्रचारकों को तर्क द्वारा उन्हें परास्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए जिस तरह चैतन्य महाप्रभु ने किया। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है—*तर्केइ खण्डिल प्रभु*। महाप्रभु ने ऐसे सशक्त तर्क प्रस्तुत किये कि वे लोग अपना सम्प्रदाय स्थापित नहीं कर पाये।

उनका पहला सिद्धान्त है कि यह सृष्टि सनातन है किन्तु यदि ऐसा हो तो फिर प्रलय का सिद्धान्त ही न रहे। बौद्धों का मत है कि प्रलय या

निर्वाण सर्वोच्च सत्य है। यदि सृष्टि सनातन हो तो फिर प्रलय का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तर्क सशक्त नहीं है, क्योंकि यह व्यावहारिक अनुभव है कि भौतिक वस्तुओं का आदि, मध्य और अन्त होता है। बौद्ध-दर्शन का चरम लक्ष्य शरीर को विलय करना है। ऐसी कल्पना इसलिए की जाती है, क्योंकि शरीर का आदि है। इसी तरह समग्र जगत भी विराट पिण्ड है, किन्तु यदि हम यह मान लें कि यह जगत सनातन है तो फिर विलय का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव शून्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वस्तु के विलय की कल्पना बकवास है। हमें अपने अनुभव से सृष्टि का आदि स्वीकार करना होता है, और जब हम उसका आदि स्वीकार करते हैं, तो उसका स्रष्टा भी स्वीकार करना होता है। ऐसा स्रष्टा सर्वव्यापी है जैसा कि *भगवद्गीता* में (१३.१४) बतलाया गया है—

सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

"उनके हाथ, पाँव, आँखें, मुख सर्वत्र हैं और वे हर बात सुनते हैं। इस तरह परमात्मा का अस्तित्व है।"

परम पुरुष सर्वत्र विद्यमान है। उसका शरीर सृष्टि के पहिले से था, अन्यथा वह स्रष्टा कैसे बनता? यदि परम पुरुष उत्पन्न होता हो तो उसके स्रष्टा बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। निष्कर्ष यह निकला कि इस विराट जगत की सृष्टि किसी निश्चित समय में होती है, और इसका स्रष्टा स्रष्टि के पहले से था। अतएव स्रष्टा सृष्ट जीव नहीं है। स्रष्टा परब्रह्म या परमात्मा है। पदार्थ न केवल आत्मा के अधीन है, अपितु आत्मा के आधार पर उत्पन्न होता है। जब आत्मा माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो माता उन सारे अवयवों को प्रदान करती है, जिनसे शरीर उत्पन्न होता है। *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई कि भौतिक शक्ति निकृष्ट है, और आध्यात्मिक शक्ति जीव है। निकृष्ट तथा उत्कृष्ट (परा तथा अपरा) शक्तियाँ परम पुरुष से सम्बद्ध हैं।

बौद्धों का तर्क है कि यह जगत मिथ्या है, किन्तु यह ठीक नहीं है। यह जगत नश्वर है, लेकिन मिथ्या नहीं है। जब तक यह शरीर है, तब तक सुख तथा दुख लगे रहेंगे, भले ही हम शरीर न हों। इन सुखों तथा दुखों को हम गम्भीरता से न भी लें तो भी ये वास्तविक हैं। हम यह

नहीं कह सकते कि ये मिथ्या हैं। यदि शारीरिक सुख तथा दुख मिथ्या हैं, तो सृष्टि भी मिथ्या होगी और तब कोई भी इसके प्रति रुचि नहीं लेगा। निष्कर्ष यह निकला कि भौतिक सृष्टि न तो मिथ्या है न काल्पनिक। हाँ यह नश्वर अवश्य है।

बौद्धों का मत है कि "मैं" परम सत्य है, किन्तु इसमें 'मैं' या 'तुम' का निषेध हुआ है। यदि "मैं" या "तुम" न रहें, तो फिर तर्क की सम्भावना नहीं रहती। बौद्ध-दर्शन तर्क पर आश्रित है, किन्तु यदि कोई "मैं" पर ही आश्रित रहे, तो फिर तर्क नहीं हो सकता। इसके लिए अन्य व्यक्ति अर्थात् 'तुम' भी होना चाहिए। आत्मा तथा परमात्मा का अस्तित्व—अर्थात् द्वैत-दर्शन तो होना ही चाहिए। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा (२.१२) होती है—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

"ऐसा कोई समय न था जब मैं या तुम, या ये सारे राजा न रहे हों, न ही भविष्य में हममें से किसी का रहना बन्द हो जायगा।"

भूतकाल में हम विभिन्न शरीरों में विद्यमान थे, और इस शरीर के विनाश के बाद हम अन्य शरीर में विद्यमान रहेंगे। आत्मा नित्य है और वह इस शरीर में या अन्य शरीर में विद्यमान रहता है। यहाँ तक कि इसी जीवन-काल में हम बालक, युवक, मनुष्य तथा वृद्ध के शरीर में अपने अस्तित्व का अनुभव करते हैं। इस शरीर के विनाश के बाद हम दूसरा शरीर प्राप्त करते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय भी देहान्तर को मानता है, लेकिन वह अगले जन्म की ठीक से व्याख्या नहीं करता। जीवन की ८४ लाख योनियाँ हैं और अगले जन्म में हमें इनमें से कोई भी योनि प्राप्त हो सकती है। अतएव मनुष्य शरीर मिलने की कोई गारंटी नहीं है।

बौद्धों के पाँचवें सिद्धान्त के अनुसार भगवान् बुद्ध ही ज्ञान प्राप्ति के एकमात्र अद्गम हैं। हम इसे स्वीकार नहीं करते, क्योंकि भगवान् बुद्ध ने वैदिक ज्ञान का बहिष्कार किया। मनुष्य को आदर्श ज्ञान के सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा, क्योंकि केवल कपोल-कल्पना से परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि हर व्यक्ति प्रमाण (अधिकारी) बन जाय या अपनी ही बुद्धि को चरम कसौटी मान ले, जैसा कि आजकल फैशन है,

तो शास्त्रों की व्याख्या विविध प्रकारों से की जायेगी और हर व्यक्ति अपने दर्शन को सर्वश्रेष्ठ मानेगा। यह एक समस्या बन गई है, और हर व्यक्ति मनमाने ढंग से शास्त्रों की व्याख्या करके अपना प्रमाण खड़ा कर रहा है। *यत मत तत पाठ*। अब हर व्यक्ति अपने सिद्धान्त को ही परम सत्य घोषित करना चाहता है। बौद्धों का सिद्धान्त है कि *निर्वाण* या प्रलय ही चरम लक्ष्य है। निर्वाण शरीर पर लागू होता है। लेकिन आत्मा तो एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। यदि ऐसा न होता तो फिर इतने प्रकार के शरीरों का अस्तित्व कैसे होता? यदि अगला जन्म तथ्य है, तो अगला शरीर भी तथ्य है। जब हमें शरीर मिलता है तो हमें यह तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह शरीर नष्ट हो जायेगा, और हमें दूसरा शरीर धारण करना होगा। यदि सारे भौतिक शरीरों का विनाश होना ही है और यदि हम अगले जन्म को मिथ्या नहीं मानते, तो हमें अभौतिक अर्थात् आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होगा। लेकिन आध्यात्मिक शरीर प्राप्त होता है, इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* में (४.९) हुई है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो व्यक्ति मेरे प्राकट्य एवं मेरे कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति से अवगत है, वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन! मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।"

यह वह चरम सिद्धि है जिसके द्वारा मनुष्य देहान्तरण को पार करके भगवद्धाम वापस जा सकता है। ऐसा नहीं है कि जगत शून्य हो जाय। अस्तित्व तो बना ही रहता है, लेकिन यदि हम शरीर को विनष्ट करना चाहते हैं, तो हमें आध्यात्मिक शरीर स्वीकार करना होता है, अन्यथा आत्मा की शाश्वतता नहीं बनी रहती।

हम यह नहीं मानते कि बौद्ध-दर्शन ही एकमात्र मार्ग है, क्योंकि इसमें अनेक दोष हैं। पूर्ण दर्शन तो वह होता है, जिसमें कोई दोष न हो और ऐसा दर्शन वेदान्त-दर्शन है। इसमें कोई दोष लक्षित नहीं होता, अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत्य को जानने का परम दार्शनिक मार्ग वेदान्त है। बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार वेदों की रचना सामान्य मनुष्यों द्वारा हुई। यदि ऐसा होता तो वे प्रामाणिक न माने जाते। वैदिक साहित्य से

पता चलता है कि सृष्टि के तुरन्त बाद ब्रह्माजी को वेदों की शिक्षा दी गई। ऐसा नहीं है कि ब्रह्मा ने वेदों को जन्म दिया, यद्यपि वे इस ब्रह्माण्ड के आदि पुरुष हैं। यदि ब्रह्मा ने, जिन्हें प्रथम उत्पन्न व्यक्ति माना जाता है, वेदों की सृष्टि नहीं की तो ब्रह्मा को यह वैदिक ज्ञान कहाँ से मिला? स्पष्ट है कि इस जगत में उत्पन्न सामान्य व्यक्ति से वेद उत्पन्न नहीं हुए। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार—*तेने ब्रह्म हृदाय आदि कवये*—सृष्टि करने के बाद परम पुरुष ने ब्रह्मा के हृदय के भीतर वैदिक ज्ञान प्रदान किया। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति न था, फिर भी उन्होंने वेदों की रचना नहीं की। अतः निष्कर्ष यह निकला कि वेदों की रचना किसी सृजित प्राणी ने कहीं की। वैदिक ज्ञान उन भगवान् से प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस भौतिक जगत की रचना की। इसे शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है, यद्यपि वे वैष्णव न थे।

यह कहा जाता है कि बौद्धों का एक गुण दया है, किन्तु दया सापेक्ष वस्तु है। हम दया उस पर करते हैं, जो हमारे अधीन होता है, या हमसे अधिक कष्ट भोगता रहता है। किन्तु यदि हमसे श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित हो तो ऐसा व्यक्ति हमारी दया का पात्र नहीं बनता। अतएव दया तथा कृपा दिखलाना सापेक्ष कार्य है। यह परम सत्य नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी जानना चाहिए कि वास्तविक दया क्या है। किसी रोगी को कुपथ्य देना दया नहीं है, प्रत्युत क्रूरता है। यह जाने बिना कि वास्तव में दया है क्या हम अवांछित स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। यदि हम असली दया दिखलाना चाहते हैं तो हमें कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए, जिससे मनुष्यों को खोई चेतना प्राप्त हो, सके जो जीव की मूल चेतना है। चूँकि बौद्ध-दर्शन आत्मा को नहीं मानता, अतएव बौद्धों की तथाकथित दया दोषपूर्ण है।

बौद्धाचार्य 'नवप्रश्न' सब उठाइल।
दृढ युक्ति-तर्के प्रभु खण्ड खण्ड कैल॥५०॥

अनुवाद

बौद्ध-सम्प्रदाय के उस प्रचारक ने नौ सिद्धान्त पेश किये, लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रबल तर्क से उनके खण्ड-खण्ड कर डाले।

दार्शनिक पण्डित सबाइ पाइल पराजय।
लोके हास्य करे, बौद्ध पाइल लज्जा-भय॥५१॥

अनुवाद

सारे बौद्धिक चिन्तकों तथा पण्डितों को श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरा दिया, और जब लोग हँसने लगे तो बौद्ध दार्शनिकों को लज्जा तथा भय दोनों का अनुभव हुआ।

तात्पर्य

ये दार्शनिक नास्तिक थे, क्योंकि ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते थे। नास्तिक अपने चिन्तन में कितने ही दक्ष क्यों न हों और भले ही तथाकथित महान् दार्शनिक कहलाते हों, किन्तु वे संकल्प तथा ईशभावनामृत में दृढ़ वैष्णव के द्वारा पराजित किये जा सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए इस्कान की सेवा में लगे सारे प्रचारकों को सशक्त तर्क प्रस्तुत करने और सभी तरह के नास्तिकों को पराजित करने में दक्ष होना चाहिए।

प्रभुके वैष्णव जानि' बौद्ध घरे गेल।
सकल बौद्ध मिलि' तबे कुमन्त्रणा कैल॥५२॥

अनुवाद

बौद्ध लोग जान गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु वैष्णव हैं, अतएव वे दुखी मन से अपने-अपने घर वापस गये। किन्तु बाद में उन लोगों ने महाप्रभु के विरुद्ध षड्यन्त्र शुरू कर दिया।

अपवित्र अन्न एक थालिते भरिया।
प्रभु-आगे निल 'महाप्रसाद' बलिया॥५३॥

अनुवाद

षड्यन्त्र करने के बाद वे बौद्धजन अपवित्र भोजन की थाली महाप्रभु के समक्ष ले आये, और कहा कि यह महाप्रसाद है।

तात्पर्य

अपवित्र अन्न सूचक है ऐसे भोजन का जो वैष्णव को अग्राह्य होता है। दूसरे शब्दों में, किसी अवैष्णव द्वारा महाप्रसाद के नाम पर दिया गया भोजन

वैष्णव को ग्राह्य नहीं होता। समस्त वैष्णवों को यही सिद्धान्त मानना चाहिए। जब चैतन्य महाप्रभु से पूछा गया कि "वैष्णव का आचरण क्या है?" तो उन्होंने उत्तर दिया "वैष्णव को चाहिए कि अवैष्णव (*असत्*) की संगति से बचे।" *असत्* शब्द अवैष्णव का सूचक है। *असत्-संग-त्याग,—एइ वैष्णव-आचार* (चैतन्य-चरितामृत मध्य २२.८७)। इस मामले में वैष्णव को कट्टर होना चाहिए, और अवैष्णव के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई अवैष्णव महाप्रसाद कह कर भोजन दे, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा भोजन *प्रसाद* नहीं हो सकता, क्योंकि अवैष्णव भगवान् को कुछ भी अर्पित नहीं करता। कभी-कभी कृष्णभावनामृत-आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसे घर में भोजन करना पड़ता है, जिसका मालिक अवैष्णव होता है। किन्तु यदि इस भोजन को अर्चाविग्रह को अर्पित कर दिया जाय, तो इसे खाया जा सकता है। वैष्णव को अवैष्णव द्वारा पकाया सामान्य भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए। यदि अवैष्णव बिना दोष के भी भोजन पकाये, तो वह उसे भगवान् विष्णु को अर्पित नहीं कर सकता, और न उसे *महाप्रसाद* के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। *भगवद्गीता* के अनुसार (९.२६)—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः॥

"यदि कोई भक्ति तथा प्रेमपूर्वक मुझे एक पत्ती, एक फूल, या फल या जल अर्पित करता है तो मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ।"

कृष्ण अपने भक्त द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित कोई भी वस्तु स्वीकार कर सकते हैं। अवैष्णव शाकाहारी तथा अत्यन्त शुद्ध रसोइया होते हुए भी विष्णु को भोजन नहीं अर्पित कर सकता। अतएव उसके पकाये भोजन को महाप्रसाद के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। अच्छा होगा कि वैष्णव ऐसे भोजन को अस्पृश्य समझ कर त्याग दे।

हेनकाले महाकाय एक पक्षी आइल।
ठोंटे करि' अन्नसह थालि लञा गेल॥५४॥

अनुवाद

जब यह दूषित भोजन महाप्रभु को लाकर दिया गया, तो एक बड़ा-सा पक्षी उस स्थान में प्रकट हुआ, जिसने थाली को अपनी चोंच में

दबा लिया और लेकर उड़ गया।

बौद्धगणेर उपरे अन्न पड़े अमेध्य हैया।
बौद्धाचार्येर माथाय थालि पड़िल बाजिया॥५५॥

अनुवाद

वह अछूत भोजन उन बौद्धों के ऊपर गिर पड़ा, और उस बड़े पक्षी ने वह थाली उस बौद्धाचार्य के सिर के ऊपर गिरा दी। जब वह उसके सिर पर गिरी तो तेज आवाज हुई।

तेरछे पड़िल थालि,—माथा काटि' गेल।
मूर्च्छित हञा आचार्य भूमिते पड़िल॥५६॥

अनुवाद

थाली धातु की बनी थी, अतएव जब उसकी कोर उस आचार्य के सिर पर लगी तो घाव हो गया। फलतः वह आचार्य तुरन्त बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

हाहाकार करि' कान्दे सब शिष्यगण।
सबे आसि' प्रभु-पदे लइल शरण॥५७॥

अनुवाद

जब आचार्य बेहोश हो गया, तो उसके सारे शिष्य जोर-जोर से चिल्लाने लगे और शरण पाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की ओर दौड़े।

तुमि त' ईश्वर साक्षात्, क्षम अपराध।
जीयाओ आमार गुरु, करह प्रसाद॥५८॥

अनुवाद

उन सबों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् भगवान् सम्बोधित करते हुए कहा, "कृपया, हमारा अपराध क्षमा करें। हम पर कृपा करें और हमारे गुरुदेव को जीवनदान दें।"

प्रभु कहे,—सबे कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि'।
गुरुकर्णे कह कृष्णनाम उच्च करि'॥५९॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उन बौद्ध शिष्यों से कहा, "तुम सभी मिल कर अपने गुरु के कान में जोर से कृष्ण तथा हरि के नामों का उच्चारण करो।

तोमा-सबार 'गुरु' तबे पाइबे चेतन।
सब बौद्ध मिलि' करे कृष्णसंकीर्तन॥६०॥

अनुवाद

"इस तरह से तुम्हारे गुरु को होश आ जायेगा।" श्री चैतन्य महाप्रभु की सलाह मान कर वे बौद्ध शिष्य कृष्ण-नाम का सामूहिक संकीर्तन करने लगे।

गुरु-कर्णे कहे सबे 'कृष्ण' 'राम' 'हरि'।
चेतन पाञा आचार्य बले 'हरि' 'हरि'॥६१॥

अनुवाद

जब सारे शिष्य कृष्ण, राम तथा हरि नाम का कीर्तन करने लगे, तो बौद्ध आचार्य की चेतना वापस आ गई और वह तुरन्त ही हरि-नाम का कीर्तन करने लगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्ध शिष्यों को कृष्ण-नाम-कीर्तन करने के लिए दीक्षित कर लिया और जब वे कीर्तन करने लगे तो वास्तव में भिन्न व्यक्ति बन गये। तब वे बौद्ध या नास्तिक नहीं रहे, अपितु वैष्णव बन गये। फलस्वरूप उन्होंने तुरन्त महाप्रभु की आज्ञा मान ली। उनकी मूल कृष्णभावना जाग्रत हो उठी और वे तुरन्त हरे-कृष्ण-कीर्तन करने तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने लगे।

शिष्य को माया के पाश से छुड़ाने वाला गुरु ही है क्योंकि उसे हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए दीक्षित करता है। इस तरह सुप्त मनुष्य हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करके अपनी चेतना को जाग्रत कर सकता है। दूसरे शब्दों में, गुरु सुप्त जीव को जगाकर उसे मूल चेतना प्रदान करता है, जिससे वह भगवान् विष्णु की पूजा कर सकता है। दीक्षा का यही प्रयोजन है। दीक्षा का अर्थ है, आध्यात्मिक चेतना का शुद्ध ज्ञान

प्राप्त करना।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि बौद्धों के गुरु ने अपने शिष्यों को दीक्षा नहीं दी, प्रत्युत वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा दीक्षित हुए और तब उन्होंने अपने तथाकथित गुरु को दीक्षा दी। यह *परम्परा*-पद्धति है। वास्तव में वह बौद्ध आचार्य शिष्य के पद पर था और जब उसके शिष्यों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ले ली, तो वे उसके गुरु बन गये। यह इसीलिए सम्भव हो सका क्योंकि बौद्धाचार्य के शिष्यों को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई। जब तक परम्परा द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त न हो ले, तब तक कोई गुरु नहीं बन सकता। हमें यह जानने के लिए कि गुरु तथा शिष्य कैसे बना जाय, समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को मानना चाहिए।

कृष्ण बलि' आचार्य प्रभुरे करेन विनय।
देखिया सकल लोक हइल विस्मय॥६२॥

अनुवाद

जब वह बौद्धाचार्य कृष्ण-नाम का कीर्तन करने लगा और श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में आ गया, तो वहाँ पर एकत्र सारे लोग आश्चर्य से चकित रह गये।

एइरूपे कौतुक करि' शचीर नन्दन।
अन्तर्धान कैल, केह ना पाय दर्शन॥६३॥

अनुवाद

तब शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा आँखों से ओझल हो गये, और उन्हें कोई ढूँढ नहीं सका।

महाप्रभु चलि' आइला त्रिपति-त्रिमल्ले।
चतुर्भुज मूर्ति देखि' व्यंकटाद्रये चले॥६४॥

अनुवाद

तब महाप्रभु तिरुपति तथा त्रिमल्ल आये, जहाँ उन्होंने चतुर्भुजी मूर्ति देखी। फिर वे व्यंकट पर्वत की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने महाप्रभु की यात्रा का क्रमबद्ध वर्णन किया है। तिरुपति मन्दिर को कभी-कभी तिरुपटुर कहा जाता है। यह चन्द्रगिरि जिले में आर्कट के दक्षिण स्थित है। यह प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। व्यंकटेश्वर, चतुर्भुज विष्णु के रूप में बालाजी का अर्चाविग्रह हैं जो अपने नाम के अनुरूप, श्री तथा भू नामक अपनी शक्तियों समेत, तिरुपति से लगभग आठ मील दूरी पर व्यंकट पर्वत पर स्थित है। यह व्यंकटेश्वर अर्चाविग्रह भगवान् विष्णु के रूप में है, और वह स्थान, जहाँ यह स्थित है व्यंकटक्षेत्र कहलाता है। यद्यपि दक्षिण भारत में अनेक मन्दिर हैं, किन्तु बालाजी का यह मन्दिर अत्यन्त वैभवशाली है। यहाँ पर सितम्बर-अक्टूबर मास में एक विशाल मेला लगता है। दक्षिणी रेलवे पर तिरुपति नामक रेलवे स्टेशन है। निम्न-तिरुपति व्यंकट पर्वत की घाटी पर स्थित है। वहाँ भी अनेक मन्दिर हैं, जिनमें से गोविन्द दास तथा भगवान् रामचन्द्र हैं।

त्रिपति आसिया कैल श्रीराम दरशन।
रघुनाथ-आगे कैल प्रणाम स्तवन॥६५॥

अनुवाद

तिरुपति पहुँच कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। वहाँ उन्होंने प्रार्थना की और रघुवंशी रामचन्द्र के समक्ष नमस्कार किया।

स्वप्रभावे लोक-सबार कराञा विस्मय।
पाना-नृसिंह आइला प्रभु दयामय॥६६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जहाँ-जहाँ जाते वहीं उनके प्रभाव से हर व्यक्ति विस्मित हो उठता। फिर वे पाना-नृसिंह मन्दिर आये। महाप्रभु इतने दयामय हैं।

तात्पर्य

यह पाना-नृसिंह या पानाकल-नरसिंह कृष्णा जिले में मंगलगिरि नामक पर्वत पर वेजायवाड़ा शहर से लगभग ७ मील दूरी पर स्थित है। इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए ६०० सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। कहा जाता है कि

जब भगवान् को चाशनी के साथ भोजन दिया जाता है, तो वे आधा से अधिक नहीं खाते। इसी मन्दिर में वह शंख है, जिसे तंजोर के दिवंगत राजा ने दिया था, और यह कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण ने इसी शंख को बजाया था। इस मन्दिर में मार्च के महीने में एक बड़ा मेला लगता है।

नृसिंहे प्रणति-स्तुति प्रेमावेशे कैल।
प्रभुर प्रभावे लोक चमत्कार हैल॥६७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने प्रेमावेश में आकर भगवान् नृसिंह को नमस्कार किया और उनकी स्तुति की। लोग महाप्रभु के प्रभाव को देख कर चकित थे।

शिवकाञ्ची आसिया कैल शिव दरशन।
प्रभावे 'वैष्णव' कैल सब शैवगण॥६८॥

अनुवाद

शिवकांची आकर चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। उन्होंने अपने प्रभाव से सारे शिव-भक्तों को वैष्णव बना दिया।

तात्पर्य

यह शिवकांची कंजिभिराम या दक्षिण भारत की काशी कहलाता है। शिवकांची में भगवान् शिव के सैकड़ों प्रतीक पाये जाते हैं और एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर भी है।

विष्णुकाञ्ची आसि' देखिल लक्ष्मी-नारायण।
प्रणाम करिया कैल बहुत स्तवन॥६९॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु विष्णुकांची नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने लक्ष्मी-नारायण अर्चाविग्रह देखे, और उन्हें प्रसन्न करने के लिए नमस्कार किया, तथा अनेक प्रार्थनाएँ कीं।

तात्पर्य

विष्णुकांची कंजिभिराम से पाँच मील दूर है। यहीं पर भगवान् विष्णु का

दूसरा रूप वरदराज है। यहाँ पर एक बड़ा सरोवर है, जो अनन्त सरोवर कहलाता है।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत बहुत करिल।
दिन दुइ रहि' लोके 'कृष्णभक्त' कैल॥७०॥

अनुवाद

जब महाप्रभु विष्णुकांची में दो दिन ठहरे, तो उन्होंने भावावेश में नृत्य और कीर्तन किया। जब सारे लोगों ने उन्हें देखा तो वे कृष्ण-भक्त बन गये।

त्रिमलय देखि' गेला त्रिकालहस्ति-स्थाने।
महादेव देखि' ताँरे करिल प्रणामे॥७१॥

अनुवाद

त्रिमलय देखने के बाद महाप्रभु त्रिकालहस्ति देखने गये। यहीं पर उन्होंने शिवजी को देखा और उन्हें सभी प्रकार से प्रणाम किया।

तात्पर्य

त्रिकालहस्ति तिरुपति से २२ मील उत्तरपूर्व है। इसके उत्तर में सुवर्णमुखी नदी है। त्रिकालहस्ति का मन्दिर नदी के दक्षिण की ओर स्थित है। यह श्री कालहस्ती या कालहस्ती नाम से प्रसिद्ध है और शिव-मन्दिर के लिए विख्यात है। यहाँ शिवजी वायुलिंग शिव कहलाते हैं।

पक्षितीर्थ देखि' कैल शिव दरशन।
वृद्धकोल-तीर्थे तबे करिला गमन॥७२॥

अनुवाद

पक्षितीर्थ में महाप्रभु ने शिवजी का मन्दिर देखा। तब वे वृद्धलोक तीर्थ गये।

तात्पर्य

पक्षितीर्थ तिरुकाडिकुण्डम भी कहलाता है और चिमलिपट से नौ मील दक्षिण-पूर्व स्थित है। यह ५०० फुट ऊँचाई पर वेदगिरि या वेदालचम पर्वतश्रेणी पर बसा है। यहाँ पर शिवजी का मन्दिर है और अर्चाविग्रह वेदगिरीश्वर कहलाता

है। कहा जाता है कि नित्य वहाँ पर दो पक्षी मन्दिर के पुजारी से भोजन प्राप्त करने आते हैं, और ऐसा कहा जाता है कि ये पक्षी अनन्त काल से यहाँ आते हैं।

श्वेतवराह देखि, ताँरे नमस्करि'।
पीताम्बर-शिव-स्थाने गेला गौरहरि॥७३॥

अनुवाद

वृद्धकोल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्वेतवराह का मन्दिर देखा। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु शिवजी के मन्दिर गये, जहाँ अर्चाविग्रह पीले रंग का वस्त्र पहने था।

तात्पर्य

श्वेतवराह का मन्दिर वृद्धकोल में है। यह मन्दिर पत्थर का बना है और बलिपीठम् नखलिस्तान से एक मील दक्षिण स्थित है। यहाँ पर श्वेतवराह अवतार की प्रतिमा है, जिसके सिर के ऊपर शेषनाग का छत्र है। शिवजी की प्रतिमा पीताम्बर अथवा चिदाम्बरम् कहलाती है। यह मन्दिर कुडालारो से २६ मील दक्षिण स्थित है, और इसका अर्चाविग्रह आकाशलिंग भी कहलाता है। यह अर्चाविग्रह शिवजी के रूप में है। यह मन्दिर ३९ एकड़ भूमि पर स्थित है और यह भूमि ६० फुट ऊँची दीवाल से घिरी है।

शियाली भैरवी देवी करि' दरशन।
कावेरीर तीरे आइला शचीर नन्दन॥७४॥

अनुवाद

शियाली भैरवी (दुर्गादेवी का अन्य रूप) मन्दिर देखने के बाद शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु कावेरी नदी के किनारे गये।

तात्पर्य

शियाली भैरवी तंजोर जिले में तंजोर शहर से ४८ मील पूर्व की ओर स्थित है। यहाँ पर शिवजी का प्रसिद्ध मन्दिर है, और एक सरोवर भी है। कहा जाता है कि एक शिव-भक्त छोटा बालक उस मन्दिर में आया और माता दुर्गा ने, जो भैरवी कहलाती हैं, उसे अपना दूध पिलाया। इस मन्दिर को देखने के बाद महाप्रभु त्रिचिनापवल्ली जिले से होते हुए कावेरी नदी के किनारे

पहुँचे। *श्रीमद्भागवत* में (११.५.४०) कावेरी नदी को अत्यन्त पवित्र माना गया है।

गो-समाजे शिव देखि' आइला वेदावन।
महादेव देखि' ताँरे करिला वन्दन॥७५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु गोसमाज नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने शिव-मन्दिर देखा। तब वे वेदवन पहुँचे, जहाँ उन्होंने शिवजी का दूसरा अर्चाविग्रह देखा और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य

गोसमाज शिव-भक्तों का तीर्थस्थल है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वेदवन के आगे स्थित है।

अमृतलिंग-शिव देखि' वन्दन करिल।
सब शिवालये शैव 'वैष्णव' हइल॥७६॥

अनुवाद

अमृतलिंग शिव को देखने के बाद महाप्रभु ने उन्हें नमस्कार किया। इस तरह उन्होंने शिवजी के सारे मन्दिर देखे, और शिव के भक्तों को वैष्णव बना लिया।

देवस्थाने आसि' कैल विष्णु दरशन।
श्री-वैष्णवेर संगे ताहाँ गोष्ठी अनुक्षण॥७७॥

अनुवाद

देवस्थान आकर चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा, और रामानुजाचार्य की परम्परा के वैष्णवों से बातें कीं। ये वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं।

कुम्भकर्ण-कपाले देखि' सरोवर।
शिव-क्षेत्रे शिव देखे गौरांगसुन्दर॥७८॥

अनुवाद

कुम्भकर्ण-कपाल आकर महाप्रभु ने विशाल सरोवर और फिर शिवक्षेत्र

नामक पवित्र स्थान देखा जहाँ पर शिवजी का मन्दिर है।

तात्पर्य

कुम्भकर्ण रावण के भाई का नाम है। सम्प्रति कुम्भकोणम् तञ्जोर शहर से बीस मील उत्तर-पूर्व स्थित है। यहाँ पर शिव के १२, विष्णु के ४ तथा ब्रह्मा का एक मन्दिर हैं। तंजोर शहर के भीतर शिवक्षेत्र शिवगंगा सरोवर के तट पर स्थित है। शिवजी का एक बड़ा मन्दिर बृहतीश्वर शिव-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

पापनाशने विष्णु कैल दरशन।
श्रीरंगक्षेत्रे तबे करिला गमन॥७९॥

अनुवाद

शिवक्षेत्र नामक तीर्थ देखने के बाद महाप्रभु पापनाशन आये, जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु के मन्दिर को देखा। अन्त में वे श्री-रंगक्षेत्र पहुँचे।

तात्पर्य

कुछ लोगों का कहना है कि पापनाशन स्थान पहले कुम्भकोणम् से ८ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित था। अन्य लोगों का कहना है कि तिनेभेलि जिले में पालम कोटा नामक शहर है। इससे २० मील पश्चिम एक पवित्र स्थल है जो पापनाशन कहलाता है, और ताम्रपर्णी नदी के किनारे स्थित है। श्री-रंगक्षेत्र काफी प्रसिद्ध स्थान हैं। चिनापल्ली के निकट कावेरी या कोलिरन नामक नदी है। श्री-रंगम इसी नदी के तट पर तंजोर जिले में कुम्भकोणम् से लगभग १० मील पश्चिम है। श्री-रंग-मन्दिर भारत का सबसे बड़ा मन्दिर है, और यह सात परकोटों से घिरा है। श्री-रंगम तक सात मार्ग भी जाते हैं। इनके प्राचीन नाम हैं धर्म-मार्ग, राजमहेन्द्र मार्ग, कुलशेखर मार्ग, आलिनाडन मार्ग, तिरुविक्रम मार्ग, माडमाडि गैस का तिरुबिडि मार्ग तथा अडइयावल इन्दान मार्ग। इस मन्दिर की स्थापना धर्मवर्मा के राज्यकाल से भी पूर्व की गई थी। यह राजा राजमहेन्द्र से भी पहले राज्य करता था। श्री रंगम-मन्दिर में कई विख्यात राजा रह चुके हैं—यथा कुलशेखर, आलबन्दारु आदि। यामुनाचार्य, श्री रामानुज, सुदर्शनाचार्य तथा अन्यों ने भी इस मन्दिर की देखभाल की है।

लक्ष्मी की अवतार गोदादेवी बारह *दिव्य सूरियों* में थीं और भगवान्

श्री-रंगनाथ के अर्चाविग्रह से ब्याही थीं। बाद में वे भगवान् के शरीर में लीन हो गईं। कार्मुक के अवतार तिरुभंग (आलवारों में से एक) ने चोरी से कुछ धन प्राप्त करके श्री-रंगम की चौथी चाहारदीवारी बनवा दी। कहा जाता है कि २८९ कलि सम्बत्सर में तोण्डरडिप्पडि नामक आलवार का जन्म हुआ। जब ये भक्ति में लगे थे तो एक वेश्या के जाल में फँस गये। अपने भक्त को इतना पतित हुआ देख कर श्री-रंगनाथ ने अपने नौकर के हाथ उस वेश्या के पास एक सोने की थाल भेजी। जब मन्दिर में सोने की थाल की खोज की गई, तो वेश्या के घर में पाई गई। जब भक्त ने उस वेश्या पर रंगनाथ की कृपा देखी तो उसकी भूल सुधार ली गई। तब उसने रंगनाथ-मन्दिर की तीसरी चाहारदीवारी बनवाई और वहाँ पर तुलसी का बगीचा लगा दिया।

रामानुजाचार्य का एक विख्यात शिष्य कूरेश था। इनका पुत्र रामपिल्लाइ था, जिसका पुत्र वाग्विजय भट्ट हुआ, जिसका पुत्र वेदव्यास भट्ट या श्री सुदर्शनाचार्य हुआ। जब सुदर्शनाचार्य बूढ़ा हो गया था, तो मुसलमानों ने रंगनाथ के मन्दिर पर हमला कर दिया और १२०० श्री वैष्णवों को मार डाला। उस समय रंगनाथ के अर्चाविग्रह को विजयनगर राज्य के तिरुपति मन्दिर में ले जाया गया। गिंगि के गवर्नर गोप्पणार्य श्री-रंगनाथ को तिरुपति मन्दिर से सिंहब्रह्म नामक स्थान में ले आये, जहाँ वे तीन वर्ष रहे। १२९३ शक संवत में अर्चाविग्रह को पुनः रंगनाथ मन्दिर में स्थापित कर दिया गया। रंगनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवाल में वेदान्तदेशिक द्वारा लिखित एक लेख है, जिसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार रंगनाम इस मन्दिर में वापस आये।

कावेरीते स्नान करि' देखि' रङ्गनाथ।
स्तुति-प्रणति करि' मानिला कृतार्थ॥८०॥

अनुवाद

कावेरी नदी में स्नान करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने रंगनाथ मंदिर देखा और वहाँ स्तुति की तथा प्रणाम किया। इस तरह उन्होंने अपने को कृतार्थ माना।

प्रेमावेशे कैल बहुत गान नर्तन।
देखि' चमत्कार हैल सब लोकेर मन॥८१॥

अनुवाद

रंगनाथ मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में खूब नाचा-गाया जिसे देख कर सारे लोग आश्चर्यचकित थे।

श्रीवैष्णव एक,—'व्येंकट भट्ट' नाम।
प्रभुरे निमन्त्रण कैल करिया सम्मान॥८२॥

अनुवाद

तब व्येंकट भट्ट नामक एक वैष्णव ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़े ही आदर के साथ अपने घर आमन्त्रित किया।

तात्पर्य

श्री व्येंकट भट्ट वैष्णव ब्राह्मण था और श्री रंगक्षेत्र का निवासी था। वह श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में था। श्री रंग तामिल देश का एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है। इस प्रान्त के लोग व्येंकट नाम नहीं रखते। अतएव यह माना जाता है कि वह उस प्रान्त का नहीं था, भले ही वह वहाँ दीर्घकाल से रह रहा था। व्येंकट भट्ट श्री रामानुज-सम्प्रदाय की बड़गलइ शाखा से सम्बद्ध था। उसका भाई श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती रामानुज-सम्प्रदाय का था। व्येंकट भट्ट का पुत्र गौड़ीय सम्प्रदाय में गोपाल भट्ट गोस्वामी के नाम से विख्यात हुआ, और उसने वृन्दावन में राधारमण मन्दिर की स्थापना की। नरहरि चक्रवर्ती द्वारा लिखित *भक्तिरत्नाकर* में (१.१००) उसके विषय में अधिक सूचनाएँ प्राप्त हैं।

निज-घरे लञा कैल पादप्रक्षालन।
सेइ जल लञा कैल सवंशे भक्षण॥८३॥

अनुवाद

श्री व्येंकटेश भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गया। उसने महाप्रभु के चरण धोये और उस जल को उसके परिवार के सारे लोगों ने पिया।

भिक्षा कराञा किछु कैल निवेदन।
चातुर्मास्य आसि' प्रभु, हैल उपसन्न॥८४॥

अनुवाद

महाप्रभु को भोजन कराने के बाद व्येंकट भट्ट ने निवेदन किया कि चातुर्मास्य आ चुका है।

चातुर्मास्ये कृपा करि' रह मोर घरे।
कृष्णकथा कहि' कृपाय उद्धार' आमारे॥८५॥

अनुवाद

व्येंकट भट्ट ने कहा, "आप मुझ पर कृपा करें, और चातुर्मास्य-भर मेरे घर पर रहें। आप भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कह कर मेरा उद्धार करें।

ताँर घरे रहिला प्रभु कृष्णकथा-रसे।
भट्टसंगे गोङाइल सुखे चारि मासे॥८६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु व्येंकट भट्ट के घर पर चार महीने तक लगातार रहे। महाप्रभु ने बड़े ही सुखपूर्वक भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कहते हुए और दिव्य रस भोगते हुए अपने दिन बिताये।

कावेरीते स्नान करि' श्रीरंग दर्शन।
प्रतिदिन प्रेमावेशे करेन नर्तन॥८७॥

अनुवाद

वहाँ रहते हुए महाप्रभु ने कावेरी नदी में स्नान किया और श्री-रंग मन्दिर देखा। महाप्रभु प्रतिदिन भावावेश में नाचते भी रहे।

सौन्दर्यादि प्रेमावेश देखि, सर्वलोक।
देखिबारे आइसे, देखे, खण्डे दुःख-शोक॥८८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के सौन्दर्य तथा उनके प्रेमावेश को हर एक ने देखा। उन्हें देखने अनेक लोग आते रहते थे, और उनका दर्शन करने से ही उनका दुख तथा शोक भाग जाता था।

लक्ष लक्ष लोक आइल नाना-देश हैते।
सबे कृष्णनाम कहे प्रभुके देखिते॥८९॥

अनुवाद

विभिन्न देशों से लाखों लोग महाप्रभु को देखने आये, और उन्हें देखने के बाद हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन किया।

कृष्णनाम विना केह नाहि कहे आर।
सबे कृष्णभक्त हैल,—लोके चमत्कार॥९०॥

अनुवाद

वे केवल हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने लगे, और सब के सब भगवान् कृष्ण के भक्त बन गये। इस तरह सारी जनता आश्चर्यचकित थी।

श्रीरंगक्षेत्रे वैसे य़त वैष्णव-ब्राह्मण।
एक एक दिन सबे कैल निमन्त्रण॥९१॥

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में रहने वाले सारे वैष्णव ब्राह्मणों ने महाप्रभु को एक-एक दिन अपने अपने घरों में आमन्त्रित किया।

एक एक दिने चातुर्मास्य पूर्ण हैल।
कतक ब्राह्मण भिक्षा दिते ना पाइल॥९२॥

अनुवाद

यद्यपि प्रतिदिन विभिन्न ब्राह्मण महाप्रभु को आमन्त्रित करते रहते, किन्तु कुछ को भोजन कराने का अवसर नहीं मिल पाया, क्योंकि चातुर्मास्य की अवधि बीत गई।

सेइ क्षेत्रे रहे एक वैष्णव-ब्राह्मण।
देवालये आसि' करे गीता आवर्तन॥९३॥

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में एक ब्राह्मण वैष्णव नित्य मन्दिर का दर्शन करने आता था, और समूची भगवद्गीता बाँचा करता था।

अष्टाध्याय पड़े आनन्द-आवेशे।
अशुद्ध पड़ेन, लोक करे उपहासे॥९४॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण अत्यन्त भावावेश में भगवद्गीता के अठारहो अध्याय पढ़ता था। किन्तु वह शुद्ध शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता था, इसलिए लोग उसका मजाक उड़ाते थे।

केह हासे, केह निन्दे, ताहा नाहि माने।
आविष्ट हञा गीता पड़े आनन्दित मने॥९५॥

अनुवाद

अशुद्ध उच्चारण करने से लोग कभी उसकी आलोचना करते और कभी उस पर हँसते थे; किन्तु उसे कोई परवाह न थी। वह भगवद्गीता का पाठ करने के कारण भावाविष्ट रहता और मन-ही-मन परम सुखी था।

पुलकाश्रु, कम्प, स्वेद,—यावत् पठन।
देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन॥९६॥

अनुवाद

भगवद्गीता पढ़ते समय ब्राह्मण को दिव्य शारीरिक विकारों का अनुभव होता था। उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे, उसकी आँखों से आँसू आते रहते थे, उसका शरीर काँपने लगता था और वह पसीने-पसीने हो जाता था। यह देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित होते थे।

तात्पर्य

यद्यपि निरक्षर होने के कारण वह ब्राह्मण ठीक से उच्चारण नहीं कर पा रहा था। फिर भी भगवद्गीता पढ़ते हुए उसमें भाव प्रकट हो रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इन लक्षणों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न थे। यह सूचित करता है कि भगवान् भक्ति से प्रसन्न होते हैं, विद्वत्ता से नहीं। यद्यपि वह ब्राह्मण शब्दों का सही-सही उच्चारण नहीं कर रहा था किन्तु साक्षात् भगवान् कृष्णस्वरूप महाप्रभु ने इसे बुरा नहीं माना, प्रत्युत वे उसके भाव (भक्ति) से प्रसन्न

थे। *श्रीमद्भागवत* में (१.५.११) इसकी पुष्टि हुई है—

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।।

"दूसरी ओर, ज़ो साहित्य अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूप तथा लीलाओं की महिमा के वर्णन से पूर्ण है, वह एक भिन्न सृष्टि है, जो ऐसे शब्दों से परिपूर्ण होता है, जिससे इस जगत की कुनिर्दिष्ट सभ्यता के अपवित्र जीवों में क्रान्ति आ सकती है। ऐसा साहित्य बेढंगा होने पर भी ईमानदार व्यक्तियों द्वारा सुना, गाया और स्वीकार किया जाता है।"

महाप्रभु पूछिल ताँरे, शुन, महाशय।
कोन् अर्थ जानि' तोमार एत सुख हय।।९७।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "महोदय! आप ऐसे भावावेश में क्यों हैं? आपको भगवद्गीता के किस अंश से ऐसा दिव्य सुख प्राप्त होता है?"

विप्र कहे,—मूर्ख आमि, शब्दार्थ ना जानि।
शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि, गुरु-आज्ञा मानि'।।९८।।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैं गँवार हूँ, अतएव शब्दों का अर्थ नहीं जानता। मैं कभी भगवद्गीता को शुद्ध बाँचता हूँ, कभी अशुद्ध, किन्तु ऐसा करके मैं अपने गुरु के आदेश का पालन कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

यह ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो भगवद्गीता का गलत पाठ करते हुए भी महाप्रभु का ध्यान आकृष्ट करने में सफल हो सका। उसके आध्यात्मिक कृत्य शब्दों के उच्चारण जैसी भौतिक वस्तुओं पर आश्रित नहीं थे, प्रत्युत उसकी सफलता अपने गुरु के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करने पर आश्रित थी।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"केवल उन महात्माओं को ही, जिन्हें भगवान् तथा गुरु में श्रद्धा है, वैदिक ज्ञान का आशय स्वतः प्रकट होता है।" (श्वेताश्वतर उपनिषद ६.२३)

जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का पालन करते हैं, उन्हें *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* के शब्दार्थ प्रकट होते हैं। इसी तरह जिसे भगवान् में समान श्रद्धा होती है, उसे भी शब्दार्थ प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण तथा गुरु दोनों के प्रति श्रद्धा ही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य है।

अर्जुनेर रथे कृष्ण हय रज्जुधर।
वसियाछे हाते तोत्र श्यामल सुन्दर॥९९॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण कहता गया, "मैं भगवान् कृष्ण के चित्र को ही देखता हूँ, जिसमें वे अर्जुन के सारथी के रूप में रथ पर बैठे हैं। वे अपने हाथों में लगाम थामे हुए अत्यन्त सुन्दर तथा साँवले लगते हैं।

अर्जुनेर कहितेछेन हित-उपदेश।
ताँरे देखि' हय मोर आनन्द-आवेश॥१००॥

अनुवाद

"जब मैं रथ में बैठे और अर्जुन को उपदेश देते हुए कृष्ण के चित्र को देखता हूँ, तो मैं भावमय आनन्द से पूरित हो उठता हूँ।

य़ावत् पड़ों, तावत् पाङ ताँर दरशन।
एइ लागि' गीता-पाठ ना छाड़े मोर मन॥१०१॥

अनुवाद

"जब तक मैं गीता पढ़ता हूँ तब तक मैं भगवान् के सुन्दर स्वरूप का ही दर्शन करता हूँ। इसी कारण से मैं भगवद्गीता पढ़ता हूँ और मेरा मन उससे विचलित नहीं होता।"

प्रभु कहे,—गीत-पाठे तोमारइ अधिकार।
तुमि से जानह एइ गीतार अर्थ-सार॥१०२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण से कहा, "निस्सन्देह भगवद्गीता पढ़ने के तुम्हीं अधिकारी हो। तुम जो कुछ जानते हो, वही भगवद्गीता का असली तात्पर्य है।"

तात्पर्य

शास्त्रों के अनुसार—*भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया*। मनुष्य को चाहिए कि असली भक्त से *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* को सुन कर उन्हें समझे। मात्र पाण्डित्य या कुशाग्र बुद्धि से इन्हें नहीं समझा जा सकता। कहा भी गया है—

गीताधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा।
वेदशास्त्र पुराणानि तेनाधीतानि सर्वशः॥

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा भक्ति के साथ *भगवद्गीता* का पाठ करता है, उसे वैदिक ज्ञान का सार प्रकट हो जाता है। *श्वेताश्वतर उपनिषद* के अनुसार (६.२३)—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

सारा वैदिक साहित्य श्रद्धा तथा भक्ति से समझा जा सकता है, पाण्डित्य से नहीं। इसीलिए हमने *भगवद्गीता* यथारूप प्रस्तुत किया है। ऐसे अनेक विद्वान् तथा दार्शनिक हैं जो *भगवद्गीता* का पाठ पंडिताऊ ढंग से करते हैं। वे अपना समय तो गँवाते ही हैं, किन्तु उनकी टीकाएँ बाँचने वाले भी दिग्भ्रमित हो जाते हैं।

एइ बलि' सेइ विप्रे कैल आलिङ्गन।
प्रभु-पद धरि' विप्र करेन रोदन॥१०३॥

अनुवाद

यह कह कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण का आलिंगन किया,

और वह महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़ कर रोने लगा।

तोमा देखि' ताहा हैते द्विगुण सुख हय।
सेइ कृष्ण तुमि,—हेन मोर मने लय॥१०४॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "आपको देख कर मेरा सुख दूना हो गया। मैं तो आपको भगवान् कृष्ण ही मानता हूँ।"

कृष्ण-स्फूर्त्ये ताँर मन हञाछे निर्मल।
अतएव प्रभुर तत्त्व जानिल सकल॥१०५॥

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के प्रकाशित होने से ब्राह्मण का मन शुद्ध हो गया, अतएव वह श्री चैतन्य महाप्रभु के सत्य को पूरी तरह से समझ सका।

तबे महाप्रभु ताँरे कराइल शिक्षण।
एइ वात् काहाँ ना करिह प्रकाशन॥१०६॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को भलीभाँति शिक्षा दी, और उससे अनुरोध किया कि वह यह बात किसी से प्रकट नहीं करे कि वे साक्षात् कृष्ण हैं।

सेइ विप्र महाप्रभुर बड़ भक्त हैल।
चारि मास प्रभु-संग कभु ना छाड़िल॥१०७॥

अनुवाद

वह ब्राह्मण महाप्रभु का परम भक्त बन गया और चतुर्मास्य-भर उसने उनका साथ नहीं छोड़ा।

एइमत भट्टगृहे रहे गौरचन्द्र।
निरन्तर भट्ट-संगे कृणकथानन्द॥१०८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु व्येंकट भट्ट के घर पर रहे और निरन्तर भगवान् कृष्ण के विषय में बातें करते। इस तरह वे परम आनन्दित थे।

'श्री-वैष्णव' भट्ट सेवे लक्ष्मी-नारायण।
ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन॥१०९॥

अनुवाद

रामानुज-सम्प्रदाय का वैष्णव होने के कारण व्येंकट भट्ट लक्ष्मी तथा नारायण के अर्चाविग्रह की पूजा करता था। उसकी शुद्ध भक्ति देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे।

निरन्तर ताँर संगे हैल सख्य भाव।
हास्य-परिहासे दुँड़ सख्येर स्वभाव॥११०॥

अनुवाद

एक दूसरे के साथ लगातार रहने से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा व्येंकट भट्ट में धीरे-धीरे मैत्री भाव स्थापित हो गया। वे कभी मिल कर हँसते और कभी मजाक करते।

प्रभु कहे, भट्ट, तोमार लक्ष्मी-ठाकुराणी।
कान्त वक्षःस्थिता, पतिव्रता-शिरोमणि॥१११॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्टाचार्य से कहा, "आपकी आराध्य देवी लक्ष्मी सदैव नारायण के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं, और वे निश्चय ही सृष्टि की सबसे पतिव्रता स्त्री हैं।

आमार ठाकुर कृष्ण—गोप, गो-चारक।
साध्वी हञा केने चाहे ताँहार संगम॥११२॥

अनुवाद

"किन्तु मेरे स्वामी तो ग्वालबाल कृष्ण हैं, जो गायों के चराने में लगे रहते हैं। ऐसा क्यों है कि लक्ष्मी पतिव्रता स्त्री होते हुए भी मेरे प्रभु का साथ चाहती हैं?"

एइ लागिऽसुखभोग छाडिऽचिरकाल।
व्रत-नियम करिऽतप करिल अपार॥११३॥

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने कृष्ण की संगति प्राप्त करने के लिए ही वैकुण्ठ-लोक के सारे सुख त्याग दिये और दीर्घकाल तक व्रत-नियम का पालन करके अपार तपस्या की।"

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रिरेणुस्परशधिकार :।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता॥११४॥

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे प्रभु! हम नहीं जानते कि कालिय नाग को किस तरह आपके चरणकमलों की धूलि प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके लिए लक्ष्मीदेवी को भी समस्त इच्छाओं को त्याग कर और व्रत करके सदियों तक तपस्या करनी पड़ी थी। निस्सन्देह हम नहीं जानते कि किस तरह कालिय नाग को ऐसा अवसर मिल सका।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से है (१०.१६.३६) जिसमें कालिय नाग की पत्नियों का कथन है।

भट्ट कहे, कृष्ण-नारायण—एकइ स्वरूप।
कृष्णेते अधिक लीला-वैदग्ध्यादिरूप॥११५॥

अनुवाद

तब व्येंकट भट्ट ने कहा, "भगवान् कृष्ण तथा नारायण एक ही रूप हैं। किन्तु कृष्ण की लीलाएँ अपनी विदग्धता के कारण अधिक आस्वाद्य हैं।"

तार स्पर्शे नाहि य़ाय पतिव्रता-धर्म।
कौतुक लक्ष्मी चाहेन कृष्णेर संगम॥११६॥

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण तथा नारायण एक ही व्यक्ति हैं, अतएव कृष्ण के साथ

लक्ष्मी का संगम उनके पातिव्रत धर्म को भंग नहीं करता। प्रत्युत यह तो कुतूहल की बात थी कि लक्ष्मीजी ने भगवान् कृष्ण का साथ करना चाहा।"

तात्पर्य

यह महाप्रभु के प्रश्न का उत्तर है जिससे पता चल जाता है कि व्येंकट भट्ट को सत्य का पता था। उन्होंने महाप्रभु को बतलाया कि नारायण ऐश्वर्यशाली कृष्ण का ही एक रूप है। यद्यपि कृष्ण द्विभुज हैं और नारायण चतुर्भुज हैं, किन्तु उनमें कोई अन्तर नहीं है। वे एक ही हैं। नारायण कृष्ण जैसे ही सुन्दर हैं, लेकिन कृष्ण की लीलाएँ अधिक वैदग्ध्य हैं। किन्तु ऐसा नहीं है कि इन वैदग्ध्य लीलाओं के कारण कृष्ण नारायण से पृथक हैं। कृष्ण के साथ रहने की लक्ष्मीजी की कामना पूर्णतया स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में, यह समझ में आने की बात है कि पतिव्रता स्त्री विभिन्न वेशभूषा में रहने वाले अपने पति के साथ रहना चाहती है। अतएव यदि लक्ष्मीजी कृष्ण के संग रहना चाहती हैं, तो इसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रस स्थितिः॥११७॥

अनुवाद

व्येंकट भट्ट ने कहा, "दिव्य अनुभूति के अनुसार नारायण तथा कृष्ण के स्वरूपों में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन कृष्ण में माधुर्य रस के कारण दिव्य आकर्षण है, अतएव वे नारायण से बढ़ कर हैं। यह दिव्य रसों का निर्णय है।"

तात्पर्य

यह श्लोक व्यंकटेश भट्ट ने *भक्तिरसामृत-सिन्धु* से (१.२.५९) उद्धृत किया है।

कृष्णसंगे पतिव्रता धर्म नहे नाश।
अधिक लाभ पाइये, आर रासविलास॥११८॥

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने विचार किया कि उनका पातिव्रत धर्म कृष्ण के साथ

उनका सम्बन्ध होने से नष्ट नहीं होगा। प्रत्युत कृष्ण की संगति करने से वे रासनृत्य का लाभ प्राप्त कर सकेंगी।"

विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष।
इहाते कि दोष, केने कर परिहास॥११९॥

अनुवाद

व्येंकट भट्ट ने आगे बतलाया, "माता लक्ष्मी दिव्य आनन्द की भोक्ता भी हैं, अतएव यदि उन्होंने कृष्ण के साथ भोग करना चाहा तो इसमें कौन-सा दोष है? आप इसका मजाक क्यों उड़ा रहे हैं?"

प्रभु कहे,—दोष नाहि, इहा आमि जानि।
रास ना पाइल लक्ष्मी, शास्त्रे इहा शुनि॥१२०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुझे लक्ष्मीजी में कोई दोष नहीं दिखता, फिर भी वे रासनृत्य में प्रविष्ट नहीं हो पाईं। शास्त्रों से भी हम ऐसा ही सुनते हैं।"

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजसुन्दरीणाम्॥१२१॥

अनुवाद

" 'जब भगवान् कृष्ण रासलीला में गोपियों के साथ नाच रहे थे, तो उन्होंने उन्हें अपनी बाहों में भर कर उनका आलिंगन किया। यह दिव्य कृपा लक्ष्मी या वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को नहीं प्राप्त हो पाई। न ही स्वर्गलोक की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों ने, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी थी, कभी इसकी कल्पना की। तो भला संसारी औरतों के विषय में क्या कहा जाय, चाहे वे कितनी ही सुन्दरी क्यों न हों?'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का है (१०.४७.६०)।

लक्ष्मी केने ना पाइल, इहार कि कारण।
तप करि' कैछे कृष्ण पाइल श्रुतिगण॥१२२॥

अनुवाद

"लेकिन क्या आप मुझे बता सकेंगे कि लक्ष्मी रासनृत्य में क्यों नहीं जा पाईं? वैदिक ज्ञान के अधिकारीगण नृत्य में जाकर कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सके।

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदिय-
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोगभुजदण्डविषक्तधियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः॥१२३॥

अनुवाद

" 'बड़े बड़े ऋषि योगाभ्यास तथा श्वास-नियन्त्रण द्वारा मन तथा इन्द्रियों को जीतते हैं। इस तरह योग में रत रह कर तथा अपने हृदयों में परमात्मा का दर्शन करते हुए वे भगवान् के शत्रुओं समेत निर्विशेष ब्रह्म में लीन होते हैं। किन्तु व्रज की गोपियाँ कृष्ण तथा उनकी सर्प जैसी भुजाओं का आलिंगन चाहती हैं। कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर गोपियों को अन्ततः भगवान् के चरणकमलों का अमृत चखने को मिला। उपनिषदों ने भी गोपियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए भगवान् के चरणकमलों का अमृत चखा है।' "

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से है (१०.८७.२३)।

श्रुति पाय, लक्ष्मी ना पाय, इथे कि कारण।
भट्ट कहे,—इहा प्रवेशिते नारे मोर मन॥१२४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा यह पूछे जाने पर कि रासनृत्य में लक्ष्मी क्यों प्रवेश नहीं कर पाईं, जबकि वैदिक ज्ञान के अधिकारी कर पाये तो व्येंकट भट्ट ने उत्तर दिया, "मैं इस व्यवहार के रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"

आमि जीव,—क्षुद्रबुद्धि सहजे अस्थिर।
ईश्वरेर लीला—कोटिसमुद्र-गम्भीर॥१२५॥

अनुवाद

व्येंकट भट्ट ने स्वीकार किया, "मैं सामान्य मनुष्य हूँ। मेरी बुद्धि अत्यन्त सीमित है और मैं सरलता से विचलित हो जाता हूँ, अतएव मेरा मन भगवान् की लीलाओं के अगाध समुद्र में प्रवेश नहीं कर पाता।

तुमि साक्षात् सेइ कृष्ण, जान निजकर्म।
य़ारे जानाइ, सेइ जाने तोमार लीलामर्म॥१२६॥

अनुवाद

"आप साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं। आप ही अपने कार्यों के प्रयोजन को समझ सकते हैं, या फिर जिसे आप ज्ञान प्रदान करें वह भी आपकी लीलाओं को समझ सकता है।"

तात्पर्य

स्थूल इन्द्रियों से भगवान् कृष्ण तथा उनकी लीलाओं को नहीं जाना जा सकता। मनुष्य को भगवान् की प्रेमाभक्ति करके अपनी इन्द्रियाँ निर्मल बनानी होती हैं। जब भगवान् प्रसन्न होते हैं और अपने को प्रकट करते हैं तो वह भगवान् के दिव्य रूप, नाम, गुण तथा लीलाएँ समझ सकता है। इसकी पुष्टि *कठ उपनिषद* (२.२३) तथा *मुण्डक उपनिषद* (३.२.३) द्वारा हुई है—*यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषआत्मा वृणुते तनूं स्वाम्*—जिस पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वही उनके दिव्य नाम, गुण, रूप तथा लीलाओं को समझ सकता है।

प्रभु कहे,—कृष्णेर एक स्वभाव विलक्षण।
स्वमाधुर्य सर्व चित्त करे आकर्षण॥१२७॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "भगवान् का विशिष्ट स्वभाव है। वे अपने माधुर्य रस के द्वारा हर एक के चित्त को आकर्षित करते हैं।

व्रजलोकेर भावे पाइये ताँहार चरण।
ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रजजन॥१२८॥

अनुवाद

"व्रजलोक या गोलोक वृन्दावन के निवासियों के चिह्नों का अनुसरण करके मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण पा सकता है। किन्तु उस लोक के निवासी कृष्ण को भगवान् के रूप में नहीं जानते।

केह ताँरे पुत्र-ज्ञाने उदुखले बान्धे।
केह सखा-ज्ञाने जिनिऽचड़े ताँर काँधे॥१२९॥

अनुवाद

"वहाँ कुछ लोग उन्हें पुत्रवत् मान कर कभी-कभी उन्हें ओखली से बाँध देते हैं। अन्य लोग उन्हें अपना अन्तरंग सखा मान कर, उन पर विजय पाकर उनके कन्धों पर चढ़ जाते हैं।

'व्रजेन्द्रनन्दन' बलि' ताँरे जाने व्रजजन।
ऐश्वर्यज्ञाने नाहि कोन सम्बन्ध-मानन॥१३०॥

अनुवाद

"व्रजभूमि के निवासी कृष्ण को व्रजभूमि के राजा महाराज नन्द के पुत्ररूप में जानते हैं, और वे मानते हैं कि ऐश्वर्य-रस में भगवान् के साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

व्रजलोकेर भावे येइ करये भजन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥१३१॥

अनुवाद

"जो व्यक्ति व्रजभूमि के निवासियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, वह भगवान् को प्राप्त करता है, और उन्हें उसी रूप में जानता है जिस रूप में वे व्रजलोक में जाने जाते हैं। वहाँ पर वे महाराज नन्द के पुत्र के रूप में विख्यात हैं।"

तात्पर्य

व्रजभूमि या गोलोक वृन्दावन के निवासी कृष्ण को महाराज नन्द के बेटे के रूप में जानते हैं। वे उन्हें भगवान् नहीं मानते। भगवान् हर एक के पालक हैं और समस्त पुरुषों में प्रधान हैं। व्रजभूमि में कृष्णप्रेम के केन्द्रबिन्दु

तो हैं, किन्तु उन्हें कोई भगवान् के रूप में नहीं जानता। प्रयुत वे उन्हें मित्र, पुत्र, प्रेमी या स्वामी के रूप में मानते हैं। प्रत्येक दशा में कृष्ण ही केन्द्रबिन्दु हैं। व्रजभूमि के निवासी भगवान् से दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस के द्वारा सम्बद्ध हैं। भक्ति में लगा हुआ व्यक्ति उन्हें इनमें से किसी भी सम्बन्ध में अर्थात् रस में स्वीकार कर सकता है। जो सिद्ध अवस्था को प्राप्त है, वह भगवान् के पास जाकर उनके शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है।

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥१३२॥

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने उद्धरण रखा, "यशोदा-पुत्र भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हैं, किन्तु वे ज्ञानियों, तपस्या में रत आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या आत्मा और शरीर को एक मानने वालों को सहज सुलभ नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (१०.९.२१) उद्धृत है और *मध्यलीला* में (८.२२७) भी आया है।

श्रुतिगण गोपीगणेर अनुगत हञा।
व्रजेश्वरीसुत भजे गोपीभाव लञा॥१३३॥

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के अधिकारियों ने, जो श्रुतिगण कहलाते हैं, गोपी भाव में कृष्ण की पूजा की और उनके चरणचिह्नों का अनुसरण किया।

तात्पर्य

वैदिक साहित्य के अधिकारी, जो *श्रुतिगण* कहलाते हैं, उन्होंने भगवान् कृष्ण के रासनृत्य में प्रवेश करना चाहा तो उन्होंने गोपियों के भाव में भगवान् की पूजा करनी प्रारम्भ की। प्रारम्भ में वे असफल रहे। जब गोपियों के भाव में मात्र कृष्ण का चिन्तन करने से वे नृत्य में प्रवेश नहीं कर पाये तो उन्होंने गोपियों का स्वरूप धारण कर लिया। यहाँ तक कि उन्होंने गोपियों

के ही समान व्रजभूमि में जन्म भी लिया और गोपियों के प्रेम-भाव में निमग्न हो गये। इस तरह उन्हें भगवान् की रासलीला में प्रवेश करने को मिला।

बाह्यस्तरे गोपीदेह व्रजे ग्रबे पाइल।
सेइ देहे कृष्णसङ्गे रासक्रीड़ा कैल॥१३४॥

अनुवाद

"वैदिक स्तोत्रों के साकार अधिकारियों ने गापियों जैसा शरीर प्राप्त किया और व्रजभूमि में जन्म लिया। तब उन शरीरों में उन्हें भगवान् की रासलीला में प्रविष्ट होने दिया गया।

गोपजाति कृष्ण, गोपी—प्रेयसी ताँहार।
देवी वा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अङ्गीकार॥१३५॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण ग्वाला जाति के हैं, और गापियाँ कृष्ण की सर्वप्रिय प्रेमिकाएँ हैं। यद्यपि स्वर्गलोक के निवासियों की पत्नियाँ भौतिक जगत में सर्वाधिक ऐश्वर्यमान हैं, किन्तु न तो वे, न भौतिक जगत की अन्य स्त्रियाँ कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सकती हैं।

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर सङ्गम।
गोपिका अनुगा हञा ना कैल भजन॥१३६॥

अनुवाद

"लक्ष्मीजी कृष्ण के साथ भोग करना चाहती थीं, और साथ ही लक्ष्मी के रूप में अपना आध्यात्मिक शरीर बनाये रखना चाहती थीं। किन्तु उन्होंने कृष्ण की पूजा करने में गोपियों का अनुसरण नहीं किया।

अन्य देहे ना पाइये रासविलास।
अतएव 'नायं' श्लोक कहे वेदव्यास॥१३७॥

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ व्यासदेव ने "नायं सुखापो भगवान्" से प्रारम्भ होने वाले श्लोक की रचना की क्योंकि गोपियों के शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति सशरीर रासलीला में प्रवेश नहीं कर सकता।"

तात्पर्य

इस श्लोक से *भगवद्गीता* के निम्नलिखित श्लोक (९.३५) की पुष्टि होती है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

"देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं के मध्य जन्म लेंगे, भूतप्रेत की पूजा करने वाले उन्हीं के बीच जन्म लेंगे, पूर्वजों की पूजा करने वाले पूर्वजों के पास जाते हैं और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।"

मनुष्य अपने मूल आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करके ही वैकुण्ठ में प्रवेश कर सकता है। जहाँ तक भगवान् की रासलीला का सम्बन्ध है, इस जगत में उनके नृत्यों का अनुकरण करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। रासलीला में प्रवेश पाने के लिए गोपियों जैसा आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करना आवश्यक है। *नायं सुखापो* श्लोक में भक्तों को *भक्तिमत्* कहा गया है अर्थात् वे भक्ति में लगे रहते हैं और कल्मष से रहित होते हैं। मात्र कृष्ण की रासलीला का अनुकरण करने या अपने को कृष्ण सोचने तथा सखी की तरह वेश बनाने से कोई रासलीला में प्रवेश नहीं कर सकता। कृष्ण की रासलीला नितान्त आध्यात्मिक है। भौतिक कल्मष से इसका कोई सरोकार नहीं है। अतएव कृत्रिम भौतिक साधनों से कृष्ण-लीलाओं में कोई प्रवेश नहीं पा सकता। इस श्लोक का यही उपदेश है।

पूर्वे भट्टेर मने एक छिल अभिमान।
'श्रीनारायण' हयेन स्वयं-भगवान्॥१३८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई इस विवेचना के पूर्व व्येंकट भट्ट श्री नारायण को ही भगवान् मानते थे।

ताँहार भजन सर्वोपरि-कक्षा हय।
'श्री-वैष्णवे'र भजन एइ सर्वोपरि हय॥१३९॥

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए व्येंकट भट्ट का विश्वास था कि नारायण पूजा

ही सर्वोपरि पूजा है—भक्ति की अन्य विधियों से सर्वोपरि है क्योंकि रामानुज के श्री वैष्णव शिष्यगण इसका अनुसरण करते थे।

एइ ताँर गर्व प्रभु करिते खण्डन।
परिहास द्वारे उठाय एतेक वचन॥१४०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु व्येंकट भट्ट की इस भ्रान्ति को समझ गये थे, और इसे सुधारने के उद्देश्य से ही महाप्रभु इस प्रकार मजाक में इतना बोल रहे थे।

प्रभु कहे,—भट्ट, तुमि ना करिह संशय।
'स्वयं-भगवान्' कृष्ण एइ त' निश्चय॥१४१॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "हे व्येंकट भट्ट! अब अधिक संशय मत करो। कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, और यही वैदिक साहित्य का निर्णय है।"

कृष्णेर विलास-मूर्ति—श्रीनारायण।
अतएव लक्ष्मी-आद्येर हरे तेँह मन॥१४२॥

अनुवाद

कृष्ण का ऐश्वर्यशाली रूप नारायण लक्ष्मी तथा उनकी सखियों के मन को आकृष्ट करता है।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥१४३॥

अनुवाद

"ईश्वर के ये सारे अवतार, पुरुषावतार के स्वांश या अंश हैं। किन्तु कृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। जब-जब इन्द्र के शत्रुओं द्वारा यह जगत व्याकुल होता है तब-तब हर युग में वे अपने विभिन्न स्वरूपों के द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (१.३.२८) लिया गया है।

नारायण हैते कृष्णेर असाधारण गुण।
अतएव लक्ष्मीर कृष्णे तृष्णा अनुक्षण॥१४४॥

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण में ऐसे चार असाधारण गुण हैं, जो नारायण में नहीं हैं, अतएव लक्ष्मीजी सदैव उनका संग चाहती हैं।

तात्पर्य

नारायण में ६० दिव्य गुण होते हैं। किन्तु भगवान् कृष्ण में इनके अतिरिक्त भी चार दिव्य गुण पाये जाते हैं। ये हैं—१) समुद्र के तुल्य अद्भुत लीलाएँ २) माधुर्य प्रेम में परम भक्तों (गोपियों) से घिरा होना ३) कृष्ण का वंशीवादन जिसकी ध्वनि तीनों लोकों को आकृष्ट करने वाली है ४) कृष्ण का असाधारण सौन्दर्य, जो तीनों लोकों के परे है। भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य अनुपम और अपार है।

तुमि ये पड़िला श्लोक, से हय प्रमाण।
सेइ श्लोके आइसे 'कृष्ण—स्वयं भगवान्'॥१४५॥

अनुवाद

"तुमने *सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि* श्लोक सुनाया है। यह श्लोक ही साक्षी है कि कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्णस्वरूपयोः।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः॥१४६॥

अनुवाद

"दिव्य अनुभूति के अनुसार कृष्ण तथा नारायण के स्वरूपों में कोई अन्तर नहीं है। फिर भी माधुर्य रस के कारण कृष्ण में विशिष्ट आकर्षण है। फलतः वे नारायण से बढ़ कर हैं। यह दिव्य रसों का निष्कर्ष है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत सिन्धु* से (१.२.५९) लिया गया है।

'स्वयं' भगवान् 'कृष्ण' लक्ष्मीर मन।
गोपिकार मन हरिते नारे 'नारायण'॥१४७॥

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण लक्ष्मी के मन को आकृष्ट करते हैं, किन्तु भगवान् नारायण गोपियों के मन को आकृष्ट नहीं कर पाते। इससे कृष्ण की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है।

नारायणेर का कथा, श्रीकृष्ण आपने।
गोपिकारे हास्य कराइते हय 'नारायणे'॥१४८॥

अनुवाद

"भगवान् नारायण के विषय में क्या कहा जाये, गोपियों के साथ मजाक उड़ाने के लिए भगवान् कृष्ण नारायण के रूप में प्रकट हुए।

'चतुर्भुज-मूर्ति' देखाय गोपीगणेर आगे।
सेइ 'कृष्ण' गोपिकारे नहे अनुरागे॥१४९॥

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण ने नारायण का चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया, किन्तु वे गोपिकाओं का प्रेम आकृष्ट नहीं कर सके।

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दन जुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरुह पदवी सञ्चारिणः प्रक्रियाम्।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हन्त चतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदयः कुञ्चति॥१५०॥

अनुवाद

"एक बार भगवान् कृष्ण ने चतुर्भुजी नारायण का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किया। किन्तु जब गोपियों ने उनके इस भव्य स्वरूप को देखा तो उनके भाव कुंचित हो गये। इसलिए विद्वान् से विद्वान् व्यक्ति भी गोपियों के भाव नहीं समझ सकता, क्योंकि वे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के आदि स्वरूप पर टिके हैं। कृष्ण के साथ गोपियों का परम रस आध्यात्मिक जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव-नाटक* (६.१४) का है, जिसे नारद मुनि ने कहा था। इससे कविराज गोस्वामी द्वारा *भक्तिरसामृत* से उद्धृत *सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि* श्लोक का स्पष्टीकरण होता है। इस श्लोक को महाप्रभु ने व्येंकट भट्ट से कहा। इस श्लोक को चैतन्य महाप्रभु ने *भक्तिरसामृत-सिंधु* की रचना के बहुत पहले उद्धृत किया था। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इंगित करते हैं कि ये श्लोक *भक्तिरसामृत-सिन्धु* की रचना के पहले प्रचलित थे और भक्तों द्वारा उद्धृत किये जाते थे।

एत कहि' प्रभु ताँर गर्व चूर्ण करिया।
ताँरे सुख दिते कहे सिद्धान्त फिराइया॥१५१॥

अनुवाद

इस तरह महाप्रभु ने व्येंकट भट्ट के गर्व को चूर्ण कर दिया, किन्तु उन्हें पुनः सुखी बनाने के उद्देश्य से वे इस प्रकार बोले।

दुःख ना भाविह, भट्ट, कैलूँ परिहास।
शास्त्रसिद्धान्त शुन, य़ाते वैष्णव-विश्वास॥१५२॥

अनुवाद

महाप्रभु ने व्येंकट भट्ट को यह कह कर सान्त्वना दी, "मैंने जो कुछ कहा वह मजाक था। अब तुम मुझसे शास्त्रों का सिद्धान्त सुन सकते हो, जिसमें हर वैष्णव भक्त का दृढ़ विश्वास होता है।

कृष्ण-नारायण, य़ैछे एकइ स्वरूप।
गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि हय एकरूप॥१५३॥

अनुवाद

"कृष्ण तथा नारायण में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों एकरूप हैं। इसी प्रकार गोपियों तथा लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे भी एकरूप हैं।

गोपीद्वारे लक्ष्मी करे कृष्णसङ्गास्वाद।
ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध॥१५४॥

अनुवाद

"लक्ष्मीजी गोपियों के माध्यम से कृष्ण संग का आस्वाद करती हैं। हमें चाहिए कि भगवान् के स्वरूपों में भेदभाव न बरतें, क्योंकि ऐसा करना अपराध है।

एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप।
एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप॥१५५॥

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। विभिन्न भक्तों की विभिन्न अनुरक्तियों के कारण विभिन्न रूप प्रकट होते हैं। वास्तव में भगवान् एक हैं, लेकिन वे अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए विविध रूपों में प्रकट होते हैं।"

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता में (५.३३) कहा गया है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्त रूपम्।
आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च॥

भगवान् अद्वैत हैं। कृष्ण, राम, नारायण तथा विष्णु रूपों में कोई अन्तर नहीं है। कभी-कभी मूर्ख लोग हमसे हरे-कृष्ण-मन्त्र में आने वाले "राम" के विषय में पूछते हैं कि यह भगवान् रामचन्द्र के लिए है, या बलराम के लिए। यदि कोई भक्त यह कहे कि हरे-कृष्ण-महामन्त्र का राम नाम बलराम के लिए आया है, तो वह मूर्ख व्यक्ति नाराज हो उठेगा, क्योंकि वह राम से भगवान् रामचन्द्र समझता है। वास्तव में बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। हरे-राम-कीर्तन चाहे रामचन्द्र का या बलराम का द्योतक हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु यह सोचना अपराध है कि बलराम राम से या राम बलराम से श्रेष्ठ हैं। नवदीक्षित भक्त इस शास्त्रीय सिद्धान्त को नहीं समझते इसलिए कभी-कभी विकट स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसको श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त सरल ढंग से स्पष्ट करते हैं—*ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध*—ईश्वर के विविध रूपों में अन्तर करना अपराध है। किन्तु यह भी नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् के विविध रूप तथा देवताओं के रूप एक ही हैं।

यह निश्चित रूप से अपराध है। जैसी कि *वैष्णव-तन्त्र* में पुष्टि हुई है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

"जो ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े-बड़े देवताओं को भगवान् नारायण के समान मानता है वह पाषण्डी है" (हरिभक्ति विलास १.११७)। अतः हमें भगवान् के स्वरूपों में अन्तर नहीं करना चाहिए। किन्तु हमें यह भी चाहिए कि भगवान् के विविध रूपों को देवताओं या मनुष्यों के तुल्य न मानें। उदाहरणार्थ, कभी-कभी मूर्ख संन्यासी नारायण की समता दरिद्र नारायण से करते हैं जो सर्वथा अपराध है। भगवान् के शरीर को भौतिक मानना भी अपराध है। प्रामाणिक गुरु से उपदेश प्राप्त किये बिना इन विभिन्न स्वरूपों को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता। *ब्रह्म-संहिता* में पुष्टि हुई है—*वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ*। केवल अध्ययन या वैदिक अध्ययन से भगवान् के विभिन्न रूपों को नहीं समझा जा सकता। स्वरूपसिद्ध भक्त से इसे सीखना होगा। तभी भगवान् के विभिन्न रूपों में अन्तर किया जा सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् के रूपों में अन्तर नहीं है, किन्तु उनके स्वरूपों तथा देवताओं के स्वरूपों में अन्तर अवश्य है।

मणिर्यथा विभागेन नील पीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथाच्युतः॥१५६॥

अनुवाद

"जब वैर्दूर्य मणि अन्य वस्तुओं का स्पर्श करता है, तो यह विभिन्न रंगों में विभक्त होता प्रतीत होता है। फलतः स्वरूप भी भिन्न लगने लगता है। इसी प्रकार भक्त के ध्यान-भाव के अनुसार अच्युत भगवान् एक होते हुए भी विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्री नारद पञ्चरात्र* से लिया गया है।

भट्ट कहे,—काहाँ आमि जीव पामर।
काहाँ तुमि सेइ कृष्ण,—साक्षात् ईश्वर॥१५७॥

अनुवाद

तब व्येंकट भट्ट ने कहा, "मैं सामान्य पतित जीव हूँ लेकिन आप तो साक्षात् भगवान् कृष्ण हैं।

अगाध ईश्वर-लीला किछुइ ना जानि।
तुमि ग्रेइ कह, सेइ सत्य करिऽमानि॥१५८॥

अनुवाद

"भगवान् की लीलाएँ अगाध हैं और मैं उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। आप जो भी कहते हैं मैं उन्हें ही सच माने लेता हूँ।

तात्पर्य

भगवान् विषयक सत्य जानने की यही विधि है। अर्जुन ने *भगवद्गीता* सुनने के बाद यही बात कही थी (१०.१४)—

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हिते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देव न दानवाः॥

"हे कृष्ण! आपने जो कुछ भी मुझसे कहा है, उसे मैं सच माने लेता हूँ। हे प्रभु! आपके व्यक्तित्व को न देवता जानते हैं न असुर।"

यही बात व्येंकट भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु से कहते हैं। केवल अपने तर्क तथा शिक्षा से भगवान् की लीलाओं के सत्य को समझ पाना सम्भव नहीं है। हमें भगवान् से प्रामाणिक सूचना प्राप्त करनी चाहिए, जिस तरह अर्जुन ने कृष्ण से *भगवद्गीता* के प्रवचन करने पर प्राप्त की। हमें *भगवद्गीता* या अन्य वैदिक साहित्य पर विश्वास करना होगा। ये वैदिक ग्रंथ ज्ञान के एकमात्र स्रोत हैं। हम कल्पना से परम सत्य को नहीं जान सकते।

मोरे पूर्ण कृपा कैल लक्ष्मी-नारायण।
ताँर कृपाय पाइनु तोमार चरण-दरशन॥१५९॥

अनुवाद

"मैं लक्ष्मीनारायण की सेवा में लगा हुआ था और उन्हीं की कृपा से मैं आपके चरणकमलों का दर्शन कर सका हूँ।

कृपा करि' कहिले मोरे कृष्णेर महिमा।
ग्राँर रूप-गुनैश्वर्येर केह ना पाय सीमा॥१६०॥

अनुवाद

"अपनी अहैतुकी कृपा से आपने मुझे भगवान् कृष्ण की महिमा बतलाई। भगवान् के ऐश्वर्य, गुण तथा रूप का कोई अन्त नहीं पा सकता।"

एबे से जानिनु कृष्णभक्ति सर्वोपरि।
कृतार्थ करिले, मोरे कहिले कृपा करि' ॥१६१॥

अनुवाद

"अब मैं समझ सका हूँ कि कृष्ण-भक्ति ही सर्वोपरि है। आपने कृपा करके तथ्यों की व्याख्या करके ही मेरे जीवन को कृतार्थ कर दिया।"

एत बलि' भट्ट पड़िला प्रभुर चरणे।
कृपा करि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गने॥१६२॥

अनुवाद

यह कह कर व्येंकट भट्ट महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने अहैतुकी कृपा करते हुए उसका आलिंगन कर लिया।

चतुर्मास्य पूर्ण हैल, भट्ट-आज्ञा लञा।
दक्षिण चलिला प्रभु श्रीरङ्ग देखिया॥१६३॥

अनुवाद

चातुर्मास्य काल व्यतीत हो जाने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए व्येंकट भट्ट से अनुमति माँगी, और श्रीरंग का दर्शन करने के बाद दक्षिण भारत की ओर आगे बढ़ गये।

संगेते चलिला भट्ट, ना ग्राय भवने।
ताँरे विदाय दिला प्रभु अनेक ग्रतने॥१६४॥

अनुवाद

व्येंकट भट्ट घर न लौट कर उनके साथ जाना चाह रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़े ही प्रयत्न से उन्हें विदा किया।

प्रभुर वियोगे भट्ट हैल अचेतन।
एइ रङ्गलीला करे शचीर नन्दन॥१६५॥

अनुवाद

प्रभु के चले जाने पर व्येंकट भट्ट बेहोश होकर गिर पड़े। श्री-रंगक्षेत्र में शचीपुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ ऐसी हैं।

ऋषभ-पर्वते चलि' आइला गौरहरि।
नारायण देखिला ताँहा नति-स्तुतिकरि' ॥१६६॥

अनुवाद

महाप्रभु ने ऋषभ पर्वत पहुँच कर भगवान् नारायण का मन्दिर देखा और नमस्कार किया। साथ ही विविध स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य

दक्षिण कर्णाटक के मादुरा जिले में ऋषभ पर्वत है। मादुरा शहर से बारह मील उत्तर की ओर आनागड़-मलय-पर्वत है जो कुटकाचल जंगल के भीतर है। इसी जंगल में ऋषभदेव ने आत्मदाह कर लिया था। अब यह स्थान पालनि पर्वत कहलाता है।

परमानन्दपुरी ताहाँ रहे चतुर्मास।
शुनि' महाप्रभु गेला पुरी-गोसाञिर पाश॥१६७॥

अनुवाद

परमानन्द पुरी इसी ऋषभ पर्वत में रह रहे थे, और जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना तो वे तुरन्त उन्हें देखने गये।

पुरी-गोसाञिर प्रभु कैल चरण वन्दन।
प्रेमे पुरी गोसाञि ताँरे कैल आलिङ्गन॥१६८॥

अनुवाद

परमानन्द पुरी से मिलने पर महाप्रभु ने उनका पाद-स्पर्श करने के बाद उनका सम्मान किया और परमानन्द पुरी ने भाववश महाप्रभु का आलिंगन किया।

तिनदिन प्रेमे दोँहे कृष्णकथा-रङ्गे।
सेइ विप्र-घरे दोँहे रहे एकसङ्गे॥१६९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु परमानन्द पुरी के साथ उसी ब्राह्मण के घर रुके, जहाँ परमानन्द पुरी रह रहे थे। दोनों ने कृष्ण-कथा की विवेचना में तीन दिन बिताये।

पुरी-गोसाञि बले,—आमि ग्राब पुरुषोत्तमे।
पुरुषोत्तमे देखि' गौड़े ग्राब गंगास्नाने॥१७०॥

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने महाप्रभु को बतलाया कि वे जगन्नाथ पुरी स्थित पुरुषोत्तम का दर्शन करने जा रहे हैं। दर्शन करने के बाद वे गंगास्नान करने बंगाल जायेंगे।

प्रभु कहे,—तुमि पुनः आइस नीलाचले।
आमि सेतुबन्ध हैते आसिब अल्प-काले॥१७१॥

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उनसे कहा, "कृपा करके जगन्नाथ पुरी फिर आयें, क्योंकि मैं शीघ्र ही रामेश्वर (सेतुबन्ध) से लौट आऊँगा।"

तोमार निकटे रहि,—हेन वाञ्छा हय।
नीलाचले आसिबे मोरे हञा सदय।"॥१७२॥

अनुवाद

"मेरी इच्छा है कि आपके साथ रहूँ अतएव यदि आप जगन्नाथ पुरी वापस आ सकें, तो यह मेरे ऊपर महान कृपा होगी।"

एत बलि ताँर ठाञि एइ आज्ञा लञा।
दक्षिणे चलिला प्रभु हरषित हञा॥१७३॥

अनुवाद

परमानन्द पुरी से इस तरह बातें करके महाप्रभु ने उनसे प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी और दक्षिण भारत के लिए रवाना हो गये। महाप्रभु

अत्यन्त हर्षित थे।

परमानन्द पुरी तबे चलिला नीलाचले।
महाप्रभु चलि चलि आइला श्रीशैले।।१७४।।

अनुवाद

इस तरह परमानन्द पुरी जगन्नाथ पुरी चले गये, और श्री चैतन्य महाप्रभु श्री शैल की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है "कृष्णदास कविराज किस श्री शैल का संकेत कर रहे हैं, यह स्पष्ट नहीं है। इस क्षेत्र में मल्लिकार्जुन का कोई मन्दिर नहीं है, क्योंकि धारवाड़ जिले में स्थित श्री शैल यहाँ पर नहीं हो सकता। वह श्री शैल बेलग्राम के दक्षिण है और मल्लिकार्जुन का शिव-मन्दिर यहीं पर स्थित है (इस अध्याया का श्लोक १५ देखें)। कहा जाता है कि इस पर्वत पर शिवजी देवी के साथ रहते थे। यही नहीं, ब्रह्माजी भी सारे देवताओं के साथ यहाँ रहते थे।"

शिव-दुर्गा रहे ताहाँ ब्राह्मणेर वेशे।
महाप्रभु देखि' दोंहार हइल उल्लासे।।१७५।।

अनुवाद

इसी श्री शैल पर शिवजी तथा उनकी पत्नी दुर्गा ब्राह्मण-वेश में रहते थे, और जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा तो अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तिन दिन भिक्षा दिल करि' निमन्त्रण।
निभृते वसि' गुप्तवार्ता कहे दुइ जन।।१७६।।

अनुवाद

ब्राह्मण वेशधारी शिवजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा दी, और एकान्त में तीन दिन बिताने का आमन्त्रण दिया। दोनों वहाँ पर साथ बैठ कर गुप्त बातें करते रहे।

तौर सङ्गे महाप्रभु करि इष्टगोष्ठी।
तौर आज्ञा लञा आइला पुरी कामकोष्ठी॥१७७॥

अनुवाद

शिवजी से बातें करने के बाद महाप्रभु ने उनसे विदा ली और कामकेष्ठी-पुरी गये।

दक्षिण-मथुरा आइला कामकोष्ठी हैते।
ताहाँ देखा हैल एक ब्राह्मण-सहिते॥१७८॥

अनुवाद

जब महाप्रभु कामकोष्ठी से दक्षिण-मथुरा पहुँचे तो वहाँ उनकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई।

तात्पर्य

यह दक्षिण मथुरा, जिसे आजकल मादुरा कहा जाता है, भागाइ नदी के किनारे स्थित है। यह तीर्थस्थान विशेषतया शिव-भक्तों के लिए है, इसीलिए यह शैवक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में पहाड़ तथा जंगल हैं। इसमें दो शिव-मन्दिर भी हैं—एक है रामेश्वर का और दूसरा सुन्दरेश्वर का। एक देवी का—मीनाक्षी देवी का—मन्दिर है जो स्थापत्य कला की दृष्टि से महान् है। इसे पांड्यवंशी राजाओं ने बनवाया था और मुसलमानों के आक्रमण से इसे तथा सुन्दरेश्वर मन्दिर को भारी क्षति पहुँची। १३७२ ई. में मादुरा के सिंहासन पर कम्पन्न उदैयर नामक राजा राज्य करता था। बहुत पहले कुलशेखर सम्राट इस क्षेत्र में राज्य करता था जिसने ब्राह्मणों की एक बस्ती बसाई थी। कुलशेखर की ग्याहरवीं पीढ़ी का राजा अनन्तगुण पांड्य के नाम से विख्यात हुआ।

सेइ विप्र महाप्रभुके कैल निमन्त्रण।
रामभक्त सेइ विप्र—विरक्त महाजन॥१७९॥

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया। यह ब्राह्मण महान् भक्त था और श्री रामचन्द्र भगवान् का विशेषज्ञ था। वह भौतिक कार्यकलापों से विरक्त था।

कृतमालाय स्नान करि' आइला ताँर घरे।
भिक्षा कि दिबेन विप्र,—पाक नाहि करे॥१८०॥

अनुवाद

महाप्रभु कृतमाला नदी में स्नान करके उस ब्राह्मण के घर गये, किन्तु भोजन करने के पूर्व उन्होंने देखा कि भोजन तैयार नहीं था—अभी ब्राह्मण ने उसे पकाया नहीं था।

महाप्रभु कहे ताँरे,—शुन महाशय।
मध्याह्न हैल, केने पाक नाहि हय॥१८१॥

अनुवाद

यह देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "महाशय! मुझे बतायें कि आपने भोजन क्यों नहीं पकाया है। अब तो दोपहर हो चुकी है।"

विप्र कहे,—प्रभु, मोर अरण्ये वसति।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति॥१८२॥

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया "हे प्रभु! हम जंगल में रहते हैं। इस समय हमें भोजन की सारी सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी।"

वन्य शाक-फल-मूल आनिबे लक्ष्मण।
तबे सीता करिबेन पाक-प्रयोजन॥१८३॥

अनुवाद

"जब लक्ष्मण जंगल से तरकारियाँ, फल तथा कन्दमूल लाते हैं तो सीताजी भोजन पकाने का प्रबन्ध करेंगी।"

ताँर उपासना शुनि' प्रभु तुष्ट हैला।
आस्ते-व्यस्ते सेइ विप्र रन्धन करिला॥१८४॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण की पूजा-विधि सुन कर अत्यन्त प्रसन्न थे। अन्त में ब्राह्मण ने तुरतफुरत भोजन पकाने की व्यवस्था की।

प्रभु भिक्षा कैल दिनेर तृतीय प्रहरे।
निर्विण्ण विप्र उपवास करे॥१८५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीन बजे के लगभग दोपहर का भोजन किया। किन्तु दुखी होने के कारण वह ब्राह्मण उपवासा रह गया।

प्रभु कहे—विप्र काँहे कर उपवास।
केने एत दुःख, केने करह हुताश॥१८६॥

अनुवाद

ब्राह्मण को उपवासा देख कर महाप्रभु ने उससे पूछा, "आप उपवास क्यों कर रहे हैं? आप दुखी क्यों हैं? आप इतने चिन्तित क्यों हैं?"

विप्र कहे,—जीवने मोर नाहि प्रयोजन।
अग्नि-जले प्रवेशिया छाड़िब जीवन॥१८७॥

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरा जीना व्यर्थ है। मैं या तो अग्नि में या जल में प्रवेश करके अपने प्राण त्याग दूँगा।"

जगन्माता महालक्ष्मी सीता-ठाकुराणी।
राक्षसे स्पर्शिल ताँरे,—इहा काने शुनि॥१८८॥

अनुवाद

"महाशय! सीताजी जगज्जननी और महालक्ष्मी हैं। उनका स्पर्श रावण ने किया है और मैं यह समाचार सुन कर अत्यन्त क्षुब्ध हूँ।

ए शरीर धरिबारे कभु ना युयाय।
एइ दुःखे जले देह, प्राण नाहि याय॥१८९॥

अनुवाद

"इस दुख के कारण अब मैं जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि मेरा शरीर जल रहा है, किन्तु प्राण उसे छोड़ नहीं रहे।

प्रभु कहे,—ए भावना ना करिह आर।
पण्डित हञा केने ना करह विचार॥१९०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप अब इस तरह न सोचें। आप तो पंडित हैं। आप क्यों नहीं विचार करते?"

ईश्वर-प्रेयसी सीता—चिदानन्दमूर्ति।
प्राकृत-इन्द्रियेर ताँरे देखिते नाहि शक्ति॥१९१॥

अनुवाद

महाप्रभु कहते रहे, "भगवान् रामचन्द्र की प्रियतमा सीतादेवी का एक आनन्दमय आध्यात्मिक स्वरूप है। उसे कोई भी व्यक्ति अपनी भौतिक आँखों से नहीं देख सकता, क्योंकि किसी भी भौतिक प्राणी में वह शक्ति नहीं।

स्पर्शिबार कार्य आछुक, ना पाय दर्शन।
सीतार आकृति-माया हरिल रावण॥१९२॥

अनुवाद

"माता सीता को स्पर्श करने की बात दूर रही, भौतिक इन्द्रिय वाला व्यक्ति उन्हें देख तक नहीं सकता। रावण ने तो उनके भौतिक मायास्वरूप का ही हरण किया था।

रावण आसिते सीता अन्तर्धान कैल।
रावणेर आगे माया-सीता पाठाइल॥१९३॥

अनुवाद

"ज्योंही रावण सीताजी के सम्मुख आया, वे विलीन हो गईं। उन्होंने रावण को धोखा देने के लिए ही अपना मायारूप भेजा।

अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत-गोचर।
वेद-पुराणेते एइ कहे निरन्तर।१९४॥

अनुवाद

"आध्यात्मिक वस्तु कभी-भी भौतिक अनुभूति के सीमा-क्षेत्र में नहीं रहती। यही वेदों और पुराणों का निर्णय है।

तात्पर्य

जैसा कि *कठ उपनिषद* में (२.३.९,१२) कहा गया है—

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरामृतास्ते भवन्ति।
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

"आत्मा न तो भौतिक नेत्रों, न शब्दों, न ही मन की सीमा के अन्तर्गत है।"

इसी प्रकार से *श्रीमद्भागवत* में (१०.८४.१३) कहा गया है—

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

आध्यात्मिक वस्तुओं को बुद्धिहीन व्यक्ति नहीं देख सकते, क्योंकि आत्मा को देखने के लिए उनके पास न तो आँखें हैं , न मन। फलतः वे सोचते हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। किन्तु वेदों के अनुयायी *श्रीमद्भागवत* तथा *कठ उपनिषद* में प्राप्य वैदिक वाक्यों से आदेश प्राप्त करते हैं।

विश्वास करह तुमि आमार वचने।
पुनरपि कु-भावना ना करिह मने॥१९५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को आश्वस्त किया, "मेरे वचनों में विश्वास रखें, और अपने मन को इस कुभावना से बोझिल मत करें।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान की यही विधि है। *अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्*। हमें तर्क-वितर्क द्वारा अपनी भौतिक अनुभूति से परे समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। *महाजनो येन गतः स पन्थाः*—हमें परम्परा से चले आ रहे महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए। यदि हम

प्रामाणिक आचार्य के पास जायें और उनके वचनों में श्रद्धा रखें तो आध्यात्मिक साक्षात्कार सरल हो सकेगा।

प्रभुर वचने विप्रेर हइल विश्वास।
भोजन करिल, हैल जीवनेर आश॥१९६॥

अनुवाद

यद्यपि वह ब्राह्मण उपवास कर रहा था, किन्तु उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दों पर विश्वास था, अतएव उसने भोजन ग्रहण किया और इस तरह उसकी जान बच गई।

ताँरे आश्वासिया प्रभु करिला गमन।
कृतमालाय स्नान करि आइला दुर्वशन॥१९७॥

अनुवाद

ब्राह्मण को आश्वासन देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत में और आगे बढ़ते गये, और अन्त में दुर्वशन पहुँचे, जहाँ उन्होंने कृतमाला नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

आजकल यह कृतमाला नदी भागाइ नदी कहलाती है। इसकी तीन सहायक नदियाँ हैं—सुरुली, वराह नदी तथा बट्टिलागुण्डु। करभाजन ऋषि ने *श्रीमद्भागवत* में (११.५.३९) कृतमाला नदी का उल्लेख किया है।

दुर्वशने रघुनाथे कैल दरशन।
महेन्द्र-शैले परशुरामेर कैल वन्दन॥१९८॥

अनुवाद

दुर्वशन में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। इसी तरह महेन्द्र-शैल पर भगवान् परशुराम के दर्शन किये।

तात्पर्य

दुर्वशन या दर्भशयन में, जो रामनाद से सात मील पूर्व स्थित है, भगवान् रामचन्द्र का एक मन्दिर हैं। मंदिर से सागर दिखाई देता है महेन्द्र-शैल तिनेभेलि के निकट है और जहाँ यह पर्वत समाप्त होता है वहाँ त्रिचिनगुड़ि शहर

है। महेन्द्र-शैल के पश्चिम में त्रिबाँकुर का प्रदेश है। *रामायण* में महेन्द्र-शैल का उल्लेख हुआ है।

सेतुबन्धे आसि' कैल धनुस्तीर्थे स्नान।
रामेश्वर देखि' ताहाँ करिल विश्राम॥१९९॥

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु सेतुबन्ध (रामेश्वर) गये, जहाँ उन्होंने धनुस्तीर्थ नामक स्थान पर स्नान किया। वहाँ से वे रामेश्वर मन्दिर देखने गये और तब विश्राम किया।

तात्पर्य

मण्डपम् तथा पम्बम् नामक द्वीपों तक समुद्र से होकर जाने वाला मार्ग कहीं रेतीला तथा कहीं जल से युक्त है। पम्बम् द्वीप ग्यारह मील लम्बा तथा छः मील चौड़ा है। पम्बम् बन्दरगाह से चार मील उत्तर दिशा में रामेश्वर का मन्दिर है। कहा जाता है—*देवीपत्तनमारभ्य गच्छेयुः सेतुबन्धनम्*—दुर्गा देवी का मन्दिर देखने के बाद ही रामेश्वर मन्दिर में जाना चाहिए। इस क्षेत्र में चौबीस भिन्न-भिन्न तीर्थस्थान हैं, जिनमें से धनुस्तीर्थ एक है और यह रामेश्वरम् से २१ मील दक्षिण पूर्व स्थित है। यह दक्षिण भारतीय रेल के अन्तिम स्टेशन रामनाद के निकट है। कहा जाता है कि रावण के छोटे भाई विभीषण के कहने पर भगवान् रामचन्द्र ने अयोध्या लौटते समय इस स्थान पर एक छोटे से पुल को नष्ट किया था। जो कोई धनुस्तीर्थ जाता है, वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जो यहाँ स्नान करता है, वह *अग्निष्टोम* नामक यज्ञ करने के सारे फल प्राप्त करता है।

सेतुबन्ध पम्बम् द्वीप में ही स्थित है। यहाँ पर शिवजी का एक मन्दिर है, जो रामेश्वर कहलाता है। इससे सूचित होता है कि शिवजी ऐसे महापुरुष हैं, जिनके आराध्य भगवान् राम हैं। इस तरह रामेश्वर मन्दिर में प्राप्य शिवजी भगवान् रामचन्द्र के महान् भक्त हैं।

विप्र-सभाय शुने ताँहा कूर्म-पुराण।
तार मध्ये आइला पतिव्रता-उपाख्यान॥२००॥

अनुवाद

वहाँ पर महाप्रभु ने ब्राह्मणों के बीच कूर्म-पुराण सुना, जिसमें पतिव्रता

स्त्री की कथा का उल्लेख है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि *कूर्म-पुराण* में केवल दो खण्ड हैं—पूर्व खण्ड तथा उत्तर खण्ड। कभी-कभी कहा जाता है कि *कूर्म-पुराण* में ६००० श्लोक हैं, किन्तु मूलत: इसमें १७००० श्लोक थे। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार कूर्म-पुराण में १७ हजार श्लोक हैं और यह अठारह पुराणों में से एक है। कूर्म-पुराण का स्थान पन्द्रहवाँ है।

पतिव्रता-शिरोमणि जनक-नन्दिनी।
जगतेर माता सीता—रामेर गृहिणी॥२०१॥

अनुवाद

श्रीमती सीतादेवी तीनों लोकों की माता तथा भगवान् रामचन्द्र की पत्नी हैं। वे पतिव्रता स्त्रियों में सर्वोच्च हैं और राजा जनक की पुत्री हैं।

रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण।
रावण हैते अग्नि कैल सीताके आवरण॥२०२॥

अनुवाद

जब रावण माता सीता का हरण करने आया और उन्हें देखा तो उन्होंने अग्नि-देवता की शरण ग्रहण कर ली। अग्निदेव ने माता सीता के शरीर को ढक लिया और इस तरह रावण से उनकी रक्षा हो सकी।

'माया सीता' रावण निल, शुनिला आख्याने।
शुनि' महाप्रभु हैल आनन्दित मने॥२०३॥

अनुवाद

कूर्म-पुराण में यह सुन कर कि किस तरह रावण ने माता सीता के नकली रूप का हरण किया, श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित हुए।

सीता लञा राखिलेन पार्वतीर स्थाने।
'माया सीता' दिया अग्नि वञ्चिला रावणे॥२०४॥

अनुवाद

अग्नि-देव असली सीता को देवी दुर्गा, अर्थात् पार्वती, के स्थान पर

ले आये और रावण को सीता का *माया-रूप* दे दिया। इस तरह रावण को ठगा जा सका।

रघुनाथ आसि' य़बे रावणे मारिल।
अग्नि-परीक्षा दिते य़बे सीतारे आनिल॥२०५॥

अनुवाद

जब रामचन्द्रजी ने रावण को मार डाला तो उसके बाद सीतादेवी अग्नि समक्ष लायी गईं।

तबे मायासीता अग्नि करि अन्तर्धान।
सत्य-सीता आनि' दिल राम-विद्यमान॥२०६॥

अनुवाद

जब रामचन्द्रजी द्वारा अग्नि के समक्ष माया सीता लाई गई तो अग्नि ने इस माया-रूप को गायब कर दिया और भगवान् रामचन्द्र को असली सीता लाकर प्रदान किया।

शुनिञा प्रभुर आनन्दित हैल मन।
रामदास-विप्रेर कथा हइल स्मरण॥२०७॥

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहानी सुनी, तो अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें रामदास विप्र के शब्द याद हो उठे।

ए-सब सिद्धान्त शुनि' प्रभु आनन्द हैल।
ब्राह्मणेर स्थाने मागि' सेइ पत्र निल॥२०८॥

अनुवाद

जब चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म-पुराण से इन निश्चयात्मक सिद्धान्तों को सुना, तो उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्राह्मण की अनुमति से इन पन्नों को अपने कब्जे में ले लिया। इस तरह महाप्रभु को कूर्म-पुराण की पुरानी पाण्डुलिपि प्राप्त हो गई।

नूतन पत्र लेखाञा प्रभुके देओयाइल।
प्रतीत लागि' पुरातन पत्र मागि' निल॥२०९॥

अनुवाद

चूँकि कूर्म-पुराण अत्यन्त प्राचीन है, अतएव उसकी पाण्डुलिपि भी अत्यन्त प्राचीन थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष साक्षी के लिए मूल पन्ने रख लिये और नये पन्नों पर मूल की प्रतिलिपि करके पुराण को पूरा कर दिया गया।

पत्र लञा पुनः दक्षिण-मथुरा आइला।
रामदास विप्रे सेइ पत्र आनि दिला॥२१०॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु लौट कर दक्षिण मथुरा (मादुरा) आये और कूर्म-पुराण की मूल पाण्डुलिपि रामदास विप्र को लाकर दे दी।

सीतयाराधितो वह्निश्छायासीतामजीजनत्।
ताँ जहार दशग्रीवः सीता वह्निपुरं गता॥२११॥
परीक्षा-समये वह्निं छाया-सीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय तत्पुरस्तादनीनयत्॥२१२॥

अनुवाद

जब सीताजी ने अग्निदेव का आवाहन किया तो वे सीता का मायारूप ले आये, और दस सिरों वाले रावण ने इस माया-सीता का अपहरण कर लिया। तब मूल सीता अग्निदेव के घर चली गईं। जब भगवान् रामचन्द्र ने सीता के शरीर की परीक्षा ली तो वह माया-सीता थी जो अग्नि में प्रवेश कर गई। उसी समय अग्निदेव ने असली सीता को अपने घर से लाकर भगवान् रामचन्द्र को अर्पित कर दिया।

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक *कूर्म-पुराण* के हैं।

पत्र पाञा विप्रेर हैल आनन्दित मन।
प्रभुर चरणे धरि' करये क्रन्दन॥२१३॥

अनुवाद

रामदास विप्र कूर्म पुराण के मूल पन्ने पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह तुरन्त महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर कर रुदन करने लगा।

विप्र कहे,—तुमि साक्षात् रघुनन्दन।
संन्यासीर वेषे मोरे दिला दरशन॥२१४॥

अनुवाद

पाण्डुलिपि पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ब्राह्मण ने कहा, "आप साक्षात् भगवान् रामचन्द्र हैं, और संन्यासी के वेश में मुझे दर्शन देने आये हैं।"

महा-दुःख हइते मोरे करिला निस्तार।
आजि मोर घरे भिक्षा कर अङ्गीकार॥२१५॥

अनुवाद

"मान्यवर! आपने मुझे अत्यन्त दुखद परिस्थिति से उबारा है। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे घर भोजन करें। कृपया मेरा यह निमन्त्रण स्वीकार करें।

मनोदुःखे भाल भिक्षा ना दिल सेइ दिने।
मोर भाग्ये पुनरपि पाइलुँ दरशने॥२१६॥

अनुवाद

"मानसिक क्षोभ के कारण उस दिन मैं आपको अच्छा भोजन नहीं करा सका। अब सौभाग्यवश आप पुनः मेरे घर पधारे हैं।"

एत बलि' सेइ विप्र सुखे पाक कैल।
उत्तम प्रकारे प्रभुके भिक्षा कराइल॥२१७॥

अनुवाद

यह कह कर उस ब्राह्मण ने सुखपूर्वक भोजन बनाया और महाप्रभु को उत्तम कोटि का भोजन कराया।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि' ताँरे कृपा करि'।
पाण्ड्यदेशे ताम्रपर्णी गेला गौरहरि॥२१८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह रात उस ब्राह्मण के घर बिताई। उस पर कृपा करने के बाद महाप्रभु पाण्ड्य देश में ताम्रपर्णी की ओर रवाना

हुए।

तात्पर्य

पाण्ड्य देश दक्षिण भारत में है और केरल के नाम से प्रसिद्ध है। इस सारे प्रदेश में पाण्ड्य पदवीधारी अनेक राजा हुए, जिन्होंने मादुरा तथा रामेश्वर नामक स्थानों पर राज्य किया। *रामायण* में ताम्रपर्णी का नाम आया है। यह पुरुणई के नाम से प्रसिद्ध है, और तिनेभेलि नदी के तट पर स्थित है। यह नदी बंगाल की खाड़ी में गिरती है। *श्रीमद्भागवत* में भी (११.५.३९) ताम्रपर्णी का उल्लेख है।

ताम्रपर्णी स्नान करि' ताम्रपर्णीतीरे।
नय त्रिपति देखि' बुले कुतुहले॥२१९॥

अनुवाद

ताम्रपर्णी नदी के तट पर नयत्रिपति नामक स्थान में भगवान् विष्णु का भी एक मन्दिर था। महाप्रभु ने नदी में स्नान करने के बाद अत्यन्त उत्सुकता से अर्चाविग्रह देखा और वहाँ विचरण किया।

तात्पर्य

यह नयत्रिपति आलोवर तिरुनगरी भी कहलाता है। यह तिनेभेलि से लगभग १७ मील दक्षिण पूर्व एक कस्बा है। यहाँ पर श्रीपति अर्थात् विष्णु के नौ मन्दिर हैं। वार्षिक उत्सव के समय इन मन्दिरों के अर्चाविग्रह कस्बे में एकत्र होते हैं।

चियड़तला तीर्थे देखि' श्रीराम-लक्ष्मण।
तिलकाञ्ची आसि' कैल शिव दरशन॥२२०॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु चियड़तला नामक तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने रामचन्द्र तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों के अर्चाविग्रह देखे। तब वे तिलकाञ्ची गये जहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चियड़तला को छेरतला कहा जाता है। यह कैल शहर के निकट है। यहाँ पर श्री रामचन्द्र तथा उनके भाई लक्ष्मण को समर्पित एक मन्दिर

है। तिलकाञ्ची तिनेभेलि शहर से लगभग तीस मील उत्तर पूर्व की ओर है।

गजेन्द्रमोक्षण-तीर्थे देखि विष्णुमूर्ति।
पानागडि-तीर्थे आसि' देखिल सीतापति।।२२१।।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु गजेन्द्रमोक्षण तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने विष्णु मन्दिर देखा। फिर वे पानागड़ि नाम पवित्र स्थल पर आये, जहाँ उन्होंने रामचन्द्र तथा सीता के अर्चाविग्रह देखे।

तात्पर्य

कभी-कभी भ्रमवश लोग गजेन्द्रमोक्षण मन्दिर को शिव-मन्दिर समझ बैठते हैं। यह कैवेर शहर से लगभग दो मील दक्षिण है। वस्तुतः इसमें जो अर्चाविग्रह है, वह शिव का नहीं, अपितु विष्णु का है। पानागड़ि तिनेभेलि से लगभग तीस मील दक्षिण है। पहले यहाँ के मन्दिर में श्री रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था, किन्तु बाद में शैवों ने रामचन्द्र के स्थान में शिवजी का अर्चाविग्रह रख दिया, जिसका नाम रामेश्वर या रामलिंग शिव है।

चाम्तापुरे आसि' देखि' श्रीराम-लक्ष्मण।
श्रीवैकुण्ठे आसि' कैल विष्णु दरशन।।२२२।।

अनुवाद

बाद में महाप्रभु चाम्तापुर गये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के अर्चाविग्रह देखे। तत्पश्चात् वे श्री वैकुण्ठ गये, और वहाँ भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चाम्तापुर को चेंगानुर भी कहा जाता है। यह त्रिबांकुर रियासत में स्थित है। यहाँ भगवान् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण का एक मन्दिर है। श्री वैकुण्ठ ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित है और आलोयर तिरुनगरी से लगभग ४ मील उत्तर तथा तिनेभेलि से १६ मील दक्षिण पूर्व है।

मलय-पर्वते कैल अगस्त्य-वन्दन।
कन्याकुमारी ताँहाँ कैल दरशन।।२२३।।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु मलय पर्वत गये और अगस्त्य मुनि की वन्दना की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्याकुमारी नामक स्थान का (सम्प्रति केप कमोरिन) का दर्शन किया।

तात्पर्य

दक्षिण भारत में वह पर्वतों की माला, जो केरल से प्रारम्भ होकर कन्याकुमारी तक फैली हुई है, मलय पर्वत कहलाती है। अगस्त्य के सम्बन्ध में चार प्रकार के मत हैं (१) तञ्जोर जिले में अगस्त्यमपल्ली नामक गाँव में अगस्त्य मुनि का मन्दिर है (२) शिवगिरि नामक पर्वत पर स्कन्द का मन्दिर है जिसकी स्थापना अगस्त्य मुनि द्वारा की गई बताई जाती है (३) कुछ लोग कहते हैं कि कन्याकुमारी के पास पठिया नामक पर्वत है, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे (४) अगस्त्यमलय नामक एक अन्य स्थान भी है, जो ताम्रपर्णी नदी के दोनों किनारे में फैला हुआ एक पर्वत है। केप कमोरिन कन्याकुमारी कहलाता है।

आम्लितलाय देखि' श्रीराम गौरहरि।
मल्लार-देशेते आइला यथा भट्टथारि॥२२४॥

अनुवाद

कन्याकुमारी देख चुकने के बाद महाप्रभु आम्लितल आये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। तत्पश्चात् वे मल्लार देश गये, जहाँ भट्टथारी जाति के लोग रहते थे।

तात्पर्य

मल्लार देश के उत्तर में दक्षिण कानाडा है। इसके पूर्व में कुर्ग तथा महीशूर है। कोचिन के दक्षिण तथा पश्चिम में अरब सागर है। भट्टथारि लोग घूमन्तू जाति के हैं। वे इच्छानुसार डेरा डाल कर रहते हैं। उनके रहने का कोई स्थायी स्थान नहीं है। वे संन्यासियों का तो वेश धारण करते हैं, किन्तु उनका असली काम चोरी और ठगी है। वे दूसरों से अपने डेरों में स्त्रियाँ लाने को कहते हैं, उन्हें ठगते हैं और अपनी जाति में रख लेते हैं। इस तरह उनकी जनसंख्या बढ़ती है। बंगाल में भी ऐसी ही एक जाति है। वस्तुतः विश्व-भर में घूमन्तू जातियाँ हैं जिनका कार्य फुसलाना, ठगना और

अबोध स्त्रियों को चुराना है।

तमाल-कार्तिक देखि आइल वेतापनि।
रघुनाथ देखि' ताँहा वञ्चिला रजनी॥२२५॥

अनुवाद

मल्लार देश घूमने के बाद महाप्रभु तमालकार्तिक गये, और वहाँ से वेतापनि गये। वहाँ उन्होंने रघुनाथ अर्थात् रामचन्द्र का मन्दिर देखा और वहीं रात बिताई।

तात्पर्य

तमालकार्तिक तिनेभेलि से ४४ मील दक्षिण तथा अरमवल्ली पर्वत से २ मील दक्षिण की ओर स्थित है। यह तोबल जिले में स्थित है। वहाँ सुब्रह्मण्य अर्थात् शिवपुत्र कार्तिक का मन्दिर है। वेतापनि या वातापाणी त्रिबांकुर रियासत में कैल के उत्तर में है। यह भूतपण्डि नाम से भी विख्यात है और तोबल जिले के अन्तर्गत है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर पहले भगवान् रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था। बाद में इसके स्थान पर शिवजी का अर्चाविग्रह स्थापित कर दिया गया, जो रामेश्वर या भूतनाथ के नाम से विख्यात है।

गोसाञिर सङ्गे रहे कृष्णदास ब्राह्मण।
भट्टथारि-सह ताहाँ हैल दरशन॥२२६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनका नौकर था, जिसका नाम कृष्णदास था। वह ब्राह्मण था, किन्तु वहाँ उसकी भेंट भट्टथारियों से हो गई।

स्त्रीधन देखाञा ताँर लोभ जन्माइल।
आर्य सरल विप्रेर बुद्धिनाश कैल॥२२७॥

अनुवाद

भट्टथारियों ने ब्राह्मण कृष्णदास को लोभ में फँसा लिया क्योंकि वह सरल एवं भला आदमी था। उन्होंने अपनी बुरी संगति से उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी।

प्राते उठि' आइला विप्र भट्टथारि-घरे।
ताहार उद्देशे प्रभु आइला सत्वरे।।२२८।।

अनुवाद

लोभी कृष्णदास प्रात:काल उठते ही उनके घर गया और महाप्रभु भी उसे ढूँढने के लिए तेजी से वहाँ गये।

आसिया कहेन सब भट्टथारिगणे।
आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे।।२२९।।

अनुवाद

भट्टथारियों के पास आकर महाप्रभु ने उनसे पूछा, "तुम लोग मेरे ब्राह्मण सहायक को अपने यहाँ क्यों रखे हुए हो?"

आमिह संन्यासी देख, तुमिह संन्यासी।
मोर दु:ख देह,—तोमार 'न्याय' नाहि वासि' ।।२३०।।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ और तुम लोग भी हो। तुम लोग जान-बूझकर मुझे कष्ट दे रहे हो। मुझे इसमें कोई तुक नहीं दिखता।"

शुन' सब भट्टथारि उठे अस्त्र लञा।
मारिबारे आइल सबे चारिदिके धाञा।।२३१।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभ की बात सुन कर सारे भट्टाथारि अपने-अपने हाथों में हथियार लिये महाप्रभु को मारने के लिए दौड़े आये।

तार अस्त्र तार अङ्गे पडे हात हैते।
खण्ड खण्ड हैल भट्टथारि पलाय चारि भिते।।२३२।।

अनुवाद

किन्तु उनके हथियार उनके हाथों से छूट कर गिर पड़े, और उन्हीं के शरीरों पर जा लगे। इस तरह जब कुछ भट्टथारि कट कर टुकड़े-टुकड़े हो गये, तो अन्य लोग चारों दिशाओं में भाग गये।

भट्टथारि-घरे महा उठिल क्रन्दन।
केशे धरि' विप्रे लञा करिल गमन॥२३३॥

अनुवाद

जब भट्टथारि जाति में चीख-चीत्कार मची थी, तो श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णदास के बाल पकड़ कर उसे बाहर ले आये।

सेइ दिन चलि' आइला पयस्विनी-तीरे।
स्नान करि' गेला आदिकेशव-मन्दिरे॥२३४॥

अनुवाद

उसी रात श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनका सहायक कृष्णदास पयस्विनी नदी के तट पर आये। उन्होंने स्नान किया और फिर आदि-केशव का मन्दिर देखने गये।

केशव देखिया प्रेमे आविष्ट हैला।
नति, स्तुति, नृत्य, गीत, बहुत करिला॥२३५॥

अनुवाद

आदि-केशव मन्दिर को देखते ही महाप्रभु भावाविष्ट हो गये। वे विविध नमस्कार तथा स्तुतियाँ करके कीर्तन करने और नाचने लगे।

प्रेम देखि' लोके हैल महा-चमत्कार।
सर्वलोक कैल प्रभुर परम सत्कार॥२३६॥

अनुवाद

वहाँ के सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु की भावमयी लीलाओं को देख कर अत्यन्त आश्चर्यचकित थे। उन्होंने महाप्रभु की ठीक से पहुनई की।

महाभक्तगणसह ताँहा गोष्ठी कैल।
'ब्रह्मसंहिताध्याय'—पूँथि ताहाँ पाइल॥२३७॥

अनुवाद

आदि-केशव के मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भक्तों के बीच आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की। वहाँ रहते हुए उन्हें ब्रह्म-संहिता का एक अध्याय मिला।

पूँथि पाञा प्रभुर हैल आनन्द अपार।
कम्पाश्रु-स्वेद-स्तम्भ-पुलक विकार।२३८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस शास्त्र का एक अध्याय प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न थे, और उनके शरीर में कम्प, अश्रु, पसीना, समाधि तथा प्रसन्नता के विकार प्रकट हो आये।

सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 'ब्रह्मसंहिता'र सम।
गोविन्दमहिमा ज्ञानेर परम कारण॥२३९॥
अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त अपार।
सकल-वैष्णव-शास्त्र-मध्ये अति सार॥२४०॥

अनुवाद

जहाँ तक आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, ब्रह्म-संहिता के समान कोई अन्य शास्त्र नहीं है। यह शास्त्र भगवान् गोविन्द की महिमा का परम प्रकाश है, क्योंकि यह उनके विषय में सर्वोच्च ज्ञान प्रकट करता है। चूँकि सारे सिद्धान्त ब्रह्म-संहिता में संक्षेप में दिये हैं, अतएव यह सारे वैष्णव ग्रंथों का सार है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता अत्यन्त महत्वपूर्ण शास्त्र है। महाप्रभु को आदि-केशव मन्दिर से इसका पाँचवा अध्याय प्राप्त हुआ था। पाँचवे अध्याय में *अचिन्त्य भेदाभेद-तत्व* का दार्शनिक सिद्धान्त प्रस्तुत हुआ है। इसी अध्याय में भक्ति की विधियाँ, अठारह अक्षरी वैदिक स्तुति, आत्मा विषयक वार्ता, परमात्मा तथा सकाम कर्म, काम-गायत्री, काम-बीज तथा आदि महाविष्णु, गोलोक-वृन्दावन का वर्णन आदि भी दिये हुए हैं। *ब्रह्म-संहिता* में गणेश, गर्भोदकशायी विष्णु, गायत्री-मन्त्र की उत्पत्ति, गोविन्द का स्वरूप तथा उनकी दिव्य स्थिति तथा धाम, जीव, सर्वोच्च लक्ष्य, देवी दुर्गा, तपस्या का अर्थ, पाँच स्थूल तत्त्व, भगवत्प्रेम, निर्विशेष ब्रह्म, ब्रह्मा की दीक्षा तथा भगवान् का दर्शन करने के लिए दिव्य प्रेम-दृष्टि की भी व्याख्या हुई है। मन, योगनिद्रा, लक्ष्मी, रागानुगा भक्ति, रामचन्द्रादि अवतार, अर्चाविग्रह, बद्धजीव तथा उनके कर्त्तव्य, विष्णु विषयक तत्त्व, स्तुतियाँ, वैदिक स्तुतियाँ, शिवजी, वैदिक ग्रंथ, साकारवाद

तथा निर्विशेषवाद, अच्छा आचरण तथा अन्य अनेक विषयों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त सूर्य तथा भगवान् के विश्वरूपों का भी वर्णन मिलता है। ये सारे विषय *ब्रह्म-संहिता* में संक्षेप में दिये हुए हैं।

बहु यत्ने सेइ पुँथि निल लेखाइया।
'अनन्त-पद्मनाभ' आइला हरषित हञा॥२४१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यत्नपूर्वक ब्रह्म-संहिता उतारी और बाद में वे हर्षित होकर अनन्त-पद्मनाभ नामक स्थान गये।

तात्पर्य

पद्मनाभ के लिए मध्यलीला प्रथम अध्याय श्लोक १५ देखना चाहिए।

दिन-दुइ पद्मनाभेर कैल दरशन।
आनन्दे देखिते आइला श्रीजनार्दन॥२४२॥

अनुवाद

महाप्रभु अनन्त-पद्मनाभ में दो-तीन दिन रहे, और उन्होंने वहाँ का मन्दिर देखा। फिर हर्षपूर्वक वे श्री जनार्दन मन्दिर देखने गये।

तात्पर्य

श्री जनार्दन मन्दिर त्रिवान्द्रम से २६ मील उत्तर वरकाला रेलवे स्टेशन के पास स्थित है।

दिन-दुइ ताहाँ करि' कीर्तन-नर्तन।
पयस्विनी आसिया देखे शंकर-नारायण॥२४३॥

अनुवाद

महाप्रभु श्री जनार्दन में दो दिन तक कीर्तन तथा नृत्य करते रहे। फिर वे पयस्विनी नदी के किनारे गये और वहाँ शंकर-नारायण का मन्दिर देखा।

शृंगेरि-मठ आइला शङ्कराचार्य-स्थाने।
मत्स्य-तीर्थ देखि' कैल तुंगभद्राय स्नाने॥२४४॥

अनुवाद

वहाँ उन्होंने शृंगेरी मठ देखा जो शंकराचार्य का धाम है। फिर उन्होंने मत्स्य-तीर्थ देखा और तुंगभद्रा नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

शृंगेरी-मठ मैसूर (महीशूर) प्रान्त के शिमोगा जिले में स्थित है। यह मठ तुंगभद्रा नदी के बायें तट पर हरिहरपुर से ७ मील दक्षिण स्थित है। इस स्थान का असली नाम शृंगगिरि या शृंगवेरपुरी है और यह शंकराचार्य का मुख्यालय है।

शंकराचार्य के चार मुख्य शिष्य थे और उन्होंने उनकी देख-रेख में चार केन्द्रों की स्थापना की। उत्तर भारत में बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की गई थी। पुरुषोत्तम में भोगवर्धन या गोवर्धन मठ की, द्वारका में सारदा मठ की तथा दक्षिण भारत में शृंगेरी मठ की स्थापना हुई। शृंगेरी मठ के संन्यासी सरस्वती, भारती तथा पुरी उपाधियाँ धारण करते हैं। वे *एकदण्डी संन्यासी* कहलाते हैं, जबकि वैष्णव संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासी कहलाते हैं। शृंगेरी मठ दक्षिण भारत के आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाट तथा केरल प्रदेश में स्थित है। इनकी जाति *भूविबार* है और वंश *भूर्भुव:* है। यह स्थान रामेश्वर कहलता है और उनका नारा है *अहं ब्रह्मास्मि*। इनका अर्चाविग्रह वराह है, इनकी शक्ति कामाक्षी है, आचार्य हस्तामलक है और इन संन्यासियों के सहायक ब्रह्मचारी चैतन्य कहलाते हैं। तीर्थस्थल तुंगभद्रा कहलाता है और ये यजुर्वेद पाठी हैं।

शंकराचार्य से आगे की शिष्य-परम्परा की सूची उपलब्ध है। आचार्यों के नाम शकाब्दानुसार इस प्रकार है—

शंकराचार्य ६२२ शक, सुरेश्वराचार्य ६३०, बोधनाचार्य ६८०, ज्ञानधनाचार्य ७६८, ज्ञानोत्तम शिवाचार्य ८२७, ज्ञानगिरि आचार्य ८७१, संहगिरि आचार्य ९५८, ईश्वरतीर्थ १०१९, नरसिंह तीर्थ १०६७, विद्यातीर्थ विद्याशंकर ११५०, भारतीकृष्ण तीर्थ १२५०, विद्यारण्य भारती १२५३, चन्द्रशेखर भारती १२९०, नरसिंह भारती १३०९, पुरुषोत्तम भारती १३२८, शंकरानन्द १३५०, चन्द्रशेखर भारती १३७१, नरसिंह भारती १३८६, पुरुषोत्तम भारती १३९४, रामचन्द्र भारती १४३०, नरसिंह भारती १४७९, नरसिंह भारती १४८५, धनमडि नरसिंह भारती १४९८, अभिनव नरसिंह भारती १५२१, सच्चिदानन्द भारती १५४४, नरसिंह

भारती १५८५, सच्चिदानन्द भारती १६२७, अभिनव सच्चिदानन्द भारती १६६३, नृसिंह भारती १६८९, सच्चिदानन्द भारती १६९२, अभिनव सच्चिदानन्द भारती १७३०, नरसिंह भारती १७३९, सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्यानरसिंह भारती १७८८।

ऐसा माना जाता है कि शंकराचार्य का जन्म ६०८ शकाब्द में वैशाख मास की शुक्ल तृतीया को कालाडि नामक स्थान में दक्षिण भारत में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु था जिनका देहान्त उनके बाल्यकाल में ही हो चुका था। जब शंकराचार्य आठ वर्ष के थे तभी उन्होंने सारे शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था, और गोविन्द से संन्यास ले लिया था जो नर्मदा के तट पर निवास करते थे। संन्यास ग्रहण करने के बाद शंकराचार्य कुछ दिनों तक अपने गुरु के साथ रहे। फिर उन्होंने गुरु से वाराणसी जाने की आज्ञा माँगी, जहाँ से वे बदरिकाश्रम गये और वहाँ वे १२ वर्ष की अवस्था तक रहे। वहाँ रह कर उन्होंने ब्रह्मसूत्र, दस उपनिषदों तथा भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। उन्होंने *सनत्-सुजातीय* तथा *नृसिंह-तापिनि* भी लिखे। उनके शिष्यों में से पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक तथा त्रोटक चार प्रमुख हैं। शंकराचार्य वाराणसी से प्रयाग आये, जहाँ कुमारिल भट्ट से उनकी भेंट हुई। वे उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे, किन्तु मृत्युशय्या में होने के कारण कुमारिल भट्ट ने उन्हें अपने शिष्य मण्डन के पास माहिष्मती भेज दिया। यहीं पर शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया। मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती या उभयभारती थीं, जिन्होंने शास्त्रार्थ में बिचौलिए का काम किया। कहा जाता है कि उसने शंकराचार्य से शृंगार के अश्लील विषयों पर वार्ता करनी चाही, किन्तु शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी थे, अतएव उन्हें ऐसे विषयों का कोई ज्ञान न था। अतः उन्होंने उभयभारती से एक मास का अवकाश माँगा और वे योगशक्ति से एक राजा के शरीर में प्रवेश कर गये जो तुरन्त मरा था। इस तरह शंकराचार्य को शृंगार-विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ। इस अनुभव के बाद उन्होंने उभयभारती से शास्त्रार्थ करना चाहा, किन्तु उसने बिना कुछ सुने उन्हें आशीर्वाद दे डाला कि वे शृंगेरी मठ में सदा निवास करें। तत्पश्चात् वह भौतिक जीवन से विरक्त हो गई। बाद में मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य से संन्यास ग्रहण किया और सुरेश्वर नाम से विख्यात हुए। शंकराचार्य ने भारत-भर के अनेक पंडितों को परास्त करके उन्हें मायावाद-दर्शन में दीक्षित किया। उन्होंने ३३ वर्ष की अवस्था में शरीर-त्याग किया।

भारती १५८५, सच्चिदानन्द भारती १६२७, अभिनव सच्चिदानन्द भारती १६६३, नृसिंह भारती १६८९, सच्चिदानन्द भारती १६९२, अभिनव सच्चिदानन्द भारती १७३०, नरसिंह भारती १७३९, सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्यानरसिंह भारती १७८८।

ऐसा माना जाता है कि शंकराचार्य का जन्म ६०८ शकाब्द में वैशाख मास की शुक्ल तृतीया को कालाडि नामक स्थान में दक्षिण भारत में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु था जिनका देहान्त उनके बाल्यकाल में ही हो चुका था। जब शंकराचार्य आठ वर्ष के थे तभी उन्होंने सारे शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था, और गोविन्द से संन्यास ले लिया था जो नर्मदा के तट पर निवास करते थे। संन्यास ग्रहण करने के बाद शंकराचार्य कुछ दिनों तक अपने गुरु के साथ रहे। फिर उन्होंने गुरु से वाराणसी जाने की आज्ञा माँगी, जहाँ से वे बदरिकाश्रम गये और वहाँ वे १२ वर्ष की अवस्था तक रहे। वहाँ रह कर उन्होंने ब्रह्मसूत्र, दस उपनिषदों तथा भगवद्गीता पर भाष्य लिखे। उन्होंने *सनत्-सुजातीय* तथा *नृसिंह-तापिनि* भी लिखे। उनके शिष्यों में से पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक तथा त्रोटक चार प्रमुख हैं। शंकराचार्य वाराणसी से प्रयाग आये, जहाँ कुमारिल भट्ट से उनकी भेंट हुई। वे उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे, किन्तु मृत्युशय्या में होने के कारण कुमारिल भट्ट ने उन्हें अपने शिष्य मण्डन के पास माहिष्मती भेज दिया। यहीं पर शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया। मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती या उभयभारती थीं, जिन्होंने शास्त्रार्थ में बिचौलिए का काम किया। कहा जाता है कि उसने शंकराचार्य से शृंगार के अश्लील विषयों पर वार्ता करनी चाही, किन्तु शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी थे, अतएव उन्हें ऐसे विषयों का कोई ज्ञान न था। अत: उन्होंने उभयभारती से एक मास का अवकाश माँगा और वे योगशक्ति से एक राजा के शरीर में प्रवेश कर गये जो तुरन्त मरा था। इस तरह शंकराचार्य को शृंगार-विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ। इस अनुभव के बाद उन्होंने उभयभारती से शास्त्रार्थ करना चाहा, किन्तु उसने बिना कुछ सुने उन्हें आशीर्वाद दे डाला कि वे शृंगेरी मठ में सदा निवास करें। तत्पश्चात् वह भौतिक जीवन से विरक्त हो गई। बाद में मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य से संन्यास ग्रहण किया और सुरेश्वर नाम से विख्यात हुए। शंकराचार्य ने भारत-भर के अनेक पंडितों को परास्त करके उन्हें मायावाद-दर्शन में दीक्षित किया। उन्होंने ३३ वर्ष की अवस्था में शरीर-त्याग किया।

ऐसा माना जाता है कि मत्स्यतीर्थ मालाबार जिले में समुद्र के किनारे स्थित था।

मध्वाचार्य-स्थाने आइला ग्राँहा 'तत्त्ववादी'।
उडुपीते 'कृष्ण' देखि, ताहाँ हैल प्रेमोन्मादी॥२४५॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु मध्वाचार्य के स्थान पर पहुँचे जहाँ तत्त्ववादी दार्शनिक रहते थे। वे वहाँ उडुपी नामक स्थान पर रुके और भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह को देख कर भाव से पागल हो उठे।

तात्पर्य

श्रीपाद मध्वाचार्य का जन्म उडुपी में हुआ जो दक्षिण भारत के दक्षिण कानाडा जिले में सह्याद्रि के धुर पश्चिम स्थित है। यह दक्षिण कानाड प्रान्त का मुख्य शहर है और उडुपी से दक्षिण की ओर स्थित मंगलोर शहर के निकट है। उडुपी शहर में पाजक क्षेत्र है, जहाँ मध्वाचार्य ने शिवाल्ली ब्राह्मण-वंश में मध्यगेह भट्ट के पुत्र-रूप में १०४० शकाब्द में जन्म लिया। कुछ लोगों के अनुसार उनका जन्म ११६० शकाब्द में हुआ।

बचपन में मध्याचार्य वासुदेव कहलाते थे और उनके विषय में अद्भुत कहानियाँ कही जाती हैं। कहा जाता है कि उनके पिता पर काफी ऋण था और मध्वाचार्य ने इमली के बीजों को सिक्कों में बदल कर कर्ज चुकाया। अभी पाँच ही वर्ष के थे तो उनका जनेऊ कर दिया गया। मणिमान नामक असुर साँप के रूप में उनके घर के पास रहता था, जिसे मध्वाचार्य ने अपने बाँये पाँव के अंगूठे से मार डाला। जब उनकी माता चिन्तित होतीं तो वे एक कुलांच में उनके सामने प्रकट हो जाते। वे बचपन से ही प्रकाण्ड पण्डित थे और पिता के न चाहने पर भी उन्होंने १२ वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। अच्युत प्रेक्ष से सन्यास लेने के बाद उनका नाम पूर्णप्रज्ञा तीर्थ पड़ा। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने के बाद उन्होंने श्रृंगेरी मठ के प्रमुख नेता विद्याशंकर से शास्त्रार्थ किया। वह उनकी उपस्थिति में बौना लगने लगा। मध्वाचार्य सत्य तीर्थ के साथ बदरिकाश्रम गये जहाँ व्यासदेव से उनकी भेंट हुई, जिन्हें उन्होंने *भगवद्गीता* पर अपना भाष्य सुनाया। वे व्यासदेव से अध्ययन करके प्रकाण्ड पंडित बन गये।

बदरिकाश्रम से आनन्द-मठ आने के समय तक मध्वाचार्य ने *भगवद्गीता*

पर अपना भाष्य पूरा कर लिया था। उनके साथी सत्य तीर्थ ने समूचा भाष्य लिखा। बदरिकाश्रम से लौटने पर मध्वाचार्य गोदावरी तट पर स्थित गंजाम गये। यहाँ उनकी भेंट शोभन भट्ट तथा स्वामी शास्त्री नामक दो पंडितों से हुई। बाद में ये दोनों मध्वाचार्य परम्परा में पद्मनाभ तीर्थ तथा नरहरि तीर्थ के नाम से विख्यात हुए। उडुपी लौटने पर वे कभी-कभी सागर में स्नान करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने एक स्तुति की रचना की जो पाँच अध्यायों में है। एक बार जब समुद्र-तट पर बैठे हुए वे कृष्ण के ध्यान में मग्न थे तो देखा कि द्वारका के लिए सामग्री ले जाने वाला एक मालवाही जहाज संकट में है। अत: उन्होंने कुछ ऐसे संकेत दिये जिससे वह जहाज समुद्र-तट पर जा लगा और इस तरह वह बच गया। उस जहाज के मालिक उन्हें कुछ भेंटस्वरूप देना चाहते थे, किन्तु उन्होंने मात्र *गोपीचन्दन* लेना स्वीकार किया। जब यह चन्दन उनके पास लाया जा रहा था तो बीच से टूट गया, जिसमें से भगवान् कृष्ण का अर्चाविग्रह निकला। अर्चाविग्रह एक हाथ में डण्डा और दूसरे में खाद्य पदार्थ लिए था। ज्योंही मध्वाचार्य ने इस रूप में कृष्ण के अर्चाविग्रह को ग्रहण किया, उन्होंने एक स्तुति लिखी। यह अर्चाविग्रह इतना भारी था कि तीस व्यक्ति मिल कर भी उसे उठा नहीं सके। मध्याचार्य स्वयं इस अर्चाविग्रह को उडुपी लाये। मध्वाचार्य के आठ शिष्य थे उन सभी ने मध्याचार्य से संन्यास की दीक्षा ली और उनके आठ मठों के आचार्य बने। मध्वाचार्य के द्वारा स्थापित विधि के अनुसार उडुपी में कृष्ण की पूजा इस समय भी की जाती है।

तब मध्वाचार्य दूसरी बार बदरिकाश्रम गये। जब वे महाराष्ट्र से होकर जा रहे थे तो एक स्थानीय राजा जनता के कल्याण हेतु एक विशाल सरोवर खुदवा रहा था। अत: मध्वाचार्य को शिष्यों सहित इस खुदाई में उसकी सहायता करनी पड़ी। कुछ समय पश्चात् मध्याचार्य ने राजा से भेंट की और उसे उस कार्य में लगाया और अपने शिष्यों के साथ वे आगे बढ़ गए।

गांग प्रदेश में प्राय: हिन्दुओं तथा मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे। हिन्दू नदी के एक ओर थे और मुसलमान दूसरी ओर। साम्प्रदायिक तनाव के कारण नदी पार करने के लिए कोई नाव उपलब्ध नहीं थी। मुसलमान सैनिक यात्रियों को आने से रोकते थे किन्तु मध्याचार्य ने इसकी कोई परवाह नहीं की। अत: जब वे नदी पार करके दूसरी ओर पहुँचे तो उन्हें राजा

के पास लाया गया। राजा उनसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें एक राज्य तथा कुछ धन देना चाहा, किन्तु मध्वाचार्य ने लेने से इनकार कर दिया। मार्ग पर जाते हुए कुछ डाकुओं ने उन पर आक्रमण कर दिया किन्तु अपने शारीरिक बल से उन्होंने उनको मार डाला। जब उनके साथी सत्य तीर्थ पर बाघ ने आक्रमण किया तो मध्वाचार्य ने अपने बाहुबल से दोनों को अलग किया। जब वे व्यासदेव से मिले तो उनसे उन्हें अष्टमूर्ति नामक *शालग्राम-शिला* प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने *महाभारत* का संक्षिप्तीकरण किया।

मध्वाचार्य की भगवद्भक्ति तथा उनका पाण्डित्य भारत-भर में विख्यात है। फलस्वरूपी शंकराचार्य द्वारा स्थापित शृंगेरी मठ के स्वामी कुछ बेचैन हो उठे। फलतः शंकराचार्य के अनुयायी मध्वाचार्य की उमड़ती शक्ति से डर कर उन के शिष्यों को नाना प्रकार से सताने लगे। वे यह सिद्ध करने का प्रयास करने लगे कि मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। शंकराचार्य के मायावाद-दर्शन का एक अनुयायी, जिसका नाम पुण्डरीक पुरी था, मध्वाचार्य से शास्त्रार्थ करने आया। कहा जाता है कि मध्वाचार्य की सारी पुस्तकें जबरन उठा ले जाई गईं, किन्तु बाद में कुम्ल के शासक राजा जयसिंह की सहायता से वे ढूँढ ली गईं। विष्णुमंगल निवासी त्रिविक्रमाचार्य नामक महापुरुष मध्वाचार्य का शिष्य बन गया और उसके पुत्र नारायणाचार्य ने श्री मध्वविजय की रचना की। त्रिविक्रमाचार्य की मृत्यु के बाद नारायणाचार्य के छोटे भाई ने संन्यास ले लिया और विष्णु तीर्थ कहलाया।

उस समय यह ख्याति फैली थी कि पूर्णप्रज्ञ मध्वाचार्य की शारीरिक शक्ति की कोई सीमा नहीं है। तभी कडञ्जरि नामक एक व्यक्ति, जो इसके लिए प्रसिद्ध था कि उसके तीस व्यक्तियों के बराबर शक्ति है; मध्वाचार्य ने अपने पाँव के अँगूठे को जमीन पर रख कर उस व्यक्ति से कहा कि अँगूठे को हटा दे, किन्तु वह बलशाली व्यक्ति अनेक प्रयासों के बावजूद भी ऐसा नहीं कर पाया। मध्वाचार्य ने ८० वर्ष की आयु में, *ऐतरेय उपनिषद* का भाष्य लिखते हुए, इस संसार से विदा ली। मध्वाचार्य के विषय में अधिक जानकारी के लिए नारायण आचार्य विरचित *मध्यविजय* ग्रंथ देखना चाहिए। मध्व-सम्प्रदाय के आचार्यों ने उडुपी को प्रधान केन्द्र बनाया और यहाँ के मठ का नाम उत्तराढ़ी मठ प्रसिद्ध हुआ। मध्व-सम्प्रदाय के विभिन्न केन्द्रों के नाम उडुपी में प्राप्त हो सकते हैं, जिनके चलाने वाले थे—(१) विष्णुतीर्थ

(शोदमठ), (२) जनार्दन तीर्थ (कृष्णपुर मठ), (३) वामन तीर्थ (कनुर मठ), (४) नरसिंह तीर्थ (अदमर मठ), (५) उपेन्द्र तीर्थ (पुत्तुगी मठ), (६) रामतीर्थ (शिरुर मठ), (७) हृषीकेश तीर्थ (पलिमर मठ), (८) अक्षोभ्य तीर्थ (पेजावर मठ)। मध्वाचार्य सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा इस प्रकार है—(१) हंस परमात्मा; (२) चतुर्मुख ब्रह्मा; (३) सनकादि; (४) दुर्वासा; (५) ज्ञाननिधि; (६) गरुडवाहन; (७) कैवल्य तीर्थ; (८) ज्ञानेश तीर्थ; (९) पर तीर्थ; (१०) सत्यप्रज्ञ तीर्थ; (११) प्राज्ञ तीर्थ; (१२) अच्युत प्रेक्षाचार्य तीर्थ; (१३) श्री मध्वाचार्य १०४० शक; (१४) पद्मनाभ ११२०, नरहरि ११२७, माध्व ११३६ तथा अक्षोभ्य ११५९ (१५) जयतीर्थ ११६७; (१६) विद्याधिराज ११९०, (१७) कवीन्द्र १२५५; (१८) वागीश १२६१; (१९) रामचन्द्र १२६९; (२०) विद्यानिधि १२९८; (२१) श्री रघुनाथ १३६६; (२२) रयुवर्य (जिसने चैतन्य महाप्रभु से बात की) १५२४; (२३) रघूत्तम १४७१; (२४) वेदव्यास १५१७; (२५) विद्याधीश १५४१; (२६) वेदनिधि १५५३; (२७) सत्यव्रत १५५७;(२८) सत्यनिधि १५६०;(२९) सत्यनाथ (१५८२); (३०) सत्याभिनव १५९५; (३१) सत्यपूर्ण १६२८; (३२) सत्यविजय १६४८; (३३) सत्यप्रिय १६५९; (३४) सत्यबोध १६६६; (३५) सत्यसन्ध १७०५; (३६) सत्यव्रत १७१६; (३७) सत्यधर्म १७१९; (३८) सत्यसंकल्प १७५२; (३९) सत्यसन्तुष्ट १७६३; (४०) सत्यपरायण १७६३; (४१) सत्यकाम १७८५; (४२) सत्येष्ट १७९३; (४३) सत्यपराक्रम १७९४; (४४) सत्यधीर १८०१; (४५) सत्यधीर तीर्थ १८०८।

सोलहवें आचार्य (विद्याधिराज तीर्थ) के बाद दूसरी शिष्य-परम्परा चली जिसमें राजेन्द्र तीर्थ १२५४; विजय ध्वज; पुरुषोत्तम; सुब्रह्मण्य; व्यास राय; १४७०-१५२० सम्मिलित हैं। उन्नीसवें आचार्य रामचन्द्र तीर्थ की भी अन्य शिष्य-परम्परा चली जिसमें विबुधेन्द्र १२१८, जितमित्र १३४८, रघुनन्दन, सुरेन्द्र, विजेन्द्र, सुधीन्द्र, राघवेन्द्र तीर्थ, १५४५ सम्मिलित हैं।

आज तक उडुपी मठ में अन्य १४ मध्वतीर्थ संन्यासी हुए हैं। जैसा बतलाया जा चुका है, उडुपी दक्षिण कानाडा में मंगलोर से लगभग ३६ मील उत्तर है। यह समुद्र के निकट है (यह सूचना साउथ कानाडा मैनुअल तथा बाम्बे गजट से ली गई है)।

नर्तक गोपाल देखे परम-मोहने।
मध्वाचार्ये स्वप्न दिया आइला ताँर स्थाने।।२४६।।

अनुवाद

उडुपी मठ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने 'नर्तक गोपाल' की अतीव सुन्दर मूर्ति देखी। यह मूर्ति मध्वाचार्य को स्वप्न में दिखी थी।

गोपीचन्दन-तले आछिल डिङ्गाते।
मध्वाचार्य सेइ कृष्ण पाइला कोनमठे॥२४७॥

अनुवाद

मध्वाचार्य ने कृष्ण की यह मूर्ति उस गोपीचन्दन के ढेर से किसी तरह प्राप्त की थी, जो नाव में लाया गया था।

मध्वाचार्य आनि' ताँरे करिला स्थापन।
अद्यावधि सेवा करे तत्त्ववादिगण॥२४८॥

अनुवाद

मध्वाचार्य इस नर्तक गोपाल को उडुपी ले आये और उन्हें मन्दिर में स्थापित कर दिया। मध्वाचार्य के अनुयायी अर्थात् तत्त्ववादीगण आज भी इस मूर्ति की पूजा करते हैं।

कृष्णमूर्ति देखि' प्रभु महासुख पाइल।
प्रेमावेशे बहुक्षण नृत्य-गीत कैल॥२४९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को गोपाल का यह सुन्दर रूप देख कर अत्यन्त हर्ष हुआ। वे देर तक भावावेश में नाचते-गाते रहे।

तत्त्ववादिगण प्रभुके 'मायावादी' ज्ञाने।
प्रथम दर्शने प्रभुके ना कैल सम्भाषणे॥२५०॥

अनुवाद

पहले तो तत्त्ववादी वैष्णवों महाप्रभु को मायावादी संन्यासी समझा, अतएव उन्होंने उनसे बात नहीं की।

पाछे प्रेमावेश देखि' हैल चमत्कार।
वैष्णव-ज्ञाने बहुत करिल सत्कार॥२५१॥

अनुवाद

बाद में चैतन्य महाप्रभु को भावावेश में देख कर वे लोग चकित रह गये। तत्पश्चात् उन्हें वैष्णव समझ कर उन्होंने उनका अच्छा स्वागत किया।

'वैष्णवता' सबार अन्तरे गर्व जानि'।
ईषत् हासिया किछु कहे गौरमणि॥२५२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि तत्त्ववादियों को अपने वैष्णव होने पर अत्यधिक गर्व है। अतएव वे मुसकाये और उनसे बातें करने लगे।

ताँ-सबार अन्तरे गर्व जानि गौरचन्द्र।
ताँ-सबा-संगे गोष्ठी करिला आरम्भ॥२५३॥

अनुवाद

उन्हें अत्यन्त गर्वित जान कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे शास्त्रार्थ शुरू किया।

तत्त्ववादी आचार्य-सब शास्त्रेर प्रवीण।
ताँरे प्रश्न कैल प्रभु हञा ग्रेन दीन॥२५४॥

अनुवाद

तत्त्ववादियों का मुख्य आचार्य शास्त्रों में अत्यन्त पटु था। महाप्रभु ने अत्यन्त विनीत भाव से उससे प्रश्न किया।

साध्य-साधन आमि ना जानि भालमते।
साध्य-साधन-श्रेष्ठ जानाह आमाते॥२५५॥

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि को ठीक से नहीं जानता। कृपया मुझे बतलायें कि मानवता के लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जाय?"

आचार्य कहे,—'वर्णाश्रम-धर्म, कृष्ण-समर्पण'।
एइ हय कृष्ण भक्तेर श्रेष्ठ 'साधन'॥२५६॥

अनुवाद

आचार्य ने उत्तर दिया, "जब चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के कार्य कृष्ण को समर्पित किये जाते हैं, तो वे ही सर्वश्रेष्ठ साधन होते हैं, जिनसे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

'पञ्चविध मुक्ति' पाञा वैकुण्ठ गमन।
'साध्य-श्रेष्ठ' हय,—एइ शास्त्र-निरूपण ॥२५७॥

अनुवाद

"जब मनुष्य वर्णाश्रम धर्म के कार्य को कृष्ण को समर्पित करता है तो वह पाँच प्रकार की मुक्ति का पात्र होता है, और वैकुण्ठ-लोक भेज दिया जाता है। यही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है और यही सारे शास्त्रों का मत है।"

प्रभु कहे,—शास्त्रे कहे श्रवण-कीर्तन।
कृष्णप्रेमसेवा-फलेर 'परम-साधन' ॥२५८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "शास्त्रों के अनुसार कृष्ण की प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के सर्वश्रेष्ठ साधन श्रवण तथा कीर्तन हैं।"

तात्पर्य

तत्त्ववादियों के अनुसार चारों वर्णों तथा आश्रमों के कार्यों को सम्पन्न करना ही सर्वोत्तम विधि है। इस भौतिक जगत में किसी एक वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में रहे बिना चरम लक्ष्य की पूर्ति के लिए सामाजिक कार्यों को सम्पन्न नहीं किया जा सकता। हमें *आश्रमों* (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के सिद्धान्तों का भी पालन करना होता है जो सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझ जाते हैं। इस तरह तत्त्ववादियों ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना मानव-समाज को ध्यान में रखते हुए की। किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने इससे भिन्न मत व्यक्त किया, जब उन्होंने यह कहा कि भगवान् विष्णु का श्रवण और कीर्तन ही सर्वोत्तम विधि है। तत्त्ववादियों के अनुसार सर्वोच्च लक्ष्य भगवद्धाम वापस जाना है, किन्तु चैतन्य महाप्रभु के अनुसार भौतिक या आध्यात्मिक जगत में भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही सर्वोच्च लक्ष्य है। भौतिक जगत में इसका अभ्यास शास्त्रों के आदेशानुसार किया

जाता है और आध्यात्मिक जगत में तो असली उपलब्धि पहले से ही हुई रहती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥२५९॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥२६०॥

अनुवाद

"इस विधि में श्रवण, कीर्तन, भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला तथा परिवार का स्मरण, देश, काल तथा पात्र के अनुसार सेवा करना, अर्चाविग्रह की पूजा करना, स्तुति करना, अपने को कृष्ण का नित्यदास मानना, उनसे सख्य भाव उत्पन्न करना और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करना सम्मिलित हैं। जब इस तरह कृष्ण की नौ प्रकार से सेवा की जाती है तो वही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यही शास्त्रों का मत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (७.५.२३-२४) उद्धृत किये।

श्रवण-कीर्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा'।
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ—पुरुषार्थेर सीमा॥२६१॥

अनुवाद

"जब मनुष्य इन नौ विधियों से कृष्ण की प्रेमाभक्ति करता है, तो उसे पाँचवाँ पुरुषार्थ एवं जीवन के लक्ष्य की सीमा प्राप्त होती है।"

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्म में लीन होने की सफलता चाहता है। ये सामान्य व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु वेदों के नियमों के अनुसार सर्वोच्च उपलब्धि *श्रवणम्, कीर्तनम्* के पद को प्राप्त करना है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में १.१.२) हुई है—

जाता है और आध्यात्मिक जगत में तो असली उपलब्धि पहले से ही हुई रहती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥२५९॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥२६०॥

अनुवाद

"इस विधि में श्रवण, कीर्तन, भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला तथा परिवार का स्मरण, देश, काल तथा पात्र के अनुसार सेवा करना, अर्चाविग्रह की पूजा करना, स्तुति करना, अपने को कृष्ण का नित्यदास मानना, उनसे सख्य भाव उत्पन्न करना और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करना सम्मिलित हैं। जब इस तरह कृष्ण की नौ प्रकार से सेवा की जाती है तो वही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यही शास्त्रों का मत है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (७.५.२३-२४) उद्धृत किये।

श्रवण-कीर्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा'।
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ—पुरुषार्थेर सीमा॥२६१॥

अनुवाद

"जब मनुष्य इन नौ विधियों से कृष्ण की प्रेमाभक्ति करता है, तो उसे पाँचवाँ पुरुषार्थ एवं जीवन के लक्ष्य की सीमा प्राप्त होती है।"

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्म में लीन होने की सफलता चाहता है। ये सामान्य व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु वेदों के नियमों के अनुसार सर्वोच्च उपलब्धि *श्रवणम्, कीर्तनम्* के पद को प्राप्त करना है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में १.१.२) हुई है—

धर्म: प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैरीश्वर:
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभि: शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

"भौतिकता से प्रेरित सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह भागवत-पुराण उस सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है, जिसे शुद्ध हृदय वाले भक्तगण ही समझ सकते हैं। यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है, जिसे सबों के कल्याण हेतु मोह (भ्रम) से किया जाता है। ऐसा सत्य तीनों प्रकार के तापों को समूल नष्ट करता है। महामुनि श्री व्यासदेव विरचित यह सुन्दर भागवत ईश-साक्षात्कार कराने के लिए पर्याप्त है। जो कोई ध्यानपूर्वक तथा विनीत होकर भागवत का सन्देश सुनता है वह भगवान् के प्रति अनुरक्त हो जाता है।"

श्रीधर स्वामी के अनुसार सफलता की भौतिक विचारधारा (*मोक्ष*) इस जगत के लोगों द्वारा ही काम्य है। चूँकि भक्तगण इस भौतिक जगत में स्थित नहीं होते, अतएव उन्हें मोक्ष की कामना नहीं होती।

भक्त तो जीवन की सारी अवस्थाओं में मुक्त रहता है क्योंकि वह भक्ति की नौ विधियों (श्रवणं कीर्तनं आदि) में लगा रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन कहता है कि कृष्ण-भक्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में रहती है। इसे *श्रवणं कीर्तनं विष्णो:* की विधि से जागृत किया जाना चाहिए। *श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय* (चैतन्य चरि. मध्य २२.१०७)। जब व्यक्ति वास्तव में भक्ति में लगा होता है तो भगवान् के साथ उसका नित्य सम्बन्ध—दास-स्वामी सम्बन्ध—जागृत होता है।

एवं-व्रत: स्वप्रियनाम-कीर्त्या
जातानुरागा द्रुतचित्त उच्चै:।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन् नृत्यति लोकबाह्य:॥२६२॥

अनुवाद

" 'जब कोई व्यक्ति वास्तव में महान् होता है और प्रिय होने के कारण भगवन्नाम-कीर्तन में आनन्द का अनुभव करता है, तो वह विक्षुब्ध

होकर जोर-जोर से नामोच्चार करता है। वह किसी की परवाह न करते हुए हँसता है, रोता है, विचलित होता है और कीर्तन करता है।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (११.२.४०) उद्धृत है।

कर्मनिन्दा, कर्मत्याग, सर्वशास्त्रे कहे।
कर्म हैते प्रेमभक्ति कृष्णे कभु नहे॥२६३॥

अनुवाद

"प्रत्येक शास्त्र सकाम कर्म की निन्दा करता है। सभी जगह यही उपदेश दिया गया है कि सारे सकाम कर्मों का त्याग किया जाय, क्योंकि इसके द्वारा जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, भगवत्प्रेम को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

वेदों में तीन कांड या विभाग है—*कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड* तथा *उपासना काण्ड*। कर्मकाण्ड सकाम कर्म किये जाने पर बल देता है, यद्यपि अन्ततः कर्मकाण्ड तथा ज्ञान-काण्ड का त्याग कर एकमात्र उपासना-काण्ड अर्थात् भक्तिकाण्ड ग्रहण करने की सलाह दी जाती है। कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड द्वारा भगवत्प्रेम नहीं पाया जा सकता। किन्तु भगवान् को अपना कर्म समर्पित करके मनुष्य दूषित मन से छुटकारा पा सकता है। जब मनुष्य मानसिक कलुष से मुक्त हो जाता है, तो वह आध्यात्मिक पद को प्राप्त होता है। उसके बाद ही शुद्ध भक्त की संगति की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि शुद्ध भक्त की संगति से ही भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बना जा सकता है। शुद्ध भक्ति की अवस्था तक पहुँचने पर *श्रवणं कीर्तनं* की विधि अत्यावश्यक हो जाती है। भक्ति की नौ विधियों को सम्पन्न करने पर वह पूर्ण शुद्ध बन जाता है। *अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्* (भक्तिरसामृत सिन्धु १.१.१२)। उसी के बाद वह कृष्ण के आदेश का पालन कर सकता है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यम् ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

"सदा मेरे विषय में सोचो तथा मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो तथा मुझे

ही नमस्कार करो। इस तरह तुम अवश्य ही मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें वचन देता हूँ क्योंकि तुम मेरे मित्र हो।" (भगवद्गीता १८.६५)।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सारे धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त करा दूँगा। डरो मत।" (भगवद्गीता १८.६६)।

इस तरह मनुष्य अपनी आदि-वैधानिक स्थिति प्राप्त करके भगवान् की प्रेमाभक्ति करने लगता है। कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड से कोई मनुष्य भक्त के सर्वोच्च पद को प्राप्त नहीं कर सकता। शुद्ध भक्तों की संगति से ही शुद्ध भक्ति समझी और प्राप्त की जा सकती है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कर्मकाण्ड के कार्य दो प्रकार के होते हैं—पवित्र तथा अपवित्र। पवित्र कार्य अपवित्र कार्यों से अच्छे माने जाते हैं, किन्तु पवित्र कार्यों से भी भगवान् कृष्ण के प्रेम के प्रति आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता। पवित्र तथा अपवित्र कार्यों से भौतिक सुख या दुख् तो मिल सकते हैं, किन्तु मात्र इनसे शुद्ध भक्त बनने की सम्भावना नहीं की जा सकती। *भक्ति* का अर्थ है कृष्ण को तुष्ट करना। प्रत्येक शास्त्र में चाहे उसमें ज्ञानकाण्ड पर बल हो या कर्मकाण्ड पर, वैराग्य के सिद्धान्त की सदा प्रशंसा की जाती है। इसका सबसे बड़ा साक्ष्य है वैदिक ज्ञान का पक्व फल *श्रीमद्भागवत*। *श्रीमद्भागवत* में (१.५.१२) कहा गया है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जित
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

"आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त होने पर भी अच्छा प्रतीत नहीं होता, यदि वह अच्युत (ईश्वर) की भावना से रहित हो। तो फिर सकाम कर्मों का क्या लाभ, जो प्रारम्भ से ही पीड़ादायक तथा नश्वर प्रकृति के हैं, यदि उन्हें भगवान् की सेवा में प्रयुक्त न किया जा सके?" इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान, जो कर्मकाण्ड से श्रेष्ठ है, भक्ति से रहित होने पर सफल नहीं होता। सारे शास्त्रों के आदि, मध्य

तथा अन्त में कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की निन्दा की गई है। *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है—*धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र*।

इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (११.११.३२) तथा *भगवद्गीता* के (१.८.६६) निम्नलिखित श्लोकों में दी गई है।

आज्ञायैवं गुणान् दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत् स च सत्तमः॥२६४॥

अनुवाद

" 'धार्मिक शास्त्रों में वृत्तिपरक कार्यों का वर्णन रहता है। उनकी विवेचना करने पर मनुष्य उनके गुणों तथा दोषों को पूरी तरह समझ सकता है और तब भगवान् की सेवा करने के लिए उनका पूर्ण परित्याग कर सकता है। जो मनुष्य ऐसा करता है वह प्रथम कोटि का व्यक्ति (उत्तम) कहलाता है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥२६५॥

अनुवाद

" 'सारे धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापकर्मों से मुक्त कर दूँगा। तुम डरो मत।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
सत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥२६६॥

अनुवाद

" 'जब तक मनुष्य सकाम कर्म द्वारा तृप्त नहीं होता और श्रवणं कीर्तनं विष्णोः द्वारा भक्ति के लिए रुचि उत्पन्न नहीं कर लेता, तब तक उसे वैदिक आदेशों के विधि-विधानों के अनुसार कर्म करना होता है।

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* से (११.२०.९) है।

पञ्चविध मुक्ति त्याग करे भक्तगण।
फल्गु-करि' 'मुक्ति' देखे नरकेर सम॥२६७॥

अनुवाद

"शुद्ध भक्त मुक्ति के पाँचों प्रकारों को त्याग देते हैं। उनके लिए मुक्ति नगण्य है क्योंकि वे इसे नरकतुल्य मानते हैं।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीपमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥२६८॥

अनुवाद

" 'शुद्ध भक्त सदैव पाँच प्रकार की मुक्ति का बहिष्कार करते हैं—ये हैं वैकुण्ठ-लोक में रहना, भगवान् जैसे ऐश्वर्यों से युक्त होना, भगवान् जैसा स्वरूप प्राप्त करना, भगवान् की संगति करना तथा भगवान् के शरीर में लीन होना। शुद्ध भक्त भगवद्भक्ति के बिना इन आशीर्वादों को स्वीकार नहीं करते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* से (३.२९.१३) लिया गया है।

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम्।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥२६९॥

अनुवाद

" 'ऐश्वर्य, भूमि, सन्तान, समाज, मित्र, धन, पत्नी या लक्ष्मी के आशीर्वादों को, जो बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी प्रार्थित हैं, त्याग पाना अत्यन्त कठिन है। राजा भरत को ऐसी वस्तुओं की कामना नहीं थी और यह उनके पद के अनुरूप भी था क्योंकि ऐसे शुद्ध भक्त के लिए, जिसका मन सदैव भगवान् की सेवा में लगा रहता है, मुक्ति या भगवान् से तादात्म्य तुच्छ है। भौतिक सौभाग्य के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है।'

तात्पर्य

शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से राजा भरत की प्रशंसा में यह श्लोक कहा है (श्रीमद्भागवत ५.१४.४४)।

नारायणपराः सर्वे न कुचश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२७०॥

अनुवाद

" 'नारायण का भक्त नरक से नहीं डरता क्योंकि वह इसे स्वर्ग जाने या मुक्ति के ही समान मानता है। नारायण के भक्त इन वस्तुओं को एक-सा मानते हैं।

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* का (६.१७.२८) है, जिसमें चित्रकेतु के व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है। एक बार जब चित्रकेतु ने देवी पार्वती को शम्भु (शिव) की गोद में बैठे देखा तो उसे लज्जा हो आई और उसने शिव की आलोचना यह कह कर की कि वे सामान्य पुरुष की भाँति अपनी पत्नी को गोद में बैठाये हैं। इसके लिए पार्वती ने चित्रकेतु को शाप दे दिया। बाद में वही वृत्तासुर हुआ। चित्रकेतु अत्यन्त पराक्रमी राजा तथा भक्त था और वह शिवजी से भी बदला ले सकता था, किन्तु उसने पार्वती के शाप को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया। जब उसने शाप स्वीकार कर लिया तो शिवजी ने उसकी प्रशंसा करते हुए पार्वती से कहा कि नारायण का शुद्ध भक्त किसी भी पद को स्वीकार करने से डरता नहीं, बशर्ते कि उसे भगवान् की सेवा करने का अवसर मिल सके। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति* का यही अर्थ है।

मुक्ति, कर्म,—दुइ वस्तु त्यजे भक्तगण।
सेइ दुइ स्थाप' तुमि 'साध्य' 'साधन' ॥२७१॥

अनुवाद

"भक्तगण मुक्ति तथा सकाम कर्म—इन दोनों का परित्याग करते हैं। आप इन्हें ही जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि के रूप में स्थापित करना चाह रहे हैं।"

संन्यासी देखिया मोरे करह वञ्चन।
ना कहिला तेञि साध्य-साधन-लक्षण ॥२७२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस तत्त्ववादी आचार्य से कहते रहे, "आप मुझे संन्यासी वेश में देख कर मेरे साथ दुहरी चाल चल रहे हैं। आपने विधि (साधन) तथा चरम लक्ष्य (साध्य) का सही-सही वर्णन नहीं किया।"

शुनि' तत्त्वाचार्य हैला अन्तरे लज्जित।
प्रभुर वैष्णवता देखि, हइला विस्मित।।२७३।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की बात सुन कर तत्त्ववाद-सम्प्रदाय का आचार्य अत्यधिक लज्जित हो गया। वैष्णव-धर्म में श्री चैतन्य महाप्रभु की दृढ़ श्रद्धा देख कर वह आश्चर्यचकित रह गये।

आचार्य कहे,—तुमि ग़ेइ कह, सेइ सत्य हय।
सर्वशास्त्रे वैष्णवेर एइ सुनिश्चय।।२७४।।

अनुवाद

तत्त्ववादी आचार्य ने उत्तर दिया, "आपने जो कहा है, वह वास्तविक है, यही सारे वैष्णव शास्त्रों का निर्णय है।

तथापि मध्वाचार्य ग़े करियाछे निर्बन्ध।
सेइ आचरिये सबे सम्प्रदाय-सम्बन्ध।।२७५।।

अनुवाद

"तो भी मध्वाचार्य ने हमारे सम्प्रदाय के लिए जो सूत्र निश्चित कर दिये हैं, हम उन्हीं का पालन करते हैं।"

प्रभु कहे,—कर्मी, ज्ञानी,—दुइ भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिन्ह।।२७६।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "सकाम कर्मी तथा ज्ञानी—दोनों ही अभक्त माने जाते हैं। मुझे ये दोनों बातें आपके सम्प्रदाय में दिखती हैं।

सबे, एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये।
सत्यविग्रह करि' ईश्वरे करह निश्चये॥२७७॥

अनुवाद

"मुझे आपके सम्प्रदाय में जो एकमात्र विशेषता दिखती है वह यही है कि आप लोग भगवान् को सत्य रूप मानते हैं॥"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मध्वाचार्य सम्प्रदाय के तत्त्ववादी आचार्य को यह बतला देना चाहा कि उनका सामान्य आचरण शुद्ध भक्ति के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसे सकाम कर्म तथा ज्ञान के कल्मष से रहित होना चाहिए। जहाँ तक सकाम कर्म की बात है, यह कल्मष जीवन के उच्च स्तर तक उठना है और ज्ञान का कल्मष परम सत्य से तादात्म्य है। मध्वाचार्य का तत्त्ववादी सम्प्रदाय वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्त को मानता है जिसमें सकाम कर्म निहित होता है। उनका चरम लक्ष्य (मुक्ति) मात्र एक प्रकार की इच्छा होता है। शुद्ध भक्त को सभी तरह की इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। वह केवल कृष्ण की भक्ति में लगा रहता है। तो भी, चैतन्य महाप्रभु को इस बात की प्रसन्नता थी कि मध्वाचार्य सम्प्रदाय अथवा तत्त्ववाद सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार करता है। यह इन वैष्णव सम्प्रदायों की सबसे बड़ी विशेषता है।

यह तो मायावाद सम्प्रदाय ही है जो भगवान् के दिव्य स्वरूप को स्वीकार नहीं करता। यदि कोई वैष्णव सम्प्रदाय इस निर्विशेष प्रवृत्ति में बह जाता है, तो उस सम्प्रदाय का कोई स्थान नहीं होता। यह तथ्य है कि ऐसे अनेक वैष्णव हैं जिनका चरम लक्ष्य भगवान् से तादात्म्य प्राप्त करना है। सहजिया वैष्णव-दर्शन भगवान् से तादात्म्य चाहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि श्री माधवेन्द्र पुरी ने मध्वाचार्य को इसीलिए स्वीकार किया क्योंकि उनका सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य स्वरूप को मानता है।

एइमत ताँर घरे गर्व चूर्ण करि'।
फल्गुतीर्थे तबे चलि आइला गौरहरि॥२७८॥

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने तत्त्ववादियों के गर्व को चूर-चूर कर

दिया। तब वे फल्गु तीर्थ गये।

त्रितकूपे विशालार करि' दरशन।
पञ्चाप्सरा तीर्थे आइला शचीरनन्दन॥२७९॥

अनुवाद

माता शची के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु त्रितकूप गये और वहाँ पर विशाला अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद वे पञ्चाप्सरा नामक तीर्थस्थान गये।

तात्पर्य

अप्सराएँ प्राय: नर्तकियाँ होती हैं। स्वर्ग की युवतियाँ अत्यन्त सुन्दरी होती हैं और यदि पृथ्वी पर कोई अत्यन्त सुन्दरी होती है तो उसकी तुलना अप्सराओं से की जाती है। लता, बुदबुदा, समीची, सौरभेयी तथा वर्णा नाम की पाँच अप्सराएँ थीं। कहा जाता है कि अच्युत ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने इन अप्सराओं को भेजा था। स्वर्ग के राजा इन्द्र का यह कार्य विलक्षण था। जब भी इन्द्र किसी व्यक्ति को कठिन तपस्या करते देखता कि वह अपने पद से भयभीत होने लगता था। इन्द्र सदैव चिन्तित रहता है कि यदि कोई व्यक्ति उससे अधिक शक्तिशाली हो जायेगा तो उसका वह उच्च पद छिन जायेगा। जब भी वह किसी ऋषि को तपस्या करते देखता तो वह उसे विचलित करने के लिए अप्सराएँ भेज देता था। यहाँ तक कि विश्वामित्र जैसे ऋषि उसकी योजना के शिकार हुए।

जब पाँच अप्सराएँ अच्युत ऋषि का ध्यान भंग करने पहुँची तो ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया; फलस्वरूप वे अप्सराएँ सरोवर में मगरिनी बन गईं और वह सरोवर पञ्चाप्सरा कहलाने लगा। भगवान् रामचन्द्र भी इस स्थान पर पधारे थे। नारद मुनि के वृत्तान्त से पता चलता है कि जब अर्जुन तीर्थस्थलों की यात्रा करने गये तो उन्हें अप्सराओं के शापित होने का पता चला। उन्होंने उनका उद्धार किया और उस दिन से यह सरोवर पञ्चाप्सरा कहलाता है तथा तीर्थस्थान बन गया है।

गोकर्णे शिव देखि' आइला द्वैपायनि।
सूर्पारक-तीर्थे आइला न्यासि-शिरोमणि॥२८०॥

अनुवाद

पञ्चाप्सरा देखने के बाद महाप्रभु गोकर्ण गये। वहाँ उन्होंने शिवजी का

मन्दिर देखा और फिर द्वैपायनी गये। तब संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ श्री चैतन्य महाप्रभु सूर्पारक तीर्थ गये।

तात्पर्य

गोकर्ण महाराष्ट्र में उत्तर कानाडा में स्थित है और कारओयार से २० मील दक्षिण पूर्व है। यह स्थान महाबलेश्वर शिवजी के मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में लाखों लोग आते हैं। सूर्पारक बम्बई से लगभग २६ मील उत्तर है। महाराष्ट्र में बम्बई के निकट थाना नामक जिला और सोपारा नामक स्थान है। सुर्पारक का उल्लेख महाभारत में (शान्ति पर्व अध्याय ४१ श्लोक ६६-६७) हुआ है।

कोलापुरे लक्ष्मी देखि' देखेन क्षीर भगवती।
लांग-गणेश देखि' देखेन चोर-पार्वती॥२८१॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु कोल्हापुर नामक नगर गये जहाँ उन्होंने क्षीर भगवती के मन्दिर में लक्ष्मीजी को और चोर पार्वती नामक अन्य मन्दिर में लांग गणेश को देखा।

तात्पर्य

कोलापुर पहले के बम्बई प्रदेश और वर्तमान महाराष्ट्र प्रदेश का एक नगर है। पहले यह देशी रियासत था। यह उत्तर सांतारा जिला से पूर्व तथा दक्षिण में बेलगाम से तथा पश्चिम में रत्नागिरि जिले से घिरा है। इस स्थान पर उर्णा नामक नदी है। *बम्बई गजट* से पता चलता है कि यहाँ २५० मन्दिर थे जिनमें से छह अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं—अम्बाबाई या महालक्ष्मी मन्दिर, विठोबा मन्दिर, टेम्बलाई मन्दिर, महाकाली मन्दिर, फिरांग-इ या प्रत्यंगिरा मन्दिर तथा याल्लाम्मा मन्दिर।

तथा हैते पाण्डरपुरे आइला गौरचन्द्र।
विठ्ठल-ठाकुर देखि' पाइला आनन्द॥२८२॥

अनुवाद

वहाँ से महाप्रभु पांडरपुर गये जहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक विठ्ठल ठाकुर का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

पांडरपुर शहर भीमा नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि जब महाप्रभु पांडरपुर गये तो उन्होंने तुकाराम को दीक्षा दी। तुकराम आचार्य महाराष्ट्र प्रान्त में अत्यधिक प्रसिद्ध हो गये हैं और उन्होंने सारे प्रान्त में संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार किया। आज भी तुकाराम की कीर्तन टोली बम्बई में अत्यन्त लोकप्रिय है। तुकाराम श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और इनकी लिखी पुस्तक *अभंग* है। उनकी संकीर्तन-टोली गौड़ीय वैष्णव कीर्तन मंडलियों जैसी ही है, क्योंकि वे भी मृदंग तथा करताल के साथ भगवन्नाम का कीर्तन करते हैं।

इस श्लोक में उल्लिखित विठ्ठलदेव चतुर्भुज विष्णु के रूप हैं और नारायण हैं।

प्रेमावेशे कैल बहुत कीर्तन-नर्तन।
ताहाँ एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण॥२८३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की भाँति नाचे-गाये और एक ब्राह्मण उन्हें भावावेश में देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए भी बुलाया।

बहुत आदरे प्रभुके भिक्षा कराइल।
भिक्षा करि' तथा एक शुभवार्ता पाइल॥२८४॥

अनुवाद

इस ब्राह्मण ने अतीव सम्मान तथा प्रेमपूर्वक महाप्रभु को भोजन कराया। भोजन करने के बाद महाप्रभु को शुभ समाचार मिला।

माधव-पुरीर शिष्य 'श्रीरंग-पुरी' नाम।
सेइ ग्रामे विप्रगृहे करेन विश्राम॥२८५॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को यह समाचार मिला कि श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य श्री रंग पुरी उसी गाँव में एक ब्राह्मण के घर उपस्थित हैं।

शुनिला चलिला प्रभु ताँरे देखि बारे।
विप्रगृहे वसि' आछेन, देखिला ताँहारे॥२८६॥

अनुवाद

यह समाचार सुन कर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त श्री रंग पुरी को देखने उस ब्राह्मण के घर गये। घुसते ही महाप्रभु ने उन्हें बैठे देखा।

प्रेमावेशे करे ताँरे दण्ड-परणाम।
अश्रु, पुलक, कम्प, सर्वांगे पड़े घाम॥२८७॥

अनुवाद

ब्राह्मण को देखते ही महाप्रभु ने जमीन पर दण्डवत् गिर कर भावावेश में प्रणाम किया। उनके शरीर में अश्रु, हर्ष, कम्प तथा स्वेद (पसीने) के विकार लक्षण प्रकट थे।

देखिया विस्मित हैल श्रीरंग-पुरीर मन।
'उठह श्रीपाद' बलि' बलिला वचन॥२८८॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसे भावावेश में देख कर श्री रंग पुरी ने कहा, "श्रीपाद! उठें।"

श्रीपाद, घर मोर गोसाँइर सम्बन्ध।
ताहा विना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध॥२८९॥

अनुवाद

"श्रीपाद! आप श्री माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्धित हैं, जिनके बिना प्रेम की कोई सुगन्ध नहीं होती।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि मध्वाचार्य से लेकर पूज्यपाद श्रीपाद लक्ष्मीपति तीर्थ तक की शिष्य-परम्परा में केवल भगवान् कृष्ण की पूजा चालू हुई। इसीलिए माधवेन्द्र पुरी को भावमय पूजा का मूल माना जाता है। जो माधवेन्द्र पुरी की शिष्य-परम्परा में नहीं होता उसमें भाव-लक्षण उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं होती। इस प्रसंग में *गोसाई* शब्द महत्वपूर्ण है। जो गुरु पूर्णरूपेण भगवान् के प्रति समर्पित होता है और जिसके पास

भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता, वह सर्वोत्तम *परमहंस* कहलाता है। परमहंस को इन्द्रियतृप्ति से कोई सरोकार नहीं रहता, वह तो भगवान् की इन्द्रिय-तुष्टि में ही लगा रहता है। इस तरह जिस व्यक्ति का इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है, वह *गोसाईं* या *गोस्वामी* कहा जा सकता है। *गोसाईं* पदवी कभी उत्तराधिकार से नहीं मिलती, प्रत्युत प्रामाणिक गुरु को ही प्रदान की जा सकती है।

वृन्दावन के छह महान गोस्वामी श्रील रूप, सनातन भट्ट, रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ थे, जिनमें से किसी को भी गोस्वामी की पदवी उत्तराधिकार में नहीं मिली थी। वृन्दावन के वे सभी गोस्वामी गुरु के रूप में भक्ति के उच्चतम पद को प्राप्त थे इसीलिए ये सभी गोस्वामी कहलाये। इन्हीं गोस्वामियों ने वृन्दावन के सारे मन्दिरों का शुभारम्भ किया। बाद में इन मन्दिरों की पूजा का भार गोस्वामियों के गृहस्थ शिष्यों को सौंप दिया गया। तभी से गोस्वामी पदवी वंशानुगत चली आ रही है। किन्तु जो प्रामाणिक गुरु होता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय कृष्णभावनामृत-आन्दोलन का प्रसार करता है और जिसका अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण है, वही *गोस्वामी* कहला सकता है। दुर्भाग्यवश वंशानुगत प्रक्रिया चालू है अतएव वर्तमान समय में इस पदवी का दुरुपयोग हो रहा है।

एत बलि' प्रभुके उठाञा कैल आलिंगन।
गलागलि करि' दुँहे करेन क्रन्दन॥२९०॥

अनुवाद

यह कह कर श्री रंग पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाया और उनका आलिंगन किया। आलिंगन करते समय दोनों भाववश रुदन करने लगे।

क्षणेके आवेश छाड़ि' दुँहार धैर्य हैल।
ईश्वर-पुरीर सम्बन्ध गोसाञि जानाइल॥२९१॥

अनुवाद

कुछ क्षणों बाद उन्हें होश आया तो वे शान्त हुए। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रंग पुरी से ईश्वरी पुरी के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में बतलाया।

अद्‌भुत प्रेमेर वन्य दुँहार उथलिल।
दुँहे मान्य करि' दुँहे आनन्दे वसिल॥२९२॥

अनुवाद

वे दोनों अपने भीतर उठने वाले अद्‌भुत प्रेम-भाव से आप्लावित हो उठे। अन्त में दोनों बैठ गये और आदरपूर्वक बातें करने लगे।

दुइ जने कृष्णकथा कहे रात्रि-दिने।
एइमते गोङाइल पाँच-सात दिने॥२९३॥

अनुवाद

इस तरह वे दोनों लगातार पाँच-सात दिनों तक कृष्ण-विषयक कथाओं की विवेचना करते रहे।

कौतुके पुरी ताँरे पुछिल जन्मस्थान।
गोसाञि कौतुके कहेन 'नवद्वीप' नाम॥२९४॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने उत्सुकतावश चैतन्य महाप्रभु से उनके जन्मस्थान के विषय में पूछा तो महाप्रभु ने बतलाया कि नवद्वीप धाम उनका जन्मस्थान है।

श्रीमाधवपुरीर-सङ्गे श्रीरङ्ग-पुरी।
पूर्वे आसियाछिला तेँहो नदीया-नगरी॥२९५॥

अनुवाद

पहले श्री रंग पुरी श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ नवद्वीप जा चुके थे अतएव उन्हें वहाँ हुई एक घटना याद आ गई।

जगन्नाथमिश्र-घरे भिक्षा ग्रे करिल।
अपूर्व मोचार घण्ट ताँहा ग्रे खाइल॥२९६॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी को स्मरण हो आया कि वे माधवेन्द्र पुरी के साथ जगन्नाथ मिश्र के घर गये थे, जहाँ उन्होंने दोपहर का भोजन किया था। यहाँ तक कि उन्हें केले के फूलों की बनी कढ़ी का अद्वितीय स्वाद भी

याद आ गया।

जगन्नाथेर ब्राह्मणी, तेँह—महा-पतिव्रता।
वात्सल्य हयेन तेँह ग्रेन जगन्माता॥२९७॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी को जगन्नाथ मिश्र की पत्नी भी याद आईं। वे अत्यन्त पतिपरायणा थीं। वात्सल्य में तो वे जगन्माता तुल्य थीं।

रन्धने निपुणा ताँ-सम नाहि त्रिभुवने।
पुत्रसम स्नेह करेन संन्यासि-भोजने॥२९८॥

अनुवाद

उन्हें यह भी स्मरण हो आया कि श्री जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शचीमाता भोजन बनाने में निपुण थीं। उन्हें स्मरण हो आया कि वे संन्यासियों से अत्यधिक स्नेह करती थीं और उन्हें अपने पुत्रों के समान भोजन कराती थीं।

ताँर एक ग्रोग्य पुत्र करियाछे संन्यास।
'शंकरारण्य' नाम ताँर अल्प वयस॥२९९॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी यह भी जानते थे कि उनके एक योग्य पुत्र ने कम वयस में ही संन्यास ले लिया था। उसका नाम शंकरारण्य था।

एइ तीर्थे शंकरारण्येर सिद्धिप्राप्ति हैल।
प्रस्तावे श्रीरंग-पुरी एतेक कहिल॥३००॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने महाप्रभु को बतलाया कि इसी तीर्थ पांडरपुर में शंकरारण्य नामक संन्यासी ने सिद्धि प्राप्त की।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े भाई का नाम विश्वरूप था। उसने श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व ही घर छोड़ कर संन्यास ग्रहण कर लिया था और उसका नाम शंकरारण्य स्वामी था। वह सारे देश में भ्रमण करके अन्त में पांडरपुर

गया, जहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद स्वर्गधाम सिधार गया।

प्रभु कहे,—पूर्वाश्रमे तेँह मोर भ्राता।
जगन्नाथ मिश्र—पूर्वाश्रमे मोर पिता॥३०१॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे पूर्व आश्रम में शंकराचार्य मेरा भाई था और जगन्नाथ मिश्र मेरे पिता थे।"

एइमत, दुइजने इष्टगोष्ठी करि'।
द्वारका देखिते चलिला श्रीरंगपुरी॥३०२॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें करने के बाद श्री रंग पुरी द्वारका धाम के लिए रवाना हो गये।

दिन चारि तथा प्रभुके राखिल ब्राह्मण।
भीमानदी स्नान करि' करेन विठ्ठल दर्शन॥३०३॥

अनुवाद

श्री रंग पुरी के द्वारका-गमन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पाण्डरपुर में उस ब्राह्मण के घर चार दिनों तक और रहे आये। उन्होंने भीमा नदी में स्नान किया और विठ्ठल-मन्दिर का दर्शन किया।

तबे महाप्रभु आइला कृष्णवेण्वा-तीरे।
नाना तीर्थ देखि' ताँहा देवता-मन्दिरे॥३०४॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु कृष्णवेण्वा नदी के किनारे गये, जहाँ उन्होंने अनेक तीर्थस्थल तथा विभिन्न देवों के मन्दिर देखे।

तात्पर्य

यह नदी कृष्णा नदी की अन्य शाखा है। कहा जाता है कि ठाकुर बिल्वमंगल इसी नदी के किनारे रहते थे। यह नदी कभी-कभी वीणा, वेणी, सिना तथा भीमा भी कहलाती है।

ब्राह्मण-समाज सब—वैष्णव-चरित।
वैष्णव सकल पडे 'कृष्णकर्णामृत'॥३०५॥

अनुवाद

वहाँ के ब्राह्मण-समाज में सभी शुद्ध भक्त थे जो नियमित रूप से बिल्वमंगल-कृत कृष्णकर्णामृत नामक ग्रंथ का अध्ययन करते थे।

तात्पर्य

बिल्वमंगल-कृत इस पुस्तक में ११२ श्लोक हैं। इसी नाम की दो-तीन पुस्तकें और भी हैं और बिल्वमंगल की पुस्तक पर दो टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। एक टीका तो कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा ही लिखित है, और दूसरी चैतन्य दास गोस्वामी द्वारा।

कृष्णकर्णामृत शुनि' प्रभुर आनन्द हैल।
आग्रह करिया पुँथि लेखाञा लैल॥३०६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णकर्णामृत पुस्तक सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी ही उत्सुकता से उसकी नकल की तथा उसे अपने साथ लेते गये।

'कर्णामृत'-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने।
ग्राहा हैते हय कृष्ण शुद्धप्रेमज्ञाने॥३०७॥

अनुवाद

तीनों लोकों में कृष्णकर्णामृत की बराबरी का कोई ग्रंथ नहीं है। इस पुस्तक को पढ़ने से मनुष्य कृष्ण की शुद्ध भक्ति का ज्ञान प्राप्त करता है।

सौन्दर्य-माधुर्य-कृष्णलीलार अवधि।
सेइ जाने, ग्रे 'कर्णामृत' पड़े निरवधि॥३०८॥

अनुवाद

जो व्यक्ति निरन्तर कृष्णकर्णामृत को पढ़ता है, वही भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य तथा उनकी लीलाओं के मधुर स्वाद को समझ सकता है।

'ब्रह्मसंहिता' 'कर्णामृत' दुइ पुँथि पाञा।
महारत्नप्राय पाइ आइला सङ्गे लञा॥३०९॥

अनुवाद

महाप्रभु ब्रह्मसंहिता तथा कर्णामृत नामक दो पुस्तकों को अत्यन्त मूल्यवान रत्न मानते थे। अतएव अपनी वापसी यात्रा में वे इन्हें अपने साथ लेते आये।

तापी स्नान करि' आइला माहिष्मतीपुरे।
नाना तीर्थ देखि ताहाँ नर्मदार तीरे॥३१०॥

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तापी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान करने के बाद वे माहिष्मतीपुर गये। वहाँ रहते हुए उन्होंने नर्मदा नदी के किनारे अनेक तीर्थस्थानों को देखा।

तात्पर्य

तापी नदी आजकल ताप्ती कहलाती है। यह नदी मुल्ताइ पर्वत से निकलती है और सौराष्ट्र से होकर पश्चिमी अरब सागर में गिरती है। *महाभारत* में माहिष्मतीपुर का उल्लेख सहदेव-विजय के प्रसंग में हुआ है। पाण्डवों में सबसे छोटे भाई सहदेव ने देश के इस भूभाग को जीता था।

ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभ॥

"रत्न प्राप्त करके सहदेव माहिष्मती पुरी गये, जहाँ उन्होंने नील नामक राजा से युद्ध किया।"

धनुस्तीर्थ देखि' करिला निर्विन्ध्याते स्नाने।
ऋष्यमूक-गिरि आइला दण्डकारण्ये॥३११॥

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु धनुस्तीर्थ आये, जहाँ उन्होंने निर्विन्ध्या नदी में स्नान किया। फिर वे ऋष्यमूक पर्वत आये और वहाँ से दण्डकारण्य गये।

तात्पर्य

कुछ लोगों का मत है कि ऋष्यमूक पर्वत की शुरुआत बेलारी जिले के हाम्पिग्राम से होती है। यह पर्वत-श्रेणी तुंगभद्रा नदी के किनारे-किनारे चलती है और धीरे-धीरे हैदराबाद राज्य तक पहुँच जाती है। अन्यों के मतानुसार यह पर्वत मध्यप्रदेश में स्थित है और राम्प कहलाता है। दण्डकारण्य विस्तृत भूभाग है जो खानदेश के उत्तर से प्रारम्भ होकर नासिक तथा औरंगाबाद होते हुए दक्षिणी आहम्मद नगर तक फैला है। गोदावरी नदी इसी भूभाग से होकर बहती है और यहाँ पर विशाल जंगल है, जिसमें भगवान् रामचन्द्र रहे थे।

'सप्तताल-वृक्ष' देखे कानन-भितर।
अति वृद्ध, अति स्थूल, अति उच्चतर।।३१२।।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने जंगल के भीतर सप्तताल नामक स्थान देखा। यहाँ के सारे वृक्ष अत्यन्त पुराने, मोटे तथा ऊँचे थे।

तात्पर्य

सप्तताल का उल्लेख *रामायण* के किष्किन्धाकाण्ड में अध्याय ग्यारह तथा बारह में हुआ है।

सप्तताल देखि' प्रभु आलिंगन कैल।
सशरीरे सप्तताल वैकुण्ठे चलिल।।३१३।।

अनुवाद

सात ताल वृक्षों को देख कर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें गले लगा लिया। फलस्वरूप वे वृक्ष वैकुण्ठ-लोक वापस चले गये।

शून्यस्थल देखि' लोकेर हैल चमत्कार।
लोके कहे, ए संन्यासी—राम-अवतार।।३१४।।

अनुवाद

जब सातों ताल वृक्ष वैकुण्ठ-लोक चले गये तो वहाँ के सारे लोग चकित रह गये। वे कहने लगे, "श्री चैतन्य महाप्रभु नामक यह संन्यासी अवश्य ही भगवान् रामचन्द्र का अवतार होगा।"

सशरीरे ताल गेल श्रीवैकुण्ठ-धाम।
ऐछे शक्ति कार हय, विना एक राम॥३१५॥

अनुवाद

"केवल भगवान् रामचन्द्र में सप्ततालों को वैकुण्ठ-लोक भेजने की शक्ति है।"

प्रभु आसि' कैल पम्पा-सरोवरे स्नान।
पञ्चवटी आसि, ताहाँ करिल विश्राम॥३१६॥

अनुवाद

अन्ततः महाप्रभु पम्पा नामक सरोवर आये, जहाँ उन्होंने स्नान किया। इसके बाद वे पञ्चवटी गये, जहाँ उन्होंने विश्राम किया।

तात्पर्य

कुछ लोगों के अनुसार तुंगभद्रा नदी का प्राचीन नाम पम्बा था। अन्यों के अनुसार राज्य की राजधानी विजयनगर पम्पा तीर्थ कहलाता था। कुछ अन्यों के अनुसार हैदराबाद की ओर अनागुण्डि के निकट एक सरोवर है। यहाँ से होकर तुंगभद्रा नदी बहती है। पम्पा सरोवर के विषय में विभिन्न मत हैं।

नासिके त्र्यम्बक देखि' गेला ब्रह्मगिरि।
कुशावर्ते आइला याहाँ जन्मिला गोदावरी॥३१७॥

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु नासिक गये, जहाँ उन्होंने त्र्यम्बक का दर्शन किया। तब वे ब्रह्मगिरि गये और फिर गोदावरी के उद्गम स्थान कुशावर्त गये।

तात्पर्य

कुशावर्त पश्चिमी घाट में सह्याद्रि पर स्थित है। यह नासिक तीर्थ के पास है, किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार यह विन्ध्य घाटी में स्थित था।

सप्त गोदावरी आइला करि' तीर्थ बहुतर।
पुनरपि आइला प्रभु विद्यानगर॥३१८॥

अनुवाद

अन्य अनेक तीर्थों को देखने के बाद महाप्रभु सप्तगोदावरी गये। अन्त में वे विद्यानगर लौट आये।

तात्पर्य

इस तरह महाप्रभु ने गोदावरी उद्गम से यात्रा करते हुए हैद्राबाद रियासत के उत्तरी भाग को देखा। अन्त में वे कलिंग राज्य लौट आये।

रामानन्द राय शुनि' प्रभुर आगमन।
आनन्दे आसिया कैल प्रभुसह मिलन॥३१९॥

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने महाप्रभु का आगमन सुना तो वे अत्यन्त आनन्दित हो उठे और तुरन्त ही उन्हें देखने गये।

दण्डवत् हञा पड़े चरणे धरिया।
आलिंगन कैल प्रभु ताँरे उठाञा॥३२०॥

अनुवाद

जब रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करते हुए दण्डवत् गिर पड़े, तो महाप्रभु ने तुरन्त उन्हें अपने पाँवों से उठा लिया और उनका आलिंगन किया।

दुइ जने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन।
प्रेमानन्दे शिथिल हैल दुँहाकार मन॥३२१॥

अनुवाद

वे दोनों भावाविष्ट होकर चिल्लाने लगे और उनके मन शिथिल पड़ गये।

कतक्षणे दुइ जना सुस्थिर हञा।
नाना इष्टगोष्ठी करे एकत्र वसिया॥३२२॥

अनुवाद

कुछ समय बाद दोनों को चेत हुआ, और वे एकसाथ बैठ कर विभिन्न विषयों पर बातें करने लगे।

तीर्थयात्रा-कथा प्रभु सकल कहिला।
कर्णामृत, ब्रह्मसंहिता,—दुइ पुँथि दिला॥३२३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीर्थस्थानों का यात्रा-विवरण रामानन्द राय को सुनाया और उन्हें बतलाया कि उन्होंने कृष्णकर्णामृत तथा ब्रह्मसंहिता नामक दो ग्रंथ किस तरह प्राप्त किये। महाप्रभु ने दोनों पुस्तकें रामानन्द राय को दीं।

प्रभु कहे,—तुमि ये्इ सिद्धान्त कहिले।
एइ दुइ पुँथि सेइ सब साक्षी दिले॥३२४॥

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा: "आपने मुझसे भक्ति के विषय में जो कुछ कहा है, उसकी पुष्टि इन दोनों पुस्तकों से होती है।"

रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया।
प्रभु-सह आस्वादिल, राखिल लिखिया॥३२५॥

अनुवाद

इन पुस्तकों को पाकर रामानन्द राय अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने महाप्रभु के साथ मिल कर इनका रसास्वादन किया और हर एक की प्रतिलिपि तैयार कर ली।

ञश्रीशोसारि ' आइला' ग्रामे हैल कोलाहल।
प्रभुके देखिते लोक आइल सकल॥३२६॥

अनुवाद

विद्यानगर ग्राम में श्री चैतन्य महाप्रभु के आने की खबर फैल गई और सारे लोग एक बार फिर उन्हें देखने आये।

लोक देखि' रामानन्द गेल निज-घरे।
मध्याह्न उठिला प्रभु भिक्षा करिबारे॥३२७॥

अनुवाद

यहाँ पर एकत्र लोगों को देख कर श्री रामानन्द राय अपने घर चले

आये। दोपहर में श्री चैतन्य महाप्रभु भोजन करने के लिए उठे।

रात्रिकाले राय पुनः कैल आगमन।
दुइजने कृष्णकथाय कैल जागरण॥३२८॥

अनुवाद

रामानन्द राय फिर से रात्रि में आये और वे तथा भगवान् चैतन्य दोनों कृष्ण-विषयक कथाओं पर चर्चा करते रहे। उन्होंने इसी तरह रात बिताई।

दुइ जने कृष्णकथा कहे रात्रि-दिने।
परम-आनन्दे गेल पाँच-सात दिने॥३२९॥

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण-चर्चा करते रहे। इस तरह उन्होंने बड़े ही आनन्द में पाँच-सात दिन बिता दिये।

रामानन्द कहे,—प्रभु, तोमार आज्ञा पाञा।
राजाके लिखिलुँ आमि विनय करिया॥३३०॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु! आपकी अनुमति से पहले ही मैं विनयपूर्वक राजा को एक पत्र लिख चुका हूँ।

राजा मोरे आज्ञा दिल नीलाचले य़ाइते।
चलिबार उद्योग आमि लागियाछि करिते॥३३१॥

अनुवाद

"राजा ने मुझे पहले ही जगन्नाथ पुरी लौट जाने का आदेश दे दिया है और मैं वापस जाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ।"

प्रभु कहे,—एथा मोर ए-निमित्ते आगमन।
तोमा लञा नीलाचले करिब गमन॥३३२॥

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं केवल इसी कार्य के लिए यहाँ लौट कर आया हूँ। मैं आपको अपने साथ जगन्नाथ पुरी ले चलना चाहता हूँ।"

राय कहे,—प्रभु आगे चले नीलाचले।
मोर संगे हाती-घोडा, सैन्य-कोलाहले॥३३३॥

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु! अच्छा हो यदि आप जगन्नाथ पुरी अकेले जायें, क्योंकि मेरे साथ अनेक घोड़े, हाथी तथा सैनिक होंगे जिनके कारण शोर मचता रहेगा।

दिन-दशे इहा-सबार करि' समाधान।
तोमार पाछे पाछे आमि करिब प्रयाण॥३३४॥

अनुवाद

"मैं दस दिनों में सारी तैयारी कर लूँगा। मैं अविलम्ब आपके पीछे-पीछे नीलाचल आऊँगा।"

तबे महाप्रभु ताँरे आसिते आज्ञा दिया।
नीलाचले चलिला प्रभु आनन्दित हञा॥३३५॥

अनुवाद

रामानन्द राय को नीलाचल आने की आज्ञा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हुए।

य़ेइ पथे पूर्वे प्रभु कैल आगमन।
सेइ पथे चलिला देखि, सर्व वैष्णवगण॥३३६॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस रास्ते से पहले विद्यानगर आये थे, उसी से लौटे और सारे वैष्णवजनों ने रास्ते में उन्हें फिर से देखा।

य़ाहाँ य़ाय, लोक उठे हरिध्वनि करि'।
देखि' आनन्दित मन हैला गौरहरि॥३३७॥

अनुवाद

जहाँ कहीं भी श्री चैतन्य महाप्रभु जाते, श्री हरि के नाम का गुंजार होता। यह देख कर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आलालनाथे आसि' कृष्णदासे पाठाइल।
नित्यानन्द-आदि निज-गणे बोलाइल॥३३८॥

अनुवाद

आलालनाथ पहुँच कर महाप्रभु ने अपने सहायक कृष्णदास को नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य संगियों को बुलाने के उद्देश्य से आगे भेज दिया।

प्रभुर आगमन शुनि' नित्यानन्द राय।
उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय॥३३९॥

अनुवाद

ज्योंही नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन की खबर सुनी, त्योंही वे तुरन्त उठ कर उन्हें देखने चल दिये। वे अत्यधिक भाव के कारण अत्यन्त अधीर हो उठे।

जगदानन्द-दामोदर-पण्डित, मुकुन्द।
नाचिया चलिला, देहे ना धरे आनन्द॥३४०॥

अनुवाद

आनन्द के मारे श्री नित्यानन्द राय, जगदानन्द, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द भावविभोर हो उठे और वे रास्ते-भर नाचते हुए महाप्रभु से मिलने गये।

गोपीनाथाचार्य चलिला आनन्दित हञा।
प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाग् पाञा॥३४१॥

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में गये। वे सब महाप्रभु से मिलने गये और रास्ते में ही उन सबों की भेंट हो गई।

प्रभु प्रेमावेशे सबाय कैल आलिंगन।
प्रेमावेशे सबे करे आनन्द-क्रन्दन॥३४२॥

अनुवाद

महाप्रभु भी प्रेमवश हो गये और उन्होंने सबों का आलिंगन किया। वे सभी प्रेमवश आनन्दित होकर चिल्लाने लगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दे चलिला।
समुद्रे तीरे आसि' प्रभुरे मिलिला॥३४३॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भी परम आनन्दित होकर महाप्रभु से मिलने गये, और उनकी भेंट समुद्र के किनारे हो गई।

सार्वभौम महाप्रभुर पड़िला चरणे।
प्रभु ताँरे उठाञा कैल आलिंगने॥३४४॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिंगन किया।

प्रेमावेशे सार्वभौम करिला रोदने।
सबा-संगे आइला प्रभु ईश्वर-दरशने॥३४५॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यधिक प्रेमावेश में चिल्लाने लगे। तब महाप्रभु सबों के साथ जगन्नाथ मन्दिर गये।

जगन्नाथ-दरशन प्रेमावेशे कैल।
कम्प-स्वेद-पुलकाश्रुते शरीर भासिल॥३४६॥

अनुवाद

जगन्नाथजी का दर्शन करने से अनुभव किये गये प्रेमावेश के कारण कम्प, स्वेद, अश्रु तथा पुलक से महाप्रभु का शरीर आप्लावित हो उठा।

बहु नृत्यगीत कैल प्रेमाविष्ट हञा।
पाण्डापाल आइल सबे माला-प्रसाद लञा॥३४७॥

अनुवाद

महाप्रभु प्रेमावेश के कारण नाचने और कीर्तन करने लगे। उस समय सारे पण्डे तथा पुजारी उन्हें भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद तथा माला प्रदान करने आये।

तात्पर्य

भगवान् जगन्नाथ की सेवा में लगे पुजारी *पण्डा* या *पण्डित* कहलाते हैं और वे ब्राह्मण होते हैं। मन्दिर के बाहरी मामलों की देख-रेख करने वाले *पाल* कहलाते हैं। चैतन्य महाप्रभु को देखने के लिए पुजारी तथा पण्डे दोनों ही गये।

माला-प्रसाद पाञा प्रभु सुस्थिर हइला।
जगन्नाथेर सेवक सब आनन्दे मिलिला॥३४८॥

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ की माला तथा प्रसाद पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु स्थिर हुए। जगन्नाथजी के सारे सेवक बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक चैतन्य महाप्रभु से मिले।

काशीमिश्र आसि' प्रभुर पड़िला चरणे।
मान्य करि' प्रभु ताँरे कैल आलिंगन॥३४९॥

अनुवाद

बाद में काशी मिश्र आये और वे महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े। महाप्रभु ने बड़े ही आदर से उनका आलिंगन किया।

प्रभु लञा सार्वभौम निज-घरे गेला।
मोर घरे भिक्षा बलि' निमन्त्रण कैला॥३५०॥

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को अपने साथ अपने घर यह कह कर ले गये, "आज आप मेरे घर में भोजन करेंगे।" इस तरह उन्होंने महाप्रभु को आमन्त्रित किया।

दिव्य महाप्रसाद अनेक आनाइल।
पीठा-पाना आदि जगन्नाथ ये खाइल॥३५१॥

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भगवान् जगन्नाथ द्वारा छोड़े गये विविध प्रकार के प्रसाद ले आये। वे अनेक प्रकार के केक तथा औंटे दूध की बनी वस्तुएँ ले आये।

मध्याह्न करिला प्रभु निजगण लञा।
सार्वभौम-घरे भिक्षा करिला आसिया।।३५२।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये और वहाँ दोपहर का भोजन किया।

भिक्षा कराञा ताँरे कराइल शयन।
आपने सार्वभौम करे पाद-संवाहन।।३५३।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें शयन कराया और स्वयं उनके पाँव दबाने लगे।

प्रभु ताँरे पाठाइल भोजन करिते।
सेइ रात्रि ताँर घरे रहिला ताँर प्रीते।।३५४।।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा कि जाकर भोजन करें और महाप्रभु उन्हें प्रसन्न करने के लिए उस रात्रि उन्हीं के घर रुके।

सार्वभौम-संगे आर लञा निजगण।
तीर्थयात्रा-कथा कहि' कैल जागरण।।३५५।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके संगी सार्वभौम भट्टाचार्य के यहीं रहे। वे सारी रात महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वृत्तान्त सुनते हुए जगते रहे।।

प्रभु कहे,—एत तीर्थ कैलूँ पर्यटन।
तोमा-सम वैष्णव ना देखिलुँ एकजन।।३५६।।

अनुवाद

महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा, "मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्रा की है किन्तु कहीं भी आप जैसा वैष्णव नहीं देखा।"

एक रामानन्द राय बहु सुख दिल।
भट्ट कहे,—एइ लागि' मिलिते कहिल।।३५७।।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, "रामानन्द राय की बातों से मुझे बहुत सुख प्राप्त हुआ।" भट्टाचार्य ने कहा, "इसीलिए मैंने आपसे विनती की थी कि आप उनसे अवश्य मिलें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य चन्द्रोदय (भाग ८) में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—"सार्वभौम! मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्राएँ की हैं किन्तु मुझे तुम जैसा वैष्णव कहीं नहीं मिला। किन्तु मैं यह स्वीकार करता हूँ कि रामानन्द राय सचमुच अद्भुत हैं।" सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "इसीलिए, हे महाप्रभु! मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि आप उनसे अवश्य भेंट करें।" इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "इन तीर्थों में अनेकानेक वैष्णव हैं और उनमें से अधिकांश नारायण की पूजा करते हैं। तत्त्ववादी भी लक्ष्मी-नारायण के उपासक हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय के नहीं हैं। शिव के अनेक उपासक हैं और अनेक नास्तिक भी हैं। तो भी हे भट्टाचार्य! मुझे रामानन्द राय तथा उसके विचार अत्यन्त प्रिय हैं।"

तीर्थयात्रा-कथा एइ कैलुँ समापन।
संक्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन॥३५८॥

अनुवाद

इस तरह मैंने महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वर्णन संक्षेप में पूरा किया है। इसे और विस्तार से नहीं बतलाया जा सकता।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने इंगित किया है कि इस अध्याय के ७४वें श्लोक में यह कहा गया है कि महाप्रभु ने शियाली भैरवी का मन्दिर देखा, किन्तु वास्तव में उन्होंने शियाली में श्री भूवराह का मन्दिर देखा। शियाली तथा चिदम्बरम् के निकट श्री मुष्णम् का मन्दिर है। इसी मन्दिर में श्री भूवराह का अर्चाविग्रह है। चिदम्बरम की सीमा के अन्तर्गत दक्षिण आर्कट नाम का जिला है और शियाली इस जिले में है। पास ही श्री भूवराह देव का मन्दिर है, न कि भैरवीदेवी का।

अनन्त चैतन्यलीला कहिते ना जानि।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि॥३५९॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अपार हैं। उनके कार्यकलापों का ठीक से वर्णन नहीं किया जा सकता, फिर भी लोभवश मैंने चेष्टा की है। इसी से मेरी निर्लज्जता प्रकट है।

प्रभुर तीर्थयात्रा-कथा शुने ग्रेइ जन।
चैतन्यचरणे पाय गाढ प्रेमधन॥३६०॥

अनुवाद

जो कोई भी महाप्रभु की विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा के विषय में सुनता है, वह प्रगाढ़ प्रेम-भाव रूपी धन को प्राप्त करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी हैं कि निर्विशेषवादी अपनी इन्द्रियानुभूति से परम सत्य-विषयक स्वरूप की कल्पना करते हैं और इन काल्पनिक स्वरूपों की पूजा करते हैं। किन्तु न तो *श्रीमद्‌भागवत* न ही चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार की इन्द्रियतृप्ति कर पूजा को किसी प्रकार से आध्यात्मिक महत्व प्रदान करते हैं।" मायावादी अपने को परब्रह्म (सर्वोत्कृष्ट) मानते हैं। वे मानते हैं कि परब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं है, और उनके सारे स्वरूप मायाजाल या आकाश-कुसुम तुल्य हैं। मायावादीजन तथा ईश्वर के स्वरूपों की कल्पना करने वाले दोनों ही भ्रमित हैं। उनके अनुसार अर्चाविग्रह की या भगवान् के किसी भी स्वरूप की पूजा बद्धजीव के भ्रम का परिणाम है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने *अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व*-दर्शन के आधार पर *श्रीमद्‌भागवत* के निर्णय की पुष्टि करते हैं। इस दर्शन के अनुसार भगवान् अपनी सृष्टि से अभिन्न तथा भिन्न हैं। अर्थात एकत्व में विविधता है। इस तरह महाप्रभु ने कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों की अयोग्यता सिद्ध की। ऐसे व्यक्तियों की अनुभूति समय तथा शक्ति का अपव्यय है।

दृष्टान्त प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही महाप्रभु ने विविध तीर्थस्थानों के मन्दिरों को देखा। वे जहाँ कहीं भी गये, भगवान् के प्रेम में भावविह्वल हो जाते थे। जब कोई वैष्णव किसी देव-मन्दिर में जाता है, तो उसकी

दृष्टि निर्विशेषवादियों तथा मायावादियों से भिन्न होती है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* द्वारा होती है। शिव-मन्दिर में वैष्णव का जाना अभक्त के जाने से भिन्न होता है। अभक्त शिवजी के विग्रह को काल्पनिक मानता है, क्योंकि वह यही सोचता है कि परम सत्य तो शून्य है। किन्तु वैष्णव शिव को एकसाथ भगवान् से अभिन्न तथा भिन्न करके देखता है। इस सम्बन्ध में दूध तथा दही का दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है। दही, दूध ही है किन्तु साथ ही वह दूध नहीं है। वह दूध से अभिन्न होकर भी भिन्न होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का यही दर्शन है और इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* द्वारा (९.४) होती है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

"यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से ओतप्रोत है। सारे जीव मुझ में हैं, किन्तु मैं उन में नहीं हूँ।"

परम सत्य हर वस्तु हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर वस्तु ईश्वर है। इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायी सभी देवताओं के मन्दिरों में गये, किन्तु उन्होंने उन्हें उस रूप में नहीं देखा जैसा कि निविर्शेषवादी देखते हैं। हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण करते हुए सारे मन्दिरों को देखना चाहिए। कभी-कभी सहजिये यह मान लेते हैं कि गोपियाँ कात्यायनी-मंदिर में उसी तरह गईं जिस तरह संसारी लोग देवी-मन्दिर में जाते हैं। किन्तु गोपियों ने कात्यायनी से प्रार्थना की कि वे उन्हें पतिरूप में कृष्ण प्रदान करें। संसारी लोग कात्यायनी के मन्दिर में भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा लेकर जाते हैं। एक वैष्णव तथा एक अभक्त के जाने में यही अन्तर है।

परम्परा को न समझने के कारण तार्किकों ने *पञ्चोपासना* का सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जिसका अर्थ यह होता है कि एक देवता की पूजा करने से अन्य देवताओं के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। श्री चैतन्य या वैष्णवों को ऐसा दार्शनिक चिन्तन स्वीकार्य नहीं है। निर्विशेषवादी भले ही अनेक देवताओं को स्वीकार कर लें, किन्तु वैष्णवजन कृष्ण को ही एकमात्र भगवान् मानते हैं, और अन्यों का बहिष्कार करते हैं। मायावादी अर्चाविग्रह की पूजा निश्चित रूप से मूर्ति-पूजा है। कृष्णभावनामृत के अभाव

में लोगों को मायावाद-दर्शन का शिकार होना पड़ता है। फलस्वरूप वे कभी-कभी नितान्त नास्तिक बन जाते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी आचरण से आत्म-साक्षात्कार की विधि स्थापित की। जैसा कि *चैतन्य-चरितामृत* में (मध्य ८.२७४) कहा गया है—

स्थावर-जंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेवस्फूर्ति॥

"महाभागवत हर जड़ तथा चेतन वस्तु को देखता है, किन्तु वह उनके असली स्वरूपों को नहीं देखता। वह तो सर्वत्र भगवान् के स्वरूप को ही देखता है। भगवान् की शक्ति को देख कर वैष्णव को तुरन्त भगवान् के दिव्य स्वरूप का स्मरण हो आता है।"

चैतन्यचरित शुन श्रद्धा-भक्ति करि' ।
मात्सर्य छाड़ि मुखे बल 'हरि' 'हरि'॥३६१॥

अनुवाद

कृपया श्रद्धा तथा भक्ति के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाओं का श्रवण करें। हर व्यक्ति भगवान् से ईर्ष्या करना छोड़ कर भगवन्नाम हरि का कीर्तन करे।

एइ कलिकाले आर नाहि कोन धर्म।
वैष्णव, वैष्णवशास्त्र, एइ कहे मर्म॥३६२॥

अनुवाद

इस कलियुग में कोई मौलिक धर्म नहीं रहा। केवल वैष्णव तथा वैष्णव-शास्त्र रह गये हैं। यही सभी बातों का सार है।

तात्पर्य

मनुष्य को भक्ति-विधि तथा इसके समर्थक शास्त्रों में दृढ़ आस्था होनी चाहिए। यदि श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु के कार्यकलापों को सुना जाय तो ईर्ष्या से मुक्त हुआ जा सकता है। *श्रीमद्भागवत* ऐसे ही ईर्ष्यारहित व्यक्तियों (*निर्मत्सराणां सताम्*) के लिए है। इस युग में मनुष्य को श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, अपितु हरि तथा कृष्ण के पवित्र नामों—महामन्त्र—का कीर्तन करना चाहिए। *सनातन धर्म* का यही सार है। असली वैष्णव शुद्ध

भक्त तथा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति होता है। वैष्णव-शास्त्र *श्रुति* या वेदों का सूचक है, जिन्हें *शब्द प्रमाण* कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति वैदिक साहित्य का दृढ़ता से पालन करता है और भगवन्नाम का कीर्तन करता है तो वह निश्चय ही दिव्य शिष्य-परम्परा में स्थान प्राप्त करेगा। जो लोग जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* में (११.१९.१७) कहा गया है—

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात् स विरज्यते॥

"वैदिक साहित्य, प्रत्यक्ष अनुभूति, इतिहास तथा अनुमान—ये चार प्रकार के साक्ष्य-प्रमाण हैं। परम सत्य की अनुभूति के लिए इन सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहिए।"

चैतन्यचन्द्रेर लीला—अगाध, गम्भीर।
प्रवेश करिते नारि—स्पर्शि रहि' तीर॥३६३॥

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अगाध समुद्र की भाँति हैं। उनमें प्रवेश कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं तो समुद्र-तट पर खड़े होकर केवल जल का स्पर्श कर रहा हूँ।

चैतन्यचरित श्रद्धाय शुने य़ेइ जन।
य़तेक विचारे, तत पाय प्रेमधन॥३६४॥

अनुवाद

जो कोई भी श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है और व्याख्या करके उनका अध्ययन करता है, वह भगवत्प्रेम रूपी धन को प्राप्त करता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे य़ार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥३६५॥

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा

उनकी कृपा की कामना करता हुआ मैं कृष्णदास श्री चैतन्य-चरितामृत कह रहा हूँ।

तात्पर्य

सदैव की तरह प्रणेता इस अध्याय का समापन श्री रूप तथा श्री रघुनाथ का नाम लेते हुए और उनके चरणकमलों पर अपने को पुनः समर्पित करते हुए करता है।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के नवम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत के अनेक स्थानों की यात्राओं का वर्णन हुआ है।

परिशिष्ट

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता एवं चौंसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रसार के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई. में) प्रयाग (इलाहाबाद) में विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गये।

अपनी प्रथम भेंट, १९२२ में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने *श्रीमद्भगवद्गीता* पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका "बैक टु गॉडहेड" आरम्भ की, इस पत्रिका को चलाना संघर्षपूर्ण था किन्तु वे स्वयं ही उसके सम्पादन, पाण्डुलिपि के टंकण (टाइपिंग) और मुद्रण सामग्री को देखते थे। उन्होंने एक-एक प्रति बाँटकर भी इसके प्रकाशन को बनाये रखने के लिए संघर्ष किया। एक बार आरम्भ होकर फिर यह पत्रिका कभी बन्द नहीं हुई; अब यह उनके शिष्यों द्वारा पश्चिमी देशों में भी चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर 'गौड़ीय वैष्णव समाज' ने १९४७ में उन्हें 'भक्तिवेदान्त' की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में चौवन वर्ष की अवस्था में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया और वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। श्रील प्रभुपाद ने तदनन्तर श्रीवृन्दावन धाम की यात्रा की जहाँ वे बड़ी ही विनम्र परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधादामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधादामोदर मन्दिर में श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ का आरम्भ किया था। वह ग्रन्थ था अठारह हजार श्लोक संख्या के *श्रीमद्भागवत*

(भागवत पुराण) का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने *अन्य लोकों की सुगम यात्रा* नामक पुस्तक भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितंबर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव का धर्मानुष्ठान पूरा करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए। अन्ततः श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयॉर्क नगर में आए तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। इसके पश्चात् कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ को, इस भौतिक संसार से प्रयाण करने के पूर्व तक श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन के कारण इस संघ को विश्वभर में सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, विद्यालयों, संस्थाओं और कृषि-क्षेत्रों का बृहद् संगठन बना दिया था।

१९६८ में श्रील प्रभुपाद ने प्रयोग के रूप में, वैदिक समाज के आधार पर पश्चिमी वर्जीनिया की पहाड़ियों में नव-वृन्दावन की स्थापना की। इस समय दो हजार एकड़ से भी अधिक के इस समृद्ध नव-वृन्दावन के कृषि-क्षेत्र की सफलता से प्रोत्साहित होकर उनके शिष्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में भी ऐसे अनेक समुदायों की स्थापना की।

१९७२ ई. में श्रील प्रभुपाद ने डल्लास, टेक्सास में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना द्वारा पश्चिमी देशों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की वैदिक प्रणाली का सूत्रपात किया। तब से, उनके निर्देशन के अनुसार श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने सम्पूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका में तथा विश्व के शेष भागों में गुरुकुल खोले हैं। भक्तिवेदान्त स्वामी गुरुकुल, श्रीवृन्दावन-धाम, इनमें सर्वप्रमुख है।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल, में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी है। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले कतिपय वर्षों में पूर्ण हो जाएगी। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-भवन का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति का मूल रूप से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए रह सकते हैं। बम्बई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में बारह अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में हरे-कृष्ण-मन्दिर खोलने की योजना कार्याधीन है।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण विद्वानों द्वारा अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्य-ग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ पचास भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ *श्रीचैतन्य-चरितामृत* का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए व्याख्यान-पर्यटन के रूप में श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक-दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।

बंगला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

य़=ज, यथा य़मुना को जमुना पढ़ें।

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (ISKCON)

संस्थापक-आचार्य: कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

१. इलाहाबाद, उ.प्र.—४०३, बाघम्बरी गृह संस्थान, भरद्वाजपुरम्, २११ ००३
२. ऊधमपुर, जम्मू व काश्मीर—श्रील प्रभुपाद आश्रम, श्रील प्रभुपाद मार्ग, १८२१०१/(०१९९) २९८
३. अगरतला, त्रिपुरा—हरे कृष्ण धाम, आसाम-अगरतला रोड, मारूप कार्यालय, बनमालीपुर, ७९९ ००१
४. अहमदाबाद, गुजरात—हरे कृष्ण धाम, सेटेलाइट रोड, गाँधी नगर, हाईवे क्रॉसिंग, ३८० ०५४/४४९९४५, ४०२८२७
५. इम्फाल, मणिपुर—हरे कृष्ण धाम, एयरपोर्ट रोड, ७९५ ००१/२१५८७
६. कलकत्ता, प. बंगाल—३-सी, अलबर्ट रोड, ७०० ०१७/२४७३७५७, २४७६०७५
७. कुरुक्षेत्र, हरियाणा—हरे कृष्ण धाम, ८०५, सेक्टर १३,
८. कोयम्बटुर, तामिलनाडु—३८७, 'पदम', बी. जी. आर. पुरम्, डॉ. अलगिसन रोड-१, ६४१ ०११/४५९७८
९. गुंटूर, आ. प्र—श्रीराधा-मदन-मोहन मन्दिर, शिवालयम के सामने, पेडककान्त, ५२२५०९
१०. गौहाटी, आसाम—श्री श्रीरुक्मिणी- कृष्ण मन्दिर, माउंट हरे कृष्ण, उलूबारी चाली, ७८१ ००१/३१२०८
११. चंडीगढ़, पंजाब—हरे कृष्ण धाम, दक्षिण मार्ग, सेक्टर ३६-बी, १६० ०३६/५३३२३२
१२. चामोर्शी, महाराष्ट्र—७८, कृष्णनगर धाम, जिला: गढ़चिरोली, ४४२६०३
१३. तिरुपति, आ. प्र.—३७, बी टाइप, टी. टी. डी. क्वार्टर्स, विनायक नगर, के. टी. रोड, ५१७५०७/२०११४
१४. त्रिवेन्द्रम, केरल— टी. सी. २२४/१४८५, डब्ल्यू. सी. हॉस्पिटल रोड, थाइकाउड, ६९५ ०१४/६८१९७
१५. नागपुर, महाराष्ट्र—७०, हिल रोड, रामनगर, ४४० ०१०/५३३५१३
१६. नयी दिल्ली—संत नगर, मेन रोड, ईस्ट ऑफ कैलाश-११० ०६५/ ६४१९७०१
१७. नयी दिल्ली—१४/६३, पंजाबी बाग, ११० ०२६/५४१०७८२
१८. पंढरपुर, महाराष्ट्र—हरे कृष्ण आश्रम, चन्द्रभागा नदी के पार, जिला: सोलापुर, ४१३ ३०४
१९. पटना, बिहार—राजेन्द्र नगर, रोड नं. १२, ८०००१६/५०७६५
२०. पुना, महाराष्ट्र—४, तारापुर रोड, कैम्प, ४११ ००१/६६७२५४
२१. पुरी, उड़ीसा—इस्कॉन बलिया पंडा, बी. एच. बी/१, पुरी
२२. बंगलोर, कर्नाटक—हरे कृष्ण हिल १, 'आर' ब्लॉक, राजाजी नगर, सेकेंड स्टेज, कॉर्ड रोड, ५६० ०१०/३२१९५६
२३. बम्बई, महाराष्ट्र—हरे कृष्ण धाम, जुहू, ४०० ०४९/६२०६८६०
२४. बड़ौदा, गुजरात—हरे कृष्ण धाम, हरिनगर पानी टंकी के पीछे, गोत्री रोड, ३९० ०१५/३२६२९९
२५. बामनबोर, गुजरात—इस्कॉन, हरे कृष्ण आश्रम, नेशनल हाइवे नं. ८८, जिला: सुरेन्द्र नगर, (फोन ९७)
२६. भाईंदर (प.), महाराष्ट्र—१०१-१०३, वालचन्द शॉपिंग सेंटर, पहला माला, जिला: ठाणे, ४०१ १०१/८१९१९२०
२७. भुवनेश्वर, उड़ीसा—नेशनल हाइवे नं.५, नयापल्ली, ७५१ ००१/५३१२५, ५५६१७
२८. मद्रास, तमिलनाडु—५९, बर्किट रोड, टी. नगर, ६०० ०१७/ ६६२२८५, ६६२२८६, ४४३२६६
२९. मायापुर, प. बंगाल—श्री मायापुर चन्द्रोदय मंदिर, पो. आ.: श्री मायापुर धाम, जिला: नदिया, ७१२ ४१३/
    ३१, (०३४७३३) २१८ (स्वरूप गंज)
३०. मोइरंग, मणिपुर—नौंगबन, इंगखोन, टिडिम रोड, ७९५ १३३
३१. वृन्दावन, उ. प्र.—कृष्ण-बलराम मन्दिर, भक्तिवेदान्त स्वामी मार्ग, जिला: मथुरा, २८१ १२४/(०५६६४) ८२४७८
३२. वल्लभ विद्यानगर, गुजरात—गणेश भुवन, पॉलिटेक्निक कालेज के सामने, ३८८१२०/३०७९६
३३. सिकन्दराबाद, आ. प्र.—२७, सेंट जॉन'स रोड, ५०० ०२६/८२५२३२
३४. सिल्चर, आसाम—हरे कृष्ण धाम, महाप्रभु कॉलोनी, मालुग्राम, ७८८ ००४
३५. सिलीगुड़ी, प. बं.—गितालपाड़ा, जिला: दार्जिलिंग, ७३४४०१/२६६१९
३६. सूरत, गुजरात—श्रीराधा-कृष्ण मन्दिर, रेंडर रोड, जहाँगीरपुरा, ३९५ ००५/८४२१५
३७. हैदराबाद, आ. प्र—हरे कृष्ण धाम, नामपल्ली स्टेशन रोड, ५०० ००१/५५१०१८, ५५२९२४

कृषि फार्म:

१. कटवडा, गुजरात—हरे कृष्ण फार्म, जिला: अहमदाबाद (इस्कॉन अहमदाबाद से सम्पर्क करें)
२. करजत, महाराष्ट्र—(बम्बई मन्दिर से सम्पर्क करें)
३. डबिलपुर ग्राम, आ. प्र.—मेडचल तालुका, जिला: हैदराबाद, ५०१४०५
४. मायापुर, प. बंगाल—(श्री मायापुर मन्दिर से संपर्क स्थापित करें)
५. चामोर्शी, महाराष्ट्र—(चामोर्शी केन्द्र से सम्पर्क साधें)

रेस्तरां (भोजनालय):

१. बम्बई—'न्यू गोविन्दा' (हरे कृष्ण धाम में)
२. कलकत्ता—हरे कृष्ण कर्म फ्री कनफेक्शनरी, ६, रसेल स्ट्रीट, ७०० ०७१
३. वृन्दावन—कृष्ण-बलराम मन्दिर अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-गृह में

सूचना: आब्लिक (/) के पूर्व पिन कोड नम्बर है तथा आब्लिक (/) के बाद टेलीफोन नम्बर है (हैं)।